दयाल शिवब्रतलाल कृत

सम्पूर्ण

महारामायण

प्रकाशक—

मुन्शीलाल गोविला

स० सम्पादक—

बालमुकन्द गोविला

देवीचरन मीतल

प्रथम बार } सर्वाधिकार सुरक्षित { मू०प्रतिकापी सादा २॥)
" " सजिल्द ३)

Shanti Press, Aligarh.

॥ भेंट ॥

श्री० १०८, श्रीमान् श्रीयुत, श्री महाराज आदित्य नरायनसिंह,
साहब बहादुर काशी नरेश,
चीफ़ आफ बनारस।

अन्नदाता !

मैं आपकी प्रजा हूँ ! प्रजा का धर्म है अपने राजा को भेंट अर्पण करना !

मैं त्यागी वैरागी हो गया। राधास्वामी धाम का मठ बनाया। हाई स्कूल की नींब डाली। संस्कृत पाठशाला मध्यमाश्रेणी तक खोली। इन्टरमीजिएट कालिज खोलने की धुन में हूँ। धाम ट्रस्ट कर दिया गया। वह अपने सारे सम्बन्धी विद्याशालाओं के साथ नियम पूर्वक श्रीमान् के राज को भेंट कर दिया गया।

रामनगर में हर वर्ष धूमधाम से रामलीला होती हैं। मैं रामायण का प्रेमी हूँ। कई रामायणें लिखीं। बृद्धावस्था में रोग ग्रस्त होकर महीनों बंगलौर (मैसूर राज) में रहा। मैं महीनों से बेगम पेट (हैदराबाद दक्षिण) के एक पहाड़ी स्थान में ठहरा हूँ। इस बार मैंने महारामायण नामक ग्रन्थ लिखा।

कुछ नहीं है जो आप को दूँ भेंट।
हाथ खाली हैं और खाली टेंट॥

प्रेम श्रद्धा और भक्ती के साथ आपको सगुण रूप विश्वेश्वरनाथ समझ और मानकर यह भेंट देता हूँ।..............................स्वीकृत हो।

आपका शुभचिन्तक प्रजानुयाई

शिवव्रत लाल

बेगमपेट (हैदराबाद दकन)

२५ अक्टूबर सन् १९३४ ई०।

❋ महारामायण की विषय-सूची ❋

भूमिका

॥ इति भूमिका ॥

(अनुभव खंड पूर्वार्द्ध)

॥ इति अनुभव खण्ड ॥

प्रथम आरम्भ खंड

प्रथम भाग

द्वितीय भाग

तृतीय भाग

॥ इति प्रथम आरम्भ खण्ड ॥

द्वितीय अवध खण्ड

प्रथम भाग

द्वितीय भाग ।

तृतीय भाग ।

चतुर्थ भाग

॥ इति द्वितीय अवध खण्ड ॥

—–o—–

तृतीय वन [साधन] खण्ड

प्रथम भाग

———

द्वितीय भाग

तृतीय भाग

चतुर्थ भाग

पंचम भाग

॥ इति बन साधन खण्ड ॥

चतुर्थ मन (साधन) खण्ड

प्रथम भाग

—:*:—

द्वितीय भाग ।

तृतीय भाग ।

चतुर्थ भाग

॥ इति मन साधन खण्ड ॥

पाँचवाँ सुपंथ खण्ड

प्रथम भाग

द्वितीय भाग

॥ इति सुपंथ खड ॥

छटा सिद्धि खण्ड

(लंका या युद्ध काण्ड)

प्रथम भाग

द्वितीय भाग

तृतीय भाग

॥ इति सिद्धि खण्ड ॥

सातवाँ अनुभव खण्ड उत्तरार्द्ध

प्रथम भाग

द्वितीय भाग

॥ इति ॥

क्षमा याचना

रामायण को सब लोग प्रेम और श्रद्धा से पठन पाठन करते हैं। लेकिन रामायण एक मामूली पढ़ने की पुस्तक नहीं है। वह गूढ़ तत्वों से भरा हुआ आत्म विद्या तथा योग का अपूर्व ग्रन्थ है। वह केवल समझने का विषय नहीं है बल्कि अमल और साधन का है, जिसकी कुँजी संतों के हाथ में है।

दयाल शिवब्रत लाल जी महाराज ने हमारे ऊपर बड़ी कृपा करके शारीरिक पीड़ा रहते हुये भी इस 'महारामायण' को सरल और रोचक भाषा में योग के आधार पर लिखा है। इसके सात खंड हैं जो योग साधन के सप्त सोपान हैं इसके विशेश वर्णन की यहां आवश्यकता नहीं। आपको स्वयं इसके पढ़ने से पता लग जायगा।

दयाल जी महाराज जितनी सुन्दर और शुद्ध छपाई चाहते थे वह न हुई। इसमें प्रथम तो हमारे कार्य्य कर्त्ताओं की नातजुर्बे कारी थी। दूसरे सबसे बड़ी गलती प्रेस वालों की हुई। उन्होंने बड़ी लापरवाही और अंधा धुन्धी से काम लिया। एक प्रेस के बाद दूसरा बदला गया मगर उसी दिक्कत और परेशानी का सामना करना पड़ा।

इस कारण छपाई की तथा शब्दों की गलतियां होगई हैं। पाठक इनको स्वयं ठीक करलें। इन गलतियों के लिये हम पाठकों से क्षमा चाहते हैं और आशा करते हैं कि वे इन गलतियों पर ध्यान न करते हुये पुस्तक मूल भाव पर ध्यान देकर इससे लाभ उठायेंगे। यदि पाठकों ने इस ग्रन्थ को अपनाया तो इसका द्वतीय संस्करण बहुत जल्द बिल्कुल शुद्ध और सुन्दर चित्रों सहित छपवाया जायगा।

स० सम्पादक

नोट—स्कूल कालिजों और लायब्रेरियों के लिये इसका मूल्य २) रु० कर दिया है।

मेरु
ॐ सत्यम्
ॐ तपः
ॐ जनः
ॐ महः
ॐ स्वः
ॐ भुवः
ॐ भूः
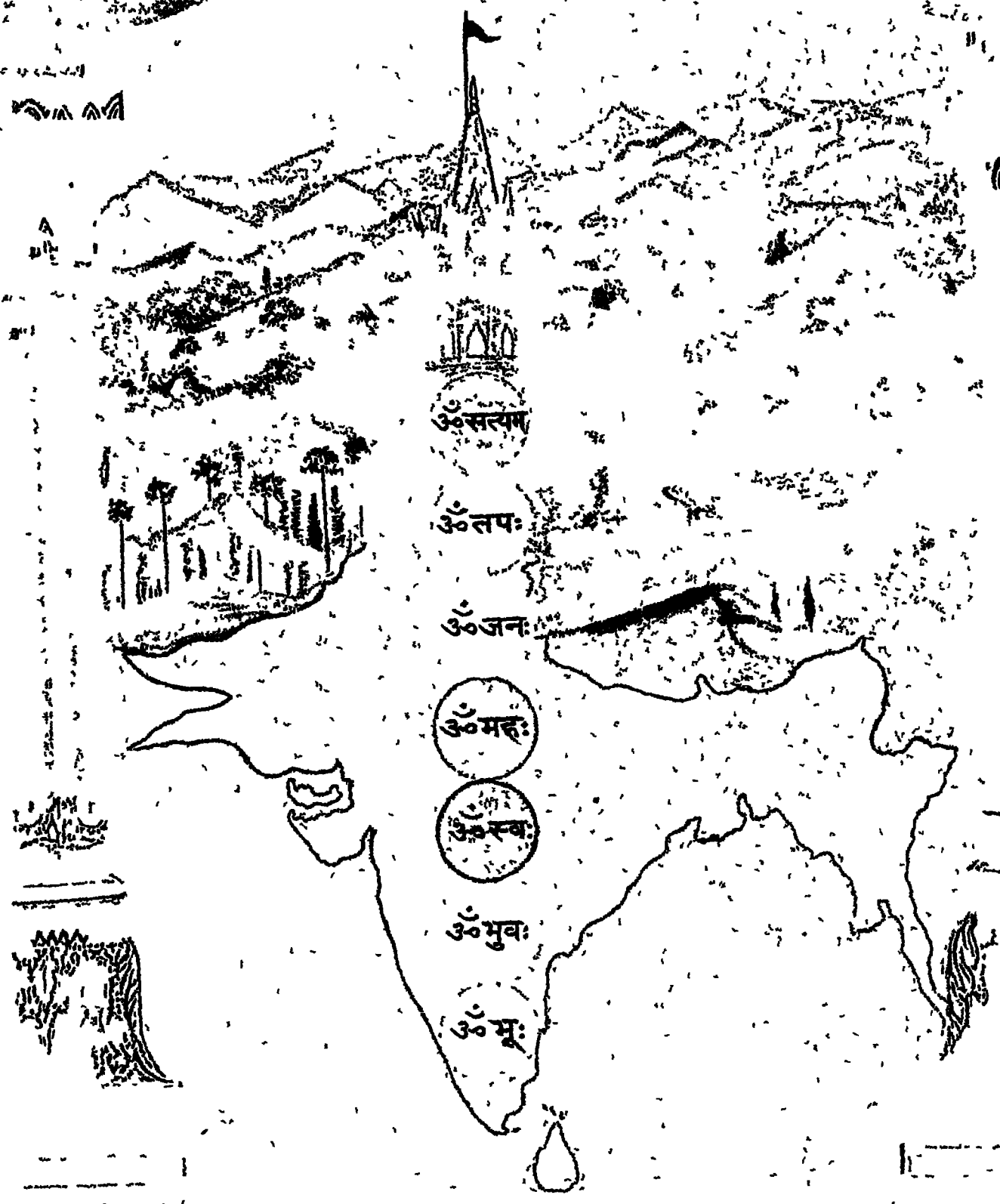
महारामायण

गरुण और कागभुशण्डी का सम्वाद

(सुमेरु पर्वत पर)

भूमिका

रामायण

रामायण बड़ी विचित्र पुस्तक है। इस से अच्छी पुस्तक आज तक किसी ने नहीं लिखी। आगे चलकर कोई लिखेगा कि नहीं, कौन जान सक्ता है? अब तक सैकड़ों और सहस्रों लिखने वाले हो गये। दिन प्रति दिन जगत में अनेक ग्रन्थ लिखे और छापे जाते हैं। और आज कल तो यह हो रहा है कि लिखने वालों की लेखनी उमड़ती हुई बाढ़ की धार के समान रात दिन चला करती है। ग्रन्थों और पुस्तकों का समुद्र झकोले लिया करता है। अगर संसार की सारी पुस्तकों का संग्रह किया जाय, तो हिमालय और विन्ध्या पर्वतों जैसे बड़े बड़े पहाड़ बन जायँगे। लेकिन रामायण अब तक रामायण है। किसी को यह साहस नहीं हुआ कि इस विलक्षणता का दूसरा ग्रन्थ रच सके।

अनेक रामायण

सब से पहिले आदि कवि बाल्मीकि ऋषि ने रामायण लिखी। इसके पीछे और कितनेही लिखनेवालों ने परिश्रम किया। भारतवर्ष की प्रचलित भाषाओं में सब जगह रामायणें मिलेंगी। राम नाम महा मंत्र बन गया है और जहाँ देखिये महल, मकान, झोंपड़ो, मैदान सब जगह गूँजा हुआ सुनाई दिया करता है। ३५० सौ वर्ष के लगभग हुए पवित्र काशी में गोस्वामी तुलसीदासजी महाराज ने पूर्बी बोली में अपनी रामायण लिखी। यह सारी रामायणों मे सबसे अधिक सर्वप्रिय है। बाल्मीकि रामायण के विषय में, मैं कुछ नहीं कह सक्ता। वह जैसी है वैसी है। संस्कृत में होने के कारण उसके पढ़ने वाले बहुत थोड़े रह गये हैं। तुलसीकृत रामायण का प्रचार सब जगह है। पंडित से लेकर साधारण हिन्दी पढ़े लिखे मनुष्य रात दिन उसे पढ़ते और गाते रहते हैं। उन्हें उससे आनन्द का रस मिलता है। और जहाँ तक मेरा अपना विचार और विश्वास है, सौ में से कम से कम पिचहत्तर पढ़ने वालों का हृदय भक्ति भाव से बढ़ जाता है। यह इस पुस्तक की बहुत बड़ी महिमा है, जो बाल्मीकिकृत रामायण को भी प्राप्त नहीं हुई।

तुलसीकृत रामायण

तुलसीदासजी महाराज रामायण के समुद्र के बहुत बड़े तैराक हैं। वह केवल तैराक ही नहीं है बल्कि इस महासागर में गहरी और देर की डुबकी लगाने वाले हैं। जो कोई उनके सन्निकट आजाता है वह राम की भक्ति के प्रेम जल के छींटों से उसे तरबतर कर देते हैं। और किसी किसी को तो इस भक्ति के समुद्र के ऐसे अनमोल मोती मुट्ठी भर भर कर दे देते हैं कि वह अयाच्य (तृप्त) हो जाता है। इस अपूर्व और अद्वैत पुस्तक की जितनी प्रशसा की जाय वह थोड़ी है।

मेरा पांडित्य

मैं हिन्दी भाषा का पंडित नहीं हूं। मैंने हिन्दी में केवल या तो गोस्वामी तुलसीकृत रामायण अनेक बार पढ़ी है या कबीर साहब की साखियों का अवलोकन किया है। अगर इसे पांडित्य कहा जाय तो मैं केवल इन्हीं दो ग्रन्थों का साधारण पठन पाठन करने वाला हूँ। तुलसीदासजी और कबीर साहब की बाणी के अतिरिक्त मैंने हिन्दी में कुछ नहीं पढ़ा और नकिसी से मुझे रुचि है।

मेरी अनेक रामायणें

मेरी आयु का बहुधा हिस्सा पंजाब देश में व्यतीत हुआ। वहाँ इस रामायण का प्रचार संयुक्त प्रांत और बिहार की तरह नहीं था। मैंने वहां इसका प्रचार किया। उर्दू मे गोस्वामीजी की रामायण की उल्था की। उस पर अपनी साधारण और स्पष्ट टीका भी लिखी। और जहाँ तक मुझे स्मरण है मैंने कम से कम उर्दू में कई रामायणें लिखीं। इन में से मेरी लिखी हुई 'विज्ञान रामायण' को लोगों ने बहुत पसन्द किया। वह भी इसी तुलसीकृत रामायण के आधार पर है। मेरी और रामायणें किसी किसी के पास होंगी। वह एक ही मरतबा छपीं। मैं पंजाब से अपनी जन्म भूमि राज बनारस में चला आया। यहाँ मैंने राधास्वामी धाम मठ की नीव डाली जो काशी और प्रयाग के बीचो-बीच मे गोपीगंज नामक क़स्बा से ढाई तीन मील की दूरी पर है। और मेरे सतसंग मे इसी रामायण के आत्मिक विषयों पर विचार हुवा किया।

रामायण चित्रों का एलबम

तुलसीकृत रामायण एक एलबम (एक प्रकार की पुस्तक) है जिसमे सब प्रकार के जीते जागते चित्र स्वार्थ और परमार्थ का सुहाना दृश्य आँखो के सामने लाकर खड़ा कर देते हैं। इस एलबम में जितने चित्र या तसवीरे हैं, सब बोलती, चलती, फिरती और कुदकती फुदकती हुई भासती हैं। और सब की सब किसी न किसी आदर्श का रूपक दिखाती रहती हैं। लेखनी का यह सिनेमा कुछ ऐसा हृदयबेधक और मनोरंजक है कि मनुष्य देख कर चकित और विह्वल हो जाता है।

समय आया। मैंने राधास्वामी धाम का मठ एक आचार्य्य को सौंप दिया और अलीगढ़ चला आया। यहां दयाल नगर की दयाल डिग्गी में मुझे दयाल धाम के नाम से एक दूसरे मठ के बनाने का विचार है। यहाँ पर मेरे मित्रों की यह सम्मति हुई कि अलीगढ़ से 'सुमेरु पर्वत' नामक एक मासिक पत्र निकाला जाय। जिसमें इस रामायण के गूढ़ और सूक्ष्म विषयों पर अधिकता के साथ प्रकाश डाला जाय। मैंने इसे पसन्द किया। पं० देवीचरन जी को इस काम पर नियत किया। दाने पानी ने मुझे अलीगढ़ में रहने नहीं दिया। वहाँ से मैं चल खड़ा हुआ। मेरठ, दहली, अलवर, जैपुर, कोटा और बम्बई होता हुआ मैसूर की राजधानी बंगलौर में आकर ठहरा। बाबू मुन्शीलालजी ठेकेदार ने 'सुमेरु पर्वत' का स्मरण दिलाया। मुझे अवकाश नहीं था और काम कर रहा था। तीन महीने के लगभग मैं बगलौर में रहा। २० जौलाई सन् १९३४ ई० को वहां से चलकर मैं २१ जौलाई को बेगम पैट (हैदराबाद दक्षिण) मे आगया। यह जगह पहाड़ी है। एकान्त है। हैदराबाद से दूर है। मिलने मिलाने वाले कम आते हैं। यहां मासिक पत्र के कार्य्य आरम्भ करने का दबा हुआ सस्कार जाग उठा। और आज २५ जौलाई सन् १९३४ ई० से मैंने उसके लिखने के लिये क़लम उठाई।

सुमेरु पर्वत

रामायण से मुझे प्रेम है। राम की कहानी मे मुझे अमृत का रस मिलता है। इसलिये मैं इसे "सुमेरु पर्वत" के लिये एक और रामायण का लिखना प्रारम्भ करता हूँ।

"सुमेरु पर्वत" क्या है? सब से पहिले इस शब्द का अर्थ संक्षेप में निर्णय कर देना आवश्यक है। 'सुमेरु' कोई केवल कल्पित पदार्थ नहीं है। जो नहीं जानते, अथवा जो वैदिक, पौराणिक या हिन्दू धर्म से परिचित नहीं हैं वे इसे कल्पित और मिथ्या कह सक्ते हैं। जो जानते हैं और थोड़ी बहुत धर्म की समझ रखते हैं, उनके लिये यह यथार्थ पदार्थ है। और वे इसे अपने धर्म, कर्म, ज्ञान, विज्ञान और दर्शन आदि का केन्द्र मानते हैं।

अर्थ

'सुमेरु पर्वत' में तीन शब्द हैं:—(१) सु (२) मेरु (३) पर्वत। (१) सु (अच्छा) (२) मेरु (श्रेष्ठ, उत्तम, बढ़कर) संस्कृत धातु 'मी'=(फैलाना), पर्वत संस्कृत धातु पर्व=(भरा हुआ)

शाब्दिक अर्थ स्पष्ट है। जो अच्छे से अच्छे, उत्तम से उत्तम, बढ़िया से बढ़िया पदार्थ से भरा हुआ हो, और जिससे वह उत्तम पदार्थ चारों ओर बिखरते फैलते और धार बन कर पोटते हैं। वह सुमेरु पर्वत है।

पौराणिक और वैदिक परिभाषा में यह एक पवित्र पहाड़ है जो सातों लोकों के के बीचों बीच खड़ा है। इसकी ऊंचाई चौरासी हज़ार योजन है। इसकी चोटी पर ऊँचे से गंगा की धार उतर कर संसार के चारों ओर चार अनेक नामों से फैल कर पोट जाती है। और तीन लोकों में बहती हुई चौथे लोक का पता देती है। यह "सुमेरु पर्वत" सोना और मणि माणिक से भरा हुआ है।

यह रुढ़ि और यौगिक अर्थ है।

सात लोक

सात लोक या द्वीप नीचे लिखे जाते हैं वह यह है :—

(१) भू लोक (२) भुवर लोक (३) सुर लोक (४) महर लोक (५) जन लोक (६) तप लोक (७) सत्य लोक।

इसका इशारा गायत्री के प्राणायाम मंत्र में इस प्रकार आया है:—

गायत्री में तीन लोक और चौथा पार

ओ३म् भू ओ३म् भुवः ओ३म् स्वः
ओ३म् महः ओ३म् जनः ओ३म् तपः
ओ३म् सत्यम्

गायत्री शिक्षा बच्चों के लिये है

पुराने समय में बच्चों या थोड़ी आयु वाले लड़कों को केवल तीन लोकों–भू, भुवः, स्वः का पता देकर सावित्री (सूर्य्य) का इष्ट बंधा कर साक्षात्कार का अवसर प्रदान किया जाता था।

गायत्री मंत्र केवल बच्चों की शिक्षा थी वह यह है :—

ओ३म् भूर्भुव स्वः तत्सवितुर्वरेण्यं भर्गो देवस्य धी महि धियो यो नः प्रचोदयात् ॥

गायत्री मंत्र का अर्थ

इसका साधारण अर्थ यह है–"(१)(बच्चो, विद्यार्थियो, ब्रह्मचारियो !) ओ३म् (का उच्चारण करते हुए) भू लोक भुवर लोक और सुर लोक (की बासना और भावनाओं को भूलकर) (केवल) (२) उस रुचिदायक सूरज (का ध्यान और साक्षात्कार करो) (३) उस देवता के प्रभाव को ग्रहण करो (४) वह तुम्हारी बुद्धियों का प्रेरक बनेगा।"

यह मन्त्र का साधारण अर्थ है। यह क्रिया योग है, जाप योग नहीं है।

प्रणाली बिगड़ गई। लोग आशय को भूल गये। इनको बचपन की शिक्षा और और दीक्षा का ज्ञान तक नहीं रहा। आगे के लोकों का ज्ञान कैसे होता ?

जपने में सब गये भुलाई। मंत्र विधी का भेद न पाई॥
मंत्र भेद है सतगुरु पास। बिन गुरु सब नर फिरें उदास॥

उच्च शिक्षा

जब यह शिक्षा और दीक्षा समाप्त होती थी और सावित्री का बोध और साक्षात्कार प्रभाव के साथ कर लिया जाता था, तब आगे चार लोक (१) मह (२) जन (३) तप (४) सत्यम् की शिक्षा और दीक्षा दी जाती थी। और उसकी सफलता और सुफलता का का समय उच्च श्रेणी के साधन उद्‌गीत के साथ मिलता था। यहाँ प्रणव से काम लिया जाता था। प्रणव उस नाम को कहते हैं जिसका उच्चारण जिभ्या, होंट और दाँतों की सहायता से कभी नहीं किया जाता था केवल प्राण से किया जाता था। यही कारण है कि वह प्रणव कहा जाता है। जिसका सम्बन्ध केवल प्राण से हो वह प्रणव है। और इस उद्‌गीत का सहायक उदान वायु होता था जो सुमेरु पर्वत अर्थात् शिखा या चोटी की ओर लेजाता था। इसका विधान बृहद्‌आरण्यिक और छन्दोग्य आदि उपनिषदों से आया है। यह प्रक्रिया सरल, सुगम और प्राकृतिक है जिसमें नामके लिये भी कठिनाई नहीं है। लेकिन लोग भूल गये, और भूलते चले जारहे हैं। इस महारामायण में इसका ब्यौरा रोचक कहानी के रूप में दर्शाया जायगा। जो अधिकारी जन होंगे उससे लाभ उठायेंगे।

सुमेरु केन्द्र और चोटी है

यह सुमेरु पर्वत सातों लोकों की चोटी और केन्द्र में है, इसका रूपक नीचे के चित्र में देखो

या इस प्रकार समझो

सुमेरु
ओ३म् भूः ओ३म् भुवः ओ३म् स्वः
ओ३म् जनः
ओ३म् महः ओ३म् सत्यम् ओ३म् तपः
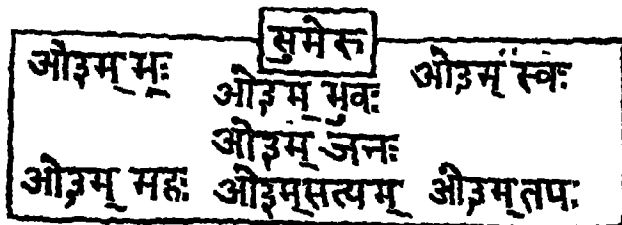
यह बातें पुस्तक पढ़ने से कम समझ में आती हैं। दीक्षा देने वाला गुरु सामने बिठाकर सरलता से साक्षात्कार करा देता है।

रामायण नाना है

इस महारामायण में उन सातों लोकों का वर्णन होगा जिनमें राम और रावण की लड़ाई अब भी रात दिन छिड़ी रहती है। यह कभी न समझो राम मर गये और रामायण खतम होगई।

नाना भांति राम अवतारा। रामायण शत कोटि अपारा॥

कागभुशण्डी

इस "सुमेरु पर्वत" पर कागभुशंडो नामक ऋषि रहता है। जहाँ से रामायण का प्रसंग चलता है वह क्या है? महारामायण के पाठ से धोरे धीरे विदित होता चलेगा। जल्दी करने से काम न चलेगा। सम्पूर्ण राम की कथा उसे प्रकाश में लायगी।

यहाँ हम सिर्फ इतना संकेत देना आवश्यक समझते हैं—काग कहते हैं "कौए" को, जो आवाज़ देता है। और भुशण्डी 'तोप' को कहते हैं जो आग बरसाती है। काग भुशण्डी यथार्थ मे शब्द का अग्निबाण है जो भ्रम और संशय को जलाकर भस्मकर देता है।

शब्द ही मारे मर गये, शब्द ही तजिया राज।
जो यह शब्द बिवेकिया, ताका सिरया काज॥
शब्द हमारा आदि का, शब्द ही लेय परख।
जो तू चाहे सत्य को, तो मत जाय सरक॥
शब्द गुरू को कीजिये, भौ तक गुरू लबार।
अपने अपने स्वाद को, ठौर ठौर बट मार॥
शब्द शब्द में भेद है, शब्द शब्द में भाव।
सोई शब्द नित बन्दिये, जो गुरु बतावें दाव॥
शब्द शब्द में भेद है, शब्द शब्द में भाव।
एक शब्द औषधि करे, एक शब्द करे घाव॥
एक शब्द दुख राशि है, एक शब्द सुख रास।
एक शब्द बन्धन कटै, एक शब्द गले फांस॥
शब्द हमारा आदि का, शब्द ज्ञान प्रमान।
शब्द ही में अनुमान है, शब्द ही में विज्ञान॥

महारामायण में केवल कागभुशण्डी और गरुड़ का सम्वाद है। और इसी के सात खंडों में सात लोकों के कर्म, धम, भ्रम, मर्म सब का वर्णन विस्तार के साथ आयगा।

गरुड़ क्या है

कागभुशण्डी क्या है? यह तो तुमने सुन लिया। अब यह गरुड़ क्या है? उसे भी सुन लो।

गरुड़ पौराणिक परिभाषा में विष्णु भगवान् का वाहन (सवारी) है। जो उन्हें सारे जगत में घुमाता फिराता रहता है। इसका रूप पक्षी (परन्द) का बनाया गया है, जो पंख फैलाये हुए उड़ता रहता है। और जहरीले सांपों को खा जाया करता है। यह और कुछ नहीं है, विष्णु के मन का नाम गरुड़ है।

विष्णु जगत का पालन पोषण करते हैं। उन्हें पौलिसी (राजनीति) से काम लेना पड़ता है। इस राजनीति में संशय विपर्य्यय हुआ करते हैं। इसलिये गरुड़ संशयात्मिक मन का नाम है।

वाहन विषय

गरुड़ शब्द संस्कृत धातु ग्रहत (पर) और डी (उड़ने) से बना है। जो उड़ता है वह गरुड़ है। यह कभी नीचे जाता है, कभी ऊपर, कभी दांये, कभी बाँये। ऐसा क्यों है ? क्योंकि इसके आधार पर सृष्टि कर्म की धार है। विष्णु प्रेम का अधिष्ठाता है।

गणेश कर्म का अधिष्ठाता है। उसका मन चूहा है जो लोलुप से कर्म करने वाला हाथी की तरह बध कर कर्म कर लेगा तब यह लोलुप मन उससे दबा रहेगा।

शिव ज्ञान का अधिष्ठाता है। उसका वाहन बैल है जो चारा घास खाकर शांति से बैठा हुआ पेट से चारे को मुह में खींचकर जुगाली किया करता है। ज्ञानी जो बात सुनता है उस पर बार बार विचार करता रहता है। यह विचार करना ही जुगाली है। यह बैल शिव का वाहन या मन है।

जो कर्मी हैं और कर्म काण्डी हैं भाई, समझते हैं निज कर्म में निज भलाई।
हैं गणपति के श्रद्धालु और समदाई, है मन इनका लोलुप समझ ऐसी आई ॥
जो चित एक हो तब यह मन हाथ आवे, नहीं जब तो चूहा अधिक फिर सतावे।
जो ज्ञानी हैं मन बैल उनका बना है, विवेकी है यह, उसकी यह कामना है ॥
मनन करता रहता है मनमें तना है, कठिन बैल की नाथ का थामना है ॥
समझ बूझ कर इससे तुम काम लेना, विवेक और वैराग में चित को देना ॥
जो प्रेमी उपासक गरुड़ उनक मन है, कभी कुछ कभी कुछ कभी कुछ जतन है ॥
कभी इसका डेरा पहाड़ और बन है, कभी यह श्रवण है कभी यह मनन है ॥
गरुड़ पत्ती की भांति उड़ता है निशदिन, है सुख दुख इसे कर्मों को अपने गिन गिन ॥

भूमिका में केवल संक्षेप से काम लिया जा सक्ता है नहीं तो पुस्तक के आकार के बढ़ जाने का भय रहता है।

गरुड़ का संशय

गरुड़ को संशय हुआ कि रामचन्द्रजी ब्रह्म के अवतार नहीं हैं। वह बहका बहका इधर उधर मारा फिरा। अन्त में सुमेरु पर्वत पर जाकर कागभुशण्डी से मिला। उनसे बात चीत की। संशय निवारण होगया। शांती आगई।

इस महारामायण में इसीका वर्णन किया गया है। जो पढ़ेंगे, समझेंगे, बूझेंगे, उनको लाभ होगा। रामायण का तत्व उनके हाथ आयगा। जो न पढ़ेंगे उनके विषय में हमें कुछ कहना सुनना नहीं है। बात अधिकारी प्रति होती है।

शिवब्रतलाल
बेगम पैट
हैदराबाद (दक्षिण)

महारामायणम्

पहिला परिच्छेद (अनुभव खण्ड)

※ गरुड़ का संशय ※

"राम ब्रह्म के अवतार कभी नहीं हो सक्ते। जो लोग उन्हें ब्रह्म का अवतार मान रहे हैं यह उनकी भूल है। सोचा नहीं, समझा नहीं, विचारा नही। एक ने कहा, दूसरे ने कहा, बात फैलते फैलते फैलती चली गई, और सब उन्हें एक सिरे से लेकर दूसरे सिरे तक अवतार मानने लग गये। मैं किसी बात को नहीं मानूँगा जो जाँच परताल मे नहीं आती, जिसका निश्चय बुद्धि को नहीं होता, और ज्ञान जिसका साक्षी नहीं बनता।

और उसके कारण भी हैं। एक दो नहीं बल्कि सैकड़ों और हजारों। ब्रह्म पूर्ण और अखंड हैं, राम अधूरे अपूर्ण और खंडित हैं।

ब्रह्म सर्व देशी हैं, राम एक देशी हैं। ब्रह्म अजन्मा है, राम का जन्म हुआ है। ब्रह्म अमर है मरता नहीं। राम मृत्यु लोक के जीव हैं जो आज नहीं तो कल मरेंगे। जो जन्मेगा वह मरेगा। यह सृष्टि कर्म को मुख्य सिद्धान्त और अटल नियम है।

राम ने मनुष्य के घर में जन्म लिया। उनके बाप का नाम दशरथ था। माता कौशल्या हैं। उनके भाई, बन्धु हैं। ब्रह्म न जन्मता है न मरता है। न उसके बाप है, न मा है।

राम शरीर धारी हैं, ब्रह्म शरीर रहित हैं। राम के हाथ, पांव, नाक, कान हैं। ब्रह्म के हाथ पाँव कुछ भी नहीं हैं। ब्रह्म के विषय में शास्त्र ऐसा कहते हैं।

बिनु पद चले सुने बिन काना। बिन कर कर्म करे बिधि नाना॥
आनन रहित सकल रस भोगी। बिन बानी बक्ता बड योगी॥

और राम क्या करते हैं? क्या किया? और क्या करेंगे?

हाथ से दिन रात वह करते है काम, पांव से जाते हैं पर्वत, नगर, ग्राम।
कान से सुनते हैं सबकी बातचीत, पालते हैं लोक मर्यादा की रीत॥

बोलते हैं, डोलते हैं, जीव हैं, कैसे मानें राम सचमुच शिव हैं! ब्रह्म मे जाति, सुजाति, कुजाति, विजाति भेद नहीं हैं। राम मे यह सब के सब हैं।

ब्रह्म समुद्र है, राम उस समुद्र की बूँद है। लोग यों ही अनाप शनाप बकते हैं। ये अज्ञानी मूढ़ हैं। मुझे ज्ञान प्राप्त है। मै कैसे यों ही मान लूँ कि राम ब्रह्म हैं। यह हो नहीं सक्ता। राम ब्रह्म नहीं हो सक्ते।

बूँद में और सिंध में है भेद कुछ, ब्रह्म व्यापक-राम में है खेद कुछ॥
राम नर हैं, नर के वह करते हैं काम, ब्रह्म ईश्वर का लिया करते है नाम॥

ब्रह्म में सुख दुख कहाँ! राम सुखी और दुखी होते हैं। ब्रह्म को स्त्री नहीं, राम की स्त्री सीता है। उसे रावण हर ले गया। यह उसकी खोज में बन, पर्वत, नदी, नाले, लांघते रहे। रोते झींकते थे। मैंने आप उन्हें ऐसी दशा में देखा। मैं राम को ब्रह्म नहीं कहता, संसार भले ही उन्हें जो चाहे कहे।

ब्रह्म निर्लेप है, अच्युत है। वह बुरा भला कुछ नहीं कहता, अपने स्वभाव में रहता है। राम उचित अनुचित सब प्रकार के काम करते रहते हैं। सूर्पणखां की नाक जड़ से उड़ा दी, खर-दूषण और त्रिशिरा के साथ लड़ाई भिड़ाई मोल ली। सोने का हिरण देखकर मोहित होगये। यह भी नहीं समझा कि संसार में सोने का हिरण नहीं होता। सीता की बातों में आकर धनुषबाण हाथ में लिया। चढ़ दौड़े। हिरण को मारा। वह मारीची मायाधारी राक्षस निकला। पछताए, लजाए, घबराए, कुटी में आए। सीता को नहीं पाया, दुःखी हुए, जंगल जंगल मारे फिरे। राम केवल मनुष्य थे। साधारण न सही, असाधारण सही, लेकिन थे तो मनुष्य, वह ब्रह्म कैसे ठहरे! ब्रह्म मे यह बातें कहां!

रामजी को ब्रह्म मैं कहता नहीं, भ्रम में और भूल में रहता नहीं।
भूल के सागर में मैं बहता नहीं, भ्रम के दुःख-विपत को सहता नहीं॥
राम नर हैं, राम नर हैं, राम नर, नरपना मैं देखता हूँ अधिकतर।

यह भी जाने दीजिये। ब्रह्म का न कभी कोई सहायक हुआ, न हो सक्ता है। राम ने रीछ, बन्दर और राक्षसों का सहारा ढूंढ़ा, उनकी पलटने बनाईं, सेतु बांधा, लंकापर चढ़ाई की।' सबको मार गिराया योधा, सूरमा, रणवीर, रणजीत, सब कुछ थे। लेकिन थे मनुष्य! इस में सन्देह नहो है।

मैं तुच्छ पक्षी हूँ। जब रावण के बांके पुत्र शूर-वीर मेघनाथ ने उनको और उनके साथियों को नाग फांस से बांध लिया, उनसे कुछ न बन पड़ी; असमर्थ होगये। न हिल सक्ते थे, न डोल सक्ते थे। तब देव-ताओं ने मुझसे प्रार्थना की, "गरुड़! राम पर संकट पड़ा है उन पर आपत्ति आगई है। इन्द्रजीत ने बाण विद्या के करतब से उन्हें नाग फांस में बांध रक्खा है। तुम जाओ अपनी अपूर्व गाडुरी विद्या से उन्हे इसी समय छुटकारा दो।" मैं देवताओं के कहने पर लँका की रणभूमि में गया, उनकी सहायता की और बंधन से छुड़ाया। न छुड़ाता तो राम का काम हो चुका था। जब राम को मुझ जैसे पक्षी की सहायता की आव-श्यकता है तो मैं उन्हे ब्रह्म कैसे मानलूँ। मैं तो जब कहूँगा उन्हें मनुष्य ही कहूँगा।

ब्रह्म त्रिकालज्ञ हैं। भूत, वर्त्तमान, भविष्य तीनों काल का जानने वाला है। राम ऐसे नहीं हैं। उनमें न सर्वज्ञता है न त्रिकालज्ञता है।

ऐसी ऐसी बातें एक दो नहीं हैं सैकड़ों हैं। मैं किस किस को कहूँ।

राम नर हैं, नर के तन धन धारी हुए, साहनी थे यश के अधिकारी हुए।
साध कर चित्त को, किया सब अपना काज, सेतु बांधा बन्दरोंके दिलको ले
ले के सीता को अवध में आगये, अच्छे करतब वाले! सबको भागये।
सब लगे कहने कि ईश्वर राम हैं, पूर्णता उनमें है पूरण काम हैं
भ्रम सब कहते हैं मैं कहता नहीं, अग्नि में अज्ञान के दहता नहीं

यह भ्रम और संशय हैं जो गरुड़ के मन उत्पन्न हुए। वह शान्ति होते तब तो कोई बात नहीं थी मन की शान्ति दूर होगई होती, लेकिन भ्रांति अपना डेरा जमा लिया। साथ साथ वह यह सोचते थे क्या यह सब के सब देवता और मनु- अज्ञानी हैं! जो राम को ब्रह्म और ब्रह्म का अ[illegible] मान रहे हैं या मैं ही भूल चूक मे हूँ।

यह गुत्थी मुलझे तो कैसे सुलझे? वह ऋषि मुनि, ज्ञानी, ध्यानी सब के पास गये। प्रश्न कथ शास्त्रार्थ भी किये, लेकिन एक ने भी निश्चयजन[illegible] उत्तर नहीं दिया। भ्रांति और अशान्ति बढ़ती चली गई, और वह दुखी रहने लगे। सच है:—

अपने उरझे उरझिया, देखे सब संसार।
अपने सुरझे सुरझिया, यह गुरु ज्ञान विचार॥

दूसरा परिच्छेद

ब्रह्मा जी और गरुड़ का सम्वाद

(ब्रह्मा और शिव में भेद)

भाव और विचार जब मनमे आते हैं, पहिले उनकी गति सूक्ष्म और अति सूक्ष्म होती है और यही सूक्ष्म अपनी बारी पर धीरे धीरे स्थूल रूप धारण करके आँखों के सामने आजाता है। और जब विचारशील या भावशील मनुष्य अपने विचार और भाव के स्थूल रूप को देख लेता है तब उसको शान्ति और निभ्रांति प्राप्त होजाती है। घर बनवाना, विचार, इच्छा, बासना और भावना मात्र है। [illegible] जहाँ घट के भीतर जगह पाई, अन्तर ही अन्तर [illegible] उपाय और यत्न की वृत्तियां जाग खड़ी होती हैं वह सोचने लगता है। ईंट, पत्थर, रोड़े, लकड़ी इत्या[दि] की सामग्री इकट्ठा करके घर बनवाने और बनाने

* *

आता है। घर बन गया। भाव और विचार ने घर के स्थूल रूप को धारण कर लिया। अब वह विचार वाला उसी घर में रहकर शान्ति पाता है।

भावम् फल दायकम् विश्वासम् फल दायकम्।

मति, बुद्धि और इष्ट प्राप्ति की इच्छा मन में आकर्षण शक्ति उत्पन्न कर देती है और यह काम बना लेती है। इसी का नाम सिद्धि-शक्ति है। इस सिद्धि की जड़ स्मरण में रहती है। स्मरण विचार की भूमिका है। जब तक विचार स्थूल रूप में नहीं बन लेता तब तक चैन नहीं लेने देता। यह प्राकृतिक नियम है।

भावना में विश्वास हो। 'वि' का अर्थ संस्कृत में 'पहले' या पहला है और "श्वस" साँस लेना या जीना है। विश्वास निश्चय को कहते हैं। यह निश्चय भाव के साथ हो और काम बना बनाया है। देर नहीं लगती। हाँ! इसका जल्द समझ में आना ज़रा कठिन है। मनुष्य कुछ न करे, केवल अपने भाव और विश्वास में दृढ़ रहे। उसी से श्वांस ले, उसी से जिये, उसी में लगा रहे और सब कुछ आप ही आप हो रहेगा और दृढ़ भावना सब कुछ करा लेगी।

> भावना पक्की हो मन में, पक्का ही विश्वास हो।
> क्यों न ऐसे जन की इस, रचना में पूरी आस हो॥
> आस में विश्वास और, विश्वास विश्व की आस है।
> जिस में यह विश्वास है, वह कैसे जग में निराश हो॥

गरुड़ मारे मारे फिरे, इधर गये उधर गये। किसी ने उनके प्रश्नों के शान्तिजनक उत्तर नहीं दिये। यह व्याकुल और बेचैन होते गये।

नारदजी से मिले जो आदि ऋषि और ब्रह्मा के पुत्र कहलाते हैं और उनको अपने भ्रम का वृत्तान्त कह सुनाया। नारद जी को दया आई, कहने लगे, "ए गरुड़! ईश्वर की माया प्रबल है। कौन ऐसा जीव-जन्तु है, जिस पर इस माया ने छापा नहीं मारा। इसने मुझे सैकड़ों नाच नचाये हैं। जब यह किसी के सिर पर खेलने आती है उसे अनेक प्रकार से भ्रमाती और भटकाती है। अब यह तुम्हारे सिर पर चढ़ी है, तुम्हारे चित्त को भ्रांति में डाल दिया है। माया का यह खेल भी किसी अभिप्राय से होता है। तुम कुछ न करो। सीधे ब्रह्मा जी के पास चले जाओ। वह कर्म धर्म के जानने वाले और वेद-वाणी के कर्ता-धर्ता हैं। वह तुम्हारे इस भ्रम का निवारण करेंगे।

गरुड़ ने ब्रह्माजी के पास जाकर अपने चित्त की व्याकुलता की कहानी सुनाई। ब्रह्मा जी ने सुनने को तो सब कुछ सुन लिया, लेकिन कुछ और कहा सुना नहीं। थोड़ी देर चुप रह कर बोले—"मैं रजोगुणी हूँ। मुझ में सत्य का प्रतिबिम्ब पड़ता है, इसमें सन्देह नहीं। ठीक-ठीक प्रतिबिम्ब शिव पर पड़ता है और वह इसे ग्रहण करते रहते हैं। तुम उनके पास जाओ, वह दयालु कृपालु हैं। इस तुम्हारी उलझी हुई गुत्थी को सुलझा देंगे। मुझमें यह सामर्थ्य नहीं है।"

ब्रह्मा की बात सुनकर गरुड़ को आश्चर्य्य हुआ, कहा, "भगवन्! संसार में आप सर्वश्रेष्ठ और जगत के पितामय हैं, ज्ञान, ध्यान के आधार और केन्द्र हैं। आपने वेद रचे हैं, आप यह क्या कहते हैं? शिवजी प्रशंसनीय हैं, लेकिन आपका पद ऊँचा है।"

ब्रह्माजी हँसे, "ए गरुड़! मैंने जो कुछ कहा है सच्चा ही कहा है लगावलपेट से काम नहीं रक्खा, और न टालम-टूल किया है। तुम भ्रमग्रस्त हो। मेरी बात नहीं समझ सके। सुनो, मैं रजोगुण प्रधान हूँ रजोगुणी वृत्ति चंचल होती है। शिवजी तमोगुण प्रधान हैं। तमोगुणीवृत्ति दृढ़ होती है। यही कारण है कि कल्याणरूप शिव परमेश्वर कहलाते हैं। विष्णु सतोगुण प्रधान हैं। तुम को माया ने भ्रम में डाल रक्खा है और रजोगुणी वृत्तियाँ प्रबल होगयी हैं। मैं कुछ कहता हूँ तो यह रजोगुण और प्रचंड होगा। शिव में आरूढ़ता और दृढ़ता विशेषतर है। वह जो कहेंगे तुम्हारे घट में उतर जायगा और संशय निवारण होजायगा। मुझसे यह आशा न रक्खो।"

गरुड़ बोले, "मेरी समझ में यह सतोगुण, रजोगुण और तमोगुण नहीं आये।"

ब्रह्मा—कैसे समझ में आते! समझ तो कैलाशपति शिव में है। वह ज्ञान के अधिष्ठाता हैं। उसका कुछ भास और भाग मुझे रटा है। विष्णु सतोगुण के रूप हैं। उनका ठीक-ठीक बिम्ब शिव पर पड़ता है सत कहते हैं "होने" को। यह शब्द संस्कृत धातु "अस" से निकला है। इसका केवल अर्थ होना ही है। "तम" कहते हैं अंधेरे को। यह अन्धकार है। 'सत' प्रकाश और 'तम' अन्धकार है। अन्धकार ही प्रकाश को ग्रहण करता है। और 'रज' क्या है? यह अन्धकार और प्रकाश की मिली-जुली अवस्था होती है। कर्म, धर्म का मैं अधिष्ठाता हूँ। यह तुम्हारा भ्रम, अज्ञान है। तुम ज्ञान को चाहते हो। ज्ञान शिव में है क्योंकि वह अन्धकार रूप होने के कारण प्रकाश या ज्ञान को आकर्षित करते रहते हैं। क्या तुम नहीं देखते कि प्रकाश सदा अन्धकार की तरफ़ दौड़ता रहता है, मनुष्य घर में दिया बालता है, इससे पहले धुआँ निकलता है। घर की छत में मंडलाकार हो रहता है। और दिये का प्रकाश उसकी तरफ़ आकर्षित होता रहता है। यों ही सत के प्रकाश का पूरा भाग कल्याणरूप शिव ही को प्राप्त होता है और उनके पास जाने से तुम्हारा कल्याण होगा।"

गरुड़—आप कृपा करके इस सत, रज, तम, की आकर्षण-शक्ति और बिम्ब-प्रतिबिम्ब का विषय मुझे समझा दीजिये।

ब्रह्मा—आगे के चित्र को देखोः—

'तम' प्रकृति प्रधान अंधकार जड़ है। 'सत' प्रकाश और चेतन है। सत में प्रकाश बिम्ब है और उसका जो प्रभाव तम के गोले पर पड़ता है वह प्रतिबिम्ब है। चेतन या प्रकाश का जो प्रभाव इस तम के गोले पर पड़ता है, उसी से तत्त्व, भूत, योगिनी, बेताल आदि उत्पन्न होते हैं जो शिव जी के साथ रहते हैं। भूत पाँच हैं—आकाश, वायु, अग्नि, जल, पृथ्वी; और योगिनी अनेक हैं। जो मिलने, युग होने या जुड़ने से शक्तियाँ प्रगट होती हैं, वह योगिनी कहलाती हैं। ताल, बेताल आदि आदि राग रागनियाँ हैं जो भूतों (तत्त्वों) के मेल (टक्कर) से प्रगट होती हैं और यह सब के सब शिवजी के इधर-उधर नाचते रहते हैं। रचना का मसाला इनसे
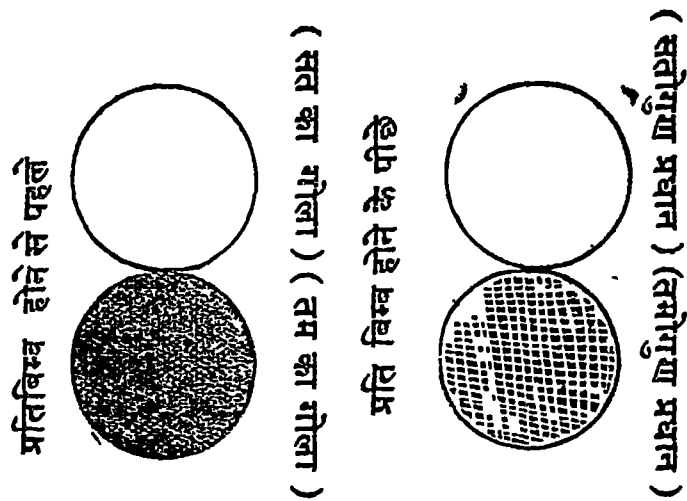
बनता है और वह कुछ नहीं है। जड़-चेतन की मिलौनी का रहस्य है। यह तम का गोला दृढ़ है और शिव के अधीन है। जैसे जब समुद्र में हिलोर आती है, ज्वार भाटे उठते हैं तब बुदबुदे, लहर, झाग आदि प्रगट होते हैं, वैसे ही चेतन की धार जब-जब जैसे-जैसे इस तम के गोले पर पड़ती है, तब, तत्त्व भूत, योगनी, बेताल आदि की उत्पत्ति होती है चेतन-धार के आकर्षण करने और आकर्षित होने से शिवजी ज्ञान के अधिष्ठाता, ज्ञानी, परमेश्वर और योगी कहलाते हैं। यह उनका रूप है और चेतन विष्णु का रूप है।

गरुड़—और आप रजोगुणी और रजोगुण प्रधान कैसे हुए ?

ब्रह्मा—इस चित्र को देखोः—

सत का गोला विष्णुलोक

रज का गोला ब्रह्मा का लोक

तम का गोला शिव का लोक

विष्णु ऊँचे, शिव नीचे और मैं ब्रह्मा बीच में हूँ। मेरे लोक में सत और तम दोनों की मिलौनी है। रज संस्कृत धातु (रंज) से निकला है। जिसका अर्थ रंग है। 'सत' उजला, 'तम' काला; और रज उजला, काला, लाल, पीला, नीला, बेंगनी आदि रंगोंवाला है। इसीलिए उसका नाम रज है। जैसे-जैसे प्रतिबिम्ब की सामग्रियों में अदल-बदल घनापन, फीकापन आदि आते गये, वैसे ही अनेक रंग बनते गये। मेरे लोक को रज या रंगवाला लोक कहते हैं।

सत ऊँचा, तम नीचा और रज बीच में है। मैं अधेड़ में हूँ, न ऊपर न नीचे मेरी सन्तति इसी कारण से दुःखी और सुखी होती है। पूरा सुख किसी को भी नहीं मिलता।
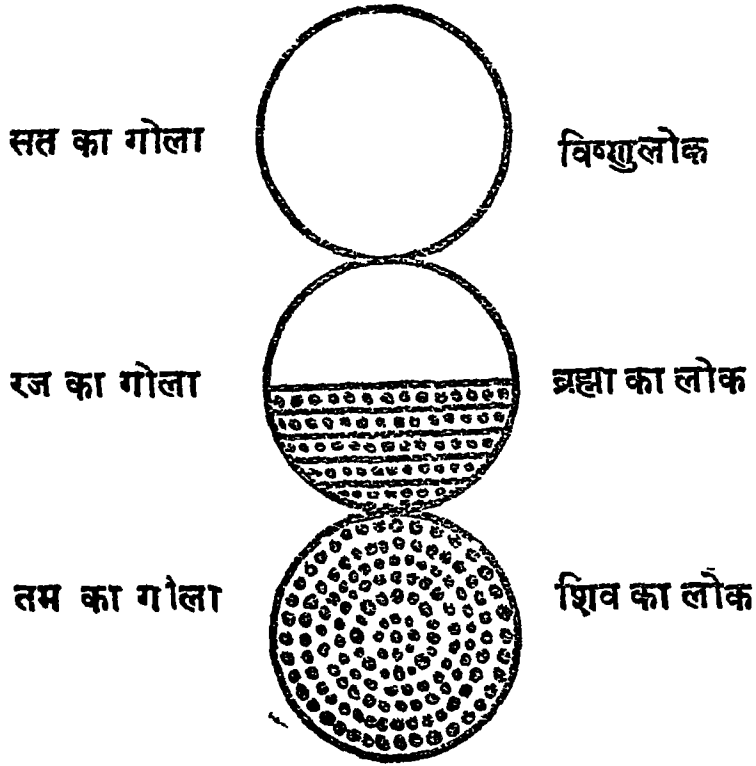
उस चित्र से भी तुमको मेरी और मेरे लोक की समझ नहीं आई तो इस चित्र को देखोः—
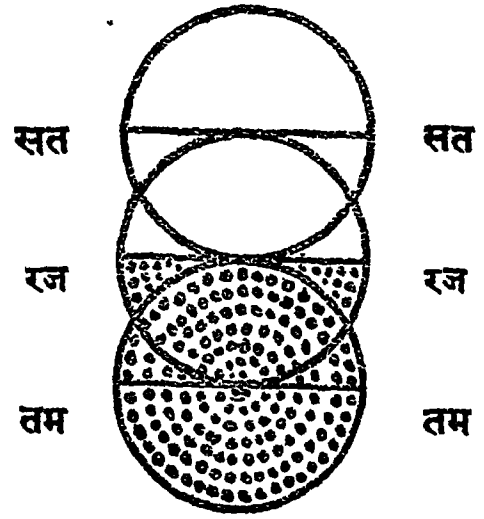
इन त्रिगुणात्मक गोलों या लोकों में मेरा लोक रजोगुणी मिला-जुला आधा तीतर आधा बटेर! न इधर का, न उधर का। कर्म, धर्म की बात होती तो मैं बताता; ज्ञान विषय का सम्बन्ध शिव भगवान् से है। उनके पास जाओ। वह तुम्हारी भ्रांति दूर कर देंगे।

गरुड़—अंधेर होगया। आप हमारे पितामह, जगत के उत्पन्न करने वाले हैं आप कोरा और टके का उत्तर दे रहे हैं।

ब्रह्मा—यहाँ तुम फिर भूल में पड़ गये। "मैं जगत का कर्त्ता क्या केवल जीव-जन्तुओं का उत्पन्न करनेवाला मुझे कह लो। जगत बड़ी बात है। वह तीनों गुणों का समूह और समुदाय है। रजोगुणी जीव ही मेरी सन्तान हैं।"

गरुड़—क्या मैं आपकी संतति नहीं हूँ ?

ब्रह्मा—थे, अब नहीं रहे। रजोगुणी और कर्मकांडी होते तो ब्रह्मपुत्र होते, अब ज्ञानकांडी बन रहे हो, शिवजी की संतान हो रहे हो। जो प्रेमी भक्त होना चाहता है, वह विष्णु की संतति बनता है।

गरुड़—वाह ! वाह ! तो क्या विष्णु और शिव की भी संतान होती है ? सन्तान तो सन्तान ही है। एक की सन्तान दूसरे की कैसे हो जाती है ?

ब्रह्मा—क्यों नहीं ? शिव की सन्तान भूत, योगिनी, योगी, बैताल आदि हैं। विष्णु की सन्तान देवी देवता हैं। शिव भगवान की संतति के विषय में तुम सुन चुके हो, यह वह हैं जो जड़ चेतन की मिलौनी से होती हैं और देवी देवता वह दिव्य शक्तियाँ हैं, जो विष्णुलोक से सम्बन्धित हैं, जैसे मित्र (सूरज), वरुण, अर्य्यमाँ, इन्द्र (बिजली) बृहस्पति, विष्णु उरुक्रम इत्यादि—एक की सन्तान दूसरे की गोद में जाने से हो जाती है। देवताओं में मैथुनी सृष्टि नहीं होती। उनकी सन्तति उनके इष्ट धारण कर लेने से हो जाती है।

गरुड़—भगवन् ! आपने मुझे और भी भ्रांति में डाल दिया।

ब्रह्मा—मैंने तुमसे पहले ही कह दिया था कि मैं केवल कर्म का अधिष्ठाता हूँ, कर्म के बदले तुम मुझ से ज्ञान का प्रश्न पूछने आये हो; जो मेरा विषय नहीं है। जाओ शिवजी के पास, वहाँ तुमको संतोषजनक उत्तर मिलेगा तेली का काम तमोली नहीं करता।

गरुड़—अच्छा महाराज ! जारहा हूँ। नमस्कार !!!

तीसरा समुल्लास।

गरुड़जी और शिवजी का सम्वाद।

(गुरू और सत्संग महिमा)

गरुड़जी निराश होकर चल दिये। उदास थे, जब मनुष्य का काम नहीं बनता उसका कार्य सिद्ध नहीं होता, तब उसे दुःख दबोच लेता है; चिंता घेर लेती है, अशांत होजाता है। ईश्वर न करे कोई भ्रांति में पड़े ! भ्रम का भूत जब किसी के सिर, अन्तःकरण और शरीर में प्रवेश करता है तो फिर उसे कहीं भी चैन नहीं लेने देता। वह भ्रमता, भटकता फिरता रहता है। इस रोग की औषधि कठिन होती है। पढ़े-लिखे मनुष्य जिनका जीवन बनावटी होता है, कही-सुनी बातों में आकर बहुधा भ्रम के वशीभूत हो जाते हैं और बहुत बुरे प्रकार से मारे जाते हैं। इनकी विद्या, अविद्या बन जाती है। अन्धों के समान टटोल टटोल कर चलते हैं। युक्ति पर युक्ति लड़ाते हैं। ग्रन्थ इनके लिए ग्रंथि बन जाते हैं और इन्हें जीते जी इस आपत्ति से छुटकारा पाने का अवसर हाथ नहीं आता। इनसे तो मूढ़ प्राणी अच्छे होते हैं, जिनको जगत की गति नहीं व्यापती।

रास्ते में जा रहे थे। कैलास पर्वत की तरफ दृष्टि थी। जो शिव भगवान् का निवास-स्थान था। इधर तो ये उधर जा रहे थे, उधर से शिव भगवान् पार्वती के साथ नन्दी बैल पर चढ़े हुए कुवेर नामक देवता के घर को जा रहे थे। गरुड़ ने देखा, पहचान लिया, शिव का रूप अद्भुत है। दिगम्बर नङ्गे-धड़ङ्गे, हाथ में डमरू त्रिशूल धारण किये हुए, ललाट पर अर्द्ध चन्द्र चमकता हुआ, सारे शरीर पर भस्म मला हुआ, बरगद की जड़ों के समान जटा जूट बँधी हुई, बैल पर मृग-चर्म का आसन बिछा हुआ

त्याग-वैराग की मूर्त्ति! आखें लाल-लाल अंगारा बरसाने वाली! तेजस्वी, तेजवान्!

गरुड़ ने साष्टांग दण्ड प्रणाम किया। शिवजी ने इन्हें देखकर करुणारस में सनी हुई वाणी से इनका सत्कार किया। गरुड़! तुम मेरी खोज में चले हो। मैं जानता हूँ तुम किस आशय को लेकर विष्णुलोक से निकले हो। रास्ते में मिले मैं तुमको कैसे कोई बात समझा बुझा सकता हूँ। ज्ञान ऐसा विषय नहीं है कि जो राह चलन्तु पथिक को साधारण प्रश्नोत्तर में बताया जासके।

मिले गरुड़ मार्ग में मोही।
का विधि मैं समझाऊँ तोही॥

इसके लिए स्थान, मण्डल और लीला चरित्र की आवश्यकता है। दर्शन, ज्ञान, और चरित्र तीनों साथ-साथ चलते हैं और निज स्थान ही पर यह लाभदायक होते हैं। देखना, सुनना, और चरित्र का गढ़ना स्थान के आधीन हैं। स्थान ही में साधना की जाती है। स्थान में अनुभव की प्राप्ति सम्भव है। साधन सम्पन्नता आप अनुभव सम्पन्नता प्रदान करती है। बिना साधन के अनुभव नहीं होता, और यह दोनों स्थान ही पर हो सकते हैं। मैं इस समय कुवेर जी से मिलने जा रहा हूँ। रास्ते में वार्त्तालाप नहीं कर सकता।" गरुड़जी ने कहा—"नाथ! क्या आप भी मुझे निराश करेंगे?"

शिवजी ने उत्तर दिया, "मैं किसी को भी निराश न करता हूँ न करना चाहता हूँ। मेरे यहाँ आकर कोई निराश नहीं जाता। लेकिन समय और है। तुम अधिकारी हो। तुम्हारे हृदय में विकट संशय उत्पन्न हुआ है। उसके निवारण करने के लिए समय चाहिये। तुम जिज्ञासु के रूप में आये हो। जिज्ञासु आर्त्त होता है। आर्त्त को जो बचन कहा जाता है, वह उसकी गाँठ बाँध लेता है। तुम मेरा कहना मान जाओ। अपने मार्ग को खंडित न करो। इसी पथ से सुमेरु पर्वत पर चले जाओ। वह तुम्हारी नाक की सीध में है। वहाँ उस पहाड़ की चोटी पर कल्पवृक्ष है। उसकी छाया में अनेक प्रकार के चहचहा लगाने वाले हंस पक्षी बसते हैं। इनके मध्य में एक परमहंस बैठ कर अपना शब्द नाद सुनाता रहता है। जो राम नाम का कीर्त्तन या राम का कथा कीर्त्तन है। वहाँ रात दिन यही चर्चा होता रहता है। इसके अतिरिक्त वह और कोई काम नहीं करते। इस परमहंस का नाम कागभुशण्डी है। उससे जाकर मिलो। उसका सत्संग करो। उसका बचन सुनो। वहाँ जाने से तुम्हारे भ्रम का नाश आप ही आप हो जायेगा। यह सुगम, सरल और साधारण उपाय है।

नित नियम जिसका, कथा और कीर्त्तन।
शान्त और निरभ्रान्त जानो उसका मन॥
जो कथा और कीर्त्तन, नित करता है।
चैन, सुख आनन्द, मन में भरता है॥
जिसका उद्यम हो, कथा और कीर्त्तन।
उसके वचनों का करो, श्रवण मनन॥

गरुड़ ने फिर विशेष बात-चीत नहीं की। शीश झुकाकर कैलाशपति और पार्वती को नमस्कार किया और उनकी आज्ञा लेकर सुमेरु पर्वत की तरफ़ अपना पग पढ़ाया। जब वह दृष्टि से ओझल हुआ, पार्वती ने शिवजी से पूछा, ? "प्रभो! आप जगत-गुरु और परमेश्वर हैं। गरुड़ आपके पास शिक्षा और दीक्षा लेने के लिए आये थे। आपने उनको टाल बताई, कागभुशंडी के पास जाने की सम्मति दी, इसमें क्या रहस्य है?"

शिवजी ने उत्तर दिया, "प्रिया! मैं योगी, त्यागी, बैरागी और भूत, वैताल,- आदि का तो गुरु हो सकता हूँ और उनको शिक्षा दे सकता हूँ, क्योंकि मैं योग, त्याग, वैराग का इष्ट हूँ, लेकिन मनुष्य, पक्षी, और जीव-जन्तु का गुरु नहीं हो सकता। गुरु तो

वही होता है और हो सकता है जो उसकी जाति का हो। मनुष्य का गुरु जब होगा। मनुष्य ही होगा ईश्वर और परमेश्वर उसका गुरु न कभी हुआ। और न होगा। यह सृष्टि-नियम के प्रतिकूल है। प्रेम और प्रीति परस्पर व्यवहार है। भक्ति और ज्ञान का दान जब मिलेगा, सजातीय गुरु ही से मिलेगा। सूक्ष्म प्राणी का गुरु सूक्ष्म प्राणी होता है, स्थूल शरीर धारी का गुरु स्थूल शरीरधारी! मनुष्य जब तक जीता है, स्त्री उसका प्रेम करती है। वह मर जाये और सूक्ष्म शरीर में आकर उससे मिलना चाहे तो वह डर कर भाग जायगी। क्योंकि अब वह उसकी जाति का नहीं रहा। यह नियम है और नियम भी प्रकृति और सृष्टि का है। केवल सच्चे अधिकारी को उसकी समझ-बूझ रहती है। जो लोग इस नियम को नहीं समझते, उनकी भक्ति अनाप शनाप और बेतुकी होती है।

पार्वती—क्या गरुड़ को इस रहस्य की समझ थी?

शिवजी—वह अधिकारी जिज्ञासु थे। उनको रहस्य की स्वाभाविक समझ थी।

> खग समझै खग ही कर भाषा।
> ताते उमा गुप्त सत राखा॥

ज्ञान तो संसार में परिपूर्ण है। सूरज, चाँद, वायु, जल, पृथ्वी सब में ज्ञान है। इनसे मनुष्य को जो ज्ञान प्राप्त होता है, वह अधूरे का अधूरा रहता है। उसके ज्ञान की पूर्ति जब होगी मनुष्य गुरू ही से होगी।

> बन्दौं गुरु पद कंज, कृपा सिन्धु नर रूप हरि।
> महा मोह तम पुंज, जासु वचन रवि कर निकर॥

पार्वती जी चुप हो रहीं। और शिव और गरुड़ के सम्वाद के पश्चात् कुवेर जी के स्थान का रास्ता लिया।

चौथा समुल्लास।

गरुड़ और काकभुशंडी का मिलाप

(सुमेरु पर्वत)

गरुड़ जी अपने पंखों को फैलाये हुए सुमेरु पर्वत की तरफ़ उड़े। पहाड़ अपना सिर ऊँचा किये हुए आकाश से मिला हुआ प्रतीत होता था। जगह २ नदी, नाले बह रहे थे। पर्वत हिम और बर्फ से ढके हुए श्वेत रंग के झलक रहे थे। वृक्ष फल फूलों से लदे हुए थे। दृश्य सुन्दर और सुहाना था। निर्मल, मन्द, सुगंधित वायु के झकोले बह रहे थे।

यह प्रसन्न चित्त थे। सुमेरु पर्वत की सुनहरी चोटी जगमगाती हुई दूर से दिखाई दी।

नन्हीं नन्हीं फुआरें पड़ रही थीं। पर्वतों पर कभी २ कई २ बार पानी बरसता रहता है। बादल हाथियों के समान झूम रहे थे। इन्द्र धनुष नाना प्रकार के रंगों से विभूषित सुमेरु पर्वत की शोभा को बढ़ा रहा था। उसको उस समय चार चाँद लगे हुए थे।

यह उड़ते २ घाटी और दर्रों को लांघते हुए चोटी पर पहुँचे जहाँ लहलहाता हुआ कल्पवृक्ष अपनी अद्वितीय मर्यादा में खड़ा हुआ था। उसकी घनी छाया के नीचे हंसों की पाँत बैठी हुई कागभुशंडी जी का वचन सुन रही थी। शांति मंगल चारों तरफ़ बरस रहे थे। किसी के चित्त में विकृति नहीं थी। न किसी का ध्यान किसी और तरफ़ था। गरुड़ ने इस समुदाय को देख कर अनुमान किया कि यह सब की सब पक्षियों की मूर्त्तियां थीं जो दृढ आसन पर जमी हुई बैठी थी। कौन जाने उनकी सांस भी चलती थी

या नहीं ? हाँ ! कागभुशंडी की चोंच क्षण प्रतिक्षण खुलती रहती थी। वह क्या कह रहे थे ? उड़ते हुए गरुड़ को कैसे सुनाई देता ? यह पहुँचे। इनके बड़े बड़े पंख छातों के समान नीचे पृथ्वी पर गिरे। इनका पाँव जमा, और पक्षियों ने तो कुछ ध्यान नहीं दिया। कागभुशंडी की आँखें खुली हुई थीं। इन पर दृष्टि पड़ी, पहिचाना, जाना, कि यह गरुड़ भगवान् हैं। इन हंसों में चौंच से चौंच मिलाने की वह सभ्यता नहीं थी, जो आज कल के मनुष्य हाथ से हाथ मिला कर प्रकट करते हैं। पंख फुलाया, चौंच खोलकर बोले "आगतम्-स्वागतम्" ? आपका यहाँ आना हमारे लिए शुभदायक है। बड़ी कृपा की। हम सबों को कृतार्थ किया।" गरुड़ जी ने उत्तर दिया "यहाँ हरिकृपा के बिना कोई नहीं आ सकता निःसंदेह हरि ने कृपा की तब मुझे आपके पवित्र चरणों का दर्शन प्राप्त हुआ।

> बिनु हरि कृपा मिलहि नहिं संता।
> संत मिले तब दुःख का अन्ता॥

कागभुशंडी—"आप सच कहते हैं। आपको हरि ने यहाँ भेजा है। आप हरि के भेजे हुए आये हैं। हरि का भेजा हुआ हरि का रूप समझा जाता है। मैं आपको हरि का रूप समझ कर नमस्कार करता हूँ।"

गरुड़—महाराज ! मैं भ्रम के विवश होकर उसके निवारणार्थ यहाँ आया हूँ।

कागभुशंडी—धन्य है ? वह भ्रम जो आपको यहाँ लाया। और हम सब को आपका दर्शन दिलाया। यह भ्रम भी ईश्वर प्रेरित होने के कारण ईश्वर कृत और ईश्वर का रूप है, इसलिये हम उसे भी ईश्वर मानकर नमस्कार करते हैं—

गरुड़जी अपने मन में बहुत चकित हुए, "यह बिना प्रश्न किये हुए मुझे उत्तर दे रहे हैं। मेरा भ्रम इनकी साधारण वाणी से दूर होगया। अब क्या पूछूँ और क्या गछूं ? जो बात ऋषि, मुनि, ब्रह्मा और महेश के मुँह पर नहीं आई यह काग हंस जो अकस्मात बोल रहे हैं। 'यह गुरु हैं' ऐसी सामर्थ्य केवल गुरु में होती है। ईश्वर गुरु के शरीर में आया हुआ, यहां प्रत्यक्ष हो रहा है। यह गुरु ईश्वर का अवतार है। मैं राम के अवतार होने में शंका कर रहा था। यहाँ आते ही वह शंका मिट गई। अब क्या पूछूँ, क्या न पूछूँ ? इनके रूप में ईश्वर आया हुआ प्रतीत होने लगा। इसलिए यह ईश्वर के अवतार हैं। जिनके मन का प्रेरक ईश्वर हो, वह प्रेरणा सूक्ष्म रूप से ईश्वर ही का रूप होती है। ईश्वर इस देह में प्रेरणा रूप से उतरता है और इसी उतरने को अवतार कहते हैं। गुत्थी सुलझ गई, पेच खुल गये, संशय का गोरखधन्धा मिट गया। गरुड़ इस प्रकार मन ही मन में सोचते हुए कागभशुंडीजी के चरणों में झुके।

> "मन्त्र मूलम्, गुरु वाक्यम् पूजा मूलम् गुरु पदम्,
> ध्यान मूलम् गुरु मूर्ति। मोक्ष मूलम् गुरु कृपा।"

कागभुशंडी ने गरुड़ को पंख से उठाकर गले लगाया। प्रसन्न होकर बोले, "जिसको संशय नहीं होता वो निरसंशय नहीं बनता। जो बन्धन में नहीं आया, वो निरबन्ध नहीं हो सकता। जिसे रोग ने नहीं दबाया, वह अरोग्य कैसे होगा ? ऐ गरुड़ आपके यहाँ पधारने से मेरी विचार-शक्ति को उत्तेजना प्राप्त हुई। आप धन्य हो। मैं आप जैसे विष्णुवाहन के शुभागमन को अपने लिए शुभगुण सगुण और साथ ही निर्गुण समझ कर वाधित हो गया। आप इस आश्रम को शोभा की खानी बनाइये और हम सबको कृतार्थ कीजिये।"

गरुड़ भुशंडी संवाद ।

ब्रह्म विषय ।

न्हाया-धोया, खाया-पिया, सोये, रास्ते की थकावट दूर की । प्रातःकाल सूर्य्योदय से पहले हंस जागे उनका सोना जागना समान था और नित्य कर्म और नित्य नियम से निश्चिन्त होकर सारी मण्डली कल्पवृक्ष की छाया में वैठी और भजन भाव में उपस्थित हुईः—

मङ्गलम् गुरुदेव मूरति मङ्गलम् पद पङ्कजम् ।
मङ्गलम् अव्यक्त अनुपम मङ्गलम् जन रञ्जनम् ॥१॥
मङ्गलम् निर्वाण सद्‌गति मङ्गलम् भव गञ्जनम् ।
मङ्गलम् ज्ञानस्वरूपम् मङ्गलम् सत्य आसनम् ॥२॥
धन्य महिमा आपकी है धन्य अद्‌भुत ज्ञान है ।
धन्य शुभ अनुमान है और धन्य शुभ परमाण है ॥३॥
भक्ति दीजै नाम की यह नाम उलटा जाप हो ।
नाम ही में करनी, रहनी, नाम, तोल और माप हो ॥४॥
जीते जी दर्शन मिले सुख भोग का संयोग हो ।
साधना, सम्पन्नता-अनुभव का सचा योग हो ॥५॥

गरुडजी सवके पीछे आये । कागभुशंण्डी ने उनका सम्मान किया और सादर आसन दिया । कुशल पूछा, गरुड़जी ने कहा—शान्ति, आनन्द, और अनुभव ज्ञान की कुशलता आपके पवित्र चरणों में रहती है"—

कागभुशंण्डी—"महाराज ! अब आप कहिये हम आपकी क्या सेवा करें ? क्योंकि यह मेरी समझ में आगया है । आपको ईश्वर ने हमसे सेवा लेने के लिए यहाँ भेजा है । नहीं तो हम कहां और आप कहां ?

वह आये घोंसले में अपने पंख फैलाये ।
कभी हम उनको कभी घोंसले को देखते हैं ॥

गरुड़—भगवन् ! सच्ची वात तो यह है कि मुझे राम के अवतार होने में शङ्का हुई थी मैंने सोचा कि पूर्ण और अखण्डित ब्रह्म, राम के छोटे स्थूल देह में नहीं आ सकता । यह असम्भव और वुद्धि की युक्ति के विपरीत है । वह शङ्का तो आपके पवित्र चरणों के दर्शन से आप ही आप मिट गई और मैं पूर्ण रीति से संतुष्ट हूँ । अब केवल यह अभिलाषा है कि कुछ दिनों आपके सत्सङ्ग का लाभ उठाऊँ । उससे मेरे मन में जो शेष मैल रहा होगा वह धो जायगा । और अन्तःकरण शुद्ध अमल विमल और निर्मल हो जायगा ।

कागभुशुण्डी—गरुड़जी ! इस जगत् में जो कुछ है वह पूर्ण ही पूर्ण है । उसमें अपूर्णता नाम को भी नहीं है । और वह अपूर्णता जो प्रतीत हो रही है वह भी उस पूर्ण का अङ्ग और अंश ही होती है ।

ओं पूर्णमदः पूर्णमिदंः पूर्णात्पूर्णमुदच्यते ।
पूर्णस्य पूर्णमादाय पूर्णमेवावशिष्यते ॥

पूर्ण से जो निकलता है, वह पूर्ण ही होता है । पूर्ण से जो निकाला जाता है, वह भी पूर्ण रहता है । उसमें घटाव बढ़ाव नहीं होता । एक नीम के वृक्ष से अनगिनत वीज प्रति वर्ष निकलते रहते हैं और यह सव के सव नीम के वृक्ष ही होते हैं । पहला वृक्ष जैसे का तैसा रहता है न वो घटा न बढा । मनुष्य के वीर्य्य से लड़के, पोते, परपोते, उत्पन्न होते है और वह मनुष्य ही होते हैं ।

यह उदाहरण है । उदाहरण का एक ही अंश

लो और विचार करो, जितना चाहो उसे फैलाकर देख लो। इस नियम को अटल पाओगे।"

"यह ब्रह्म पूर्ण है। उसकी समानता किस से दी जाये। फिर भी दृष्टान्त और दार्ष्टान्त से समझाने का प्रयत्न किया जाता है। व्यावहारिक जगत् में दृष्टान्त से काम लेना पड़ता है। मैं उस ब्रह्म की उपमा सागर से देता हूँ। सागर पूर्ण है। उसमें लहर, बूंद, फुहारे, बुदबुदे, बुलबुले, झाग इत्यादि सब ही रहते हैं जो समुद्र से कभी न पृथक् किये जा सकते हैं और न पृथक् हैं। तुम कहोगे बूंद, लहर तो टुकड़े हैं। पूर्णता का गुण यही है कि उसमें टुकड़े हों। वह टुकड़े तो हैं नहीं। उसके अंश हैं और यही सब मिलमिलाकर समुदायरूप से समुद्र कहलाते हैं। इसी प्रकार यह ब्रह्म है। जो कुछ था, जो कुछ है, जो कुछ होगा सब तीनों काल में उसी ब्रह्म में रहेगा। अलग न था, न है, और न होगा। देश, काल, वस्तु सबके सब ब्रह्म ही में बसते हैं और सब मिलमिलाकर ब्रह्म कहलाते हैं।

गरुड़—तो क्या आप बूंद को भी ब्रह्म कहेंगे ?

कागभुशुण्डी—"हां, और नहीं! समुद्र की दृष्टि से बूंद यथार्थ में समुद्र ही का रूप है। बूंद दृष्टि से तुम उसे बूंद कहो। तुमको रोकता कौन है ? तत्व की दृष्टि से बूंद और समुद्र एक ही हैं। उनमें पृथकता और भिन्नता नहीं है।"

दृष्टान्त से समझो। भाप एक तत्व है। पानी और वर्फ़ इसी भाप से बने और बनते हैं। साधारण दृष्टि से पानी बर्फ़ नहीं है; न बर्फ़ पानी है, और पानी और बर्फ़ दोनों भाप नहीं हैं; लेकिन तत्व की दृष्टि से वह उससे अलग कब हैं? कभी नहीं।

वाटिका में जाके देखा, फूल और फल था वही
नस में नाड़ी में समाया, सब के रसजल, था वही ॥ १ ॥
पहिले जो आकाश था, वायु बना अग्नी हुआ।
मिट्टी के आकार में, आधार अस्थल था वही ॥ २ ॥
जिसको तुम रवि कहते हो, प्रकाश है और ज्योति ६।
ध्यान से देखा-बृहस्पति, शुक्र मंगल था वही ॥ ३ ॥
बल है वह बलवान में, शक्ती है शक्ती वान में।
दाँव में था पेंच में, कुश्ती का दंगल था वही ॥ ४ ॥
जैसी दृष्टि वैसी सृष्टि, दृष्टि सृष्टि त्याग दो।
त्याग का वैराग का, अनुराग का दल था वही ॥ ५ ॥
ब्रह्म सत्यम् जगत् मिथ्या, नित्य मुक्तम् केवलम्।
वह भविष्यत भूत निश, दिन, आज और कल था वही ॥ ६ ॥
वह है सबमें वह है सब का, सबका वह आधार है।
मल विमल में है समाया, और निर्मल था वही ॥ ७ ॥

यह ब्रह्म है। जिसका लक्ष्य सत, चित और आनन्द है।

गरुड़—प्रभो! आप जो कहते हैं, वह सच है। लेकिन ज्ञानी उस ब्रह्म को सनातन से अटल, आधार और कूटस्थ समान कहते चले आ रहे हैं। आप सबको ब्रह्म ही ब्रह्म बता रहे हैं, क्या यह मत-भेद नहीं है ?

कागभुशुण्डी—नहीं! जो वह कहते हैं, वही मैं भी कहता हूँ। थोड़े से ध्यान देने की आवश्यकता है। पहले तुम ब्रह्म परिभाषा पर विचार करो। यह संस्कृत भाषा के दो पृथक् शब्दों से बना है—

(१) विरह-और (२) मनन। विरह का अर्थ है 'बढ़ना' और मनन का अर्थ है सोचना। जिस में बढ़ने और सोचने के लक्षण हों, वह ब्रह्म है। साधारण परिभाषा तो ब्रह्म शब्द का यह अर्थ बताती है और मैंने अभी कहा है कि ब्रह्म सत, चित और आनन्द है। परिभाषा या नाम का अर्थ तुमने जान लिया और तीनों गुण सत, रज, तम की दृष्टि से उसे सच्चिदानन्द गुणवाला प्रतीत कर लिया। इन के साथ तुम ज्ञानियों की दृष्टि से उसे अटल, आधार मात्र और कूटस्थ समान समझते हो। इन दोनों में बहुत भेद मानते हो। यह मत भेद यथार्थ में नहीं है। वह दृष्टि सृष्टि के भेद से है। ब्रह्म आधार भी है और निराधार होता हुआ धार भी है। धार पर दृष्टि जमाने से वह बढ़ता सोचता प्रतीत होता है और आधार पर दृष्टि जमाने से वह अटल प्रतीत होता है।

मैं फिर तुम्हें समुद्र के दृष्टान्त से समझाता हूँ। समुद्र में लहरें उठती रहती हैं। उनमें बढ़ने और

सोचने का प्रबन्ध पाया जाता है। इस प्रबन्ध पर ध्यान देने से ब्रह्म, सत, चित, आनन्द भासता है और इनसे अपने चित्त को हटालो, तो समुद्र अपने रूप में स्थित प्रतीत होता है। वह दोनों ही है और दोनों से न्यारा भी है। दोनों भाव ज्ञानी और भक्तों की दृष्टि में हैं। जैसी दृष्टि वैसी सृष्टि! न यह न वह। नेति नेति! और ऐसा दृढ़ अनुमान और निश्चय होजाने से चुप हो जाना पड़ता है। वाणी गूँगी बन जाती है, मन लूला हो जाता है और बुद्धि असमर्थ और निबल हो रहती है। थक थकाकर बैठ रहती है। यह आदर्श है।

कहाँ ब्रह्म है, वह कहाँ है? कहां है?
है क्या नाम उसका, कहां पर निशाँ है ॥ १ ॥

खुली ज्ञान दृष्टि से, देखैं जोकोई।
समझ जाये उसको, यहां है वहाँ है ॥ २ ॥

वही धार है, और आधार जग का।
उसी के सहारे यह ठहरा जहां है ॥ ३ ॥

वह सब में रमा, राम रमता है सब का।
अटल रूप बन कर, जहां का तहां है ॥ ४ ॥

जो तुम दूर समझो, बहुत दूर है वह।
निकट वृत्ति समझो निकट तर महा है ॥ ५ ॥

छठा समुल्लास।

(२) गरुड़ और कागभुशंडी का सम्वाद।

ब्रह्म जगत्, ब्रह्म मय जगत्? जीव ब्रह्म की एकता।

गरुड़—"आपने जो कुछ कहा वह मेरी समझ में आ गया। आपके समझाने की युक्ति निराली है। ज्ञानी कहते हैं यह जगत् ही ब्रह्म है या यह जगत् ब्रह्ममय है। इन दोनों बातों में क्या भेद है?"

कागभुशुंडी—"क्या अच्छा प्रश्न है!" इसका उत्तर भी अच्छा ही होना चाहिए। सुनो! कहा गया है 'एको ब्रह्म द्वतीयो नास्ति'। एक ही ब्रह्म है और दूसरा कोई भी नहीं है और हो कैसे सकता है? जब ब्रह्म पूर्ण है—तो वह पूर्ण ही होगा। दूसरा होगा तो उसकी पूर्णता या सर्व-व्यापकता को दोष लगेगा। एक से जब दो होगये तो दोनों के दोनों खण्डित होगये। वह चाहे और कुछ हों लेकिन सर्व व्यापक नही कहलायगें। इस दृष्टि से कहा गया है कि "ब्रह्म सर्वम् केवलम्?". ब्रह्म ही सब है, और वही अकेला है। उसके होते हुए दूसरे की सम्भावना नहीं होती। न हो सक्ती है। वह 'स्वयम्भू' आप ही सब कुछ हुआ हुआ है। 'अखिलम् इदम् ब्रह्म.' वह पूर्ण सबका सब यही ब्रह्म है। वह सबका स्रोत है। सब में स्रोत प्रोत और ओत प्रोत है। जो स्रोत में है वही प्रोत में भी है।

उसमें है, तुम में भी है, और हम में, सब में है वही।
काल के भूत और भविष्यत्, अब में तब में है वही ॥

गरुड़—यह तो मैं समझ गया। नियम यह है जो पूर्ण में है। वही उसके अंश में भी रहता है। समुद्र का जल खारा है। यह खारापन बूँद में भी है। ब्रह्म पूर्ण है, जीव जन्तु उसके अंश हैं। जो बात ब्रह्म में है वही उस ब्रह्म के जीव जन्तु में भी होना चाहिए। ऐसा नहीं है। जैसे ब्रह्म में सुख है—जीव दुखी प्रतीत होते हैं इत्यादि।

कागभुशंडी—जिसको तुम नियम कहते हो वह नियम तुम्हारी अपनी दृष्टि से हैं। मैं यथार्थ को छोड़ कर तुम्हारी ही जीव दृष्टि से इस प्रश्न के उत्तर देने का प्रयत्न करता हूँ "जो ब्रह्म में है, वही जीव में भी है।"

पहली दृष्टि—ब्रह्म में विरह, मनन, अर्थात् बढ़ना सोचना है। ब्रह्म समुद्र के समान लहराता रहता है। यह लहराना इसकी धारों में है।—जीवों में से कोई भी ऐसा न पाओगे, जो बढ़ता सोचता, या बढ़नेवाला और सोचने वाला न हो। देवी, देवता, भूत, नर, जन्तु, पक्षी, बनस्पति आदि में से किसी को ले लो। सब बढ़ते और सोचते हैं।

यह बात अणु २ परिमाणु और कण तक में तुमको मिलेगी। घास के तिनके से लेकर ब्रह्मा पर्यन्त तुमको सब में यह लक्षण मिलेंगे।

दूसरी दृष्टि—सब में सत है, चित है, और आनन्द है। सत कहते हैं—अस्ति, जीवन और है पनेको, चित्त कहते हैं— मन, बुद्धि और अहंकार को और आनन्द कहते हैं सुख को। यह तीनों के तीनों तुम सब में पाओगे। कोई मरना नहीं चाहता। कोई मूर्ख रहना नहीं चाहता। कोई दुखी रहना नहीं चाहता। जिसको चाहे देख लो, परख लो। बुद्धि की कसौटी पर कस लो। मनुष्य और पशु, पक्षी तक को जाने दो। वह सच्चिदानंद है। बनस्पति के एक छोटे पौधे लाजवंती को देखो; तीनों बातें उसमें मिलेंगी। वह जीवित रहना चाहती है। किसी की छाया को देखकर सिकुड़ जाती है। छाया के हटने पर फिर अपने पत्ते और टहनी फैला देती है। इसमें सत (अस्ति) चित (विचार) और आनन्द (सुख) के लक्षण तुमको मिलेंगे। यही दशा सारे ब्रह्मांड के टुकड़े टुकड़े में प्रतीत होगी।

तीसरी दृष्टि-किसी कारण से तुमने अपने आपको छोटा मान लिया हो। लेकिन छोटा रहना नहीं चाहते। दस मिलता है तो बीस की इच्छा है। यहां एक भी तो प्राणी नहीं है जो छोटी दशा में रहने का इच्छुक होगा। दृष्टि को फैलाकर देखलो और सब इसी काम में लगे हुए रहते हैं। कारण यह है कि यह जगत् ब्रह्म है—ब्रह्ममय है और ब्रह्म रूप है।"

गरुड़जी बोले, "प्रभो! सबतो प्राणी नहीं कहलाए जा सकते?" कागभुशंडी—क्यों नहीं? जगत् मात्र को तुम प्राणी कह सकते हो।"

गरुड़—"क्या मिट्टी के कण भी प्राणी हैं?"

कागभुशंडी—जिसमें प्राण हो वह प्राणी और जो प्राण या सांस लेता हो, वह प्राणी है यहाँ अणु, अणु तक प्राणधारी, प्राणी और प्राण (साँस) लेने वाले हैं। वृक्ष साँस लेते हैं। जल पृथ्वी, अग्नि, वायु, आकाश सब में प्राण है। इस प्राण के बिना कोई भी नहीं है। तुम सुन चुके हो विष्णु की संतति देवी, देवता, शिव की संतति-भूत-वैताल और ब्रह्मा की संतति-जीव-जन्तु हैं। इनमें से तुम किस को प्राण रहित पाते हो? यह प्राण ही तो धार है जो आधार ब्रह्म से निकलती है और उसी में इस रचना का प्रपंच होता रहता है।

गरुड़—तो आपकी दृष्टि में सब चैतन्य ही चैतन्य हैं। जड़ पदार्थ कोई भी नहीं है।

कागभुशंडी—जड़ और चेतन दो उपेक्षित शब्द हैं। जिनकी अस्ति केवल उपेक्षता के स्थल में है और वह मनुष्य की दृष्टि से है। मनुष्य जिसमें हिलने डोलने की प्रत्यक्ष शक्ति देखता है, उसे चैतन्य कहता है और जिसमें इस शक्ति का अभाव देखता है उसे जड़ कहता है। जड़ पदार्थ में हिलना डोलना है। यह उसके परिमाणुओं में है। आज तुम एक लकड़ी के टुकड़े को हिलता डोलता नहीं पाते। लेकिन उसके अन्तर के प्रमाणु हिलते डोलते रहते हैं। लकड़ी की जो अवस्था आज है वह दस वर्ष में वह न रहेगी। वह बदल कर कुछ की कुछ हो जायगी।

इस अदल बदल की अवस्था के अन्तरगत हिलने डोलने का अभाव नहीं है। उपेक्षित दृष्टि ने अपने समझने बूझने के लिए या समझाने बुझाने के लिए यह दो कल्पित शब्द गढ़ रक्खे हैं। नहीं तो जड़ चेतन दोनों ही निरर्थक शब्द हैं। यह जगत् ब्रह्म है और ब्रह्म मय है।

गरुड़—जगत् को आप ब्रह्म कहते हैं। यह किस दृष्टि से है ?

कागभुशंडी—जगत शब्द संस्कृत धातु, 'गम' से निकला है जिसका अर्थ चलना' है। जो चले और चलायमान हो वह जगत है। यहां तुम जो कुछ देखते हो, वह सब का सब चलायमान है। इस दृष्टि से इस प्रपंच को जगत कहते है।

गरुड़—क्या आत्मा भी चलायमान है ?

कागभुशंडी—यह तुम आप सोच लो ! तुम आत्मा हो और चलायमान हो। जो जगत में रहता है। सब का सब चलायमान है। आत्मा संस्कृत धातु (अत) (हिलना, डोलना) और मनन (सोचना) से बना है। यह आत्मा की परिभाषा आप बता रही है कि जिसमें हिलना, डोलना और सोचना हो वही आत्मा है दूसरा आत्मा क्या होगा ? और कैसे होगा ? इच्छा ज्ञान, सुख, दुःख, आदि सब आत्मा में हैं और इन सब के अन्तर में धस कर विचार करो तो सब के सब हिलते डोलते और समझते बूझते हैं।

गरुड़—आत्मा में और ब्रह्म में क्या भेद है ?

कागभुशंडी—शब्द के अर्थ को विचारो। भेद प्रत्यक्ष हो जायगा। जो हिले, डोले, सोचे विचारे वह आत्मा (अत और मननवाला) और जो बढ़े और सोचे वह ब्रह्म (विरह और मननवाला) दोनों ही एक हैं। इनमें कोई भी भेद नहीं है। यह दोनों भी उपेक्षिक शब्द हैं। उपेक्षिक दृष्टि से मनुष्य ने दो शब्द गढ़ लिये। एक आत्मा दूसरा ब्रह्म (परमात्मा) एक बड़ा दूसरा छोटा। एक अल्पज्ञ दूसरा सर्वज्ञ। एक ब्रह्मांड में व्यापक दूसरा पिंडांड में व्यापक। यह समझने बूझने की दृष्टि से है। नहीं तो जो समुद्र है, वही बूँद है। बूँद बिना समुद्र नहीं। समुद्र बिना बूँद नहीं—दोनों समान हैं।

गरुड़—तो जीव, ब्रह्म में कोई भेद नहीं है।

कागभुशंडी—नहीं ! कोई भी नहीं ! जीव ब्रह्मो भेद किम्।

गरुड़—जीव ब्रह्म कैसे हो सकता है ?

कागभुशंडी—जैसे छोटा मनुष्य बड़ा होजाता है।

गरुड़—यहाँ बड़ाई, छोटाई के भाव का परित्याग है। आप कहते हैं यह जीव ही ब्रह्म है।

कागभुशंडी—तो मैं बुरा या झूँठ क्या कहता हूँ ? जीव ही के भाव में छोटाई बड़ाई रहती है। जीव ही व्यापक, अव्यापक और सब व्यापक की समझ रखता है। जीव ही समझता है, कि ब्रह्म क्या है ? और जीवक्या है जिस वर्तन में जो वस्तु रक्खी जाती है वह बरतन छोटा होता है या बड़ा होता है ? ब्रह्म का भाव ब्रह्म में है या जीव में है ? ब्रह्म का भाव किसमें समाया हुआ है ? किसमें उसके समाने की सम्भावना है ? इसी एक बात के समझ लेने से अच्छे प्रकार दृढ़ विश्वास हो जायगा। कि जीव के भाव में ब्रह्म बसता है और यह जीव तुच्छ नहीं है। जैसा कि लोग समझते हैं। ब्रह्म में जीव बसता है वैसे ही जीव में ब्रह्म भी बसता है।

बूँद समाना सिन्ध में, प्रगट दृष्टि से देख।
सिन्धु समाना बूँद में, भाव चक्षु से लेख ॥१॥
सिन्धु बूँद की एक गति, एकहि एक समान।
जीव और ब्रह्म अभेद हैं, जाने सन्त सुजान ॥२॥
बुँद सिन्धु की गति परखि, प्राप्त हुआ गुरु ज्ञान।
गति मति दोनों खो गईं, सोई पद निर्वान ॥३॥
जब लगि जीव में क्रोध है, लोभ, मोह, अहङ्कार।
तब लगि जीव के भाव में, व्यापि रहा संसार ॥४॥

मोह, लोभ, मद, काम को, मेट दिया सह मूल।
अब नहिं जीव में भरम है, सहै न दुख सुख सूल ॥५॥
सरल सुगम है बात यह, लखि पावै कोई साध।
साधन अनुभव में रमै, उसका मता अगाध ॥६॥
अणिमां, महिमा जीव में, गरिमा लघिमा, खान।
इनसे जब न्यारा भया, जीव है ब्रह्म समान ॥७॥

सातवाँ समुल्लास

अवतार विषय (३)

अवतार कैसे होता है ?

गरुड़—जीव ब्रह्म एक है, नाम रूप का भेद है। जीव ब्रह्म है, ब्रह्म जीव है। जीव ब्रह्म पूर्ण हैं, पूर्ण में सब ही कुछ रहता है। जीव को बूँद ही समझ लिया जाय, तब भी कोई हानि नहीं है। क्योंकि समुद्र की सारी शक्ति एक एक बूँद के पीछे हर समय लगी रहती है और उसकी सहायक बनी रहती है। बूँद कभी समुद्र से न्यारा नहीं हो सकता, मिला जुला रहता है। यहाँ तक तो ब्रह्म जीव का द्वैत पक्ष है। जब यह जीव अपनी कल्पना, साधना और सोच विचार से ब्रह्म में निमग्न हो जाता है तब यह द्वैत की प्रथकता का अभाव और नहीं तो मानसिक दृष्टि से जाता रहता है और दोनों एक समान प्रतीत होने लगते हैं। यह बात मेरी समझ में आगई।

यही दशा प्रकाश की भी है। किरणें सूर्य से निकलती और संसार के स्थल में खेलती हैं। एक एक किरण के पीछे सूर्य की सारी प्रकाश शक्ति रहती है। द्वैत पक्ष में किरण और सूर्य दो हैं। यथार्थ में तत्त्व दृष्टि से एक ही हैं। यह बात भी मेरी समझ में आगई।

ऐसे ही मैं जिस जिस पदार्थ की तरफ़ ध्यान देता हूँ, सब अपने स्रोत या भण्डार के रूप ही प्रतीत होते हैं और इस से अलग नहीं बल्कि अलग मिले जुले ज्ञात होते हैं। इस बात का अनुभव होगया।

अब आप आज्ञा दें तो मैं इसी दृष्टि को लिये हुए अवतार विषय में आप से प्रश्नोत्तर करूँ।

कागभुशण्डी—गरुड़जी की वाणी सुनकर प्रसन्न हुए।

आप सब कुछ समझते बूझते हो। मुझे सन्मान देने के निमित्त मुझ से यह प्रश्न करते हो और आज्ञा माँगते हो।

एवमस्तु! जो कहना चाहते हो कहो। असमंजस करने या आगा पीछा करने की आवश्यकता नहीं है।

गरुड़—भगवन्! व्यापक ब्रह्म का उतार किसी अमुक शरीर में कैसे होता है? और वह अवतार कहलाने लगता है।

कागभुशुंडी—तुम्हारा शरीर एक है। इस शरीर के अन्दर मन एक है जो ऊपर से लेकर नीचे तक इसमें व्यापा हुआ है। यह तो तुम समझते हो। अब यों विचार करो कि साधारण रीति से मन की धार तो सारे शरीर में स्वाभाविक फैली हुई है। जब शरीर के किसी अङ्ग को अधिक बल लेना होता है, तो उसी मन की धार अधिकता के साथ उस अङ्ग में असाधारण रूप से आजाती है अर्थात् उस अङ्ग में मन की विशेष धार का उतार होता है और वह बलवान् होकर उस समय उस अङ्ग का काम कर देता है। तुम चाहो तो उस समय के लिए उस अङ्ग को मन का अवतार कह सक्ते हो। यह व्यवहार तुम्हारे शरीर में दिन प्रति दिन होता रहता है।

योंहीं यह ब्रह्माण्ड ब्रह्म का शरीर है। इस ब्रह्माण्ड रूपी देह में ब्रह्माण्डी मन की धार साधारण रूप से सारे ब्रह्माण्ड में पोटी और फैली हुई है, और उसी के आधार पर सृष्टि का खेल होरहा है। इस ब्रह्माण्ड में जितने जीव जन्तु आदि हैं उसी के अङ्ग और अंश हैं, जैसे तुम्हारे शरीर के सारे टुकड़े उसी शरीर के अंग और अंश हैं। जब ब्रह्माण्ड के

किसी भाग में कोई विघ्न हो जाता है, तो उसके दूर करने के लिए ब्रह्म की विशेष शक्ति उस अंश या अंग में उतर कर उस विघ्न का नाश करके फिर अपने अन्तर में लौट जाती है। वह उतरी हुई शक्ति विशेष है और इसी विशेषता की दृष्टि से उसका नाम अवतार हो जाता है।

समझलो! तुम किसी पत्थर को उठाना चाहो यों नहीं उठा सकते। अपने शरीर के विशेष बल को चाहते हो। यह बल शरीर में है। उस समय वह तुम्हारे हाथों में अधिकता के साथ उतर आता है, और तुम पत्थर को सुगमता और सरलता से उठाकर फेंक देते हो। या उस से काम ले लेते हो। अवतार विषय इसी प्रकार का है और इसी प्रकार होता है।

एक हाथ ही का उदाहरण क्यों लिया जाये। हाथ, पांव, आँख, कान, नाक सब में आवश्यकता के समय शारीरिक और मानसिक शक्ति का उतार हुआ करता है।

जो दशा पिंड की है। वही ब्रह्मांड की भी है। "पिण्डे सो ब्रह्मांडे" जो नियम पिंड में काम करता है, वही ब्रह्मांड में काम करता है। उसमें नाम के लिये भी भेद नहीं है और उसका समझना बूझना भी कठिन नहीं है। हाँ जो प्राणी भ्रम ग्रस्त हो जाते हैं और उनमें जीव ब्रह्म की समझ न्यूनता के साथ है, उनको समझने में कठिनाई होती है और वह भी अगर पक्षपाती नहीं है और पक्ष के अहंकार में जकड़े हुए नहीं हैं, तो समझाने बुझाने से इसे बड़ी सरलता और सुगमता से समझ जाते हैं।

देखते हो जैसा तुम ब्रह्मांड मे।
वैसी हो रचना है, इस पिंडाण्ड में॥
दोनों ही हैं एक जैसे ए गरुड़।
एक अवस्था जैसे तैसे ए गरुड़॥
बात समझाने की थी समझा दिया।
इसमें कठिनाई नहीं जतला दिया॥

आठवाँ समुल्लास।

अवतार विषय लगातार (४)

राम अवतार

गरुड़ ने पूछा—"राम अवतार क्यों हुआ?

कागभुशुंडी ने उत्तर दिया—"दशरथ दश अंगों-वाला शरीर है यह विषयासक्त था। राम उसमें प्रगट हुए। सोचा विचारा। ये दशरथ क्यों इतना मूढ़ है? बात समझ में आई। दशरथ की दस इन्द्रियों में रजोगुण की प्रबलता है। इस रजोगुण की जड़ मस्तिष्क में है। वहाँ इनकी मुख्यता है। उसका बल दशरथ को मिलता है और उसीने इसे विषयासक्त, कामासक्त और तमासक्त कर रक्खा है। रजोगुण की प्रधानता दूर कर दी जावे, तो इसकी मुक्ति हो जाये। रजोगुण का नाम रावण है। जो संस्कृत धातु रु (रोने वाले) से बना है। यह सदा रोता भींकता रहता है, तोड़ फोड़ मरोड़ करता रहता है। शरीर के दशों रथों की मुख्यता या उनका मुख्य अंग इसी में है। इसी दृष्टि से उसे दश-मुख, दशशीश, दशग्रीव इत्यादि कहते हैं। मनुष्य शरीर को लाख कष्ट दे, जप, तप की साधना करे, यह न मरेगा। मस्तिष्क पर चढ़ कर जब इसका नाश किया जावेगा, तब यह मारा जायगा। राम ने ऐसा सोचा। लंका (मस्तिष्क) पर चढ़ाई की। वहां उसे मार गिराया और सीता को लेकर फिर अवध में आकर राज किया। रजोगुण के मारने के निमित्त राम का अवतार हुआ।

गरुड़—राम ने लंका पर चढ़ाई की थी, मस्तिष्क से उसका क्या सम्बन्ध है?

कागभुशंड—लंका शब्द संस्कृत धातु 'लक' से बना है इसका अर्थ है, 'माथा', ललाट, पाना, प्राप्त करना आदि। संस्कृत का कोष देखकर अपना संतोष करो। मनुष्य की सारी शक्तियाँ की जड़ उसके सिर में रहती है। उसी को लंका कहते हैं। शरीर के नीचे भाग में उसका भास और उसकी छाया रहती है।

गरुड़—राम मनुष्य हैं। उनकी तीन मातायें हैं? और तीन ही भाई हैं।

कागभुशंडी—यह सच है, राम मनुष्य हैं। मनू की संतति हैं। मनू से उत्पन्न होने के कारण वह मनुष्य कहलाते हैं। मनुष्य शब्द संस्कृत धातु मन से निकला है। जिसका अर्थ है "समझना-बूझना, जानना, पहिचानना" राम समझने वाले, बूझने वाले, जानने वाले, और पहिचानने वाले हैं, इसलिए मनुष्य हैं।

उनकी तीन माता कौशल्या, सुमित्रा, और केकैई हैं। कौशल्या संस्कृत शब्द कुशल (शुभ, आनंद, सनमान आदि) से बना है। यह सत है। सतो गुणीवृत्ति है जो शरीर में रहती है।

कैकेई संस्कृत शब्द के, (चिल्लाना, शोर करना) से निकला है, यह तम है तमोगुणीवृत्ति है, जो शरीर में रहती है।

सुमित्रा संस्कृत शब्द सु=(अच्छा) मित्र (सहकारी) से बना है। यह रज है और रजोगुणी वृत्ती है जो शरीर में रहती है।

दशरथ की यह तीन रानियाँ हैं। कौशल्या सत, केकैयी तम और सुमित्रा रज है। सत और तम अलग-अलग हैं, और सुमित्रा सत और तम दोनों से मिली जुली हुई रज और दोनों से अलग या सम्मिलित हैं। इसी से उसका नाम सुमित्रा रक्खा गया। न सत काम करता है, न तम काम करता है। इन दोनों में क्रिया शक्ति नहीं है। क्रिया शक्ति केवल रज या रजोगुण में है। जब यह सत और तम से मिलती है तब वह क्रिया वाली होती है। इन तीनों का पता उनके नामों के विचार में है।

अब तुम इनका रूप देखो। तब सत, तम और रज की समझ आवे। मैं पहले भी समझा चुका हूँ। दूसरी बार फिर इनका चित्र दिखाता हूँ। जिससे यह तीनों गुण जिनकी लीला पर सृष्टि का प्रबन्ध निर्भर है, तुम्हारी समझ में आजाये।

सत—उज्वल, शुद्ध, प्रकाश, ज्ञान, आनन्द
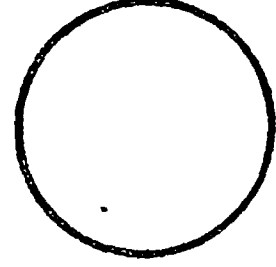
कौशल्या राम की माता एक पुत्र वाली।

रज-रंग-विरंगी, मिली जुली प्रकाश-अन्धकार युक्त, ज्ञान-अज्ञान, सुख-दुख।
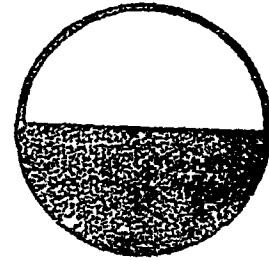
सुमित्रा लक्ष्मण और शत्रुहन की माता, दो पुत्र वाली।

तम—काला, मलीन, अन्धकार, मूढ़ता उदासीनता।
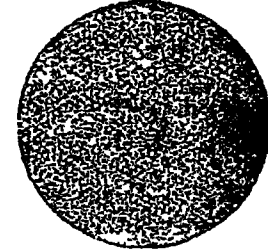
कैकेई भरत की माता, एक पुत्र वाली।

अब इनकी सम्मिलित अवस्था का चित्र देखो।
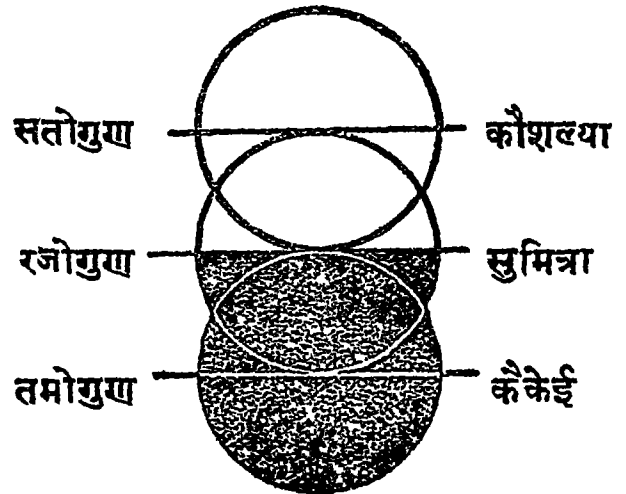
रजोगुण (सुमित्रा) ने आधा भाग सतोगुण (कौशल्या) का घेर रक्खा है और आधा भाग तमोगुण (कैकेई) का घेर रक्खा है वह दोनों में मिला जुला है।

राम के तीन भाई हैं, यह भी सच है।

इनके नाम है भरत, लक्ष्मण और शत्रुघ्न।

भरत तमोगुणी और तमोगुण के अंशधारी हैं। लक्ष्मण और शत्रुहन रजोगुणी और रजोगुण के अंशधारी हैं।

राम कौशल्या (सत) के एक पुत्र हैं। सत में एक ही वृती होती है। और वह ज्ञान प्रकाश की वृत्ति है। जिसमें क्रिया (कर्म) का अंश नहीं होता।

भरत कैकैई (तम) के एक पुत्र हैं इस तम में एक ही वृती होती है। और वह अंधकार, मूढ़ता और उदासीनता की वृत्ति है जिसमें क्रिया (कर्म) का अंश नहीं होता।

लक्ष्मण और शत्रुहन सुमित्रा (रज) के दो पुत्र हैं। इस रज की दो (द्वंद) गति और वृत्ति होती है। और वह दुविधा और दुचिता वृत्ति है, जिसमें क्रिया (कर्म) शक्ति है, जो उस रज का अंश कहलाती है।

जब राम के साथ लक्ष्मण होते हैं, तब ही वह क्रिया संयुक्त और कर्म आरूढ़ होते हैं। वैसे नहीं। जब भरत के साथ शत्रुहन रहते हैं तब ही वह क्रिया कर्म वाले होते हैं। वैसे नहीं, यही कारण है कि रज, रजोगुण या रजोगुणी (सुमित्रा) के दो पुत्रों में से लक्ष्मण राम के साथ और शत्रुहन भरत के साथ किये गये।

ऐ गरुड़! "यह राम की कहानी का रहस्य है जो मैंने तुमको समझा दिया। राम की मातायेँ और भाइयों और बाप का भेद बता दिया। इसे विचारो, तब राम अवतार का विषय तुम्हारी समझ में आजाये।"

गरुड़जी इस रहस्य को सुनकर बहुत प्रसन्न हुए।

नवाँ समुल्लास।

अवतार विषय (लगातार) (५)

तीन तीन का निर्णय

गरुड़—आपने बड़ी कृपा की जो इस गुप्त रहस्य को समझा दिया। मैं देखता हूँ रामकथा में सब जगह तीन ही तीन का प्रसंग है। इसका क्या कारण है?

कागभुशण्डी—जैसे?

गरुड़—जैसे राम की तीन मातायें, राम के तीन भाई; राम के तीन गुरु, राम के तीन शत्रु, राम के दल की तीन प्रकार की सेना इत्यादि।

कागभुशण्डी—राम की कहानी में विशेष कर के सत, रज, तम की कथा है। यह कथा त्रिगुणात्मक कहलाती है। राम ने रजोगुण रावण को मारा, तमोगुण कुम्भकर्ण का नाश किया, सतोगुण विभीषण को लंका का राज दिया, यह कथा का मुख्य अभिप्राय है।

रामने खर दूषण और त्रिशिरा को मार गिराया। खर कहते हैं 'गधपन' को, दूषण कहते हैं 'तम के दूषण को' और त्रिशिरा 'तीन सर वाला' सत, रज, तम के तीनों सम्मिलित रजोगुणी अहंकार को।

राम ने तीन प्रकार की सेना इकट्ठी की, राक्षस बन्दर, और रीछ की।

राक्षस-विभीषण-सतोगुणी लेकिन अज्ञानी मन की वृत्ति है। रीछ, जामवन्त तमोगुणी लेकिन मूढ़ मन की वृत्ति है। बन्दर हनुमान रजोगुणी लेकिन चञ्चल मन की वृत्ति है। ऐसा क्यों किया गया? क्योंकि जब तक मन की तीनों वृत्तियाँ इकट्ठी नहीं होती, चित्त में एकाग्रता नहीं आती।

गुरुओं में—वशिष्ठ, तमाकार आरूढ़ दृढ़ वृत्ति है।

विश्वामित्र—रजाकार विश्व के प्रेम की वृत्ति है।

अगस्त—सत्याकार, सत के राज की वृत्ति है।

इस प्रकार आरम्भ से अन्त तक सत, रज, तम का रूपक अनेक भाँति से दिखाते हुए राम का अवतार हुआ है।

गरुड़ ने पूछा—"सीता क्या है?"

कागभुशुण्डी ने उत्तर दिया—"सीता सुषुम्ना नाड़ी नामक लकीर का नाम है, जो जनक रूपी मन के हल जोतने (विचार, योग, और विवेक साधना) से उत्पन्न होती है। शूर्पणखा की नाक काटने के दोष से राम पर रजोगुण छापा मारकर उस सुषुम्ना वृत्ति को छीन ले जाता है। राम उदास होकर जंगल २ उसकी खोज में मारे २ फिरते हैं। अन्त में भक्ति की सूझती है। वह शवरी भीलनी है जिससे राम मिलकर सीता का पता पूछते हैं? और वह कहती है पम्पासुर में जाकर सुग्रीव (वन्दर चञ्चल मन) से मित्रताई कीजिये। वह सीता का खोज लगा देगा। और ऐसा ही हुआ।

इस चञ्चल मन में तीन वृत्तियां हैं। हनुमान (सतोगुणी) सुग्रीव, (रजोगुणी) और अङ्गद, (तमोगुणी)।

यों राम की कहानी का त्रिगुणात्मक प्रबन्ध हुआ है।

दसवाँ समुल्लास।

अवतार विषय (लगातार) (६)

दश अवतार चरित्र।

गरुड़ ने पूछा—अवतार केवल राम के रूप में होता है या और भी रूप में हुआ करता है?

कागभुशुण्डी हँसे—"भगवन्! विष्णु के वाहन होकर आप हँसी २ में ऐसा प्रश्न मुझसे कर रहे हैं। जानने को आप सब कुछ जानते हैं। सम्भव है हमारे और दूसरे प्राणियों के कल्याणार्थ आप ऐसा प्रसंग छेड़ रहे हैं।"

गरुड़—प्रभो! आपने मन का उदाहरण देकर यह कहा था कि जैसे मन की धार हाथ पाँव और शरीर के दूसरे अङ्गों में उतर कर अवतार धारण करती है, क्या ब्रह्म का अवतार भी ऐसा ही करता है?

कागभुशुण्डी हँसे—यह अच्छा प्रश्न है न जिसका सर न पैर। मैं फिर भी संक्षेप से उसका उत्तर देता हूँ। जैसे रामचरित्र में दशरथ और दशमुख का प्रसंग है वैसे ही अवतारों में दश अवतार ही मुख्य समझे जाते हैं। इनमें से मनुष्य अवतार शिर में ब्रह्म की धार के उतरने का चरित्र है। कच्छप अवतार देह में इसकी धार के उतार का वृत्तान्त है। वामन अवतार में पाँव की महिमा है। आपके प्रश्न में सिर, पैर, कोई नहीं था। मैंने शिर पैर और शरीर का सम्बन्ध दिखा दिया। अब और कुछ पूछना चाहते हैं, तो पूछिये।

गरुड़—यह अवतार दस ही क्यों हैं?

कागभुशुंडी—यथाथ में तो अवतार नौ ही हैं। दसवां अवतार तो उलट फेर है। अवतार एक, दो, तीन, चार नहीं बल्कि करोड़ों हैं।

> नाना भांति राम अवतारा।
> रामायण शत कोटि अपारा॥
> कल्प भेद हरि चरित सुहाये।
> भांति अनेक मुनीशन गाये॥

गरुड़—प्रभो! आपकी वाणी सुन कर मेरे अन्तर में अब संशयतो नहीं उत्पन्न होता। हाँ प्रश्न पर प्रश्न उठते हैं। आपने नौ मुख्य अवतार बताये हैं। पहले दस बताये थे। इन नौ अवतारों का रहस्य क्या है?

कागभुशुंडी—वही तीन का तीन....तीन को तीन से गुणा करो तो नौ हो जाते हैं। इस तीन की दृष्टि से मुख्य अवतार तीन ही हैं। (१) मीन (मछली) (२) नरसिंह (३) राम।

अवतार का विषय समुद्र है। इस समुद्र में जितनी तैराकी करते चलोगे उतने ही मनोहर दृश्य आँखों के सामने आते रहेंगे। मैं विशेषतर आपका समय लेना नहीं चाहता, आपको भ्रम था कि राम ब्रह्म के अवतार नहीं हैं। वह भ्रम तो जाता रहा। मेरी इच्छा यह है कि आप से राम चरित्र को सुनूं। आप लंका की रणभूमि में पधारे थे। आप सब कुछ जानते हैं। पहले आप आद्योपांत उसे सुना दीजिये। तब मैं इस अवतार विषय पर अपने विचार प्रकट करूँगा जब आप चरित्र सुनेंगे, तब जो कुछ और आप पूछेंगे मैं कहे चलूंगा।

गरुड़—आपकी आज्ञा का पालन करना मेरा कर्त्तव्य और धर्म है। आप जो कहेंगे मैं वैसा ही करूँगा। लेकिन अधिक नहीं तो कुछ थोड़ा बहुत कम से कम इस नौ अवतार पर प्रकाश डाल दीजिये कि मेरा साहस और उत्साह बढ़ चले। फिर मैं जो २ राम चरित्र जानता हूँ, निवेदन कर दूँगा।

कागभुशुंडी—"नहीं यह प्रसंग पूर्वार्ध था। जब आप राम चरित्र सुना चुकोगे, उसके बीच २ में यह अवतार विषय अधिकता के साथ विचार में आता चलेगा और जो शेष रह जायगा वह राम कथा की समाप्ति के पश्चात् वर्णन किया जायेगा। वह आज के प्रसंग का उत्तरार्द्ध होगा।"

गरुड़—जी ने कहा "एवमस्तु!"

और दूसरे दिन के सत् संग में राम के वृत्तान्त सुनाने का प्रबन्ध सोचा गया।

आरम्भ खंड—बाल चरित्र

प्रथम भाग

पहिला समुल्लास

दशरथ का संतति के लिये पुत्र यज्ञ करना

अवध देश[1] अयोध्या[2] राजधानी । इस देश और इस राजधानी में एक राजा राज करता था। उसके पास दस बहुमूल्य रथ[3] थे ।-वह इन्हीं रथों पर चढ़ता रहता था। और उनका अभिमानी था। इस अभिमान के कारण उसका नाम दशरथ[4] पड़ गया था।

नाम रूप साथ-साथ चलते हैं। जहां रूप रहता है नाम भी वहांही रहता है। बिना नाम के रूप नहीं और बिना रूप के नाम नहीं होता। दोनों में परस्पर सम्बन्ध हुआ करता है, जैसा जिसका रूप वैसा ही उसका नाम। और जैसा जिसका नाम वैसा ही उसका गुण और वैसा ही उसका काम।

यथा रूपस्तथा नाम, यथा नाम तथा गुणः

उसे अपने दसों रथों का ध्यान रहता था और उसका समय उन्हीं रथों की सम्हाल और रक्षा में व्यतीत हुआ करता था।

रात दिन उसको रथों का ध्यान था।
और उन्हीं का ज्ञान और अनुमान था ॥
इन रथों को पाके दशरथ था सुखी।
रथ कभी बिगड़े तो होता था दुखी ॥
वह इन्हें सिंगारता था रात दिन।
शांत था दस रथों की संख्या को गिन ॥
इनपै चढ़ कर घूमता था वह नरेश।
फिरता रहता था सदा वह देश-देश ॥

राजा दशरथ [5]रघुकुल में उत्पन्न हुआ था। जो मनु[6] की संतति और इक्ष्वाकु[7] वंश का था।

यह साहसी था, पुरुषार्थी था और पराक्रमी था। धर्म कर्म का निर्वाह करता था। न्यायकारी था। इसके राज में प्रजा बहुत सुखी थी। बलवान निर्बल को नहीं सताते थे और सिंह और बकरी एक घाट में पानी पीते थे।

दशरथ को अपने भुजदण्ड पर बड़ा घमण्ड था। यह इन्द्र[8] का सहायक था। इसमें एक दोष था। वह इन्द्रिय विषय में बहुत असक्त था। रात दिन उन्हीं के भोग विलास की धुन में लम्पट रहता था। 'शुक्र' (वीर्यशक्ति) में विघ्न आगया था और कोई संतति नहीं थी।

---

(१) अवध संस्कृत (अव) (न्यून) 'धा' (धारण करना) मनुष्य आयु।

(२) अयोध्या। सस्कृत (अ) (नहीं) युद्ध (लड़ाई) जिसमें लड़ाई न हो मनुष्य शरीर जिसके सब अंग मिले जुले हुए बिना लड़ाई झगड़े काम करते रहते हैं।

(३) रथ। सवारी संस्कृत रस (खेल)।

(४) दशरथ। दश 'इन्द्रियों वाला मन रखता हुआ मनुष्य ॥

(५) रघु संस्कृत शब्द रघी (प्रकाश) से निकला है प्राण का दाता सूर्य ही है। इस कुल का नाम रघुवंशी सूर्यवंशी और हंस या भानुवंशी था।

(६) मनु (मन वाला) संस्कृत शब्द मन से निकला है मन की प्रधानता के कारण मनु की संतती मनुष्य कहलाती है।

(७) इक्ष्वाकु। संस्कृत इक्ष (ईख-गन्ना) 'ई' (चलना) 'इक्ष्' (इक्षा 'क' (प्राप्त करना) यह राजा व्यसुत मनुसूर्य का लड़का था। जो त्रेतायुग में राज करता था। इच्छाधारी होने से इसका नाम इक्ष्वाकु पड़ा।

(८) बिजली की शक्ति जो हाथ में रहती है संस्कृत 'इन्द्र' (बलबान बल रखने वाला) 'इद्रि' (बल)।

इसका विवाह तीन रानियों से हुआ था। एक कौशल देश की थी इसका नाम कौशल्या[1] था। दूसरी कैकेय देश के कैकेय राजा की पुत्री थी वह कैकेयी[2] कहलाती थी। तीसरी मध्यदेश की थी वह सुमित्रा[3] नाम से विख्यात थी।

कौशल्या बड़ी और कैकेयी सबसे छोटी थी। सुमित्रा साधारण थी। छोटी रानी काश्मीर देश की लड़की होने के कारण बड़ी सुन्दर थी। दशरथ कौशल्या का मान और आदर-सत्कार तो बहुत करता था लेकिन कैकेयी के रूप पर मोहित था। उसी के भवन में विशेष कर रहता था। सुमित्रा की तरफ़ इसका ध्यान नहीं था।

यह तीनों रानियां राजमहलों में रहती थीं। कौशल्या और कैकेयी में सौतिया डाह था। वह एक दूसरी से नहीं मिलती थी। सुमित्रा बांदी के समान दोनों की सेवा करती रहती थी और दोनों से मिली-जुली रहती थी।

दशरथ वृद्ध होगया। लड़के वाले न होने से वह दुखी रहता था। रानियां भी दुखी थीं। जिस घर में पुत्र[4] नहीं होता, वह घर श्मशान भूमि के तुल्य समझा जाता है। पितृ ऋणका बोझ ऐसे घर वाले के सिर पर रहता है और उसका उद्धार नहीं होता। वह नरक को जाता है। जब पुत्र नहीं तो पित्रों के श्राद्ध[5] और तर्पण[6] कौन करे! और पितृ लोक में उनकी गति कैसे हो!

दशरथ को महा खेद था। उसने अपने मन्त्री, गुरु वशिष्ठ[7] ऋषि को अपना मन्तव्य प्रकट किया। गुरु ने कहा कुछ दिनों ब्रह्मचर्य्य[8] व्रत धारण करो। शुक्र[9] की दया हो तब पुत्र यज्ञ[10] का प्रबन्ध करो। जब अग्नि प्रकट होगी। पुत्र उत्पन्न होंगे। अग्नि के बिना कुछ न होगा, इस काम के लिए शृङ्गी[11] ऋषि की सहायता आवश्यक है।

राजा ने गुरू की बात मान ली। कुछ दिनों के लिये ब्रह्मचर्य्य व्रत धारण किया। स्त्रियों का संग त्याग दिया। ओ३म् भूर्, भुवः स्वः तत् सवितु वेरण्यम्, योग का साधन करने लगा।

यह साधन क्या है? भूलोक, भुवर्लोक, स्वर्लोक के विचारों का परित्याग हो, ओ३म् से यह ढक जायें। केवल सावित्री (सूर्य्य) का ध्यान हो जो मनुष्य मात्र के घट में रहता है। यह अग्नि बल और पुरुषत्व की खानि है। जब तक यह सावित्री प्रकट नहीं होता या उसका साक्षात्कार नहीं होता उस समय तक अन्तर अग्नि प्रचंड नहीं होती, वीर्य इसी के अधीन है।

"भर्गो देवस्य धीमहि" उस सावित्री देवता के गुण, कर्म, स्वभाव और प्रभाव को साक्षात्कार होने पर धारण करो "धियो यो नः प्रचोदयात्" तब वह देवता तुम्हारी बुद्धियों का प्रेरक होगा और तब तुम में बल कर्म पुरुषार्थ और वीर्य आपही

---

(१) कौशल्या सतोगुण। संस्कृत। कुशल (उत्तम)।

(२) कैकेई। तमोगुण। संस्कृत के (शब्द करना-चिल्लाना)।

(३) सुमित्रा। रजोगुण। संस्कृत 'सु' (अच्छा) मित्र (मीत)।

(४) पुत्र। संस्कृत 'पुत' (नर्क जिसमें संतती रहित प्राणी धकेले जाते हैं। और 'तर' कहते हैं तारने वाले को। जो पुंत नर्क से तारे वह पुत्र है।

(५) श्राद्ध। संस्कृत श्राद्ध (विश्वास) जो श्रद्धा के साथ पित्रों के नाम पर पिण्ड दान दिया जाता है। वह श्राद्ध है।

(६) तर्पण संस्कृत "तर" (तारना-उतारना 'प्य' (ऋण) पित्रों के ऋण उतारने के लिये जो दान दिया जाता है। वह तर्पण है।

(७) वशिष्ट। संस्कृत 'व' (पहले) 'शास' (शिक्षा देना) गुरु।

(८) ब्रह्मचर्य्य। ब्रह्म में चर्य्या करना। वीर्य का साधन।

(९) शुक्र। वीर्य धातु।

(१०) यज्ञ। संस्कृत 'यज' (पूजा) जो पुत्र के निमित्त पूजा की जाये वह पुत्र यज्ञ है।

(११) शृंगी। संस्कृत श्रृङ्ग (चोटी, शिखर, शिखा)।

आप उत्पन्न हो जायगा और जो कामना की जायगी सब सिद्ध हो जायगी।"

दशरथ ने गुरु की बात मान ली, सावित्री साधन में लगा।

भू है पृथ्वी उसके छोड़ा ध्यान को।
और भुवः के त्यागा सब अनुमान को॥
लोकसुर के भाव को मन से निकाल।
धुन में सवितर के लगा रहने भुवाल॥
ओ३म् से उसने ढका जब तीन लोक।
मिट गये हृदय के चिंता और शोक॥
चमका दमका उसके घट सावित्री।
सिद्ध उसने कर लिया गायत्री॥
गुरु हुआ प्रसन्न चित और यों कहा।
कामना अब होगी सिद्ध संदेह क्या॥

सावित्री का यह साधन, क्रिया योग है, यह आप अन्तरीयज्ञ है। जब शृङ्गी ऋषि आये। दशरथ के ध्यान को शिखा[1] शृङ्ग या उसकी चोटी की तरफ़ लगाया। सूत्रों का भेद उसे बताया। शिखा और सूत्र का भेद पाकर दशरथ पुत्र की कामना से यज्ञ करने लगा। अग्नि कुण्ड में श्रद्धा, प्रेम और भक्ति की आहुतियां दीं। अग्नि[2] देवता प्रकट हुए और एक बर्तन दिया, जिसमें खीर[3] भरी हुई थी।

दशरथ कौशल्या के भवन में गया। खीर का आधा भाग उसे दिया। कैकेयी के पास जाकर आधा उसे सौंपा और इन दोनों के भागों में से जो बचा खुचा था वह सुमित्रा को दिया। तीनों रानियाँ खीर को पाकर और खाकर गर्भवती होगईं। सूखी नहर में पानी आया। अयोध्या की वाटिका जो उजड़ी और सूखी होगई थी लहलहाने लगी। वृक्षों की टहनियों में हरियाली दौड़ गई और शाखें फूलफल से लद गईं। निराशता जाती रही। आशा के कौपलों के फूटते ही वह हरी भरी दिखाई देने लगीं।

आस कर गुरु की दया की, हो निराश न तू कभी।
जो निराश हुआ समझ ले, गुरु का दास न तू कभी॥

अब अयोध्या में रात दिन चहल पहल होने लगा और वृद्ध दशरथ के शरीर की नस नाड़ियों में नया रक्त दौड़ने लगा।

दूसरा समुल्लास

संतति, उत्पत्ति

राम, भरत, लक्ष्मण और शत्रुहन

चैत सुदी नौमी की तिथि थी। शुभ मंगल का दिन था। शीतल, मंद, सुगंध वायु बह रही थी। सुहावनी ऋतु थी। पृथ्वी नाज, फल, फूलों से लदी थी। सब सुख और आनन्द में निमग्न हो रहे थे। उस दिन दशरथ के घर में चार पुत्र उत्पन्न हुए। राम, भरत, लक्ष्मण और शत्रुहन।

राम कौशल्या के गर्भ से प्रकट हुए राम के शरीर का रंग अलसी के फूल के प्रकार नीला था जिसमें बिजली के डोरे दौड़े हुए थे। लाल कमल के आकार के नेत्र थे। हाथ की हथेलियाँ और पाँव के तलुवे भी लाल थे। नख से शिख तक सुन्दरताई के साँचे में ढला हुआ तन! लाल २ हो

---

(१) शिखा जीवन की सोती है इससे जीवन की धार नीचे उतर कर नस नाड़ियों में दौड़ती है, इन्हीं नस नाड़ियों को सूत्र कहते हैं, शिखा और सूत्र योग-विद्या का रहस्य है।

(२) अग्नि संस्कृत 'अग' (ऊपर जाना) और 'नी' (निस्संदेहता) यह मनुष्य या जगत का तेज है जो वीर्य और ओजस् के रूप में प्रकट होता है।

(३) खीर। वीर्य्य विशेष।

नीले कमल के प्रकार फूले २ गाल ! उभरा हुआ माथा ! लम्बे २ हाथ ! बैलों के रूप का कंधा । घूँघर वाले केश ! लोग कहते थे यह कामदेव के अवतार हैं और सच्ची बात तो यह है कि राम की सुन्दरताई पर करोड़ों कामदेव—न्योछावर किये जायें । राम[1] प्रेम की मूर्त्ति थे ।

भरत[2] कैकेयी के पुत्र थे । देह का रंग काला था । जिससे बल की शक्ति धार बनकर फूट २ कर निकलती थी । यह सब में अधिक बलिष्ट थे । धीर, वीर, गम्भीर, सारा शरीर कोमल सुन्दर और दृढ़ता के रस में पगा हुआ था । बचपन ही में बिना सोचे समझे कोई बात नहीं करते थे । शिव के समान यह वीर रस के आदर्श थे । बल और पराक्रम में इनसे बढ़ कर कोई नहीं था ।

लक्ष्मण[3] और शत्रुहन[4] सुमित्रा के लड़के थे दोनों गोरे रग के थे । दोनों प्यारी २ मूर्त्तियाँ थीं चित्त में चंचलताई विशेष थी । तोड़ जोड़ मरोड़ फोड़ से काम था जो कोई देखता था गोद में उठाकर प्यार करने लग जाता था ।

चारों राजकुमार दिनों दिन चाँद के समान बढ़ने लगे । वह मिल जुल कर खेलते कूदते बाल लीला करते । देखने वाले सुखी होते । दशरथ का महल इनसे भरा हुआ प्रतीत होता था । महल वाटिका थी । उसमें यह चारों चार प्रकार के चलने फिरने वाले खिलते हुए कमल के पौधे थे ।

राम और भरत दोनों लगभग एक स्वभाव के थे । इन दोनों में चंचलता और दुबिधा नहीं थी । जब राम और भरत आमने सामने होते थे, तो भरत के शरीर का काला रङ्ग राम के श्याम वर्ण पर छाया डालता था और वह काले दिखाई देते थे और राम की सांवली बिजली की छाया उनके काले शरीर पर चमक उठती थी । राम भरत और भरत राम जचते थे । योंही जब चारों भाई एक साथ होते थे तो चारों के रङ्गों की छाया एक दूसरे के तन पर पड़कर बरसाती इन्द्र धनुष के रङ्गों का दृश्य दिखा देती थी ।

इनका भयानप विचित्र था । यों तो चारों में प्रेम था । लेकिन यह दो जोड़े बनकर रहते थे । राम के साथ लक्ष्मण, और भरत के साथ शत्रुहन रहते थे । चाहे रात हो या दिन यह जोड़ा साथ-साथ रहता था । उस युग में कोई कपड़े लत्ते बहुतायत से नहीं पहिनता था । लोग विशेषकर नंगे ही रहते थे । कटि पर कपड़ा बँधा रहता था । और चलते फिरते समय कोई-कोई चोला डाल लेता था जो गले की तरफ़ से फटा रहता था । सीने पिरोने का कोई नाम भी नहीं जानता था । सुई उन दिनों में नहीं बनती थीं ।

इन चारों का व्यवहार खेल में भी समान था, कभी किसी में अन बन नहीं होती थी और न किसी के अनुचित काम का उलहना भी माताओं के कान तक नहीं पहुँचा, यह बड़ी विचित्र बात थी ।

कौशल्या और कैकेयी में सौति-सौति का डाह अधिकता के साथ था । इन दोनों में से कोई भूलकर भी किसी के पास नहीं जाती थी । लेकिन कैकेयी राम को बहुत चाहती थी और देखने में वह उन्हें भरत से अधिक प्यार करती थी । कौशल्या राम और भरत में कोई भेद नहीं जानती थी । यह इन रानियों के व्यवहार में बड़ी विशेष और विचित्र बात थी ।

लक्ष्मण और शत्रुहन अपनी माता सुमित्रा के पास नहीं आते थे । लक्ष्मण राम के संग कौशल्या के यहां और शत्रुहन भरत के साथ कैकेयी के भवन में रहते थे । सुमित्रा इनकी तरफ से निश्चिन्त रहती थी । कैकेयी की गोद से भरत और शत्रुहन और कौशल्या की गोद से राम और लक्ष्मण चिपटे रहते

---

(१) राम संस्कृत धातु "रम्" (खेलना) राम का व्यौहार लीला मात्र खेल और रमण करने का था ।

(२) भरत संस्कृत धातु भरी (पालना पालन करना) भरत का व्यौहार पालन, पोषण मात्र था ।

(३) लक्ष्मण संस्कृत धातु । "लक्ष्" (देखना—निशाना मारना—लक्ष को आखों के सामने रखना ।

(४) शत्रुहन । संस्कृत धातु । शत्रु (बैरी) हनन (मारना)

(नोट) राम में सतोगुणी, भरत में तमोगुणी और लक्ष्मण, शत्रुहन में रजोगुणी वृत्तियां थीं । माताओं के स्वभाव का निचोड़ इनमें आगया था और यह सत तम और रज की जीती जागती मूर्त्तियां थी ।

थे। लोग कहते थे कि राम और लक्ष्मण कौशल्या के और भरत, शत्रुहन कैकेयी के पुत्र हैं। सुमित्रा की गोद पुत्रों से ख़ाली है और वह देवी सुनकर मुस्करा देती थी। बुरा नहीं मानती थी। प्रसन्न चित्त रहती थी। कभी-कभी कौशल्या और कैकेयी के महलों में इन दोनों बालकों के देखने को चली जाया करती थी। यों दोनों जोड़े कभी-कभी आप सुमित्रा के महल में आजाया करते थे।

लड़के बड़े हुए। दशरथ ने समयानुसार इनकी शिक्षा का प्रबन्ध करना चाहा। कैकेय देश के राजा ने भरत को अपने पास बुला लिया। भरत के साथ शत्रुहन भी काश्मीर चले गये। राम भरत के चले जाने से उदास होगये। वशिष्ठ ने चाहा कि राम को कुछ पढ़ायें। त्रेता युग में लिखने पढ़ने की वह दशा नहीं थी जो अब है। वेद भी कलियुग ही के आदि में पुस्तकाकार बनाये गये। व्यास ने ऋषियों से सुने हुए वेद मन्त्रों को संग्रह करके एकत्रित किया था। लिपि या लिखने का प्रचार द्वापर के अन्त या कलियुग के आदि में हुआ था। उस समय केवल ऋषि वाणी को कंठाग्र कर लिया जाता था। यही पठन-पाठन था। हाँ! चौदह विद्यायें थीं।

तीसरा समुल्लास

राम वशिष्ठ का सम्वाद

राम का वैराग्य

राम की उदासीनता को देख कर दशरथ भयभीत होगया। बुढ़ापे में उसे संतति मिली थी। पहले वह अपने भोग विलास में असक्त था। अब राम के मोह में फंस गया।

वशिष्ठ ने कहा "आप चिंता न कीजिये मैं राम को अपने घर ले जाऊँगा। समझाऊँगा, बुझाऊँगा पढ़ाऊँगा, यह सम्भल जायेंगे और फिर खेलने कूदने लग जायेंगे। दशरथ बोला। "ऐसा ही कीजिये" और वह राम को अपने घर ले गये। उनकी पत्नी अरुन्धती रामको देख सुखी होगई। राम बहुत भोले भाले और सरल स्वभाव वाले थे। जो उन्हें देखता था अपने आपे को भूल जाता था।

घर लाकर वशिष्ठ राम का जी बहलाने लगे। चाहा कि वह खेल कूद में लगें। उस समय धनुष विद्या, सर्प विद्या, शस्त्र विद्या, गंधर्व विद्या आदि चौदह प्रकार की विद्याओं का प्रचार था। राम ने इनकी तरफ से अपना मुँह मोड़ लिया। एक दिन वशिष्ठ जी ने पूछा। "राम, तुमको क्या चिन्ता है?" राम ने उत्तर दिया "मैं क्या कहूँ जिधर देखता हूँ। दुःख ही दुख दिखाई देता है। दुख है इसमें कोई सन्देह नहीं है। प्राणी मात्र दुखी हैं। किसी को कोई दुःख है किसी को कोई दुःख है।"

"इस दुःख का कोई न कोई कारण अवश्य होगा। मैं उसे जानना चाहता हूँ। जिसके जान लेने से दुखों से मुक्ति प्राप्त हो और सब सुखी रहें।"

"जिनको हम नहीं चाहते उनका मिलाप दुःख है जिन्हें हम चाहते हैं उनका विछोह दुःख है। भरत हमको प्यारे थे वह नाना के घर को चले गये और मुझे दुखी कर गये। ऐ ऋषि! ऐसा क्यों हुआ? वह अयोध्या में क्यों नहीं रहे। कौनसी शक्ति है जो उन्हें यहां से खींच कर ले गई। वो भी मुझे छोड़ कर नहीं जाना चाहते थे लेकिन चले गये। मुझे उनकी चिन्ता है।"

"मरना दुःख है, जन्मना भी दुःख ही होगा क्यों कि जन्म के साथ मरण लगा हुआ है। जो अन्त में दुःख का कारण है वह आदि में भी दुःख ही होगा। रोग दुःख है, स्वास्थ्य भी अवश्य दुःख ही का रूप होगा। स्वास्थ्य और रोग दोनों के रहने का पात्र यह शरीर ही है। यह शरीर स्वयं दुःख है, यह द्वन्द्व भावनाओं का स्थल है। जहां द्वन्द्व फला है वहां

रात दिन खट पट मची रहती है। फिर कोई इस संसार में सुखी रह कैसे सकता है ?"

"मुझे रात दिन यही चिन्तायें सताती रहती हैं और मैं विद्याओं को भी सीखना नहीं चाहता !"

वशिष्ठ जी बोले—"हे राम ! तुम्हारा कहना सच है। यह संसार दुःख सागर और भवसागर है। जैसे समुद्र में मोती, मूँगे, मछली, कीड़े सब कुछ होते हैं, वैसे ही संसार के दुःख सागर में एक दो तीन बल्कि लाखों और अनगिनत दुःख है और जैसे इस संसार के भवसागर में भव (होना) है, वैसे ही उन दुःखों के भवसागर की दशा है, यहां जो कुछ न हो जाय वह थोड़ा है। अभी कुछ है और अभी कुछ। इसके अंग अङ्ग में परिवर्तन होता है।"

"कभी निर्धन बने हैं हम कभी धनवान होते हैं।
अनादर में कभी अपने कभी सन्मान होते हैं॥
सवेरा दो पहर सायं समय है रात आती है।
कभी रोना कभी हँसना है मान अपमान होते हैं॥
बदलता रहता है संसार उसकी यह प्रकृति है।
कभी विद्या अविद्या ज्ञान और अनुमान होते हैं॥"

"लेकिन तुमने आप कहा है यह द्वंद्व स्थल है दो पना इस जगत् की गति का रूप है। जहां अशान्ति है शान्ति भी वहां ही रहती है। जहां प्राणी ईंधन के समान तापाग्नि से जलते रहते हैं, वहां ठंडक देने वाली झील का शीतल जल भी रहता है। बंधन के साथ मुक्ति भी है, और उलझन के होते हुए उसके सुलझाने की युक्ति भी रहती है।"

राम बोले यह सच है, "महाराज ! मैं इस द्वंन्द्व अवस्था के बंधन, मुक्ति उलझन और उसके सुलझाने की युक्ति को घृणा की दृष्टि से देखता हूँ। मुझे इन दोनों में से एक की भी इच्छा नहीं।"

वशिष्ठ जी छोटे बालक की समझ देखकर चकित हुए, समझ गये कि यह राम निःसन्देह कोई असाधारण हस्ती है, जो मनुष्य योनि में आई हुई है, नहीं तो ऐसा छोटा लड़का कभी ऐसी बातें नहीं कह सकता जिसके कथन में बड़े २ ज्ञानियों की वाणी लड़खड़ाती है।

वशिष्ठ ने पूछा—"तुम चाहते क्या हो ?"

राम ने उत्तर दिया—"क्या कहूं, न कह सकता हूँ, न चुप रह सकता हूँ।"

वशिष्ठ—"तुम चाह और वासना से छुटकारा पाने की इच्छा रखते हो।"

राम—"क्या इच्छा से विमुक्त होने की इच्छा, इच्छा न कहलायगी ?"

वशिष्ठ—"कहने को तो मनुष्य सब कुछ कह सक्ता है लेकिन मैं इच्छा की जड़ काटने की इच्छा को इच्छा नहीं कहता, क्योंकि यह इच्छा किसी इच्छा के पालने की चाह नहीं है, वलिक इच्छा के निर्मूल करने की इच्छा है।"

राम हँसे—"भगवन ! आपके मुँह से जो शब्द निकलते हैं वह सब के सब इच्छा ही इच्छा हैं। और आप फिर भी इच्छा को इच्छा कहना नहीं चाहते।"

वशिष्ठ—"सच हैं मन के मन्तव्य प्रकट करने के लिए इच्छा शब्द से बढ़कर और शब्द नहीं मिलता, लेकिन तुम मेरे अभिप्राय को समझते हो ?"

राम—"हां मैं समझता हूँ। आप मुक्ति की इच्छा को इच्छा कहना नहीं चाहते क्योंकि वह इच्छा की जड़ काटने की कुल्हाड़ी है। जब मनुष्य मुक्त हो गया, तब सारी इच्छायें आप ही आप जाती रहती हैं। साबन मैल नहीं है, मैल काटने का मसाला है। साबन लगाने से मैल उतर जाता है और मैल के साथ यह साबन भी जाता रहता है। आप इसी दृष्टि से निरइच्छा की इच्छा को इच्छा नहीं कहना चाहते।"

वशिष्ठ—"राम तुम देखने में बालक हो लेकिन ज्ञानियों में ज्ञानी हो। तुम्हारी डाढ़ी तुम्हारे पेट में है। जिस बात को मैं स्पष्ट रीति से नहीं कह सक्ता था। तुमने उसे माझा देकर निर्मल कर दिया, मेरे कहने का मन्तव्य यही था।"

राम—"तो मैं इस मुक्ति की इच्छा की भी इच्छा नहीं रखता। यह भी जंजाल और माया जाल है।"

वशिष्ठ—"क्यों ?"

राम—"क्योंकि मुक्ति की इच्छा उपाय है, उपाय

में साधन है, साधन कष्ट है, कष्ट को मैं नहीं चाहता।"

वशिष्ठ—"आपकी बातें विचित्र होती हैं जो कुछ आप कहते हो वह सब का सब सच है। मैं आपकी बातों का उत्तर देने में असमर्थ हूँ। आपका मस्तिष्क बहुत शुद्ध है और अंतःकरण महानिर्मल है। मेरी यह दशा नहीं है, मैं बड़ा भाग्य वाला हूँ, कि आप मेरे होते हुए प्रकट हुए और मैंने आपका दर्शन पा लिया। लाया था आपको पढ़ाने के लिये, और आप मुझे पढ़ाने लग गये। आप अवतारक पुरुष और ब्रह्म के अवतार हो।

राम मुस्कराये—अरुन्धती वशिष्ठ की पत्नि भी मुस्कराई और ऋषि राम की बुद्धिमानी देख कर चकित हुए।

चौथा समुल्लास

राम का वैराग लगातार

राम वशिष्ठ के घर में रहे—दशरथ के पास नहीं गये, अरुन्धती उनकी सेवा और सुश्रूषा करती रही। जिसकी उन्हें आवश्यकता नहीं थी, वह उदासीन थे। स्त्री और पुरुष दोनों ने उनके मन बहलाने के अनेक उपाय किये, उनका मन नहीं बहला, और वह चुपचाप अकेले एक जगह में रह कर विचार निमग्न हो रहे।

वशिष्ठ ने दशरथ के पास जाकर कहा—"राम को मैं शिक्षा नहीं दे सकता। वह गुरुओं के गुरु हैं। अपनी बातों से वह मुझे निरुत्तर कर देते हैं। मेरी बुद्धि काम नहीं देती।"

दशरथ ने राम को बुलाया—यह दंड प्रणाम करके बाप के पास बैठ गये। कौशल्या आई, उसने इनका माथा चूमा, और गोद में बिठा लिया। अरुन्धती भी राम के साथ आ गई थी।

दशरथ ने कहा—"राम! तुम में भरत का प्रेम बहुत है, उनके काश्मीर चले जाने से दुखी हो। कहो तो कोई जाये, भरत को बुला लाये, लेकिन वह अभी रास्ते ही में होगें। अपने नाना के पास भी न पहुँचे होंगे। मुझे संकोच भी होता है कि वह कैसे झट पट चले आवेंगे। मैं इतनी शीघ्रता के साथ उन्हें कैसे बुलाऊँ?"

राम—"पिताजी! आप सच कहते हैं मुझमें भरत का प्रेम है; उनके चले जाने से मैं दुखी हुआ। अब मुझे न दुःख है न सुख है। वह आनन्द से अपने नाना के पास रहेँ। भरत प्रेम की मूर्त्ति हैं। नाना जी उनको देखकर सुखी होंगे। मैं स्वार्थ वश होकर यह नहीँ चाहता कि उनके सुख में विघ्न पड़े।"

दशरथ—"फिर तुम क्या चाहते हो"?

राम—चाह नहीं चिंता नहीं, चाह दुःख की खान।
चाह किया चिंता भई, उपजा दुःख महान॥
चाह मिटी चिंता गई, मनुआ बे परवाह।
जिसे किसी की चाह नहिं, वह शाहों का शाह॥

कौशल्या—चल बेटे! मेरे साथ चल! तू मुझे प्यारा है मेरी आंखों का तारा है, मैं तेरे बिना नहीं रह सकती। वशिष्ठ जी तुझे मुझसे छीन ले गये थे। मैं तेरे बाप की आज्ञा भङ्ग नहीं करती। क्या करती चुप हो रही। अब मैं तुझे आंखों की ओट नहीं करना चाहती। तू मेरा बेटा और मेरे कलेजे का टुकड़ा है। तुझको देखकर मेरी आंखों को ठंडक मिलती है और मेरी छाती शीतल होजाती है। राम ने माता के पांवोँ में अपना सर झुका दिया, और उसने उन्हें छाती से लगा लिया।

दशरथ और वशिष्ठ और अरुन्धती सब के सब सहमत थे कौशल्या उठीं। राम का हाथ पकड़ कर अपने महल में ले गईं। लक्ष्मण तो उनके साथ रहते ही थे, वह भी चले गये।

दशरथ और वशिष्ठ और अरुन्धती तीनों ने समझा कि बच्चे के लिए माता का प्यार सब से बढ़

पदार्थ है, राम उसके पास रहकर अपने वैराग को भूल जायेंगे।

कौशल्या दोनों लड़कों को घर लाई, न्हलाया, धुलाया, माथे पर चन्दन लगाया, देवी देवता की पूजा की, और राम लक्ष्मण को खिलाया-पिलाया, संतुष्ट किया और खाट पर सुला दिया।

लेकिन राम में गहरा वैराग था। माता का प्रेम भी उसे नहीं दबा सका। खेलना कूदना सब छूट गया। वह चुप चाप बैठे हुए बिसूरते रहते थे। उनके हृदय में कैसे-कैसे और क्या-क्या विचार उत्पन्न होते थे। इसका किसको पता है माता ने बहुत कुछ प्रयत्न और परिश्रम किया कि उनका मन बहल जाये लेकिन उसे बहलना नहीं था, नहीं बहला। यह दुखी हुई, अपने भाव को छुपा रक्खा कि राम पर उसका प्रभाव न पड़े।

कई दिन इस प्रकार व्यतीत हुए, माता ने एक दिन रात के समय विवश होकर उनसे पूछा, "बेटे! तू क्या चाहता है?"

राम बोले—"मैं क्या चाहूँ? कुछ नहीं। मेरे चाहने से क्या होगा? देख ऊपर चांद चमक रहा है, मैं उसे लेना चाहता हूँ। क्या मेरा नन्हा हाथ उसतक पहुँच सकेगा! न हाथ वहां तक पहुँचेगा न वह चमकीली गेंद मेरे हाथ में आयेगी। इसलिए मेरा चाहना और न चाहना बराबर है।"

कौशल्या—"उपाय से और साधन से सब कुछ सम्भव है।"

राम—"अच्छा! तू मेरे लिए इस चांद को पकड़ दे।"

कौशल्या उठी—भीतर कमरे में गई, दो चमकीले दर्पण उठा लाई, एक राम के और दूसरा लक्ष्मण के हाथ में रख दिया। कहने लगी, अब देखो ऊपर का चांद नीचे दर्पण में उतर आया कि नहीं? मनुष्य उपाय से सब कुछ कर सकता है। कोई काम ऐसा नहीं है जो मनुष्य न कर सकेगा। हां साहस और पुरुषार्थ युक्ति और यत्न चाहिए।

राम और लक्ष्मण दोनों ने दर्पण को देखा, सच मुच उनके भीतर चांद चमक दमक रहा था। राम प्रसन्न हुए और माता की युक्ति की प्रशंसा करने लगे।

कौशल्या बोली—"बेटे! तू दुखी और उदास क्यों रहता है? मनुष्य संसार में दुखी होने नहीं आया"।

"राम—फिर मनुष्य किस लिए आया है?"

कौशल्या—"सुखी रहने के लिए।"

राम ने कौशल्या के गालों को नन्हे २ हाथों से थपथपाते हुए हँस कर कहा। "चुप माई चुप! कोई सुन पावेगा तो कहेगा कि राम की माता बावली है। दुःख के विना सुख कहां होता है? जो सुख की इच्छा करेगा उसे अवश्य दुःखी होना पड़ेगा। सुख दुःख साथ २ रहते हैं यह जगत् द्वन्द्व स्थान है, वशिष्ठ जी ने कल यही बात मुझ से कही थी। दिन के साथ रात्रि; अमृत के साथ हलाहल, जीवन के साथ मृत्यु लगे हुए हैं। तूने आकाश मंडल से चांद को नीचे बुला लिया। क्या वह आगया? चांद तो नहीं उतरा, हां उसकी छाया निःसंदेह दर्पण में उतरी। छाया को लेकर मैं क्या करता, तू ने मेरे मन बहलाने का उपाय सोचा, तेरी युक्ति को देखकर मैं प्रसन्न तो हो गया। थोड़ी देर के लिए मेरी उदासी जाती रही अब फिर भी जैसे का तैसा हूँ।"

कौशल्या डरी "यह लड़का है या कोई बड़ा ज्ञानी है!" कहने लगी—"राम! जगत् में हर बात की सम्भावना है मनुष्य ज्ञान को पाकर सुख को भोगता और दुःख से बचता रहता है।"

राम—"माई! यह ज्ञान क्या है?"

कौशल्या—"समझ बूझ। सोच विचार, देख भाल, जांच परताल! इन्हीं बातों को ज्ञान कहते हैं, इनके अतिरिक्त और ज्ञान क्या होगा?"

राम—दृष्टान्त देकर मुझे समझाओ।

कौशल्या—"ज्ञानी जानता है कि मछली का मांस स्वादिष्ट होता है और उसका कांटा बुरा होता है। ज्ञानी मछली तो खा लेता है और कांटे निकाल कर फेंक देता है। मधु मीठा, मक्खी का डंस बुरा! मनुष्य उपाय से मधु को लेकर पी जाता है और

मक्खी के डंस से बच रहता है। यह बात ज्ञान से सम्भव है।

राम—अच्छा! एक बात समझादे।

कौशल्या—कह तू क्या कहता है?

राम—समझ बूझ, सोच विचार, ज्ञान, ध्यान, इत्यादि सब साधन हैं, साधन में दुःख होता है कि नहीं होता?

कौशल्या—आरम्भ में दुःख अवश्य होता है।

राम—जब आदि में दुःख है तो मध्य में दुःख होगा और अन्त में भी दुख से रहित न होगा। इसलिए मैं तेरे ज्ञान को भी दुःख ही समझता हूँ वह भी दुःख रूप ही है। मैंने इस पर भली भांति विचार कर लिया। वशिष्ठ जी से मेरा वार्तालाप हुआ। मैं इस संसार को दुःख रूप ही प्रतीत करता हूँ।

जितने तन धारी हैं रहते हैं दुखी।
एक को भी मैं नहीं पाता सुखी॥
है दुखी राजा दुखारी है प्रजा।
दुःख का सागर दुख से रहता है भरा॥
जन्मना दुख है तो मरना दुःख है।
डूबना दुख है तो तरना दुःख॥
साधना दुख यत्न दुख व्योहार दुःख।
क्या कहूँ माता! ये है संसार दुःख॥
फूल मुरझाता है खिल कर देख तू।
मित्र दुख पाता है मिल कर देख तू॥

कौशल्या डर गई—चुप राम चुप! तुमको किसने ये शिक्षा दी।

राम—तूने मुझे यह शिक्षा दी।

कौशल्या—यह झूठ है। मैंने कभी आज तक तुझे यह नहीं कहा कि संसार दुःख है।

राम मुस्कराये—मैंने तेरे पेट में रहकर इस पाठ का पठन किया है तेरे संतति नहीं थी दुखी थी। साधन किया, उपाय किया, यज्ञ रचा, इसको बुलाया, उसको बुलाया, यह सब दुःख ही तो था, मैं तेरे पेट में आया नौ महीने मेरा बोझ पेट के भीतर लिये फिरी, यह दुःख था कि सुख था! मैं उत्पन्न हुआ। तेरी छाती का लहू चूंस कर पिया। भरत जी नाना के घर चले गये। मैं उदास होगया। पिता जी को क्लेश हुआ, गुरु जी मुझे अपने घर लेगये। तू आप समझले, मेरा वियोग तेरे लिए दुःख था कि सुख था?

घर में दुख है घर के बाहर भी है दुःख,।
गाय दुख और बन का नाहर भी है दुःख॥
द्रव्य दुख का रूप है इष्टी में दुःख।
जगत के व्योहार और सृष्टि में दुःख॥
दुख में दुख है, दुख में दुःख है हर घड़ी।
देखता हूँ मूरती दुःख की खड़ी॥
आगे पीछे दुःख है और दायें है दुःख।
नीचे ऊपर दुःख है और बायें है दुःख॥
दुख है क्रोध और लोभ और है काम दुःख।
रूप दुख है और यहाँ है नाम दुःख॥

कौशल्या ने राम की बातें सुनी, सहमगई, उनके गोद में बिठा कर प्यार करने लगी। चल घूम फिर खेल कूद! यह क्या है दुःख का हर समय विचार क्या करना! जब दुख और सुख दोनों ही साथ-साथ रहें तो फिर केवल दुख ही का चिन्तन क्यों किया जावे, सुख का चिन्तन क्यों न हो? नर शरीर सुर को भी दुर्लभ है। ऐसा क्यों कहा गया। इसका विचार होना चाहिए।

राम—तूने इस समय सार्थक बात कही है। ऐसा ही करूँगा और कौशल्या ने माता की ममता और प्यार के माया जाल से उस समय राम को फुसला तो लिया, काम काज और खाने पिलाने में लगा लिया लेकिन यह केवल थोड़े समय की बात थी।

पाँचवाँ समुल्लास

राम और वशिष्ठ का सम्वाद

दो चार दिन के पीछे राम और लक्ष्मण दोनों गुरु के घर गये वह पूजा पाठ में लगे थे। अरुन्धतीने आसन दिया, बिठाया, जब वशिष्ठ जी पूजा पाठ से निश्चित हुए, बाहर आकर राम से मिले, कुशल पूछी।

राम ने कहा "कुशलाई कहीं होगी तो वह आप के पवित्र चरणों में होगी।

सम्भव है कि वह आप के चरण कमल की छाया ही होगी। नहीं तो—

कुशल कुशल ही पूछते, जग में रहा न कोय।
जरा मरी ना भय मरा, कुशल कहाँ से होय॥
पानी का है बुद बुदा, इस मानुष को गात।
देखत ही छिप जायेंगे, ज्यों तारा परभात॥

वशिष्ठ—इस समय आप कैसे पधारे?

राम—माता जी ने कहा "नर शरीर सुर को भी दुर्लभ" यह बात मेरी समझ में नहीं आई। आपके पास समझने आया हूँ। वशिष्ठ ने राम को गहरी दृष्टि से देखकर कहा। राम! नर केवल तुम हो, यह जो मनुष्याकार पुरुष संसार में दिखाई देते हैं, यह मनुष्य नहीं है। तुम नर और नरश्रेष्ठ हो, तुम्हारी उत्तमता और बड़ाई का कोई भी नर प्राणी मुझे संसार में दिखाई नहीं देता। तुम नर हो और नर होने से तुम को मैं नारायण का रूप समझता हूँ।"

राम—यह तो आप मुझे सन्मान दे रहे हो।

वशिष्ठ—नहीं राम! नहीं, मैं जो कह रहा हूँ, सच्ची बात कह रहा हूँ। लगाव-लपेट का काम नहीं है। तुम्हारे जैसा शरीर किसी देवी देवता को प्राप्त नहीं है। वह ऐसी देह के लिए तरसते हैं और यह उन्हें नहीं मिलता।

राम—संसार मनुष्यों से भरा हुआ है इनको आप क्या कहते हैं?

वशिष्ठ—इनमें से कोई भेड़ है, कोई बकरी है, कोई कुत्ता है, कोई भेड़िया, लोमड़ी, और गीदड़ है। नाक कान और आंख इत्यादि चाहे मनुष्य जैसे हों, लेकिन यह मनुष्य कभी नहीं है। इनकी प्रकृति पर विचार करो। इनका गुण, कर्म और स्वभाव आप बता देगें कि यह कौन हैं, और कैसी योनि में है। जिसमें क्रोध की अधिकता देखो और निरा स्वार्थी पाओ, समझ लो वह कुत्ता, बिल्ली, भेड़िया और सिंह है और फाड़ खाने वाला पशु है। जिसमें लोभ की विशेषता का गुण पाओ उसे मछली, मक्खी आदि के समान लोभी पशु जानो। जो बहुत ठकुर सुहाती बात कहता है और हां में हां मिलाता रहता है वह लोमड़ी है। इत्यादि इत्यादि! मनुष्य लाखों में कोई एक ही होता है।

राम—यह बात मेरी समझ में आगई। अब यह बतलाइये कि मनुष्य आप किसे कहते हैं।

वशिष्ठ—(१) जिसमें मनन शक्ति की अधिकता है वह मनुष्य है (२) जो किसी के आसरे नहीं रहता बल्कि सब जिसके आसरे रहते हैं, वह मनुष्य है। (३) जिसमें किसी बातकी कमी नहीं है जो अपने ऊपर निर्भर रहता है और सब प्रकार पूर्ण होता है, ऐ राम! वह मनुष्य है और वह इस संसार में सारे देवी देवताओं से बढ़ कर कहलाता है। इससे उत्तम जन्म किसी का भी नहीं हैं और देवी देवता सब इसके अधीन रहते हैं।

राम—आपने बहुत बड़ी बात कही है। देवी देवता आप किन को कहते हैं?

वशिष्ठ—देव शब्द संस्कृत धातु दिव्य (खेल) से निकला है जिनका काम केवल खेलने का है वह देवता कहलाते हैं। वह इस प्रकृतिक जगतमें प्रकृति मात्र की दिव्य शक्तियां हैं, जो चमकती दमकती रहती हैं और प्रकाश स्वरूप होती है, यह लाखों और करोड़ों प्रकारकी होती हैं। यह जगत् पुरुष प्रकृति के विलास का मंडल है। इनमें जो दिव्य शक्ति पुरुष लिंग हैं वह देवता कहलाते हैं और जो स्त्री लिंग हैं वह उनकी देवियां हैं।

राम—इनके नाम और रूप।

वशिष्ठ—इसमें सन्देह नहीं है कि यह जगत नाम और रूप वाला है। जिसका नाम है, उसका रूप भी है, लेकिन इनकी कोटियां इतनी अधिक हैं कि इनका सूचीपत्र नहीं बन सकता। दृष्टान्त की दृष्टि से कुछ सुनो।

नक्षत्र देवता अर्थात् दिव्य शक्ति वाले हैं। रवि चन्द्र, मंगल, बुद्ध, बृहस्पति, शुक्र, और शनि देवता हैं।

उनका नाम और रूप दोनों हैं।

चित्र नं० १
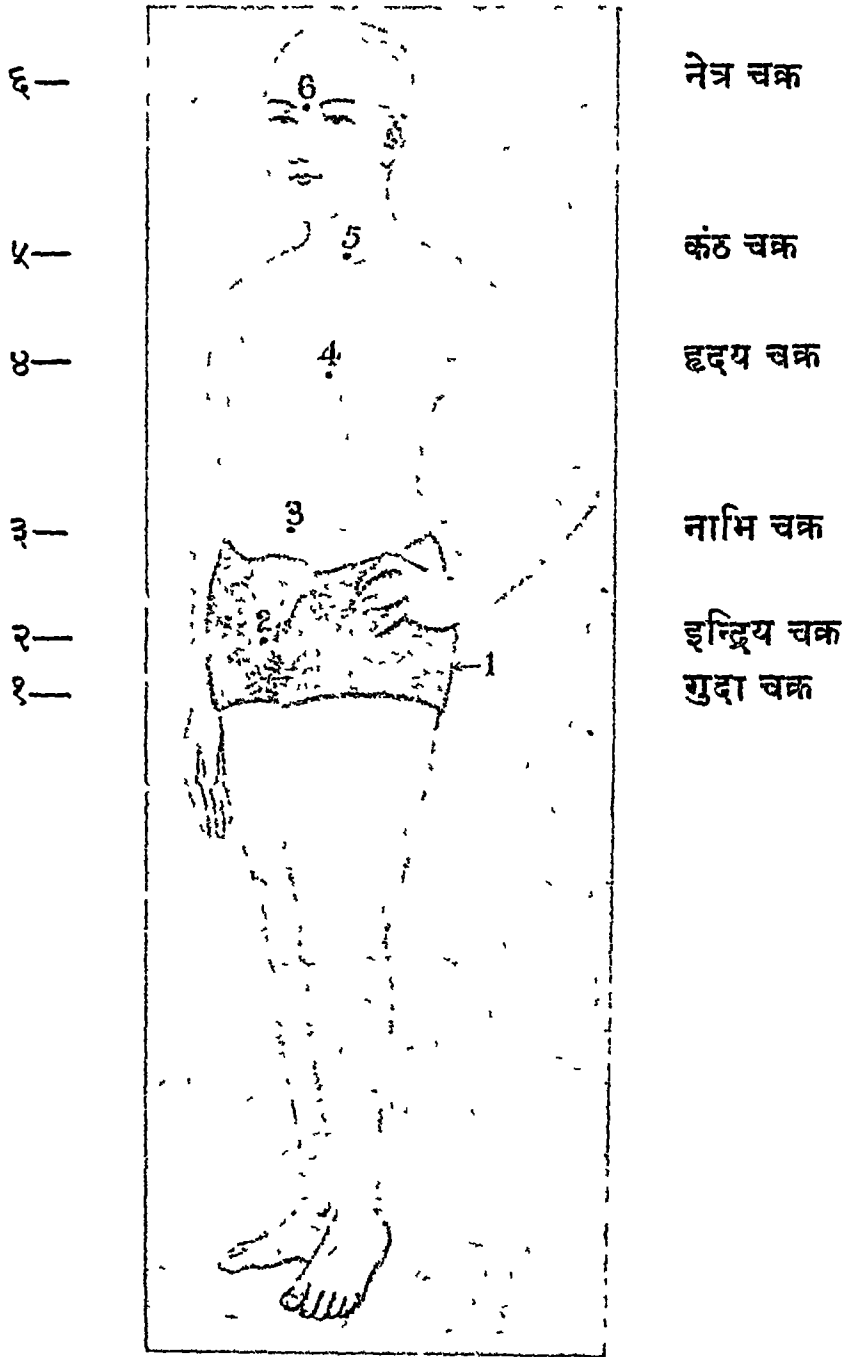
(१) गुदाचक्र (मल की जगह) में मिट्टी (पृथ्वी तत्त्व) रहता है।
(२) इन्द्रियचक्र (मूत्र की जगह) में पानी (जल तत्त्व) रहता है।
(३) नाभिचक्र (टूड़ी की जगह) में पेट की आग (अग्नि) रहती है।
(४) हृदयचक्र (दोनों छातियों के बीच की जगह) में वायु (वायु तत्त्व) रहता है।
(५) कंठचक्र (गले की जगह) में आकाश (आकाश तत्त्व) रहता है।
(६) नेत्रचक्र (दोनों भौओं के बीच की जगह) में मन (मन का तत्त्व) रहता है।

तत्व अर्थात् भूत दिव्य शक्ति वाले देवता हैं और वह आकाश, वायु, अग्नि, जल, और पृथ्वी हैं।

उनके भी नाम और रूप दोनों हैं।

मनुष्य शरीर से तीन प्रकार और तेतीस कोटि के देवता हैं।

आठ वसु, बारह आदित्य, शेष ग्यारह इन्द्रियां जो रुद्र कहलाती हैं (पांच कर्मेन्द्रियां पांच ज्ञानेन्द्रियां और ग्यारहवा मन)।

आत्मा और प्रधान यह सब देवता हैं।

इनके भी नाम और रूप दोनों हैं?

इत्यादि, इत्यादि, इत्यादि।

राम बस! बहुत है। मैं समझ गया, विशेष कहने की आवश्यकता नहीं रही। अब यह कहिये कि इनसे मनुष्य में क्या विशेषता है जिस के कारण यह सब में श्रेष्ठ है?

वशिष्ठ—"(१) मनुष्य पूर्ण है (२) ब्रह्म के समान इसमें सारी सृष्टि बसती है (३) यह सब के सब अवच्छिन्न (पृथक् पृथक्) हैं और मनुष्य ऐसा नहीं है (४) इनकी गति नियम बद्ध है। मनुष्य की गति नियम बद्ध नहीं है। वह ऊंचे से नीचे तक जहां चाहे जा सकता है और इन सब को अपने बशीभूत कर सकता है (५) यह सब के सब बद्ध हैं। इनमें से किसी को मुक्ति नहीं है और न इनके यहां बंधन और मुक्ति का प्रश्न उठाया जा सकता है। मनुष्य चाहे तो बद्ध हो और चाहे मुक्त हो रहे। यह मनुष्य और देवताओं में भेद है।"

राम—"मनुष्य की इस दृष्टि से बड़ी महिमा है। आपने कहा कि ब्रह्म के समान इस मनुष्य में सृष्टि बसती है, इस कथन में क्या रहस्य है?"

वशिष्ठ—"जैसे ब्रह्म सारे जगत, तत्वों, देवता, जीव, जन्तु सब का निवास स्थान है सब, उसमें रहते, जीते, मरते, खिपते हैं। इस मनुष्य के शरीर के भीतर यह सब के सब भरे पड़े है। उसकी शिखा से लेकर नस नाड़ी के सूत्रों तक सृष्टि का प्रवन्ध है। उसके रक्त मास, धातु, कफ, पित्त और वायु इत्यादि में सब जगह भांति-भांति की बस्ती बसती है। जो इस मनुष्य के पिंडांड में है वही ब्रह्म के ब्रह्मांड में है।" "पिंडे सौ ..."

राम—आप कहते तो ठीक हैं। मैं बालक छोटी बुद्धि का हूँ। इसलिए बार-बार प्रश्न करता हूँ। क्षमा कीजिएगा। अब यह बताइए कि मनुष्य के पिंड में ब्रह्मांड के समान तत्वों के कौन २ से स्थान हैं?

वशिष्ठ—"तत्वों के स्थान इसके स्थूल देह के अन्तर्गत हैं।" आप नं० १ चित्र को देखिए।

इस प्रकार पिंड में तत्वों के रहने का प्रबन्ध है। ऐसा ही प्रबन्ध और इसी रूप और आकार में तत्वों के रहने का भी प्रबन्ध है। जैसे मनुष्य का पिंड वैसा ही ब्रह्म का ब्रह्मांड है।

इसके आगे मस्तिष्क में सूक्ष्म तत्व और शिर में कारण तत्वों का निवास स्थान है। जो वहां है, वही यहां है, जो यहां है वही वहां है। दोनों में किंचित मात्र भेद नहीं है। भेद है भी तो केवल तोल और माप का है। समझने बूझने और समझाने बुझाने के भाव से जीव और ब्रह्म का भेद माना जाता है। बात चीत जब होगी, दो के प्रसङ्ग में होगी। जहां एक ही एक हैं, वहां कौन किसको कहे, किससे कहे, किसको सुनें, किसकी सुने, किसको सूँघे, किससे सूँघे, किसको चखे, और किससे चखे। ब्रह्म का आदर्श सामने रखकर जीव उस तक पहुँचने का साधन करता है। उसे सर्वज्ञ मानकर अपने को अल्पज्ञ मानता है। नहीं तो बुंद सिन्धु से पृथक् कब है।"

राम—पिंड ब्रह्मांड के स्थूल तत्वों या महाभूतों का विषय तो मैंने समझ लिया। संशय और सन्देह जाते रहे। अनुमान ने दृढ़ होकर निश्चय करा दिया। अब यह बतलाइये कि देवता क्या हैं? और इस पिंड और ब्रह्मांड में कहां-कहां रहते हैं?

वशिष्ठ—"सुनो राम! देवता दिव्य शक्तियों को कहते हैं जो पिंड और ब्रह्मांड में खेलते रहते हैं।"

"ऐ राम! सृष्टि क्रम में तीन चार बातें होती हैं। तत्व, तत्वों का मण्डल, अधिष्ठाता, नाम, रूप और लीला इत्यादि। मैं तुमसे केवल संक्षेप मात्र वर्णन करता हूँ। विस्तार में फैलाव होता है, प्रसंग बढ़ जाता है। समझाने बुझाने में समय अधिक लगता है।

पृथ्वी तत्व के अधिष्ठाता देवता का नाम गणेश है, जो गणों का अर्थात् इन्द्रियों का पति है। इन्द्रियां इसी

के सहारे रहती हैं। इसका मण्डल, केन्द्र या स्थान गुदा चक्र है जो मूलाधार कहलाता है, यह मिट्टी को निकाला करता है। काम की मिट्टी को रख लेता है बे काम को फेंक देता है यह इसकी लीला है।

जल तत्व के अधिष्ठाता के देवता का नाम ब्रह्मा है। जो रचना के स्थूल शरीरों को गढ़ता और बनाता है, इसका काम कुम्हार के समान है, काम के जल से यह शरीर बनाता और बेकाम जल को निकालता रहता है, इसके रहने का स्थान इन्द्रिय चक्र (मूत्र केन्द्र) है। अग्नि तत्व के अधिष्ठाता देवता का नाम विष्णु है, जो सारे पिंड और ब्रह्मांड के जीवों का पालन पोषण करता है। इसके रहने का मण्डल नाभि है। खाना नाभि में जाता है। उससे लहू धातु चर्बी आदि बनती है और यह अहार के रूप में एड़ी से लेकर चोटी तक सबको देता और पहुँचाता रहता है, यह उत्तम अग्नि को ले लेता है, जो निरर्थक होती है उसे बाहर फेंक देता है।

वायु तत्व के अधिष्ठाता देवता का नाम कल्याण रूप शिव है, यह हृदय के स्थान में रहता है, इसका काम संहार, और समता, समानता है। हृदय में फेफड़े रहते हैं। प्राण का पंखा चलता रहता है अशुद्ध वायु को निकालता और शुद्ध को ले लेता है। यह काम सांस के रूप में हुआ करता है। आकाश तत्व के अधिष्ठाता देवता का नाम दुर्गा आदि शक्ति आद्या है जो कंठ में रहती है, इसका काम नीचे के तत्वों को अवकाश और सहारा देना है, शुद्ध आकाश को लेना और अशुद्ध को निकालना इस दुर्गा देवी का कर्त्तव्य है। इत्यादि, इत्यादि, इत्यादि।

"यह स्थूल तत्वों के स्थूल देवता इन पांच चक्रों में रहते हैं जैसे पिंड में वैसे ही ब्रह्मांड में, आगे ऊपर के मण्डलों में इनके सूक्ष्म और कारण रूप हैं कहो तो उनका भी वर्णन कर चलूँ।"

राम—समझने बूझने की यह आवश्यकता से अधिक है, मैंने इसे समझ लिया।

—:o:—

छठा समुल्लास

राम और वशिष्ठ का संवाद लगातार।

राम ने कहा—आपने अपनी शिक्षा से मुझे कृतार्थ कर दिया। मैं आपका बहुत कृतज्ञ हूँ। यह तो मैं समझ गया कि देवता दिव्य शक्तियां हैं, जो पिंड और ब्रह्मांड दोनों में रहती है। यह परिच्छिन्न और अविच्छिन्न हैं। मनुष्य में विशेषता है, यह मण्डलीक और बद्ध है, मनुष्य बद्ध और मुक्त दोनों है, वह इन दिव्य शक्तियों से काम लेता है, ले सकता है। यह उसके हथियार हैं लेकिन यह तो बताइए कि यह इस रचना में कैसे प्रकट होती हैं और क्या यह निर्द्वन्द्व हैं और केवल मनुष्य और ब्रह्म की अधीनता में हैं।

वशिष्ठ ने उत्तर दिया—ऐ राम! द्वन्द्व स्थल में रह कर कोई भी निर्द्वन्द्व नहीं है। पुरुष और प्रकृति के विलास मण्डल में द्वन्द्वपना सब में है। निर्द्वन्द्वपना कहीं भी नहीं है। देश, काल और वस्तु में कोई भी कभी निर्द्वन्द्व नहीं है। इन देवताओं (खेलने वाली दिव्य शक्तियों) के भी विरोधी हैं।

राम—इनके विरोधी कौन हैं और उनका नाम क्या है?

वशिष्ठ—इनके विरोधी असुर कहलाते हैं और यही उनका नाम भी है। देवता सुर हैं और अदेव विरोधी होने से असुर हैं, और वह बराबर रात दिन हाथापाई और लड़ाई भिड़ाई में लगे रहते हैं और इस रचना का प्रबन्ध इनकी परस्पर लड़ाई से होता है और यही कारण है कि इस जगत् को देवासुर संग्राम कहते हैं। अपनी दशा को देखो- शांति में अशांति, सुख में दुःख, चित्त की निश्चलता में चंचलता है। यही देवासुर संग्राम है।

राम—सुर और असुर में भेद क्या है?

वशिष्ठ—सुर संस्कृत धातु 'शुर' से निकला

इसका अर्थ है प्रकाश में आना, प्रकाशित होना। (शु) समर्थता-बल और पौरुष को प्राप्त करना और असुर इसके विपरीत है, वह अन्धकार में रहना चाहते हैं, देवताओं को बलवान नहीं होने देते। और पग २ में बाधा और रुकावट बनते हैं। संस्कृत 'अ' (नहीं) और 'सुर'-(देवता) जो देवता नहीं है वह असुर है।

राम—यह मैंने समझ लिया। इनमें बड़ा कौन है और और छोटा कौन है ?

वशिष्ठ—असुर बड़े और सुर छोटे हैं, दोनों भाई २ हैं। पहले असुर उत्पन्न हुए, इसलिए वह बड़े भाई हैं। फिर पीछे सुर उत्पन्न हुए, इसलिए वह छोटे भाई हैं।

राम—यह तो आप विचित्र बात कहते हैं जिसे सुनकर आश्चर्य होता है।

वशिष्ठ—इसमें आश्चर्य की कोई बात नहीं है। सृष्टि क्रम का प्रबन्ध ही ऐसा है।

राम—इसे पुष्ट कर दीजिए तब मैं समझूँ।

वशिष्ठ—"सुनो राम! प्रसंग दो प्रकार पर चलता है, कथा अलंकार में, या यथार्थ रीति से। आपको किस से रुचि है ? मैं अपने वर्णन में उसी का प्रबन्ध करूं।"

राम—"साधारण प्राणी को सूक्ष्म विषय की समझ नहीं होती। प्रतिमा उन्हीं के समझाने के लिए बनाई जाती है। अलंकार भी मध्य श्रेणी के मनुष्यों के लिए है। मुझे समझ बूझ है, आप सरल वाणी में कहिये, मैं समझ लूँगा।

वशिष्ठ—सृष्टि से पहले सत् को असत् ने घेर रक्खा था। सत् दुबा हुआ नीचे था, और असत् का कोष उस पर चढ़ा हुआ था, और सत् भी असत् रूप ही बना हुआ था।

सत् कहते हैं प्रकट या प्रकाश में आये हुए जीवन को। और असत् कहते हैं अप्रकट और अप्रकाश में रहती हुई दशा को। इसमें क्षोभ हुआ। उस पर जो असत् का झोल पड़ा हुआ था, वह हटा, यह पहली अवस्था थी। इसके पीछे प्रकाश आया। दूसरी अवस्था थी।

असत् या अंधकार से जो प्राणी उत्पन्न हुए-वह असुर कहलाये और पहले उत्पन्न होने से वह बड़े कहलाते हैं। उनके पीछे जो प्रकाश वाले दिव्य प्राणी निकले वह सुर कहलाये और पीछे उत्पन्न होने के कारण वह छोटे कहलाये।

प्राणी दोनों ही हैं। प्राण के बिना कोई जीव जन्तु या सृष्टि का कोई भी पदार्थ रह नहीं सकता इसलिए वह प्राणी कहलाते हैं। यहां जितने अणु या प्रमाणु हैं सब के सब सांस लेते हैं, सांस प्राण है, इसलिए यह सब के सब प्राणी हैं।

उनके बड़े भाई और छोटे भाई कहलाने का यह रिश्ता है।

राम—सुर पहिले क्यों नहीं प्रकट हुए ?

वशिष्ठ—सृष्टि क्रम का नियम ही ऐसा है, उस पर क्यों और किस लिए का प्रश्न नहीं उठाया जाता।

तुम देखो जब दिया बालते हो, तो पहले धुँआ उठकर मकान की छत में जाकर मंडलाकार होता है। धुँआ के पीछे ज्योति प्रकट होती है, और वह सब से अधिक मंडलाकार धुँआ ही की तरफ़ दौड़ती है और अंधकार और ज्योति या सत् और असत् के मेल से यह रचना होने लग जाती है। सत तो सत् और सतोगुण का बीज है और असत् तम और तमोगुण का बीज है। जब इन दोनों का परस्पर मिलाप होता है तब सृष्टि का प्रबन्ध होने लगता है। सत् और तम के मिलाप से जो तीसरी अवस्था या तीसरा गुण प्रकट होता है उसे रज और रजोगुणी कहते हैं। तह सृष्टि रजोगुणी ही है। सत् की अधिकता से प्राणी सतोगुणी और तम की अधिकता से वह तमोगुणी कहलाये, विशेषतः यह जगत् रजोगुणी ही है।

रजोगुण द्वन्द्व है क्योंकि यह रजोगुण सत् और तम का मेल है, जिसमें दोपना हो वह द्वन्द्व है।

असत् सत् को घेरे रहता है, इसलिए असत् (तम) की अधिकता वाले प्राणी सत् या सतोगुण वाले प्राणियों की रुकावट बने रहते हैं। यह स्वाभाविक बात है, सुर और असुर का यह रहस्य है।

राम—यह देवासुर संग्राम सारे जीव जन्तुओं के लिए है या केवल मनुष्य मात्र के लिए है ?

वशिष्ठ—देश, काल, वस्तु सब में देवासुर संग्राम है। यह प्रपंच कहलाता है।

राम—देश और वस्तु में तो यह सम्भावना हो सक्ती है, काल में या अवस्था के प्रसंग में यह कैसे सम्भव है ?

वशिष्ठ—काल में भूत, भविष्य और वर्तमान है, मनुष्य को अवस्था में जाग्रत, स्वप्न, और सुषुप्ति है और सृष्टि के प्रबन्ध में यह उत्पत्ति, स्थिति, और लय है। जब एक अवस्था है तो दूसरी नहीं है। वह क्यों नहीं है ? क्योंकि वह ढकी हुई, रुकी हुई या घिरी हुई है और यह घेरने वाला तत्व असत् या तम है। ऐ राम ! जैसे यह सृष्टि हुई या इसको प्रवाह रूप धार चलती रहती है, वैसे ही हमारे और तुम्हारे जीवन में यह दृश्य रात दिन दिखाई देता है। तुम जागते हो, सोते हो, और सुषुप्ति (गहरी नींद) में जाते हो। जागना सृष्टि और प्रकाश में आना है, सोना और स्वप्न देखना स्थिति है और सुषुप्ति की गहरी में ढक जाना लय की अवस्था है। इस प्रकार प्रपंच का खेल ब्रह्मांड और पिण्ड दोनों में हुआ करता है। जाग्रत में इन्द्रियाँ (देवताओं) का खेल होता है। रुकावटें असुरों की तरफ से होती रहती हैं और सुषुप्ति में (तम) प्रधान होकर सब को अपने भीतर समेट कर ढक लेता है। जगत् की सृष्टि स्थिति और लय की लीला तुम्हारे जाग्रत, स्वप्न और सुषुप्ति में देखी जा सक्ती है और देवासुर संग्राम मचा रहता है।

राम—आज मैंने आपके सग का बहुत लाभ उठाया, देव और असुर का रहस्य बहुत कुछ समझ लिया। कल आकर फिर प्रश्न करूंगा। यह कह कर राम दण्ड प्रणाम करके कौशल्या के पास आये। इनकी उदासी में भी कमी आगई।

सातवाँ समुल्लास

राम, वशिष्ठ का संवाद

नर शरीर सुर को भी दुर्लभ

दूसरे दिवस राम वशिष्ठ के घर पहुँचे, मिले, बैठे और बातचीत करने लगे।

राम बोले—भगवन्! नर शरीर सुर को भी दुर्लभ! यह तो मैंने कुछ २ क्या बहुत कुछ समझ लिया। यह जितने सप्त ऋषि हैं, केवल मन्त्र द्रष्टा और अपने-अपने मण्डल में बद्ध हैं और अपने मण्डल से आगे नहीं बढ़ सकते। मनुष्य के लिए यह बन्धन नहीं है। सप्त ऋषियों में मरीची, अत्रि, अंगिरा, पुलिस्त्य, क्रतु, पुलहा और वशिष्ठ सातों इसी प्रकार के हैं। यही दशा मुनियों और तपस्वियों की है। जो चुपचाप रह कर जन लोक और तप लोक में सृष्टि क्रम की देख भाल करते और इस से मस्त नहीं होते। ध्रुव भी अपनी जगह पर स्थित है। मनुष्य की गति इन सब से न्यारी और ये सबसे श्रेष्ठ है।

वशिष्ठ राम की बुद्धिमानी देखकर दंग रह गये। राम को वह क्या पढ़ाते, लिखाते। थोड़े ही दिनों में इनकी बुद्धि को पख लग गये और वह उड़ने लगे।

वशिष्ठ ने हँसकर पूछा, "राम ! वशिष्ठ ऋषि मैं ही हूँ। क्या आप मुझे भी बद्ध समझते हैं।

राम मुस्कराये—आप मनुष्यों में स्वर्गीय वशिष्ठ ऋषि के समान मन्त्र द्रष्टा पुरोहित और मन्त्री हैं, आपको उसकी उपमा दी गई है, जैसे हम किसी मनुष्य को उसकी पवित्रताई देखकर देवता कहते हैं। वशिष्ठ जी और भी चकित हुए, "राम ! तुम धन्य हो, तुम ब्रह्मस्वरूप और ब्रह्म के अवतार हो।"

राम—"भगवन् ! मनुष्य में जो सबसे बढ़कर विशेषता है वह मुझे समझाइये।"

वशिष्ठ—मुझे जो कहना था मैंने कह दिया। मनुष्य पूर्ण है और पूर्ण भी वह ब्रह्म के समान है। सम्भव है कि उसकी शक्तियां छिपी और दबी हों। उभरने पर वह वैसा ही दृश्य दिखा वेंगी और दिखा-देंगी।

राम—"यह सब मैंने मान लिया क्या इसे आप स्पष्ट भी कर देंगे। इसके जानने की मुझे बड़ी इच्छा है।"

वशिष्ठ—"यौं समझो कि ब्रह्म सूर्य्य के समान है। जो सबका प्रकाशक है मनुष्य उसी के सदृश्य दूसरा सूर्य्य है जो इस ब्रह्म के तेज का जगत् में प्रकाश करता है।"

राम—यह कथन स्पष्ट नहीं है।

वशिष्ठ—"यह सच है। इसका समझना कठिन भी है। चिन्ता नहीं। समझाने का प्रयत्न करूँगा।"

चित्र नं० २ को देखोः—

"ब्रह्म जगत का प्रकाशक है और ब्रह्म के जगत् का प्रकाशक मनुष्य है। ब्रह्म सृष्टि में एकपना द्वन्द्व के साथ अवश्य है, लेकिन वह फिर भी एक ही है, दूसरा उसकी छाया मात्र होती है, मनुष्य उसी एक को सौ प्रकार हज़ार प्रकार और लाख प्रकार पर प्रकट कर देता है और उसी एक पदार्थ को अन-गिनत नाम और रूप देता है।"

१ दृष्टान्त—ईश्वर के जगत् में स्त्री एक वस्तु और स्त्री मात्र है। मनुष्य जगत् में वही स्त्री, नानी, मौसी, माता, बहिन, फूफी, भाभी, भान्जी, बहू, बेटी, माँयीं ताई, चाची, फुआ, इत्यादि नाना प्रकार के नाम और रूप से प्रकट होती है, यह मनुष्य की विचित्रता है।

२ दृष्टान्त—दूध ईश्वर के जगत् में एक है, मनुष्य उसे बदल २ कर दही, पनीर, छाछ, खोया, मलाई, बरफी, पेड़ा, मक्खन, घी, इत्यादि बनाकर कितने नाम रूप दे सकता है।

३ दृष्टान्त—मिट्टी एक तत्त्व मात्र है, मनुष्य ईंट, पत्थर, रोड़ा, कंकड़, हीरा, पन्ना, नीलम, मणि, मानिक, सोना, चांदी, इत्यादि के संग्रह, विभाग, गुणा और भाग करते हुए इनको अदलता बदलता हुआ नाम और रूप दे देता है।

४ दृष्टान्त—पानी एक तत्त्व है। मनुष्य जितनी शक्तियां, भाप, बिजली, इत्यादि की उसमें से निकाल निकाल कर उन्हें बनाता और नये २ रूप और नाम देता है।

इसी प्रकार वायु, अग्नि, आकाश, सब में यह परिवर्त्तन करता और कर सक्ता है और करता रहता है। उलट फेर से यह मनुष्य जगत का विचित्र कर्ता और धर्ता है।

ऐ राम! प्रकृति में इस मनुष्य की सबसे अधिक महिमा और प्रतिष्ठा है और देवी देवता सब इसकी आधीनता में आ जाते हैं।

देख नर को नर के नाम और रूप का कुछ ध्यानकर।
यह स्वयंभू मुनि है इसके भाव का अनुमान कर॥
ज्ञान इसमें ध्यान इसमें इसही में अनुमान है।
इसमें है विज्ञान सबकी जान और महमान है॥
किस भरम में पड़ गया ईश्वर को कब चाहैगा तू।
अन्धा बन कर रूप उसका कैसे पहिचाने गा तू॥
अपने आने को समझ आपे में सारा भेद है।
भेद जब अपना नहीं जाना तो भ्रम और खेद है॥
नर में नारायण है नारायण में नर है जान ले।
भेद इनमें कुछ नहीं जा गुरु से गुरु का ज्ञान ले॥

राम प्रसन्न हुए—आप सच मुच गुरू और उस वशिष्ठ ऋषि के अवतार हैं जो आकाश में मंडलीक हो रहा है।

वशिष्ठ हँसे—और राम! तुम सम्पूर्ण ब्रह्म के अवतार हो।

राम—मैं इसे नहीं जानता और न जानना चाहता हूँ, जानने की विद्या मुझे आपसे प्राप्त हो रही है, इसका ज्ञान हो चला है।

वशिष्ठ—इस मनुष्य की श्रेष्ठता के विषय में और भी कुछ पूछना है या तुम्हें संतोष हो गया?

राम—क्या यह सम्भव है कि यह मनुष्य ब्रह्म के जगत् को अपने अधीन कर सके?

वशिष्ठ—"सृष्टि में तुम्हारा अवतार इसी मन्तव्य से हुआ है, तुम सब कुछ कर सकते हो और कर सकोगे। चन्द्रमा, सूर्य्य और तारे देवताओं को आज्ञा दो कि शान्त होजाओ। और वह शान्त होजायेंगे।"

शन्नो मित्रः शम्वरुणः शन्नो भवत्व र्य्यमा।
शन्नो इन्द्रः बृहस्पतिः शन्नो विष्णु रुरुक्रमः॥

राम—तो आपकी दृष्टि में यह मनुष्य ब्रह्म के समान पूर्ण है इसमें कोई त्रुटि और कोई कमी नहीं है ?

वशिष्ठ—मैं ऐसा ही समझता हूँ। और यह आकाशवाणी इसी मनुष्य की महिमा के विषय में उत्तरी है।

पूर्णमदः, पूर्णमिदं पूर्णात् पूर्णमुदच्यते।
पूर्णस्य, पूर्णमादाय पूर्णमेवा वशिष्यते॥

राम वशिष्ठ सम्वाद

आठवाँ समुल्लास

मनुष्य की गति उलटी है

राम ने पूछा—मनुष्य में औरों के अतिरिक्त और क्या विशेषता है ? जो मनुष्य में है औरों में नहीं है।

"वशिष्ठ ऐ राम ! और सब जीव जन्तु सीधे साधे और साधारण है। मनुष्य की गति उलटी है, यह उलटा है और सबसे विशेष महिमा इसकी यह है कि यह उलटी चाल चलता और चल सकता है" राम ने गुरू की बातों पर विचार किया। कोई बात समझ में नहीं आई,मन में सोचते रहे,जब उसके आशय को नहीं ग्रहण कर सके। तो पूछना पड़ा मैंने इसे नहीं समझा।

वशिष्ठ—यह समझाने से समझ में आती है। बिना समझाये हुए इसका समझ में आना कठिन भी है, तुम उत्तम अधिकारी हो इसलिए यह रहस्य मैं तुमको सहज में साधारण रीति से समझा दूँगा।

चित्र नं० ३ व ४ को देखोः—

इन चित्रों में दो गाछ है। एक साधारण वृक्ष दूसरी मनुष्य की ठठरी जो वृक्ष के आकार की है, इन दोनों की बनावट में कोई भेद नहीं है।

मनुष्य में रक्त है। वृक्ष में अर्क (जल) है। मनुष्य में हड्डी है, वृक्ष में हीर है, मनुष्य में मांस है, वृक्ष में इसका गूदा है। मनुष्यों में चमड़ा है, वृक्ष में उसकी छाल है। जैसे नस नाड़ियों का ताना बाना मनुष्य में है, वैसे ही और उसी रूप का जाल तुमको वृक्ष की जड़ से लेकर उसकी चोटी तक मिलेगा। चाहे जैसे जांच पड़ताल करो। दोनों में समानता प्रतीत होगी।

भेद केवल यह है कि वृक्ष हिलता डोलता नहीं है, स्थाई है। और मनुष्य हिलता, डोलता, चलता फिरता है, स्थाई नहीं है। वृक्ष की जड़ पृथ्वी में गड़ी रहती है और मनुष्य की जड़ उसका शिर है जो आकाश में फहराता रहता है। उसकी जड़ पृथ्वी में है इसकी जड़ आकाश में है।

मनुष्य मुह से खाता और पानी पीता है और उसका खाया पिया हुआ दाना पानी, नस नाड़ियों से होता हुआ ऊपर से नीचे तक पहुँचता है। वृक्ष की जड़ में खाद पानी छोड़ दो वह अपनी जड़ से खाये पियेगा। और ये आहार उसकी जड़ से लेकर पत्ते २ से होता हुआ अन्तिम कोंपल तक पहुँच जावेगा। इस दृष्टि से दोनों का जीवन समान है। मनुष्य जागता, सोता, और सुषुप्ति में जाता है। वृक्ष भी जागता, सोता, और सुषुप्ति में जाता है। वृक्ष भी जागता, सोता और गहरी नींद का आनन्द लेता है। मनुष्य के शरीर को चोट आये, ठेस लगे, कट जाँय, तो लहू बहता है। वृक्ष को काटो, तोड़ो, पत्ते नोचो, पानी बहने लगेगा, चैंप निकलेगी।

मनुष्य को दुःख सुख होता है, वृक्ष को भी दुःख सुख होता है। मनुष्य ब्रह्ममय है, इसमें विरह (बढ़ना) और मनन (सोचना) है। वृक्ष भी ब्रह्ममय है इसमें विरह (बढ़ने) और मनन (सोचने) की शक्ति है।

मनुष्य दुःख से बचने की इच्छा रखता है और यह इच्छा वृक्ष में भी है। लजवन्ती के पौधे को देख कर अनुमान कर लो। दुःख से बचने और सुखी रहने की सम्भावना दोनों में है। मनुष्य निरस्थाई होने के कारण चल फिर कर उपाय करता है। वृक्ष स्थाई होने के कारण केवल स्वभाव से उपाय

करता है। रोग, सोग और भोग भी दोनों ही को होता है।

मनुष्य उठ, बैठ, और लेट सक्ता है। वृक्ष स्थावर (खड़ा रहने वाला) है, वह खड़ा ही रहता है, यह दोनों में भेद है।

वृक्ष में फल फूल आते हैं, फूल झड़ जाते हैं, फल लगते हैं और संतति की वृद्धि होती है। मनुष्य भी यही काम करता है, इसका फूल वीर्यपात और उसका फल गर्भाधान का बच्चा है।

वृक्ष और मनुष्य दोनों ही में नर नारी के जोड़े होते हैं, मनुष्य के जोड़े अलग २ रहते हैं। और वृक्षों में नरनारी बहुधा सम्मिलित अवस्था में रहते हैं।

बहुत बातों में दोनों समान हैं। भेद केवल यह है कि वृक्ष सीधा गाछ है और मनुष्य उलटा गाछ है।

मनुष्य सीधा गाछ होता तो उसकी जड़ भी पृथ्वी में गढ़ी रहती और उसका चित्र नं० ३ जैसा होता।

तुम इसे समझ गये। आगे इस बात का समझना शेष रहा कि मनुष्य कैसा हो गया, उसके लिये यह चित्र नं० ५ चलने फिरने वाले गाछ को देखो।
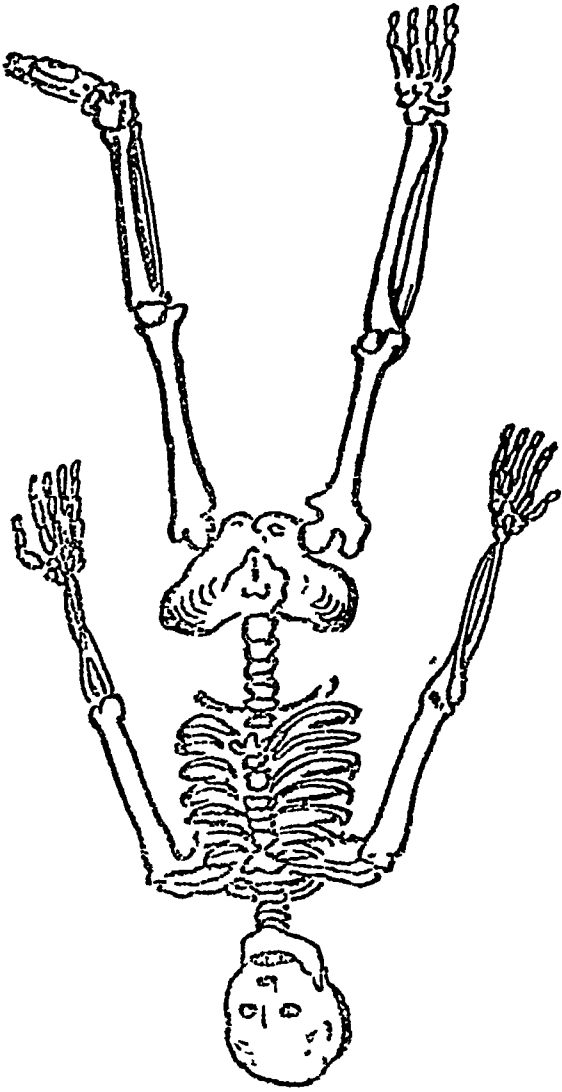
चित्र नं० ४

चित्र नं० ५

राम ने पूछा—मनुष्य उलटा गाछ कैसे बन गया?

वशिष्ठ ने उत्तर दिया—सृष्टि में शिखा से जो सूत्र (धार) उतरे वह सीधे थे। प्रवाह में आकर वह कभी आड़े, तिरछे, बाँके, टेढ़े, गोले, चौड़े, गहरे, उथले, लिंगाकार और अर्घाकार बने और इनके
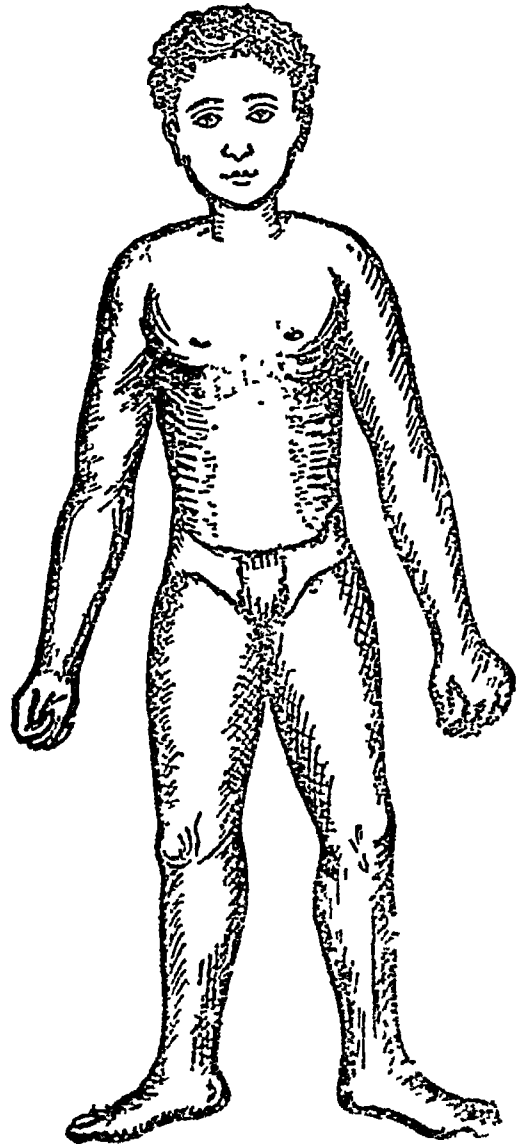
अन्तर्गत जो प्राणी उत्पन्न हुए, उन सब के रूप भी वैसे बनते गये। मनुष्य सब से पीछे प्रकट हुआ। सबके संस्कार और अधिकार इसमें हैं, अन्त में यह उलटा बन गया। लौट फेर हुई, यह प्राकृतिक नियम है और उसे ऐसा बनना भी चाहिए था। इसी एक बात में उसकी सबसे बड़ी महिमा है। अब इस चित्र नं० ५ को देखो।

यह मनुष्य रूपी उलटे गाछ का चित्र है।

राम ने पूछा—इस मनुष्य के उलटे होने और उलटे बनने में उसकी क्या महिमा है ?

वशिष्ठ ने उत्तर दिया—प्रकृति चाहती है कि वह उलटा बने और उलटा रहे। उलटी चाल चले। इसका व्यौहार उलटा हो वह उलटा नाम जपै।

उलटा साधन करै, उसका जप, तप, योग, युक्ति सब की सब उलटी रहै और वह सूत्रों की प्रपंच रचना को छोड़कर शिषा की ओर अपना मुँह मोड़े।

ऐ राम! तुम मेरे उत्तम अधिकारी शिष्य हो। मैं तुम से कोई रहस्य नहीं छुपाता। और न छुपा सक्ता हूँ।

गूढ़ऊ तत्व न साधु दुरावैहिं।
आरत अधिकारी जहां पावैहिं॥

गायत्री मंत्र देते समय मैंने तुम को जगत रचना की सप्त भूमिका बतादी थी। तुमको स्मरण होगा। वह उलटी है, उसका रूप यों बताया और सुनाया गया था।

भू लोक	ॐ भूः	१
भुवर्लोक	ॐ भुवः	२
स्वरलोक	ॐ स्वः	३
मह लोक	ॐ महः	४
जन लोक	ॐ जनः	५
तप लोक	ॐ तपः	६
सत् लोक	ॐ सत्यम्	७

यह मंत्र में उलटी चाल चलने की विधि थी। यह शिखा की तरफ़ लौटने का मंत्र (तरकीब, उपाय, और साधन) था, शिषा से जो सूत्रों की धार उतरी थी वह सीधी इस प्रकार थी।

सत्यलोक	ॐ सत्यम् (१)	शिखा
तपलोक	ॐ तपः (२)	सूत्राधार
जन लोक	ॐ जनः	(३) सूत्राधार सीधी
महःलोक	ॐ महः	(४) सूत्राधार सीधी
स्वर लोक	ॐ स्वः	(५) सूत्राधार सीधी
भुर्वलोक	ॐ भुवः	(६) सूत्राधार सीधी
भू लोक	ॐ भूः	(७) सूत्राधार सीधी

राम ने पूछा—यह उलटी चाल कैसे चली जाती है ?

वशिष्ठ ने उत्तर दिया—यह मैंने तुमको दीक्षा के समय बता दिया था। यह रहस्य है। जो गुरू शिष्य प्रणाली में सनातन से चला आता है यह बात चीत या शास्त्रार्थ का विषय नहीं है, जीवन बनाना है। बात बनाने वाले न इसे समझते हैं, न समझेंगे, न समझाये जायेंगे, यह निगुरों का मत नहीं है, वह कोरे रहेंगे।

जैसी मुँह से नीकसै, वैसी चालै नाहिं।
निराकार यह स्वान गति, बांधे यमपुर जाहिं॥
कथनी के सूरे घने, थोथे मारैं तीर।
प्रेम बाण जिन के लगा, तिनके विकल शरीर॥
करनी करै सो पुत्र हमारा, कथनी कथै सो नाती।
रहनी रहै सो गुरू हमारा, हम रहनी के साथी॥

राम—यह चाल कैसे चलना होता है ?

वशिष्ठ—मैंने तुमको संस्कार दे दिया। संस्कृत कर दिया, उसका समय आ रहा है, उसका उत्तेजन भी अन्तर ही अन्दर हो रहा है, धैर्य रक्खो।

यह चाल घट में चली जाती है। नाक की सीध में रास्ता है और यह रास्ता शिर के बल चलना होता है, यही कारण है कि मनुष्य उलटे गाछ के आकार का बना हुआ है।

राम गुरू का उपदेश सुन कर लक्ष्मण को साथ लिये हुए अपनी माता के घर गुरू को दंडप्रणाम कर के चले गये।

———०:०———

इति महा रामायणम् आरम्भखंड प्रथमभाग
॥ समाप्तम् ॥

महारामायणम्

प्रथम आरम्भ खण्ड

द्वितीय भाग

—(:)—

पहिला समुल्लास।

(विश्वामित्र आगमन)

अभी राम के प्रश्नोत्तर वशिष्ठ के साथ समाप्त नहीं हुए थे, कि अयोध्या नगर में विश्वामित्र ऋषि का आगमन हुआ, राजा दशरथ ने सुना प्रसन्न हुए। राज सभा में उन्हें बुला भेजा, सन्मान के साथ आसन देकर कुशल पूछी।

विश्वामित्र ने उत्तर दिया, "मैं आपकी सभा में किसी विशेष मन्तव्य को लेकर आया हूँ। आप उसकी पूर्ति का वचन दें तो मैं कहूँ।" दशरथ ने तीन बार बचन दिया और उनके मनोरथ सिद्धि कराने का निश्चय दिलाया।

तब विश्वामित्र बोले—"राजन्! बात यह है कि मैं अपने आश्रम में अकेला रहकर तप यज्ञ करता हूँ। निशाचर (राक्षस) आकर विघ्न करते हैं। और मेरे यज्ञ का विध्वंस हो जाता है। कोई उपाय नहीं चलता। मैंने सोचा राम साथ में रहकर रक्षा करें तब यह यज्ञ पूर्ण हो। मैं राम के लेने के लिये आपके पास आया हूँ। इनको मेरे साथ कर दीजिये। यह मेरे यहां आने का अभिप्राय है।"

दशरथ को सोच हुआ। "भगवन्! राम अभी बालक हैं। हाथ पाँव के कोमल। यह निश्चरों का सामना कैसे कर सकेंगे! मुझे आज्ञा हो तो मैं साथ चल कर आपकी यज्ञ की रखवाली करूँ।"

*विश्वामित्र मुस्कराये। "मुझे तो केवल राम से काम है यह बालक हैं। कोमल हृदय के हैं, हाथ, पांव और हृदय के कठोर नहीं हैं। मेरा काम उन्हीं से निकलेगा, न मैं और किसी की सहायता चाहता हूँ और न उसे स्वीकार करूँगा।" दशरथ असमंजस में पड़ गये। न हां कह सकते थे न नहीं कह सकते थे। वह मोह ग्रसित हुआ। वशिष्ठ ने उसकी दशा देखी। समझाया। "राजन्! विश्वामित्र जी शस्त्र विद्या के गुरू हैं। राम का उनकी सेवा में कुछ दिनों रहना आवश्यक है। यह क्षत्री पुत्र हैं इनको इस द्वन्द जगत् में काम करना है। शिक्षा न होगी तो यह क्या काम कर सकेंगे।"

दशरथ—क्या आप इनको शिक्षा दीक्षा नहीं दे सकते?

वशिष्ठ—"मैंने दीक्षा तो दी। शिक्षा देना विश्वामित्र ही के आधीन है। मैं राम की शिक्षा नहीं कर

---

*विश्वामित्र संस्कृत विश्व (संसार) मित्र (प्रेमी) जिसमें संसार का प्रेम हो वह विश्वामित्र है। राम में वैराग उत्पन्न हुआ वैराग के पीछे अनुराग आता है, यही अनुराग प्रेम और विश्वामित्र है। वैराग का रूप वशिष्ठ हैं। राम सात्विक ब्रह्मांडी मन ब्रह्म के अवतार हैं।

सकता। आपको मैंने पहिले ही कह दिया था कि राम में विलक्षणता है। यह असाधारण मनुष्य हैं। यों तो स्वयं सब कुछ जानते है लेकिन कर्त्तव्य और व्यौहार के जगत में कर्त्तव्य शील और व्यौहार शील होना आवश्यक है, यह अभ्यास चाहता है। इसके लिए साधन करना पड़ता है, साधन ही से अनुभव का उत्तेजन होता है, विना साधन के अनुभव की वृद्धि नहीं होती।"

दशरथ—क्या दीक्षा और शिक्षा में भेद है ?

वशिष्ठ—"दीक्षा मंत्र देने को कहते हैं। यह किसी को उपाय बताना मात्र है। और शिक्षा तंत्र विषय है। तंत्र हथियार या कल को कहते है, यह साधन है। बोलना साधारण रीति से मुँह के द्वारा शब्द निकालना है, उसमें इतना बल नहीं होता। जब वही शब्द किसी तंत्र सींग, भोपना, या खोखले पदार्थ के रास्ते से दूर भेजा जाता है। तो उसमें बल और शक्ति की विशेषता आ जाती है। हाथ से बाण फेंका जाय तो वह बहुत दूर न जायगा। लेकिन जब उसे धनुष से जोड़ कर फेंका जाये तो वह बहुत दूर पहुँचेगा। और चोट करेगा। ऐ राजन्! यही नियम सारे साधनों में चलता है, चाहे वह शारीरिक हों या मानसिक हों, व्यौहारिक हों या परमार्थिक हों। मैंने राम को मत्र के साथ संस्कार तो दिया। लेकिन इस संस्कार की जब पूरी कमाई की जायेगी तब ही उसका अधिकार मिलेगा। इसी को साधन और अभ्यास कहते हैं। और यही तंत्र है, यह संस्कृत धातु 'तन्त्रि' (फैलाने) से निकला है। और मंत्र संस्कृत धातु मन्त्रि (मति-शिक्षा-सलाह) को कहते है, यह इनमें भेद है।"

"महाराज! मेरी गुरुवाई केवल मंत्र दीक्षा तक है। विश्वामित्र तंत्र शिक्षा देकर राम को क्षत्रियों के करतब में प्रवीण कर देंगे। तेली का काम तमोली नहीं करता, यह घोड़े चढ़ने की विद्या, धनुर्विद्या और नाना प्रकार की विद्यायें इनको बन में रखकर सिखायेंगे। राम को इनके यहां जाने से कभी न रोकिये, नहीं तो उनके जीवन का अकाज होगा।"

दशरथ—"मैं आपकी सम्मति के बिना कोई काम नहीं करता। मैं आपसे सहमत हूँ।"

और दशरथ ने राम, लक्ष्मण को कौशल्या के महल से बुला भेजा। कौशल्या मोह वश नहीं हुई। प्रसन्न होकर उन्हें गुरू के पास जाने, रहने और गुरु की सेवा करने की आज्ञा दी। दोनों राजकुमार आये, राजा और ऋषियों को प्रणाम किया।

दशरथ ने पुत्रों को कहा। बेटो! आर्य संतति की दो उत्पत्तियाँ होती है। एक तो बाप के यहाँ जन्म, दूसरा गुरू के यहां का जन्म। दोनों कुल की मरियादा साथ २ चलती हैं। और दो स्थानों में जन्म लेने से वह द्विज या दो जन्मे कहलाते हैं। गोत्र केवल गुरू के नाम से चलता है। यह गोत्र चौबीस होते हैं, जैसे साँडियः कश्यप, गौतम, भारद्वाज, इत्यादि। गोत्र दो संस्कृत धातुओं से बना है गो (शब्द) और त्र (बचाने वाला) बचाने वाला शब्द गुरू से मिलता है, जिसने जिस ऋषि की शाखा से जो शब्द ज्ञान लिया है, उसी से या उसकी सहायता से वह बजता है। जो जिनसे शिक्षित हुए हैं उनके समुदाय का नाम गोत्र है। आज तुम पितृ कुल से निकल कर गुरू के कुल में जाते हो। जाओ। लाभदायक शिक्षा सीखो। ईश्वर तुम्हारा कल्याण करै।

राम लक्ष्मण ने दोनों पिता और गुरू के चरणों में शीश झुका कर प्रणाम किया और माताओं से आज्ञा ली और विश्वामित्र के साथ उनके आश्रम का रास्ता लिया।

दूसरा समुल्लास

ताड़का वध, मारीच और सुबाहु की ताड़ना।

राम लक्ष्मण और विश्वामित्र तीनों अयोध्या से निकल कर बलिया विराध के आश्रम को जा रहे थे। ताड़का राक्षसी ने उन्हें देख लिया, वह विश्वामित्र के हवन में विघ्न किया करती थी। समझ गई कि ऋषि सहायता निमित्त राम लक्ष्मण को यज्ञशाला की रखवाली के लिए साथ लिए जा रहे हैं। उसे इन तीनों का दृश्य अच्छा नहीं लगा। मुख खोल कर दौड़ी कि कम से कम इनमें से किसी को निगल ले। दोनों भाइयों ने इस ताड़का के भयानक रूप को देखकर जान लिया कि यह उत्पात मचाने को आरही है। धनुष में एक एक बाण को जोड़ा, यह सनसनाता हुआ इस राक्षसी के मुँह में समा गया और शरीर के वार पार निकल आया, वह उसी समय मर गई।

ऋषि इस दशा को देखकर प्रसन्न हुए। मन में राम की प्रतिष्ठा उत्पन्न हुई। और विश्वास होगया कि इनके होते हुए निश्चय अब यज्ञ के प्रबन्ध में हानिकारक न होंगे। तीनों ने आश्रम में प्रवेश किया। स्थान सुहाना था, गंगा का तट! खुली हुई जगह! आश्रम फूँस का झोंपड़ा था। उसके चारों तरफ़ फूलों और फलों के बेल बूँटे लगे हुए उसकी शोभा को बढ़ा रहे थे। यह फल और फूलों से लदे हुए भी थे। वायु के झोंके फूलों की सुगन्ध को हर जगह फैलाते थे। और उधर से आने जाने वालों की आंख और हृदय को आनन्द मिलता था। गायें और भैंसें स्वतन्त्रतापूर्वक घास चरती थीं और आश्रम के फल फूलों के वृक्षों को नहीं छेड़ती थीं।

राम को आश्रम के अन्न जल से हर्ष प्राप्त हुआ। यों तो अयोध्या की राजधानी पचासों मीलों में फैली हुई नानाप्रकार की वाटिकाओं से सुशोभित थी, लेकिन वो कुछ और थी और यह जगह कुछ और थी। वहाँ बनावट थी यहां बनावट नहीं थी।

विश्वामित्र सुसमय पाकर अपने यज्ञ साधन में लगे, उस बन में दो राक्षस मारीच और सुबाहु रहते थे। उन्होंने सुना कि राम ने ताड़िका को मार दिया है, योंही क्रोध अग्नि में जले भुने थे। जब सुना कि विश्वामित्र यज्ञ करने पर तत्पर हैं, वह अपनी सेना लेकर चढ़ाई करने आये कि ऋषि यज्ञ न कर सकें। विघ्न करना इनका कर्तव्य है।

ऋषि तो यज्ञ करने बैठे। राम और लक्ष्मण धनुष बाण लिए हुए रखवाली करने लगे। निशाचरों का दल आया और रुकावट पर तत्पर हुआ। दोनों वीरों ने धनुष और बाण को उठाया। मार धाड़ मची और यह सबके सब जैसे आँधी के समान आये थे वैसे ही आँधी के समान चले गये। योजनों दूर जा २ कर गिरे। और विश्वामित्र ने अपने ध्यान योग यज्ञ की पूर्ति करली।

कुछ दिनों तक राम लक्ष्मण विश्वामित्र के आश्रम में रहे, ऋषि ने उन्हें शस्त्रविद्या अस्त्र विद्या सब कुछ सिखाया वहां और भी विद्यार्थी इसी प्रयोजन से रहते थे। खेल, कूद वृक्ष पर चढ़ना, नदी में तैरना, लकड़ियां काटना घोड़े दौड़ाना कुश्ती अखाड़ा सब कुछ हुआ करता था। और सब का रहन, सहन, खान, पान एक समान था।

ताड़का—संस्कृत तड् (मार-धार ताड़) जो मार धाड़ के योग्य हो वह ताड़का। यह मन की वह महा स्थूल चंचल वृति है जो चित्त की एकाग्रता नहीं होने देती, असभ्य के मार देने ही में भलाई है। योग साधन में यह धोखा देने वाली रजोगुणी वृत्ति है जो निद्रा आलस्य प्रमाद के रूप में धोका देकर साधन को बिगाड़ देती है।

मारीच—संस्कृत धातु मरी (मरने) से बना है, यह रावण का बलवान दूत था। जो भेष बदल २ कर छला करता था।

सुबाहु—संस्कृत सु (अच्छा) बाहू (बाजू-बल-भुजा) धातु बाध (रोकना) मन की वह वृति जो साधन को रोक देती।

लोग यह समझते होंगे कि यह ऋषि आजकल के साधुओं के समान मठ बनाकर रहते रहे होंगे ऐसा नहीं था। यह आश्रम सबके सब विद्यालय थे। और वहाँ नाना प्रकार की विद्याएँ सिखाई जाती थीं। कोई काम ऐसा नहीं होता था जो विद्यार्थी अपनी २ रुची, गुण, कर्म और स्वभाव के अनुसार नहीं सीखते थे। विश्वामित्र वहाँ अकेले नहीं थे और भी ऋषि थे, यह इस आश्रम के मुख्य अधिष्ठाता थे।

राम लक्ष्मण ने वहाँ रह कर बहुत कुछ सीखा। विश्वामित्र जान बूझ कर उन्हें अवध से लाये थे। यह ऋषियों का धर्म था कि दोजाति या दोजन्मी सन्तान संस्कृत और शिक्षित दीक्षित हो। चौबीस वर्ष पर्यन्त यह गुरुकुल में रहे, इसके पश्चात् गृहस्थ आश्रम में प्रवेश करे, प्रणाली ही इस प्रकार की थी। गुरू किसी के वैतनिक कर्मचारी नहीं होते थे। वह स्वाधीन रीति से जंगल में रहते थे। और बच्चों की शिक्षा उस समय के अनुसार करते थे। यह शिक्षा भी बदलती रहती थी। और लोगों की बुद्धि और मन की दृष्टि वृद्धि करने का अवसर था। इन सब के दृष्टि के सामने ब्रह्म का आदर्श रहता था। ब्रह्म में विरह (बढ़ना) और मनन (सोचना) है और यह बच्चे इस आदर्श के अनुसार बढ़ते और सोचते रहते थे। और इसी दृष्टि से उनके ऐसे जीवन का नाम ब्रह्मचर्य्य था। ब्रह्म (अर्थात् बढ़ने-सोचने) में चर्य्या करना ब्रह्मचर्य्य कहलाता था। जीवन का यह विभाग इसी काम के लिए था। अब अनसमझी से केवल स्त्री त्याग को ब्रह्मचर्य्य कहते हैं यह नहीं समझते कि यह ब्रह्मचर्य्य का केवल एक अंशी अंग है। ब्रह्मचर्य्य बढ़ने और सोचने के समय का नाम था। और विद्यार्थियों के पांच साधारण लक्षण हुआ करते थे। जो ब्रह्मचर्य्य से सम्बन्ध रखते थे वह यह हैं:—

काक चेष्टा बको ध्यानं, श्वान निद्रा तथै वचः।
अल्पाहारी स्त्री त्यागी, विद्यार्थी पंच लक्षणम्॥

कौए की चेष्टा, बगले का ध्यान, कुत्ते की नींद, अल्पाहारी और स्त्री का त्याग यह पाँच लक्षण विद्यार्थियों के है।

अफसोस इस बात का है कि ब्रह्म, आत्मा इत्यादि तमाम शब्दों के अर्थों में उलट फेर होगया। था कुछ और वह होगया कुछ, राम और लक्ष्मण दोनों ने ऋषि के आश्रम में रह कर विद्या का लाभ उठाया, नई नई युक्तियाँ सीखीं और आपने भी अपने अपने मन से नई नई युक्तियाँ निकालीं।

प्रातःकाल उठ कर शौच स्नान करने के पश्चात साधन ध्यान का नियम था, फिर काम काज में लगते थे और दिन भर काम में लगे रहते थे, दिन में सोने का नियम नही था, सोने के लिए रात का समय नियत था।

एक दिन विश्वामित्र ने अपने विद्यार्थियों को समझाया, "छात्रवर्ग! दिन को काम करो, रात को सोओ, दिन के रहते हुए न सोओ, दिन में खाओ, पियो, खेलो, कूदो, पठन पाठन करो, तुम्हारा करतब दिन चर्य्या हो, और तुम दिन चर कहलाओ॥

जो लोग दिन को सोते और रात को जागते और रात्रि समय में दिन का व्यौहार करते हैं वह निश्चर और निशाचर होते है निश कहते हैं रात को। रात की चर्य्या करने वाले निशाचर होते है।

दैवी सम्पदा दिन का खेल कूद और कर्तव्य है देव संस्कृत शब्द दिव से निकला है जिसका अर्थ खेलना है, आसुरी सम्पदा अंधकार की सम्पदा है जो रात को व्यौहार करती है, इन दोनों में यह भेद है। प्रकृति के जगत में दोनों सम्पदाओं के प्राणी हैं, कोई इनमें सुरी है कोई आसुरी है।

आसुरी सम्पदा का इष्ट खाना, पीना, सोना, जागना आदि है, सुरी सम्पदा का इष्ट खाने, पीने, सोने, जागने के अन्तर्गत विरह (बढ़ना) और मनन

(सोचना) है। यही ब्रह्म का लक्षण है और यही ब्रह्मचारी का लक्षण होना चाहिए। बढ़ो और सोचो, सोचो और बढ़ो, इसी का नाम ब्रह्मचर्य्य है, सच्चा ब्रह्मचर्य्य यही है।

बढ़ बढ़ चलो बढ़ते रहना सदा तुम,
वृद्धि के सिद्धान्त गहना सदा तुम।
बढ़ो सोचो दो बात कहना सदा तुम,
नहो भ्रम की धार बहना सदा तुम॥
यह है ब्रह्म की चर्या, यही इष्ट करतब।
बढ़ो सोचो, यह काम मिल कर करो सब॥

तीसरा समुल्लास।

राम और विश्वामित्र का सम्वाद।

राम विश्वामित्र के यज्ञ की रखवाली करने गये थे। उनके आने के कई अभिप्राय थे। पहले तो यह कि वह सबसे अधिक प्रतिष्ठित कुल के राजकुमार थे। उनकी शिक्षा में त्रुटि न रहने पाये। दूसरे उस समय सृष्टि कर्म के धर्म में हानि कारक विघ्न प्रकट हो आये थे, यह बहुत बढ़ गये थे, ऋषि मुनि, राजा, महाराजा सब तंग आगये थे। सब की यही इच्छा थी कि कोई ऐसा व्यक्ति संसार में आ जाये जो इस असह्य दुख से मुक्ति दिला दे। राम का जन्म मुनियों ने इसी कर्तव्य के लिए समझ रक्खा था और उनकी शिक्षा भी आवश्यक थी, तीसरे विश्वामित्र को उनकी परीक्षा भी करनी थी कि वह उनकी परीक्षा में पूरे उतरते है कि नहीं।

राम ने यज्ञ की रक्षा की। राक्षस मारे और भगाये गये। उन्होंने उस समय की सारी विद्यायें भी सीख लीं। उनमें निराली उपज थी जिसे देख कर ऋषि दंग रहता था।

अयोध्या में उन्हें कुछ वैमनस्य होगया था जिससे वह उदास रहते थे। वशिष्ट जी के उपदेश से उन्हें कुछ साधारण संतोष तो होगया था। लेकिन वह कुछ नहीं था वैराग की वृति दिन प्रति दिन बढ़ती ही जा रही थी। यहाँ विश्वामित्र के आश्रम में आते ही उनकी उदासी जाती रही। काम काज में लगे सब के साथ प्रेम और मित्रता करने लगे, देखते २ कुछ के कुछ बन गये।

एक दिन ऋषि छात्र गणों के साथ आश्रम के बाहर बैठे हुए बात चीत कर रहे थे। राम लक्ष्मण पहुँचे, दंडवत प्रणाम किया, ऋषि ने आशीर्बाद देकर पूछा "राम! आज तुम मुझ से कुछ प्रश्न पूछने आये हो"

राम ने उत्तर दिया—हाँ भगवन ऐसा ही है।

विश्वामित्र—तो पूछो।

राम—यह यज्ञ जो आर्य जाति करते हैं इसका अभिप्राय क्या है? और यह न किया जाय तो इससे हानि क्या है? विश्वामित्र ने राम को गहरी दृष्टि से देख कर उत्तर दिया। राम! तुम जन्म के योगी हो, तुम्हारे अन्तर बड़ी २ सिद्धियाँ और शक्तियां दबी पड़ी हैं। जिनका समय २ पर स्वंय बिकाश होता रहेगा। मैंने तुम्हारे प्रश्न को सुन कर तुम्हारे माथे और आंखों को देखा। उनमें सूर्य्य का बिशेष अंश झलकता है, जो सूर्य्य बंशियों का मुख्य चिह्न है। प्रश्न साधारण है। लेकिन मुझ से आज तक किसी ने इसको नहीं पूछा था। सब बाहर मुखी दृष्टि वाले हैं, अन्तर मुखी दृष्टि किसी २ में होती है। नहीं तो सब के सब रीति कर्म और बाहरी पाखंडों में पड़े रहते हैं। मैं तुमको आज सच्चे अन्तरी यज्ञ का रहस्य बताऊंगा। बशिष्ट ने तुमको गायत्री मंत्र के बिधान में केबल मंत्र देकर दीक्षा दी है, शिक्षा का काम मुझे सौंपा गया है।

यह कह कर विश्वामित्र राम को अपनी कुटी में अलग ले गये और उन्हें एकान्त में लेजाकर यज्ञों के अन्तरी साधन की गुप्त विधि सिखाई। उसका संक्षिप्त वृत्तान्त इस प्रकार है। विश्वामित्र—यज्ञ शब्द संस्कृत धातु 'यज्' (पूजा) से बना है यज्ञ और कुछ नहीं है केवल पूजा मात्र है, पूजा इष्ट पद की है, वह इष्ट पद सावित्री (सूर्य्य) है, जो बाहर नहीं है, तुम्हारे अन्तर है और तुम उसी के, अंश और बंश हो।

भानु रूप मालिक सुन भाई। नर देही में रहा छुपाई॥
सूरज वँश भानु साविशी। शब्द अर्थ का भेद गायत्री॥
कोई २ अश कोई २ वंश। अंश वश में व्यापा हंस॥
हंस समान जगत व्यौहार। यह है यज्ञ विचार का सार॥

यज्ञ पूजा है इस पूजा में पशु का वलिदान किया जाता है, विना पशु के वलिदान के यज्ञ की पूर्ति नहीं होती, पूजा इष्ट पद की हो। इष्ट पद गुरू है।

मंत्र मूलॅ गुरु वाक्यम्, मूल पूजा गुरु पदम्॥
मूल ध्यानम् गुरु मूर्ति, मोक्ष मूलम् गुरु कृपा॥

पशु नाना प्रकार के होते है। पश् सस्कृत धातु है, इसका अर्थ है वाँधना रोकना, जो बाँधा जाय और रोका जाय वह पशु है। यज्ञ में इस पशु का बाँधना और रोकना ही वलिदान है। पहिला पशु अजा या अज है, अ (नहीं) ज (जन्मा) जो नहीं जन्मा वह अज है। यह प्रकृति प्रधान कभी जन्मी नहीं। इसलिए यह अज कहलाती है। शरीर प्रकृति से वनता है, यह अज है, इसे पूजा (यज्ञ) में बाँधो, रोको, इसके बलि का दान करो यह इष्ट देव के अर्पण हो, यह अजामेध है, उसे बकरी भी कहते हैं।

गौ नाम है पृथ्वी का, इन्द्रिय का, गाय का, इस यज्ञ का तात्पर्य यह है कि इन्द्रियों को वाँधो रोको और इनके वल का दान करो, वह इष्ट पूजा के अर्पण हो, यह गोमेध यज्ञ है। अश्व, संस्कृत धातु अश (फैले हुए) से निकला है, यह मन है जो सारे शरीर में फैला हुआ है, इसे वाँधो, रोको और इसके वल का दान करो, वह इष्ट के अर्पण हो, अश्वमेध यज्ञ का यह भेद है। मन घोड़े के समान चंचल है, जो इसे रोक सक्ता है वह विजयी होता है, अश्व घोड़े को कहते हैं।

नर शब्द सस्कृत धातु 'नरी' (रास्ता दिखाने वाले) से निकला है, इस सारे शरीर, मन, और इन्द्रियों का रास्ता दिखाने वाला, नियम में रखने वाला, मनुष्य है। मनुष्यता का नाम नर पना है, इस मनुष्यता और नरपने के भाव को रोको, बांधो, इष्ट के अर्पण करो, उसके सम्पूर्ण बल का दान दो, यह नर मेध यज्ञ है।

यज्ञ में हनन नहीं है, शरीर, इन्द्री, मन, और नरपना के रोक थाम का मन्तव्य है, चित्त की वृति के एकाग्र होने से सिद्धि शक्ति प्राप्त होती है, यज्ञ का यथार्थ तात्पर्य तो यह है, बाहर मुखी अजा को बकरी, गो को गाय, अश्व को घोड़ा, नर को मनुष्य मान कर मार डालते हैं और उनका मांस भून कर खा जाते हैं।

मेध कहते हैं समझाने को, अजामेध यज्ञ, गो मेध यज्ञ, अश्वमेध यज्ञ और नरमेध यज्ञ का अर्थ शरीर, इन्द्रिय, मन, और मनुष्यपने को समझ कर इष्ट की पूजा करना यह योग की विधि हैं।

राम—मैं बड़ी भूल में था। यज्ञ को कुछ का कुछ समझ रहा था।

विश्वामित्र—जिसमें जगत का प्रेम (विश्वमित्रता) नहीं है वह ऐसा ही समझते हैं, उन्हें तुम ऐसा ही समझने दो। यथार्थ समझ कर अपना काम बनाओ।

राम—बाहर मुखी यज्ञों का विधान क्यों है?

विश्वामित्र—यह मनुष्य मात्र समाजिक नियमों में बँधे रहै, मिल कर रहें, मिल कर चलें, मिल कर काम करें, मिल कर उठें-बैठे, मेल मुलाक़ात से उनमें बल होगा। अन्तरमुखी यज्ञ सब के लिए नहीं है, वह योग साधन है जिसमें अन्तरी अग्नि को उत्तेजिक कर के सिद्धि प्राप्त की जाती है।

राम—क्या मुझे इसकी आवश्यकता है?

विश्वामित्र—तुम जन्म के योगी हो। तुम्हारे अन्तर में सब कुछ पहिले ही से है केवल दवे हुए संस्कारों को जगा देना है और मैं इसी लिए तुमको यहां लाया हूँ।

चौथा समुल्लास

राम विश्वामित्र सम्वाद।

अहल्या तरण

सोने को सुहागा मिल गया। गुरू को सच्चा चेला और चेले को सच्चा गुरू प्राप्त हुआ। यह मेल कभी २ संयोग से होता है। सदा नहीं हुआ करता। गुरू और चेला दोनों उत्तम थे। जहां चेला कपटी और गुरू पाखण्डी होता है वहां दोनों के दोनों चौरासी के गहरे खड्डे में गिरते हैं, और जहां निःकाम निःप्रिय और निःस्वार्थ सम्बन्ध होता है, दोनों के दोनों नर नारायण के सदृश जगमगा उठते हैं।

दीक्षा, शिक्षा, मंत्र, तंत्र, योग, ज्ञान, शस्त्र, अस्त्र, इत्यादि विद्यायें विश्वामित्र ने राम को सिखाईं।

विश्वामित्र ने एक दिन कहा "जान लेना ही विद्या नहीं है जब तक यह विद्या ज्ञान जीवन न बन जाये तब तक लाभ दायक होने के बदले यह हानि कारक होती है। यह साधन और अभ्यास में आजाय तब तो बात है, नहीं तो निशफल और निश प्रयोजन हैं"।

राम—फिर क्या किया जाये ?

विश्वामित्र—इसे व्यौहार में लाया जाये, परमार्थ में व्यौहर और व्यौहार में परमार्थ हो।

राम—इसका प्रबन्ध ?

विश्वामित्र—देशाटन, देश २ की यात्रा।

राम—मैं आपकी आज्ञा पालन करने के लिए तत्पर हूँ।

विश्वामित्र—तो चलिये जनकपुर हो आयें, वहां सीता का स्वयंवर होने वाला है, सारे देशों के भूप, ब्राह्मण, क्षत्री, वैश्य, शूद्र, आर्य, अनार्य, दिनचर, निशचर, भारतवर्षीय, और यवन, सब एकत्रित होंगे। दृश्य बड़ा सुहाना होगा। वहां तुम्हारी विद्या की परीक्षा का अवसर मिलैगा। और जो कुछ मैंने सिखाया है वह कसौटी पर कसा जायगा।

घर के बाहर चल के कीजै यात्रा।
तब लगैगा घर का बाहर में पता॥
बाहरी और अन्तरी हो साधना।
तब बनैगी इष्ट की आराधना॥
जो बहर मुख है वह अन्तर मुख नहीं।
जो है अन्तर मुख वो बाहर मुख नहीं॥
स्वप्न और जाग्रत का जब मेल हो।
तब ही इस जीवन का उत्तम खेल हो॥
राम तुम तो सब में रमता राम हो।
रम चलो रमने में रम का काम हो॥

राम लक्ष्मण और विश्वामित्र तीनों चल खड़े हुए, पूरब की तरफ़ यात्रा करने लगे। रास्ते में ऊसर, जंगल, नदी, नाले, खेत, वाटिकायें देखीं। गाधीपुर (ग़ाजीपुर) को देखा जो राज समय में गाधी सुत विश्वामित्र की राजधानी थी। इधर गये, उधर गये, फिर नाक की सीध में पूरब की तरफ़ आगये।

वहां गौतम ऋषि का आश्रम था। एक पत्थर की शिला पड़ी हुई थी।

विश्वामित्र ने कहा—"इसे अपना पांव लगा दो।"

राम ने पांव से उसे छू दिया। या तो वह पत्थर की शिला थी या सर्पाकार होकर धुँए के आकार में ऊपर उठी और शब्द करते हुए राम के सामने खड़ी होगई।

राम चकित हुए। ऐसा दृश्य उन्होंने पहले नहीं देखा था। विश्वामित्र से पूछा—भगवन्! यह क्या लीला थी—विश्वामित्र ने हँस कर उत्तर दिया—इस आश्रम में एक ऋषि रहता था जिसका नाम गौतम है वह तर्की सुतर्की और कुतर्की था। न्याय विद्या का महा पण्डित! और उसे अपने तर्क पर

इतना घमण्ड था कि ब्रह्मा और बृहस्पति भी सामने आते तो अपना मुँह नहीं खोल सकते थे। उसके एक स्त्री थी उसका नाम अहल्या था। बड़ी सुन्दर, कोमल हृदय, कमल के आकार का रूप! ऋषि उस पर मोहित था। इन्द्र ने कहीं उसे देख लिया। उसकी सुन्दरताई पर लट्टू होगया। अहिल्या इससे बहुत बचती थी। अन्त में वह गौतम के भेष में आया और उस देवी के पतिव्रत भाव का भंग कर दिया। जब ऋषि को यह समाचार मिला। क्रोधित होगया। अहिल्या को श्राप दिया कि पत्थर होकर पड़ीं रह। इसने नम्रता से पूछा "कब तक?" ऋषि ने उत्तर दिया कि त्रेता युग के पिछले भाग में रामचन्द्र के नामरूप में ब्रह्म का अवतार होगा। जब उनका पाँव तुझ पर पड़ेगा तू अपने रूप में प्रकट होकर मुझ से मिलेगी। और देखिये ऐसा ही हुआ।

अहिल्या ने मुँह खोलाः—

पड़ गई मँझधार में थी मेरी नाव,
सूझता मुझको न था कुछ पेच दाव।
जड़ बनी और पत्थर की शिल में होगई,
मूढ़ता की नींद व्यापी सोगई।
क्या हुआ कैसे हुआ कुछ सुध नहीं,
मैं थी बेसुधि मुझ में कुछ सुध बुध नहीं।
आप ही ने आ के तारा इस घड़ी,
मैं शिला के रूप रहती थी पड़ी।
आपने करुणा से अब चेतन किया,
और मुर्दे को नया जीवन दिया।
रमने वाले राम रमता धन्य तुम,
जग के करता और धरता धन्य तुम।

यह सुहाना राग सुहानी धुनि में गाती हुई अहिल्या स्वर्ग की तरफ अप्सरा बनकर उड़ गई। राम को आश्चर्य हुआ, वहाँ बैठ गये कुछ थके मांदे से थे, सस्ताने लगे, देर तक वाणी बंद थी, कोई कुछ नहीं बोला। अन्त में राम ने कहा। इस कथा प्रसंग का सम्बन्ध किससे है। विश्वामित्र हँसे—आपसे है मुझसे है और मनुष्यमात्र से है।

राम—मैंने भी ऐसा ही समझा।

विश्वामित्र—आप न समझते तो समझता कौन।

राम—अहिल्या को धुँये के आकार में उठते देख कर मैंने ऐसा ही समझा।

विश्वामित्र—आपका समझना ठीक है।

राम—तो अब आप लगे हाथ इस रहस्य को खोल भी दीजिए।

विश्वामित्र—यह रहस्य तो जनकपुर में चलकर खुलेगा, हां यहाँ भी इस कथा-प्रसंग की परिभाषाओं पर प्रकाश डाल देता हूँ।

"गौतम संस्कृत शब्द गो (आँख) और तम (अन्धकार) को कहते हैं, अन्धकार वाली आँख वाला गौतम तामसिक मन है जो तर्क वितर्क उठाया करता है और अपने समान किसी को नहीं समझता, इन्द्र इसका अहङ्कार है जो सबको अपने आधीन रखना चाहता है और अहिल्या उसकी तमोगुणी शक्ति है जो सुन्दर है इस शक्ति से इन्द्ररूपी अहङ्कार उत्पन्न हुआ, जिसने इसे वशीभूत कर लिया। गौतम को घृणा हुई, उसे श्राप दिया और वह पत्थर की शिला बन कर जम कर मूलाधार में बैठ गई, वह सांप या नागिनी के समान कुण्डली मार कर बैठी, इसलिए उसका नाम अहिल्या रक्खा गया अहि (सर्प) और ल्या (लै) को कहते हैं।

यह मूलाधर की कुंडलनी शक्ति है। इन्द्र संस्कृत धातु इदि (बल) से बना है यह तमोगुणी मन (गौतम) का तामसिक अहंकार हैं जब किसी तर्कि मनुष्य को समझ आ जाती है कि उसका तर्क दिखावें और हट धर्मी का था, तो घृणा, होना साधारण बात है। और तब उसकी शक्ति नीचे दब जाती है। फिर जब खेलने वाला राम जो सब को खेल समझता है उसे पाँव लगा देता है, तब वह फिर जाग उठती है।

राम—मैंने सुना है कि गौतम ने इन्द्र को श्राप दिया था कि तेरा शरीरभग के आकारों का हो जाये।

विश्वामित्र। जब मनुष्य को अपने अहंकार की बुराइ प्रतीत हो जाती है तो वह उसे धिकार ता है और वह टुकड़े २ होजाता है और वह सेवा करने लग जाता है घमंड टूट जाता है।

भग शब्द संस्कृत धातू भज (सेवा) से बना है और फिर इस में सेवा करने की अनेक वृत्तियाँ आ जाती हैं, यह इन्द्र के भग धारी होने का रहस्य है कथा प्रसंग का आशय यह है।

पाँचवाँ सम्मुल्लास

राम विश्वामित्र का सम्वाद (लगातार)

गंगा की कथा

राम लक्ष्मण और विश्वामित्र ने छिपी हुई और दबी हुई सर्पाकार कुण्डलिनी शक्ति के उभारने के पश्चात् आगे की तरफ़ पग बढ़ाया। गंगा की धार हर २ करते हुए बह रही थी। उसके दोनोँ तरफ़ खेती लहलहा रही थी। आम, जामुन, बड़ और पीपल की घनी छाया वाले वृक्षोँ की डालियों पर पक्षी पखेरू चह चहाते हुए फुदक रहे थे। कहीँ कहीँ बीच २ में रेत के इकट्ठा हो जाने के कारण प्रथ्वी प्रकट होती थी। वह टापू और द्वीप के समान दिखाई दे रही थी। घाट पर हज़ारोँ की भीड़ थी संभव है कि किसी पर्व का दिन रहा हो। सब के सब गंगा में तैरते, डुबकियां लगा २ कर न्हा रहे थे और यह मंत्र उच्चारण करते जा रहे थे।

> हर हर गंगा भागीरथी, पाप न रहै एको रती॥
> गंगा गंगा जो नर कहै, नंगा भूका कभी न रहै॥

तीनोँ पथिकों ने घाट का सुहाना दृष्य देखा। स्थान बहुत रमणीक था, घाट पर वस्त्र उतार कर रख दिये। गंगा में डुबकियाँ लगा कर भली भाँति न्हाये धोये। रास्ते का मैल उतर गया। घाट वाले गंगा-पुत्र ने तीनोँ के माथोँ पर मलियागिर चंदन का तिलक लगा दिया।

फिर यह नाव पर बैठे नदी के पार आये और आगे की तरफ़ पैदल बढ़े।

राम ने पूछा—"भगवन ; गंगा नदी की महिमा क्योँ इतनी अधिक है। नदी तो नदी सब में पानी ही पानी भरा हुआ है लेकिन यह सब में महा श्रेष्ट समझी जाती है।"

विश्वामित्र ने उत्तर दिया—गंगा साधारण नदी नहीँ है। यह पतित पावनी है। यह नदी तुम्हारे पूर्वज हिमालय पर्वत से खोद कर लाये थे और यह आर्य वर्त के एक सिरे से दूसरे तक बहती हुई महा सागर में जाकर मिल रहती है।

इसके पानी में अभूत पूर्व प्रभाव है। कभी न सड़ता है न उसमें सड़ाईंद आती है बरसोँ यहां तक कि उसे सौ २ बर्ष तक लेजाकर रक्खो। ज्योँ का त्योँ बना रहेगा। बास तक न आवेगी। और दूसरे पानी में उसके दो चार दस बूँद मिलादो तो उनका प्रभाव भी बदल जाता है। और वह भी गंगाजल के समान हो जाता है। यह रोगोँ की औषधि भी है। इसके सेवन करने वाले का स्वस्थ अच्छा रहता है इसके जल के बहुत गुण हैं।

राम—इसको मेरे पूर्वज कैसे लाये थे? मैं वृत्तान्त को सुनना चाहता हूँ।

विश्वामित्र—तुम्हारे कुल में एक राजा हुआ है उसका नाम सगर था। उसकी सहस्रोँ संतति थीं। दैवसँयोग से देश में अकाल पड़ा, प्राणी अन्न विना मरने लगे। खेती बाड़ी सूख गई। हाहा कार मच गया। तब सगर ने अपने लड़कोँ से कहा। तुम जाओ हिमालय पर्वत से एक नहर खोदो। और उसे जहां तहाँ से घुमा फिरा कर महा सागर तक पहुँचादो। इस नहर के किनारे २ बड़े २ नगर और ग्राम बसाये जायें। पानी की अधिकता रहे खेती की जावे और प्रजा दुखी न होने पावे। सगर की संतति आज्ञाकारी थी। हज़ारोँ लड़के सब के सब उठ खड़े हुए। उत्तरा खंड की तरफ़ गये। खोद खाद किया। हिमालय की चोटी से लेकर महासागर तक पृथ्वी खोद डाली, गहरी खाई एक सिरे से लेकर दूसरे सिरे तक बन गई। इन लड़कोँ के पास एक घोड़ा था जो रास्ता दिखाता था यह उसकी मामता में फँसे और अपनी क्रिय कार्यता पर इन्हें घमंड आया, इन्द्र देवताओँ के राजा को भय हुआ कि कहीं यह पराक्रमी पुरुष

मिल जुल कर उसका इन्द्रासन न छीन लें। वह ताक में लगा हुआ था और उन्हें छलना चाहता था घोड़े को चुरा लिया, महासागर के पास कपिल ऋषि समाधि लगाये हुए बैठे थे। इस इन्द्र ने घोड़े को लेजाकर उसके पास बाँध दिया। सगर के लड़के उसे खोजते २ कपिल के आश्रम में पहुँचे, वहाँ उसे बँधा हुआ पाया। समझा यह चुरा लाया है ऋषि को बुरा भला डाकू, बटमार, उठाईगीरा और चोर कह कर गालियाँ दीं, कपिल को क्रोध आया आँखें खोलीं और यह सब के सब उनकी आँखों के क्रोध अग्नि के तेज से जल कर राख होगये।

सगर को बहुत दिनों तक इनका पता नहीं लगा और वह उनके दुख में मर गया। इस सगर के एक और लड़का था जिसका नाम असमँज था, यह उसके पीछे राजा हुआ, यह नहर खोदने नहीं गया था, युवराज था, इसने अपने भाइयों का पता लगाना चाहा पता नहीं लगा। इसी के कुल में भागीरथ नामक एक प्रतापी राजा हुआ है, जिसे इन के कपिल ऋषि के क्रोध अग्नि से जल मरने का पता लगा। ऋषि के पास गया उनसे मिला। ऋषि को दया आई। उससे कहा गंगा को लाओ। गंगा का जल जब इनकी राख की ढेरी पर पड़ेगा तब इनकी सद्गति होगी। भागीरथ उत्तरा खंड में कैलाश पर्वत पर पहुँचा। वह शिव भगवान् का स्थान था।

यह गंगा के निमित्त तप करने लगा। बरसों तप करने पर वह धार ऊपर से गिरी। शिवजी की जटा जूट में आकर समा गई। यह निराश हुआ। फिर शिवजी को मनाने लगा उसका तप और साहस देख कर शिव ने अपनी जटा जूट को निचोड़ा, इससे तीन धारें निकलीं, एक ऊपर थी, उसका नाम आकाश गंगा है, दूसरी पृथ्वी पर गिरी वह भागीरथी कहलाती है, क्योंकि भागीरथ ने उसके लिए तप किया था और तीसरी धार पाताल को चली गई उसका नाम पाताल गंगा पड़ा।

जिस समय शिव ने अपनी जटा निचोड़ी। यह धार वह निकली, भागीरथ अपने घोड़े पर सवार हुआ। आगे आगे यह और पीछे २ हर हराती हुई गंगा की धार! वह इस प्रकार गंगा को महासागर तक ले गया। नहर पहिले ही से खुदी हुई थी, जब गंगा जल सगर के मरे हुए लड़कों की राख की ढेरी पर पड़ा, उनकी सद्गति हुई और इस धार ने उसे बहा कर महासागर तक पहुँचा दिया।

इस प्रकार यह गंगा आकाश से उतरी थी। आर्यवर्त्त के बड़े बड़े नगर काशी, प्रयाग, आदि इसी के किनारे बसे हुए हैं। ऐ राम! यह गंगा का कथा प्रसंग है।

इस कथा के पश्चात् राम और विश्वामित्र थोड़ी देर तक चुप रह कर विचार करते रहे।

राम बोले—कथा तो विचित्र है, इसका आशय क्या है?

विश्वामित्र ने कहा—इसका आशय भी बहुत विचित्र है, जब अहिल्या कुंडलनी शक्ति मूलाधार से उठकर ऊपर की तरफ़ जाने लगती है तो वह सुश्मना नाड़ी जो जीवन या अमृत की धार से सम्बन्ध का नाता जोड़ती है उसी धार का नाम इस मनुष्य शरीर में गंगा है। यह ऊपर है नीचे है और बीच में है। सुषमना नाड़ी मूलाधार से मेरुदंड की सिधाई में बराबर ऊँचे तक चली जाती है और सब को तृप्त करती है। मुझे विश्वास है वशिष्ठ ने तुमको दीक्षा देते समय शिखा और सूत्र का रहस्य बताया होगा।

राम-निःसन्देह वशिष्ठ जी ने समझाया तो था। वह दीक्षक थे आप शिक्षक हैं आपकी शिक्षा सब पर पूरा पूरा प्रकाश डालेगी।

विश्वामित्र—होना तो ऐसा ही चाहिए और ऐसा ही हो रहा है।

राम—कथा प्रसंग के अन्तर्गत जो नाम आये हैं उनका अर्थ इस विषय को स्पष्ट कर देगा।

विश्वामित्र—ऐ राम! तुम सूर्य्य की औलाद हो जो मनु कहलाता है। इस सूर्य्य मंडल का कर्ता धर्ता सूर्य्य है। यह जीवन ज्योति और जीवन की गर्मी का आधार है और यही प्राण का भंडार और

प्राणों का प्राण भी कहा जा सक्ता है। प्राण सब का वीर्य है और चन्द्रमा रई (माद्दा) प्राकृतिक सामिग्री) का भंडार है, सृष्टि सूर्य्य और चांद के मेल से होती हैं, जैसे पुरुष और स्त्री का संयोग संतति उत्पन्न करता है जिसमें सूर्य्य के प्राण का अंश अधिक होता है वह सूर्य्य वंशी और जिसमें चन्द्र के रई (माद्दा) का अंश अधिक होता है वह चन्द्र वंशी कहलाता है। जैसे प्राणी संसार में मरते और खपते रहते है वैसे ही इन सूर्य्य और चाँद की भी दशा होती है।

इस सूर्य्य की आयु को मनवन्तर कहते हैं। जब तक एक सूर्य्य जीता जागता रहता है उस समय का मन्वन्तर नाम रक्खा जाता है। एक मन्वन्तर का एक ही सूर्य्य होता है और उसकी आयु इस मन्वन्तर की दृष्टि से सौ बरस की होती है।

वर्त्तमान सूर्य्य का नाम वैवस्वत मनु है इसके पीछे जो मनु होगा वह रेवत कहलायेगा।

इसी वर्त्तमान सृष्टि में ऋषियों के कथनानुसार अब तक छैं मनु हो चुके हैं। (१) स्वयंभु (२) सुरूचषा (३) उत्तम (४) तामस (५) चाक्षषा (६) वैवस्वत और (७) रेवत वगैरह वगैरह हर मन्वन्तर में चौदह मनु होते हैं।

छठा समुल्लास

राम और विश्वामित्र का सम्वाद (लगातार)

गंगा की कथा

राम—बाहरी गंगा की कहानी बहुत विचित्र है क्या इस कथा का सम्बन्ध ब्रह्माँड और पिंड से भी है?

विश्वामित्र—ब्रह्मांड और पिंड की सदृष्टता है। जैसा वह है वैसा ही यह भी है। यह गंगा ब्रह्म में या कम से कम उसके शरीर ब्रह्मांड में है, वह ब्रह्मांड की उपेक्षता से सारे लोकों में भी है, ऊपर की रचना में यह आकाश गंगा कहलाती है। पृथ्वी पर आने से वह पार्थी या मृत्यु लोक की गंगा का नाम पाती है और पाताल में जाने से वह पाताल गंगा कहलाती हैं।

गंगा संस्कृत धातु "गम" (चलने) से निकली है, यह चलती है, चलती रहती है, इसलिए इसका नाम गंगा है, यह जीवन की धार है और सबको जीवन का भाग इसी गंगा से मिलता है। पिंड या मनुष्य के शरीर में। जिस रास्ते के सहारे यह गंगा बही हुई है या बहती रहती है उसको सुषम्ना नाड़ी कहते हैं यह ऊपर से नीचे तक है और (शिखा) या चोटी) से निकल कर सूत्र के धार में चलकर पृथ्वी तत्त्व के मूलाधार तक आती है। जहां मेरूदंड की जड़ है नीचे इसकी सब जगह छाया मात्र है जिसे आस भास कहते है। ब्रह्माँड और पिंड में इस गंगा की धार इस रूप में बही है।

राम—भगवन्! छाया या आस भास क्या और कैसा है?

विश्वामित्र—साधारण रीति से सब के तीन रूप होते हैं-कारण, सूक्ष्म और स्थूल कारण में एक प्रकार की तुच्छ रूपता है। सूक्षम और स्थूल उसकी छाया हैं और छाया की गिनती नहीं हो सकती वह अनेक है और उसका कथन अनेक वाद कहलाता है।

सूक्षम उसकी छाया है जो शुद्ध, विशुद्ध, और निर्मल होती है और स्थूल उसकी ठोस छाया है।

तुम्हारे शरीर भी तीन हैं कारण, सूक्षम, और स्थूल-कारण सत है, सूक्षम चित है जो मिलौनी से उत्पन्न होता है और स्थून उसका ठोस रूप है जो आनन्द कहलाता है इस दृष्टि से तुम्हारा शरीर सत, चित, और आनन्द है।

कारण शरीर सत है जिसमें केवल सत्ता का भान होता है। सूक्षम मन है जो सोचता विचारता है

और यह सोच विचार दो पदार्थों को मिलौनी से होता है जो सत और आनन्द कहलाते हैं और आनन्द स्थूल अवस्था है।

सत-चित-आनन्द—इसी शरीर में हैं और यह और कुछ नहीं हैं केवल सत, रज और तम तीन गुण हैं।

राम—आपने मेरे भाव और विश्वास पर पानी फेर दिया।

विश्वामित्र—वह कैसे ?

राम—मैं अब तक सोचे बैठा था कि आनन्द केवल ईश्वर में है और चित चैतन्य में है और सत तम की अवस्था है जो स्थूल है।

विश्वामित्र—तुम्हारा विचार एक प्रकार ठीक है, लेकिन वह एक ही प्रकार पर ठीक है, ईश्वर का आनन्द इसी स्थूल शरीर में प्रकट होता है जिसे आप स्थल कह रहे हैं केवल ईश्वर आनन्द ही नहीं बल्कि विषयानन्द, ज्ञानान्द, ब्रह्मानन्द, भोगानन्द, विलासानन्द, विचारानन्द, सारे आनन्दों का स्थल यही स्थूल देह है, सब आनन्द इसी से सम्बन्ध रखते हैं और इसी में सब आनन्दों का भान है। यह आनन्द जब भोगे जायेंगे, इसी स्थूल शरीर में भोगे जायेंगे। और जगह इनका भान न है न होता है और न हो सक्ता है।

राम—बात समझ में आती है, आगई और आरही है। सत में सत्ता मात्र, चित में चित्ता मात्र। और आनन्द में आनन्दा मात्र है। और इसी स्थूल देह-में वह भोगे जा सक्ते हैं। यहां ही हम खाते पीते विचारते और सब का रस लेते हैं।

विश्वामित्र—ठीक है, तुम समझ गये।

राम—इन शरीरों के धर्म क्या हैं ?

विश्वामित्र—कर्म, ज्ञान और उपासना।

कर्म का स्थल यह स्थूल शरीर है, कर्म स्थूल शरीर में होते हैं ज्ञान का स्थल सूक्ष्म शरीर या मन है सारे विचार, विवेक, अनुभव, अनुमान मन ही में फुरते और मन से उतर स्थूल देह में कर्म के रूप में प्रकट होते है और उपासना का स्थल केवल कारण शरीर है और यह सब से ऊँचा है और इसका फल भी स्थूल शरीर में प्रकट होकर अपना खेल दिखाता है।

राम—अब तक मैंने समझा था कि ज्ञान सब से ऊँचा मार्ग है अब आप उपासना को ऊँचा बताते है।

विश्वामित्र—ज्ञान ऊँची अवस्था नहीं है वह केवल बिचली अवस्था है और उपासना ऊँची अवस्था है।

राम—कर्म, ज्ञान और उपासना का करने वाला कौन है ?

विश्वामित्र—मन।

राम—मनका काम तो आपने विचार और ज्ञान बताया है।

विश्वामित्र—यह इसका अपना मुख्य धर्म है। नहीं तो करने धरने वाला सब मन ही मन है स्थूल और कारण में क्रिया शक्ति नहीं हैं। सत और तम दोनों क्रिया वाले नहीं है। क्रिया केवल रज में है, जो सत और तम के छाया की मिलौनी या सम्मिलित अवस्था है।

ऐ राम! मन ऊपर जाता है नीचे जाता है और बीच में फैलता है नीचे स्थूल देह है ऊपर कारण देह है बीच में सूक्ष्म देह है।

जब मन स्थूल देह में आता है उसकी धार से जीवित होकर आंख देखती हैं, कान सुनता है, नाक सूँघती है, वाणी बोलती, पांव चलता और हाथ पकड़ता है और जब मन अपने निजस्थान बीच में बैठता है तब सोचने वाला, अनुमान करने वाला और ज्ञान वाला बनता है इसका स्थान बीच में है और जब यही मन ऊँचा चढ़कर कारण देह में उपस्थित होता है तो इसी उपस्थित होने का नाम उपासना है, उपासना सस्कृत दो शब्द उप (समीप) और आसन (बैठने) से बना है। तुम इस युक्ति से समझ सकते हो कि ज्ञान ऊँची अवस्था है या उपासना ऊँची अवस्था है। कर्म निचला ज्ञान बिचला और उपासना ऊँची है।

राम—यह तो मैं समझ गया अब इस विषय में अधिक प्रश्न नहीं करना है।

——:o:——

सातवाँ समुल्लास

जनकपुर में आगमन

गंगा को पार करके तीनों पथिक आगे की तरफ़ चले, जनकपुर के समीप आये जनक बड़ा प्रतापी राजा था। यह राजा ही नहीं था। बहुत बड़ा ज्ञानी ध्यानी था। ऋषि, मुनि और उस समय के बड़े बड़े अनुभवी पण्डित, तपस्वी, योगी उससे शंका निवारण करते और ज्ञान की प्राप्ति करते थे। वह इन सबका गुरु कहलाता था। शरीरधारी होते हुए वह अशरीर था। उसमें शरोर का अध्यास नहीं था। जीवन मुक्ति की ऊँची अवस्था को पार करके वह जीते जी देह में रहता हुआ विदेह (देह रहित) कहलाता था।

उस राजा के नगर का क्या कहना! देश बसा हुआ! नगर के चारों तरफ़ रमणीक वाटिकायें लगी हुईं! लहलहाती हुई खेती! सब के सब कला कौशल! ऊँचे २ भूधरें दूर से दृष्टि में आते थे उन पर सोने के कलश जगमगा रहे थे।

विश्वामित्र ने एक रमणीक अँबराई (आम की वाटिका) देखी। राम से कहा, "यह स्थान उत्तम है तपस्वियों के रहने योग्य है। यहां ही रहना उचित है"

राम ने उत्तर दिया, "जैसी आपकी आज्ञा।"

और एक सघन छाया वाले बट (वृक्ष) के नीचे इनका डेरा डाला गया।

जनक ने सुना कि मिथिला नगर के समीप विश्वामित्र ऋषि दो बालकों के साथ आकर ठहरे हैं वह इनसे मिलने आया। दण्ड प्रणाम किया, परस्पर कुशलाई पूछी।

जब जनक की दृष्टि राम और लक्ष्मण के रूप पर पड़ी। देखते ही मोहित होगये। ऋषि से पूछा यह किसके बालक हैं? विश्वामित्र ने उत्तर दिया "यह अयोध्या के राजा दशरथ के लड़के हैं इनका नाम राम और लक्ष्मण हैं।"

जनक उठकर दोनों राजकुमारों से मिला, कहने लगा। मैं धन्य हूँ और मेरा नगर धन्य है जैसे आपने आज अपने आगमन से सुशोभित किया है। अब आप नगर में पधारिये और मुझे अपनी सेवा का अवसर प्रदान करके कृत्य कृत्य कीजिये।

तीनों उठे, जनक के साथ नगर में आये और उसकी पाहुनशाला में ठहरे। जनक ने अच्छे प्रकार उनके रहने सहने का प्रबन्ध किया। सबने खाया, पिया, सोये सुख आनन्द से रात काटी। जब प्रातः काल का जगमगाता हुआ सूर्य निकला यह उठे न्हाये धोये, पूजा पाठ किया।

लक्ष्मण को नगर देखने की इच्छा हुई। राम ने गुरू से कहा "लक्ष्मण जनकपुर को देखना चाहते हैं आपके भय से मुँह नहीं खोलते।" विश्वामित्र ने कहा "भय किस बात का? तुम विद्यार्थी हो जगह जगह जाने फिरने से विद्या में वृद्धि होती है। जाओ देख दिखा आओ। इससे अच्छी और कौन बात होगी। मैं यहाँ ही अकेला रहूँगा। मेरा नगर में जाना उचित नहीं है।"

गुरु की आज्ञा पाकर दोनों राजकुमार उठे। नई जगह थी कभी देखा सुना नहीं था। कोई साथ होता तो वहाँ के सुन्दर स्थानों को ले जाकर दिखा देता। लेकिन ज्योंही यह पाहुनशाला के बाहर निकले बहुत से मचले लड़के इनके साथ हो लिये, राम और लक्ष्मण की जोड़ी विचित्र थी। देखने वाले चकित हो रहे थे। नगर वासी तो इनके समीप नहीं आये। नगर के लड़के चारों तरफ़ हो लिये। थोड़ी ही देर में उनके साथ इनकी मित्रता होगई। बच्चों में सभ्यता का छल कपट नहीं होता। वह इन्हें इधर लेगये उधर लेगये, प्रेम प्रीति से नगर के सुन्दर स्थान दिखाते गये।

राम लक्ष्मण के आने का समाचार मिथिलापुर में आग के समान फैल गया। जिन लोगों ने सुना घर के काम काज छोड़ कर इनके देखने को दौड़े

और सहस्रों नेत्रों से इनका सुन्दर स्वरूप देख देख कर प्रसन्न हुए।

राम का रंग नीले कमल के समान! लक्ष्मण का गोरा रंग! तन पर ब्रह्मचार्यों के पीले वस्त्र धारण किये हुए! माथे पर चन्दन का तिलक लगा हुए! चीते जैसी कमर! सिंहवत चाल! कंधे पर धनुष और पीठ से तरकश बँधे हुए! लम्बी लम्बी बाँहें! गले में फूलों के हार पड़े हुए! तिरछी चितवन! रसीली आँखें! सारे शरीर से राजपूती बाँकपन! बरसती हुई नख से शिख तक सुन्दरता के साँचे में ढले हुए! माथे पर जगमगाता हुआ सूर्यवंश का तेज झलकता हुआ!

दो दो लड़कों ने दोनों भाइयों के हाथ पकड़ रक्खे थे, जब यह लड़के अपने अपने घरों के समीप पहुँचते, प्रेम की बाणी में राजकुमारों से कहते "राम! यह मेरा घर है क्या तुम मेरे घर न चलोगे?"

भोले भाले सरल स्वभाव वाले राम हँसते और मुस्कराते हुए इनके घरों को चले जाते। घर के मां, बाप, भाई, बहिन इनको देख कर बलायें लेने लग जाते थे, इस प्रकार यह घूमते फिरते सब के आनन्द को आनंद देते हुए नगर के चौक में पहुँचे। सड़कें लम्बी चौड़ी थीं, मकान ऊँचे और खुले हुए थे, बीच में किसी जगह फुव्वारे छूट रहे थे।

उनके घरों की छत्तों पर सेठों और महाजनों की स्त्रियाँ और लड़कियाँ बैठी हुई इनको देख रही थीं। यह नगर में अचानक पहुँचे थे।

फिर भी बहुत सी स्त्रियों ने उन्हें देखकर ऊपर से फूल बरसाये, हाथ बाँध कर उन्होंने सर उठा कर उनको नमस्कार किया। एक स्त्री ने हँसी दिल्लगी में ऊपर से कहा "क्या तुम नर नारायण हो जो हमको आनन्द देने आये हो?" दूसरी ने कहा "यह चाहे नर नारायण न हों लेकिन आकाशवासी देवता हैं जो पृथ्वी पर उसकी लीला देखने आये हैं।"

स्त्रियों की बातें बड़ी लम्बी चौड़ी और रहस्य भेद से भरी हुई होती हैं, एक बोली "यह देवता नहीं हो सक्ते यह देवताओं से भी बढ़ कर हैं" दूसरी ने कहा "ऐ सच तो है, विष्णु के चार हाथ, ब्रह्मा के चार मुख, शिव के तीन आँखें! उनमें क्या सुन्दरताई है? विधाता ने जब लाखों रूप बना २ कर बिगाड़े होंगे तब ऐसी सुन्दर जोड़ी कहीं बनी होगी।" एक स्त्री ने ऊपर से मुस्करा कर कहा "क्या कहीं तुम कामदेव के अवतार तो नहीं हो जो बालकों के रूप में फूलों के बाण से लोगों के हृदय को बेधने आये हो" राम मुस्कराये, देर तक ठहरना अनुचित था आगे को बढ़े और स्त्री पुरुषों का चित्त अपने साथ ले गये। कैसे सम्भव था कि कोई इन्हें देखता और भूल जाता!

तमाम शहर में इनकी चर्चा होने लगी, सौ मुँह हज़ारों बातें! सब अपनी २ कहते थे। किसी की नहीं सुनते थे। एक पुरुष ने कहा यह दशरथ के राजकुमार हैं, ब्रह्मचारी हैं, दूसरा बोला—न हो यह धनुष यज्ञ देखने आये हैं। तीसरे ने कहा—अभी यह बालक हैं, शादी ब्याह और स्वयंवर की बातों को क्या समझते हैं?

विश्वामित्र ऋषि को निवेदन पत्र गया होगा वह आये और अपने साथ उन्हें भी लाये होंगे!

कुए की जगत पर खड़ी हुई अच्छे घरों की स्त्रियां पानी भर रही थीं। इन्हें देखकर अपना काम भूल गईं और एक टक होकर इनका रूप देखने लगीं, पहिले बेसुधि होगईं थीं, जब सुधि बुधि आई, एक ने कहा "यह सांवरा बालक राम सीता का बर होने के योग्य है, क्या अच्छा हो कि जनक सीता के साथ इसका सम्बन्ध कर दें, ऐसा अच्छा बर संसार में कहाँ मिलैगा!" दूसरी बोली "लड़का कोमल शरीर वाला है। इतना बलवान नहीं प्रतीत होता" दूसरी ने मुँह खोला—तब तो ब्याह हो चुका। न शिव धनुष टूटैगा न सीता ब्याही जायगी। तीसरी बोली—सम्भव है कि राम का रूप देख जनक अपनी दृढ़ प्रतिज्ञा छोड़ दें, चौथी ने कहा—यह कभी न होगा। सबको देखते भालते और अपने विषय में किसी २ की बातें सुनते हुए राम धनुष की यज्ञशाला में पहुँचे। और उसके मंडप की रचना देख कर आश्चर्य करते हुए स्थान

की तरफ़ लौटने लगे। नगर के बालक उनके प्रेम में निमग्न हो रहे थे। बड़ी कठिनाई से समझा बुझा कर उन्हें उनके घर भेजा। और आप हँसते खेलते हुए गुरू के समीप आकर नमस्कार किया।

—:o:—

इतिः—महारामायणम् पहिला आरम्भ खण्ड का द्वितीय भाग समाप्त।

महारामायणम्

प्रथम आरम्भखंड

तृतीय भाग

पहिला समुल्लास

सीता का प्रेम

राम से विश्वामित्र ने कहा। यहाँ से थोड़ी दूर पर राज वाटिका है, सवेरे का समय है चले जाओ वहां से फूल तोड़ लाओ।

लक्ष्मण तो नगर में जाने का बहाना ही ढूंढ़ रहे थे, गुरू की आज्ञा सुन कर प्रसन्न हुए और दोनों भाई बाटिका में आये, जगह बड़ी शोभायमान, रमणीक, और मनोहर थी, नाना प्रकार के वृक्ष फल फूलों से लदे हुए थे। बीच में एक तालाब था जिसमें कँवल के फूल खिले थे, माली ने उस तालाब के फूल लगाने में बड़ी कारीगरी दिखाई थी। बीच में लाल रंग के कमल थे, इनके चौफेर स्वेत रंग के और फिर इन स्वेत रंग वालों के चौफेर नीले कमल और नीले कमलों के गिर्दागिर्द पीले रंग के कमल थे। सारा तालाब फूलों से भरा हुआ था। ऐसा प्रतीत होता था जैसे कोई रंग बिरंगा गलीचा बिछा हुआ है। प्रवंध सब का गोलाकार था, लक्ष्मण उसे देख कर प्रसन्न हुए, बोले नीले कमल को बीच में फिर श्वेत रंग को इसके चौफेर देना था, जब सुन्दरताई और अधिक होती। राम यह सुन कर हँसे, माली पास खड़ा हुआ इनकी बातें सुन रहा था। सामने आकर खड़ा हुआ "अब ऐसा ही किया जायगा। और वह आपके आने का चिह्न रहेगा राम साँवले हैं आप स्वेत वर्ण के हैं। मैं और प्रकार के कमलों की ताक में हूँ। यह फूल इस देश में कम मिलते हैं।"

राम ने कहा "भाई! हम गुरूजी की पूजा के लिये फूल लेने आये हैं।

माली—आपकी बाटिका है, मैं सेवा के लिये तत्पर हूँ। जिस २ प्रकार के फूल की आवश्यकता हो मैं तोड़ कर ला सकता हूँ।

राम—फूल तो हम अपने हाथ से तोड़ेंगे गुरू की पूजा की सामग्री है, हाँ तुम्हारी आज्ञा के बिना हम किसी फूल को हाथ नहीं लगा सकते।

माली—दक्षिण दिशा में चले जाइये, वहाँ दुर्गा देवी का मन्दिर है, उसके सामने फूलों की क्यारी में अनेक फूल खिले हुए हैं। आपका जितना जी चाहे तोड़ ले जाईये। मैं तालाब में जाकर आपके लिये एक टोकरे में कँवल के फूल भेंट करूँगा। राम लक्ष्मण दक्षिण की तरफ़ गये। जहां दुर्गा जी का मंदिर था और उसके समीप की क्यारी में फूल चुनने लगे। यह किसी बड़े वृक्ष की आड़ में थे। अप्सराओं का समूह मन्दिर के पीछे की तरफ़ से दुर्गा जी की पूजा करने आ रहा था। उनके पांव के झाँझन और छागल का शब्द इनके कान में पड़ा। ऐसा प्रतीत हुआ जैसे कामदेव अपनी सेना को साथ लिये विजय करने के निमित्त नगाड़ा बजाता हुआ आ रहा था। राम लक्ष्मण दोनों को कुछ आश्चर्य्य हुआ। गाछ की आड़ से बाहर निकले

और अप्सराओं के दल का आमना सामना होगया इन्होंने उन्हें और उन्होंने इन्हें देखा यह तो पहिले ही से चकित हो रहे थे।

राम लक्ष्मण फिर वृक्ष की आड़ में चले गये और लड़कियां पूजा के निमित्त देवी के मंदिर में गईं। इधर राम ने लक्ष्मण से कहा, हो न हो यह लड़कियाँ देवी पूजा के लिए आई हैं और इनमें जो सबसे अधिक सुन्दर कन्या है वह सीता ही है। स्वयम्वर होने वाला है, विवाह या स्वयम्वर से पहले गौरी देवी के पूजने की रीति है। मैंने आज तक इस लड़की के समान कोई सुन्दरता की मूर्त्ति नहीं देखी। ब्रह्मा ने इसके बनाने में अपनी सारी कारीगरी लगादी है।

उधर सीता ने अपनी सहेलियों से पूछा। यह दो सांवले और गोरे सूर्य्य वृक्ष की छाया के बादलों की घटायें चीर कर कहां से निकल पड़े। सखियों ने कहा "यह राम लक्ष्मण हैं जो दशरथ नामक अयोध्या नरेश के राजकुमार है, अभी इनकी आयु थोड़ी है, धनुष यज्ञ और स्वयम्वर को देखने के विचार से अपने गुरु के साथ तपस्वी ब्रह्मचारियों के भेष में आये है।"

सीता की आंखे बन्द होगईं, राम की छवि की छाया उनमें खुब गई, पांव चलने में लड़खड़ाने लगे, सखियों ने जान लिया यह प्रेम ग्रसित होगई। और मोहजाल में फँस गईं। हँसी दिल्लगी करने और खिल्ली उड़ाने लगीं। "आंखे खोलो" स्वयम्वर के दिन राजकुमार को भरी दृष्टि से देख लेना। सुधि करो बेसुधि न बनो। राजकुमार फूल चुनने आये हैं, कहो तो बुला दूँ फिर देखो, सीता लजा गई। यह उसे पकड़ कर मंदिर में लेगईं। कहाँ की पूजा कहां का पाठ! सीता तो बावली सी बन गई, आखें बन्द की वद! सखी सहेलियों ने देवी के सामने लाकर खड़ी कर दिया। दो देवियां आमने सामने आगईं। वह तो पत्थर की थी यह मांस और चमड़े की मूर्ति थी। इनमें से कौन अधिक सुन्दर थी इसको कौन कह सकता है? एक जड़ और एक चैतन्य थी! लेकिन इस समय तो दोनों एक जैसी जड़ के रूप की प्रतीत होने लगीं।

प्रेम बाण हृदय लगा, साने सकल शरीर।
धीरज भागा हृदय मे, मन नहिं धारे धीर॥
घायल की गति और है, औरन की गति और।
प्रेम हृदय में बस गया, गया ठिकाने ठौर॥
दृष्टि मेल का खेल है, प्रेम प्रीति व्योहार।
प्रेम के आते ही मिटा, मन का सोच विचार॥

सहेलियों ने सीता का हाथ पकड़ कर हिलाया "चेत करो, पूजा करने आई हो या देवी के मंदिर में ब्रह्मदेव के ध्यान की समाधि लगाने आई हो! समाधि बैठकर लगाई जाती है। खड़े २ कोई योगी समाधि नहीं लगाता।"

बात कही गई। लेकिन सुनने वाला कौन था वह तो जहां का तहाँ पहुँच गया था।

आँख बन्द मुख बन्द है, कान में बद लगाय।
सुनना कहना देखना, तीनों गये भुलाय॥
बाणी निर्वाणी बनी, आँख में पट्टी बाँध।
कान सुने अब शब्द क्या, सुरति भई बिस्माध॥
प्रेम आया तब जाय नहिं जाय न आया प्रेम।
प्रेम प्रकट मन में भया, सब गया संयम नेम॥

लड़कियाँ डरीं—सीता को हो क्या गया! यह कहीं बावली तो नहीं हुई; फिर हाथ पकड़ कर हिलाया, हार थमाया देवी के गले में डाल दो। फूलों की माला को इसके हाथों ने स्वीकार नही किया। वह इसके हाथ से छूट कर इसी के पाँव पर गिर पड़ी।

एक सखी बोली "देवी की पूजा हो चुकी, सीता देवी के सामने आकर अपनी पूजा आप करने लगी"

दूसरी सहेली—लेकिन दुर्गा अप्रसन्न नहीं है। ऐसा प्रतीत होता हैजैसे वह मुस्करा रही है।

तीसरी सहेली — चल सीता! तेरी पूजा स्वीकार हो गई। देवी तेरा मनोर्थ सिद्धि करैगी—अब चल नहीं तो रानियाँ हमको बुरा भला कहैगी, देर हो रही है।

सीता के मुँह से वाणी नहीं निकली उसे शायद ज्ञान भीन रहा हो, कि यह क्या कह रही हैं और क्या सुन रही हैं।

छवि प्रीतम हिय बसी, मुख नहिं आवै बैन।
एक दशा मन की भई, क्या दिन और क्या रैन॥
मन वाणी चित खो गये, अपनी गति बिसराय।
प्रीतम प्रेमी से मिला, प्रेमी प्रेम समाय॥

धरें बांधें की पूजा समाप्त हुई। सहेलियाँ घर पकड़ करके उसे मंदिर से बाहर लाईं और उसी दशा में रनवास को लेकर चली गईं। रानियाँ ने सीता की दशा देखी, वे बेसुध थी, पाँव किसी के हाथ में हाथ किसी के हाथ में! सहेलियों से पूछा "इसे क्या हो गया! पहिले तो यह चुप थीं फिर अधिक पूछा पेरवी करने पर भाँड़ा फोड़ दिया।"

माताओं ने अलग ले जाकर उसे एक जगह सुला दिया। इस रोग की औषधि नींद है। यह सो जायगी फिर अपने आपे में आयेगी।

दूसरा समुल्लास

सीता की उत्पत्ति

दूसरे दिन जनक विश्वामित्र से मिलने आया। ऋषि घर के भीतर थे, राम और लक्ष्मण बाहर खेल रहे थे। जनक को देखा, आये और नमस्कार किया। जनक ने ऋषि के दर्शन की इच्छा प्रकट की। राम ठहर गये। गुरू की आज्ञा पाकर मिथिला नरेश को उनके समीप ले गये। ऋषि ने दोनों भाइयों को अपने पास बिठा कर राजा से पूछा "आपका आगमन इस समय किस लिये हुआ! जनक ने उत्तर दिया "कल सीता का स्वयवर है मेंने प्रतिज्ञा की है कि जो मनुष्य शिवजी के धनुष को तोड़ेगा?-मैं अपनी प्यारी बेटी सीता उसे ब्याह दूँगा देश २ के राजे महाराजे, सेठ साहूकार, ब्राह्मण और शूद्र, चांडाल, यवन आर्य और वसु सब आये हैं। कल सब के बल और पराक्रम की परीक्षा है। आप भी इन राजकुमारों के साथ धनुष यज्ञ के मंडप में पधारिये और उस की शोभा बढ़ाइये।

विश्वामित्र—"जनक! तुम विदेह और परम ज्ञानी और ऋषियों मुनियों के गुरू हो। सब तुम्हारे दर्शन करने आये हैं। मैं इसी स्वयंवर देखने को आया हूँ। और इन राजकुमारों को भी साथ लाया हूँ। मैं समय पर अवश्य आऊँगा। लेकिन यह तो बताओ तुमने धनुष तोड़ने की भीष्म प्रतिज्ञा क्यों की? इसका कोई न कोई कारण होगा।"

जनक "मैं आपको आद्योपान्त यह कहानी सुना देता हूँ। एक समय देश में काल पड़ा खेती झुलस गई। प्रजा भूक से मरने लगी, नदी नालों का पानी सूख गया, मुझ से कहा गया कि राजा हल जोते तो पानी बरसे, मैंने अपनी प्रजा की प्रार्थना स्वीकार कर ली। हल में बैल जोते और खेत जोतने गया। खेत जोता गया। उस खेत की पृथ्वी में एक हाँडी गढ़ी हुई थी। जब उसे हल की ठेस लगी, हाँडी फूट गई और उस हाँडी के भीतर एक रोती बिलखती लड़की निकली।

उसे देख कर मेरे मन में करुणा आई। मैंने उस बच्ची को अपनी गोद में उठा लिया उसी समय आकाशमंडल में बादलों की काली २ घटायें उठीं और रिमझिम२ पानी बरसने लगा। मैं उस लड़की को गोद में लिये हुए भीगता हुआ महल में आया, कपड़े बदले लड़की को रानी की गोद में देकर कहा कि यह मेरी लड़की है। वह हल की लकीर में मिली थी मैंने उसका नाम सीता रक्खा। सीता संस्कृत में हल की लकीर को कहते हैं। मैं उसके प्रेम के बंधन में बँधा हूँ, लड़की बहुत प्यारी है। मीठी २ बातें करती है इसने अपने प्रेम के बंधन में मुझे जकड़ रक्खा है। संस्कृत "सी (बाँधना-जकड़ना) इस दृष्टि से भी मैंने उसका नाम सीता रक्खा। सीता नाम रखने के यह दो कारणहैं।"

विश्वामित्र "क्या आप जानते हैं कि यह किस की लड़की है? और किस निर्दई ने उसे हाँडी में बंद कर के पृथ्वी में गाढ़ दिया था?"

आप राजा हैं जाँच तो अवश्य ही की होगी ।

जनक—न मैंने यह बात किसी पर प्रकट की न यह भेद किसी को बताया, मैं यह जानता भी नहीं और न जानना चाहता हूँ। मेरे हल चलाने से यह उत्पन्न हुई, इस लिये यह मेरी अपनी बेटी है और लोग इसे इसी कारण से जानकी भी कहते हैं। जनक से उत्पन्न हुई लड़की जानकी कहलाती है, यह मेरी बेटी का दूसरा नाम है।"

विश्वामित्र हँसे—"क्यों न हो तब ही तो तुम विदेह कहलाते हो, विदेह कहलाने के कारण का आज मुझे पता मिला।

जान बूझ जड़ हो रहे, तजै जगत की आस ।
गति विदेह उसको मिले, ऋद्धि सिद्धि सब पास।
जानकार जो नर बना, वह क्या जाने भेद ।
जान बूझ अनजान जो, उसके हाथ में वेद ॥
हाँ और नहीं के मध्य में, यह रहस्य भर पूर ।
अज्ञानी कुछ निकट है, नर ज्ञानी हैं दूर ॥

जनक अपनी बारी पर मुस्कराये, राम लक्ष्मण को पता नहीं लगा कि दोनों के हँसने का कारण क्या है ? फिर भी चुप चाप बैठे रहे क्योंकि मुँह खोलना असभ्यता समझा जाता है।

विश्वामित्र ने फिर पूछा, "यह तो मैं समझ गया। अब यह बताइये कि आपने शिव के धनुष तोड़ने की प्रतिज्ञा क्यों की ?" जनक, "हे सर्वज्ञ और त्रिकाल दर्शक ऋषि ! मेरे वंश में कई पीढ़ियों से शिव का धनुष रक्खा हुआ है। वह बहुत भारी और कठोर है। जब से एक स्थान में रक्खा हुआ है, तब से वहाँ ही पड़ा है। किसी को साहस नहीं हुआ कि उसका स्थान बदले।"

एक दिन मैंने सीता से कहा "बेटी बहुत दिनों से किसी ने न धनुष के घर में झाड़ बुहारू किया, न किसी ने लीप पोत की। तू उस जगह को शुद्ध करदे, सीता उठी स्वभाविक रीति से धनुष को उठाया और फिर लीप पोत कर के अपने स्थान पर रक्खा। मुझे बड़ा आश्चर्य हुआ। मैंने सीता में असाधारण बल देखकर प्रतिज्ञा की जब वह धनुष को उठा सकती है तो इसके पुरूष को अधिकतर बलवान होना चाहिए मेरे प्रतिज्ञा करने का यह कारण है।"

ऋषि और जनक दोनों हँसे, राम ने उन्हें हँसते और मुस्कराते हुए देख कर जाना कि इस प्रसंग में कोई न कोई रहस्य है, लेकिन फिर भी चुप रहे बोलना या प्रश्न करना उचित नहीं था। राजा जनक चला गया। राम मन ही में बिचारते और समय के ताक में लगे रहे।

जब रात को ऋषि सोने लगे, दोनों भाई पांव दबाने आये, प्रश्न का अच्छा समय मिल गया।

राम ने पूछा—मैं अपनी ढिठाई की क्षमा मांगते हुए आप से प्रश्न करता हूँ कि सीता की उत्पत्ति का रहस्य क्या है ?

विश्वामित्र—"तुम यह प्रश्न क्यों करते हो !"

राम—"आप दोनों मुस्करा रहे थे, मैंने समझा कि इस मुस्कराने में कोई न कोई भेद अवश्य है।"

विश्वामित्र—"सुनो राम ! तुम अधिकारी और ब्रह्म के अवतार हो तुम ऐसे प्रश्न कर सकते हो साधारण मनुष्य का यह कर्तव्य नहीं है, मैं एक प्रकार गंगा की उत्पत्ति के प्रसंग में यह रहस्य तुमको बता चुका हूँ और दीक्षित और शिक्षित भी कर चुका हूँ अब इस पर कुछ विशेष प्रकाश डालने का यत्न करता हूँ।

जब गंगा सुमेरू पर्वत पर गिरी उसकी धार ने पूरब पच्छिम या दांये बाँये को पृथक कर दिया और वह पृथ्वी पर गिरी और वहां केन्द्र बनाकरठहर गई। इस केन्द्र का नाम मूलाधार है। जनक मन है जो जनता है या उत्पन्न करता है, उसे जनक कहते हैं, और उत्पन्न होने को भी संस्कृत में जनक कहते हैं जब इस मन की शक्ति क्षीण होने लगती है तो इसे हल जोतने या, सोचने विचारने की आवश्यकता होती है, इससे दांये बांये या पूरब पच्छिम को पृथक् करने वाली लकीर प्रकट हो जाती है इसी का नाम सीता है, वह देवी है, शक्ति है और शुषमना नाड़ी है। यह मूलाधार पर कुण्डलाकार होकर जसी हुई बैठ जाती है। उस समय उसी का नाम कुण्डलनी शक्ति हो जाता है।

साधन करने से यह जाग कर, मूलाधार से उठ

कर, चार बिचले चक्रों को बेधती हुई आँजना चक्र (तीसरे तिल) पर सर्पाकार होकर खड़ी हो जाती है, आँजना चक्र दोनों भौओं के बीच में है। यही शिव का धनुष है, यह धनुष के आकार का होता है, यह कुण्डलनि या लकीर वाली सीता इसे उठा देती है। यह रहस्य है!"

राम—"यह धनुष कैसे तोड़ा जाता है ?"

विश्वामित्र—राम को वह साधन सिखा कर कहा—"यह धनुष केवल तुम तोड़ सकोगे—दूसरे का पराक्रम नहीं हैं। लेकिन जल्दी न करना चाहिए ?"

राम दीक्षित तो पहले ही से थे। गायत्री के सावित्री रहस्य का साधन करते चले आरहे थे। अब और भी इस क्रिया योग के विषय पर प्रकाश पड़ गया और मन में बहुत प्रसन्न हुए।

तीसरा समुल्लास

सिया स्वयंवर।

कोई यह न समझे कि यह प्रेम इक तरफ़ा डिगरी है, आकर्षण शक्ति दोनों ही तरफ से होती है, प्रेमी और प्रीतम! दोनों के हृदय एक दूसरे की तरफ़ आकर्षित होकर झुके रहते हैं।

उधर सीता के हृदय को प्रेम बाण लगा, इधर उसी बाण ने उलट कर राम को भी घायल कर दिया। भेद इतना था राम धीर वीर गम्भीर थे अपने आप को सँभाल रक्खा। सीता का हृदय बहुत कोमल था वह सँभल न सकी, राम को छोटे भाई और गुरू का ध्यान था। उन्होंने गुरू के इष्ट पद को सर्व प्रिय बना रखा था। सीता का इष्ट कुछ नहीं था। उसने राम को अपना इष्ट बना लिया।

राम गुरू के आज्ञाकारी शिष्य थे। तन, मन, धन सब गुरू पर अर्पण। सीता पर किसी के आज्ञाकारी होने का बोझ नहीं था। वह राम के देखते ही सौ जान से उन पर मोहित होगई। तन, मन, बुद्धि, सोच, विचार, समझ, बूझ सब कुछ बिना मांगे हुए राम के चरणों में न्योछावर कर बैठी।

राम रात भर करवटें बदलते रहे, नींद नहीं आई। कैसे आती! वहाँ तो नींद की जगह किसी और ही शक्ति ने ले रक्खी थी। रात के समय आकाश में चन्द्रमा निकला, सीता का स्मरण आया सीता चन्द्र मुखी है, उसके रूप में सुन्दरता का तेज है। लेकिन चन्द्रमा और सीता में भेद है, इसके मुँह पर काले धब्बे पड़े हुए हैं। सीता का मुख दोष रहित है रात इसी बिसूर में बीत गई। यह कुक्कड़ का शब्द सुन कर उठे। लक्ष्मण को जगाया। नहा, धोकर गुरू की पूजा सामग्री का ध्यान आया। जनक का माली कमल फूल की डाली दे गया था। सोचने लगे, सीता कमल के समान कोमल है, उसका गोरा रंग भी इसके स्वेत रंग से कुछ मिलता जुलता है, लेकिन वह कुछ और है और यह कुछ और है, इसमें बू, बास, रंग, रूप सब कुछ सही लेकिन यह फूल है, सीता फूल नहीं है वह इस प्रकार सोचते हुए गुरू के सन्निकट आये। नमस्कार किया। विश्वामित्र बोले, "राम आज थोड़ी देर पीछे स्वयंवर-शाला में चलना है। तैयार रहना। मैं भी पूजा पाठ से निबट लेता हूँ।"

राम ने कहा, "एवमस्तु सत बचन!"

अभी ऋषि पूजा ही में बैठे हुए थे, कि शतानंद जनक का दीवान उन्हें बुलाने आगया। शतानंद को कुछ देर वहाँ बैठना पड़ा। ऋषि उठे जटाजूट सँभाली अँचला तन पर डाला और राजकुमारों के साथ धनुष मंडप में आये। मंडप मनुष्यों से खचा-खच भरा हुआ था। तिल रखने को जगह नहीं थी।

धनुष बीच में एक चबूतरे पर रखा हुआ था। उसके चौ फेर राजकर्मचारी जनक के साथ बैठे हुए थे। जाने आने वालों के लिए बहुत जगह बीच में छूटी हुई थी। मंडप गोलाकार था। धनुष के चबूतरे के इर्द गिर्द बहुत सी गैलरियाँ बनी हुई थीं, उन पर राजे महाराजे अपने अपने पदानुसार विराजमान् थे। ऊपर और लोग बैठे हुए थे। इन सबके ऊपर गैलरी में रानियाँ और नगर की स्त्रियाँ बिठाई गई थीं। मंडप मणि, मुक्ता से सजाया गया था, रंग बिरंगे फूलों के बन्दनवार लटक रहे थे और मंडप में बैठे हुए तेजस्वी वीर अपने तेज में दमक रहे थे। जैसे कृष्ण पक्ष की अँधेरी रात में आकाश मंडल के तारे जगमगाते हैं।

विश्वामित्र सबसे पीछे पहुँचे थे इनके बैठने के लिए बीच की गैलरी में तीन कुर्सियाँ खाली रक्खी हुई थीं। शतानन्द ने उन्हें लाकर उन पर बैठाया। राम का आगमन उस अवसर पर अत्यन्त आश्चर्य-जनक प्रतीत हुआ। सारे राजे रात के तारों के समान दमक रहे थे, इन दोनों राजकुमारों के पहुँचते ही उनके चहरों का रंग उड़ गया। जैसे सूर्य के निकलने पर प्रभात के तारे तेज हीन हो जाते हैं। यह राजकुमार सूर्य वंश से थे।

मंडप में एक तरह का शोर सा मच गया। सब इनके देखने के लिए उठ खड़े हुए और राजकर्म-चारियों ने बड़ी कठिनाई से उन्हें इसी अपनी जगह शान्ति से बैठाया।

जब विश्वामित्र और राम लक्ष्मण मचान (गैलरी) की कुर्सियों पर सुशोभित हुए। जनक की आज्ञा पाकर एक भाट (बंदीगण) उठा और दाहिने हाथ को ऊँचा करके ऊँचे स्वर से सबको सुना कर कहा "राजे महाराजे महाशयगण! आप पर विदित हो कि आज का दिन सीता राजकुमारी के स्वयम्बर के लिए नियत हुआ है। जो सबसे ऊँचे मचान पर स्त्रियों के साथ बैठी हुई है। बीच के चबूतरे पर यह धनुष रक्खा हुआ है।

जो मनुष्य इसे तोड़ देगा। सीता उसे ब्याह दी जायगी। यह हमारे राजा की प्रतिज्ञा है। आपको आज ईश्वर ने सुकुमारी प्राप्त करने का अवसर दिया है। अपने २ बल, पौरुष, पराक्रम और सौभाग्य की परीक्षा करिये कराइये। सीता से सुन्दर कन्या आज इस जगत् में कोई नहीं है।

भाट ने उँगली सीता की तरफ़ उठाई। सबकी दृष्टि सीता पर पड़ी। वह मचान पर पूर्णिमा के चाँद के समान ऊँची बैठी हुई शोभायमान होरही थी सब उसे देखकर चकित होगये।

बारी २ पर सारे शूरवीर; योधा, सूरमा उठे, धनुष के उठाने में सारे शरीर का ज़ोर लगा दिया। धनुष इतना भारी था कि उसने जगह नहीं छोड़ी, और टस से मस नहीं किया। यह लज्जित होकर अपनी २ जगहों पर आकर बैठ रहे। और सरों को झुका लिया, श्री हत होगये।

राजे महाराजे उठे, सब आये, बल लगाया, धनुष को टलना और खिसकना नहीं था। वह न टला और न खिसका।

एक लङ्कापति रावण रह गया था, साथियों ने उससे कहा "तुम जाकर हाथ लगाओ" रावण ने दूर से हाथ जोड़कर धनुष को नमस्कार किया और कहा "यह गुरू की कमान है—शिवजी मेरे इष्ट गुरू हैं, मैं इसका अपमान और अनादर नहीं कर सक्ता।" जनक ने रावण की बात सुन ली अब कोई पुरुष उस मंडप में ऐसा दिखाई नहीं पड़ा। जिसे धनुप के पास जाने का साहस होता—जनक को बड़ा शोक हुआ। थोड़ी देर तक राजा चुपचाप बैठा रहा फिर बैठा न गया—चबूतरे के पास खड़े होकर उसने हृदय वेधक शोर में सबको सुना कर कहा "महोदयगण! पृथ्वी से रणवीर धीर, गम्भीर, योधा उठ गये! सूरमाओं का नाश होगया! आप लोग यहाँ सुकृति और यश प्राप्त करने आये थे। आप सब के सब भाग्य हीन हैं, सीता के ब्याहने का साहस किसी में नहीं है, धनुप इतना बोझल होगया कि तोड़ना तो अलग रहा, कोई उसे हिला तक

नहीँ सका। बिधाता ने शायद सीता के लिए वर नहीँ रचा। मैं क्या करूँ बे बस हूँ प्रतिज्ञा कर बैठा। न यह धनुष टूटेगा और न सीता ब्याही जायगी। मुझे बड़ा शोक है! आप मेरे पाहुने हो मैं आये हुए मिहमान और अतिथियोँ का कोई अपमान नहीँ करता। मैं अपमान के बचन नहीं बोलता। साधारण रीति से कहता हूँ। पृथ्वी मंडल में अब वीर नहीँ रहे। जाइये अपने २ घरोँ को चले जाइये। अब जनकपुर में रहकर क्या कीजियेगा।

यह कह कर जनक बैठ गया। ऊपर के मचान पर बैठी हुई स्त्रियों ने हाय २ करना और रोना झींकना मचा दिया। या तो यज्ञशाला पहिले आनन्दभूमि बनी हुई थी या अब वह स्यापे की जगह होगई। इस समय उस मण्डल में करुणा रस का जल अधिकता के साथ बरस गया, आये गये सबको दुःख हुआ। जनक की रानी सीता को गोद से चिपटा कर रो पड़ी। हाय बेटी जगत् में तेरे योग्य कोई वर नहीँ है और रानी को रोती देखकर सब स्त्रियों ने मिलकर कुहराम मचा दिया!

चौथा समुल्लास

लक्ष्मण का उत्साहजनक कथन।

इधर स्त्रियाँ रो रही हैं उधर पुरुष शोकातुर हैं, शान्ति कहीँ है तो केवल राम और विश्वामित्र में है। यह दोनोँ के दोनों उदासीन हैं। न हर्ष है न शोक है। चुपचाप बैठे हुए जगत् की लीला देखा किये।

लेकिन जनक की बातोँ को सुन कर लक्ष्मण के हृदय में क्रोध की अग्नि प्रचण्ड होगई। अपने आप को सँभाल न सके। या तो वही लक्ष्मण था जो राम और विश्वामित्र की आज्ञा बिना मुँह नहीँ खोलता था या अब उनका ध्यान न रखता हुआ, इक बारगी मचान पर उठ खड़ा हुआ। और हाथ उठा कर सबको सुना कर कहा—सद्गणो! साक्षी रहना जनक ने घर पर बुला कर हम सब का बड़ा अपमान किया। सभा में एक रघुवंशी बालक भी बैठा हो तो किसी को साहस नहीँ होता, यह कहे कि पृथ्वी वीरों से खाली होगई। और जनक जानते हैं कि यहां रघुकुल तिलक रामचन्द्रजी विराजमान हैं। जनक ने महा अनुचित बाणी कही है। बिना समझे बूझे हुए राम के होते हुए ऐसी बात मुँह से निकाल दी।

यह कहकर लक्ष्मण क्रोधान्ध होते हुए राम के चरणोँ में झुके और पांव को छू कर कहने लगे, "नाथ! आज्ञा दीजिये। अभी दम के दम में गँद के समान इस सारे ब्रह्मांड को उठा लूँ और पृथ्वी फूल (कुकुरमुत्ता-कूकरमगरजुआता) की तरह उसका तोड़ फोड़ करदूँ जैसे मिट्टी के कच्चे घड़े के तोड़ने में कुछ परिश्रम नहीं करना पड़ता। मैं इस ब्रह्मांड को कुछ नहीं समझता। और यह ब्रह्मांड[1] क्या है? यह निराधार, कूटस्थ, अधिष्ठान[2] रूप सुमेरु पर्वत के आधार पर स्थिर है, मैं इस सुमेरु पर्वत को उठा सक्ता हूँ, हिला सकता हूँ और उसकी जड़ को उखेड़ करके फेंक सकता हूँ। आपके चरणोँ के प्रताप में बड़ा बल है। यह खड़ा हुआ जुग जुगान्तर का पड़ा हुआ धनुष वस्तु क्या है! जिसके तोड़ने में मुझे संकोच हो। मैं इसे कमल की डण्डी के समान उठाकर इसे सात योजन तक दूर फेंक सकता हूँ। कहिये अभी यह खेल दिखाऊँ?

नोट—१—२—३ रामायण में यह शब्द योँ ही नहीं आये। इन सब का अर्थ है जिसका निर्णय इस ग्रन्थ में जगह २ पर कर दिया गया है रामायण योग विद्या की पुस्तक है, जिसकी समझ सिद्ध साधक को आ सकती है।

नहीं हम छोड़ते प्रण को, जो अपने-प्रण पै आते हैं।
इसी से वार जाते हैं, इसी से पार जाते हैं॥
कहां अभिमानहै हममें, स्वाभाविक गुण हमारा यह।
नहीं देते हैं धोखा, और नहीं धोखे को खाते हैं॥
अड़े जिस बात पर पूरा किया, साहस से धीरज से।
समुन्दर फाड़ते हैं शैल से, नदियाँ बहाते हैं॥

लक्ष्मण की बात सुनकर सुनने वालों के हृदय काँप उठे, सबके मन भय भीत होगये, कलेजे दहल गये, और वह वीर इसका रूप प्रतीत होने लगे।

विश्वामित्र चित्त में प्रसन्न हुए, पास बुलाया, सर पर हाथ फेर कर कहा, बैठ जाओ, और वह बैठ गये। जनक को ढाढ़स बँधी—स्त्रियां स्यापा भूल गईं। सब एक टक होकर इस छोटे राजकुमार के बांकपन को देखने लगीं। अहा! क्या अच्छा रूप रङ्ग है इसके अंग २ से राजपूती आन झलकती है। आंखें क्या हैं? लाल रङ्ग के कमल है। जिसमें लाल और स्वेत वर्ण के डोरे दौड़े हुए हैं। सीता को पहिले बड़ा दुख था, वह निराश तो नहीं थी, क्योंकि प्रेमी जन कभी निराश नहीं होते, लक्ष्मण की बातों ने उसके मन के साथ वह वर्ताव किया जो बादल का पानी धान के सूखे खेतों के साथ करता है।

हां! रानियों की समक्ष में लक्ष्मण की बात नहीं आई।

इस दृष्य के पश्चात् विश्वामित्र ने राम से कहा, "वीर उठो! तुम्हारी परीक्षा का समय आ गया है। तुम विधि जानते हो शिव के धनुष को तोड़ दो। जनक का दुख मिटे, सीता का सङ्कट कटे, और उसकी सहमी और डरी हुई माताओं को निश्चय हो जाये कि पृथ्वी पर रघुवंशियों में पराक्रमी, योधा वीर उपस्थित हैं।"

राम गुरु की आज्ञा पाकर उठे, सिंह जैसी चाल! सहज साधारण वृत्ति! न घमण्ड न अहंकार!

राजपूती रूप में, अद्भुत निराली शान थी।
शान में सुख दायनी, आनन्ददायक आनथी।

मचान पर खड़े हुए देखने वालों ने उनके एक रूप में सहस्र २ लीलायें देखीं। सहस्रार का तेज आंखों के सामने आगया!

एक थे इस रूप में कितने ही रूप और नाम थे।
योगियों के इष्ट पद, मुनियों के वह विश्राम थे॥
नारियों की दृष्टि में, जचने लगे वह काम देव।
शोभा प्रकट रूप से थी, राम शोभा धाम थे॥

खड़े होते ही सबकी आंख उन पर पड़ीं, विश्वामित्र ने खुली दृष्टि से उस सावित्री का दर्शन पाया जिसका वह ध्यान लगाया करते थे।

ओ३म् भूर्भुवः स्वः तत् सवितुर्वरेण्यम्

योगियों को वह सिद्धि शक्ति के आकार जचे। ज्ञानियों ने विराट सरूप का जगमगाता हुआ दृष्य देखा।

शूरवीर क्षत्रियों ने उन्हें वीर रस का अवतार निश्चय किया। जो कुटिल, कायर, खल, कामी, थे उन्होंने राम को काल और महाकाल समझा। डर गये।

जनक पहिले चाहे विदेह न रहे हों, अब देखकर देह का सम्पूर्ण अध्यास भूल गये और वह उन्हें अपना बालक मान बैठे। जनक को अभिमान था कि वह मोह में असक्त नहीं हैं, अब आंखें खुलीं राम के प्रेम ने उन्हें मोह ग्रसित बना दिया। रानियां उन्हें कोमल शरीर वाला नन्हा बालक जान बैठी। और आपस में अनाप शनाप बातें कहने लगीं। इनकी ज़बान बड़ी लम्बी चौड़ी सौ २ हाथ की क़ैंची होती है, जो फ़र २ काट करती रहती है और थकने में नहीं आती।

जनक की रानी अपने को बड़ी सयानी समझती थी। कहने लगी "इस सभा में कोई समझदार मनुष्य नहीं है, कहां यह कोमल हाथ पाँव वाला बालक और कहाँ शिव का कठोर धनुष! भला यह उसे कैसे तोड़ सकेगा! रावण ने उसे छुआ तक नहीं! आज इसकी वीरता का संसार में डंका बज रहा है! और यह बालक धनुष तोड़ने जारहा है! कोई जाये राजा को समझाये। सीता को यौंही इसके साथ व्याह दिया जाये। और यह कठिन काम इसे न सौंपा जाये यह कुछ न कर सकेगा!

एक समझदार सखी पास बैठी हुई थी। बोली "रानी! चिन्ता न करो। सूर्य देखने में छोटा है,

उसके उदय होते ही संसार का अन्धकार भाग जाता है"।

दूसरी सखी—"ऐ! सच तो है छोटा आंकुस बड़े से बड़े हाथी को बस में कर लेता है"।

तीसरी—"एकाक्षरी मन्त्र क्या होता है? वह एक अक्षर हो तो है। कितनी जल्दी उससे सिद्धि शक्ति प्राप्त होती है"।

चौथी—"राम बचपन ही से तपस्वी और योगी हैं। मां बाप को छोड़ कर गुरू के साथ रहते हैं। यह जो कुछ कर दिखायें सब थोड़ा है"।

पांचवीं—"मुझे भी ऐसा ही प्रतीत होने लगा है"

रानी—"चलो परे हटो—यह चौंचलेपन की बातें मुझे भली नहीं लगतीं। मैं तो देख रही हूँ सबकी बुद्धि भ्रष्ट हो रही है, ईश्वर सहायक हो"।

छटी सखी—"तो अब धैर्य्य धरो, देखो क्या होता है? सबकी लाज ईश्वर के हाथ में है"।

इधर यह बातें हो रहीं थीं उधर लक्ष्मण बेचैन हो रहे थे, वह चाहते थे राम झट पट धनुष को तोड़ कर महिमान खाने में चलें। इस छोटे से काम के लिए इतना समय क्यों दिया जारहा है?"

—

...मुल्लास

राम का शिव धनुष तोड़ना
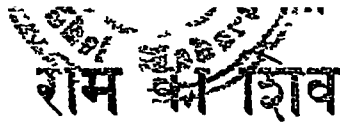
आकाश का सूर्य्य पूर्व में निकला, पश्चिम की तरफ़ चला, कमल के फूल खिले, कुमुदनी की पंखड़ियाँ सिकुड़ गईं, पक्षी पखेरू चहचहा उठे। उल्लू वृक्षों के खोखलों में जा छुपे। राम मचान से उतर कर धीरे २ धनुष के चबूतरे के पास पहुँचे। विश्वामित्र ने अपने मन में प्रार्थना की—"सीता का दुःख जनक का क्लेश, रानियों के असमंजस की भावना, नगर वालों की निराशता सब को सब शिव के धनुष पर चढ़ जाओ! राम धनुष को तोड़ना ही चाहते हैं, तुम सहज में ही पार हो जाओगे।" राम ने धनुष को उठाया। उठाते हुए सब ने देखा। तड़ाके का शब्द हुआ और धनुष के तीन टुकड़े पृथ्वी पर आ रहे। उनको टूटते और गिरते हुए किसी ने भी नहीं देखा।

उठ चली कुंडलनी मूलाधार से।
पहुँची भ्रू के मध्य वारापार से॥
बेधी कुंडलनी ने फिर शिव की कमान।
तीसरे तिल में लगाया अपना ध्यान॥
ध्यान में अनुमान था प्रमाण था।
ध्यान ही में सत गुरू का ज्ञान था॥

मण्डप आनन्द से भर गया। स्त्रियाँ सुहाने मंगल राग गाने लगीं। सहेलियों ने सीता को उठाया। उसके हाथ में जयमाल देकर ऊपर मचान से नीचे चबूतरे के पास उतार लाईं। सीता ने राम को देखा, राम ने सीता को देखा। सीता की आंखें फिर बन्द होने लगीं। सहेलियों ने हँस कर कहा।

आंख न मूदो, कान न रूँधो,
काया कष्ट न धारो।
खुली आंख से हँस २ देखो,
सुन्दर रूप निहारो।

सीता लजाई। सहेलियों ने कान में झुक कर कहा "राम के गले में जयमाल डाल दो। दुर्गा देवी के मन्दिर के समान अपने पांव में जयमाल न डालना। यह राम के गले का भूषण है। आज से तुम जीती गईं राम ने तुमको जीत लिया। अपनी नहीं रहीं। राम की होगईं। अब सर्वस्व राम का होगया।"

रहस्य की बातों को सुनकर सीता लज्जित तो होगई, फिर भी मन को कड़ा करके हाथ से जयमाल को उठाया, यह छोटी थी राम ऊँचे डील वाले थे। हाथ गले तक नहीं पहुँच सकता था। राम ने सर झुका लिया। सीता ने गले में जयमाल डाल दिया। किसके सिर को झुकना चाहिये था। और किस का सर झुका, किसको बंधन में आना चाहिये था, और कौन बंधन में आकर बांधा गया! सोचो समझो और विचार करो!

सहेलियों ने फिर कान में झुक कर कहा—"आंख भर कर एक बार देख लो। माताओं के पास चलो।" और सीता ने ऐसा ही किया।

पृथ्वी ब्याही गई आकाश से।
फांसा उसने अपने माया फांस से॥
कैसा बन्धन कहने की सब बात है।
प्रेम भक्ति का यह दाव और घात है॥

अभी सीता ने माताओं के पास जाने के लिए पीठ नहीं फेरी थी कि मडप में शोर मच गया। धनुष तोड़ने से क्या हुआ? दोनों राजकुमारों को बांध लो और उनसे सीता को छीन लो? यह शोर बढ़ता ही गया। सहेलियों ने झटपट सीता को ले जाकर माता की गोद में डाल दिया। उसने उसे छाती से लगा लिया। स्त्रियाँ डरीं कि कहीं लड़ाई झगड़ा न हो जाये। राम उदासीन थे, लक्ष्मण गुरू की आज्ञा चाहते थे कि अपने धनुष बाण को सँभालें; और इन कायरों का काम समाप्त करें। यह तो नहीं हुआ, हाँ भीड़ आप ही आप छटने लगी।

यह क्या हुआ! कारण यह था कि जब मंडप में राजकुमारों के बाँधने और सीता के छीन लेने का शोर मच रहा था, उसी समय लोगों को परशुराम-जी के आने का समाचार मिला। यह वह क्षत्रियों का नाश करने वाला योधा, सूरमा था जिसने सहस्रबाहु की हज़ारों भुजाओं को काट काट कर रण भूमि की वेदी पर आहुतियाँ दी थीं। इक्कीस बार पृथ्वी के क्षत्रियों को निर्बीज किया था। राजे महा-राजे सब इसके नाम से डरते थे कोई सामने नहीं आता था। कायर राजपूतों के मंडप छोड़ कर भाग जाने का यह कारण हुआ।

छटा समुल्लास

परशुराम और लक्ष्मण का संवाद।

मंडप में कुछ देर के लिए शाँति आगई। सब चुपचाप होगये, सुई पृथ्वी पर गिरती तो उसके गिरने का शब्द सुनाई दे जाता। क्यों? क्योंकि परशुरामजी का आगमन हुआ। गोरा भभूका रंग! कंधे से कमान और कमर से तरकस बाँधे हुए हाथ में चमकता हुआ परसा (तबल) ब्रह्मचर्य का हथियार, क्रोध के रूप, आंख से अगारा बरसता हुआ! जिसको सीधी दृष्टि से भी देखते थे वह समझता था मेरी मृत्यु आगई! बड़ की जटाओं जैसे बाल, बहुत मोटा बटा हुआ जनेऊ, दाहिने कंधे पर साँप जैसा लिपटा हुआ मृग चर्म की आसनी पीठ से बँधी हुई, त्रिपुंड का तिलक माँथे पर लगा हुआ था।

उनके आते ही सारे राजा पावों पर झुके अपने २ बाप का नाम बताया। यह किसी को आशीर्वाद तक नहीं देते थे। हां! सिर हिलता रहता था।

जनक मिला, सीता जानकी मिली शतानद आये। इनके पश्चात् विश्वामित्र अपने ब्रह्मचारों के साथ आकर मिले। राम लक्ष्मण की जोड़ी विचित्र और विलक्षण थी। सर हिला कर विश्वामित्र से पूछा "यह कौन हैं?" ऋषि ने उत्तर दिया "दशरथ के लड़के राम लक्ष्मण हैं?" फिर सिर हिलाया "अच्छी जोड़ी है। सुन्दर बालक हैं और बस।"

फिर जनक की तरफ़ आंख फेरीं। "आज यह भीड़ भाड़ कैसी है?"

जनक ने उत्तर दिया "सीता का स्वयम्वर था। सब इसी उत्सव में आये थे। हाँ २ कहते थे और सिर हिलता जाता था।"

फिर कर देखा शिव के धनुष के तीन टुकड़े पृथ्वी पर पड़े हुए "हाय यह क्या हुआ! किसने इसे तोड़ा है अलग हो जाय नहीं तो अभी सारे राजाओं के सर काट कर धूल में मिला दूँगा।"

सब की बाँणी गूँगी हो गई। सब की घिग्घी बद मुँह खोलने का साहस कैसे हो और उन्होंने परसे को हाथ में लिया। राम सामने आये, "धनुष का तोड़ने वाला आप का दास है।"

नहीं समझा—बोले "दास का यह कर्त्तव्य नहीं हो सक्ता यह तो शत्रु का काम है। ऐ राम! जिसने शिव के धनुष को तोड़ा है वह सहस्रबाहु के समान मेरा शत्रु है। अलग हो जाये, नहीं तो यह सबके सब राजे मारे जायेंगे। मूढ़ और जड़ जनक बोलता क्यों नहीं? किसने यह अनुचित काम किया है?"

जनक को भय था रानियाँ अलग सहमी हुई थीं। रानी कहती थीं विधाता ने बना बनाया खेल बिगाड़ दिया। सीता जानती थी कि परशुराम क्षत्री कुल द्रोही हैं। केले के पत्ते वायु के झोके से जैसे हिलते हैं इसका शरीर थर २ कांपने लगा। राम ने सीता की दशा देखी। परशुराम के सन्मुख आये। "मैं कह चुका हूँ कि यह भूलचूक सेवक से हुई है।"

परशुराम—"अच्छा सेवक है और फिर परसे को हाथसे उठाया।" लक्ष्मण इनका रूप और स्वभाव देख कर हँस पड़े! "हमने खेल २ में कितने धनुष तोड़ दिए। आपने कभी कोप नहीं किया। इस सड़े गले धनुष पर क्यों इतनी ममता है?"

परशुराम क्रोध से प्रचंड आग भभूका बन गये "मूर्ख राजकुमार! सम्भल कर बात नहीं करता। इस धनुष की समता और धनुषों के साथ कैसी? यह शिव भगवान् का धनुष है।"

लक्ष्मण फिर मुस्कराये—आप क्यों इतने क्रोधित हैं? देखिए तनमन की दशा बिगड़ी जाती है। जो होगया सो होगया। मेरी समझ में सारे धनुष एक जैसे है।

सड़ा गला दीमक का खाया हुआ धनुष पड़ा हुआ था राम को नये धनुष का धोका हुआ। हाथ लगाया और वह नाक की रेंट के समान भद्द से नीचे गिरा और टुकड़े २ हो गया। आपका क्रोध व्यर्थ है। इस में राम का क्या अपराध था?

परशुराम ने परसा को उठाया "बालक समझ कर छोड़े देता हूँ। तू शायद मेरे स्वभाव को नहीं जानता। तू मुझे साधारण साधू समझ रहा है? सुन! मैं अखंड बाल ब्रह्मचारी हूँ। क्रोध अग्नि की दहकती हुई मूर्ति! कितने बार मैंने क्षत्रियों के कुल का नाश किया और ब्राह्मणों को राजा बनाया। यह वह परसा है जिसने सहस्रबाहु के हज़ारों हाथों को काट डाला। अधिक क्रोध न दिला। जा परे हट! नहीं तो तेरे माँ बाप तेरा स्यापा करने लगेंगे। उन्हें अपनी अकाल मृत्यु का शोक न दे। जब मैं इस कुल्हाड़े को भाँजने लगता हूँ उसके शब्द से स्त्रियों के गर्भ गिर जाते हैं।

लक्ष्मण फिर हँसे—"अहा! आप शूरबीर भी हैं और आपकी वीरताई स्त्रियों के गर्भ गिराने में है। वाह! वाह! वाहरे वीर पुरुष! क्षत्रियों का तो स्त्री जाति पर कभी हाथ नहीं उठता। मुझे कुल्हाड़ा दिखा कर तुम क्या डराते हो? मैं पहाड़ हूँ तुम्हारे जैसे स्त्रियों के गर्भ गिराने वालों की फूँक से नहीं उड़ सक्ता। न मैं छोटा कोमल फूल हूँ जो तुम्हारे उँगली दिखाने से मुरझा जाऊँगा। तुम मुझे गालियाँ देते हो। गाय और ब्राह्मण की मेरे कुल में रक्षा होती है। गाय और ब्राह्मण को हम समान समझते हैं। तुम वीर रूप में मेरे सामने आये। मैं क्षत्री हूँ। जाति के अभिमान से दो चार साधारण बातें मुँह से निकल गईं, निकल गईं। ब्राह्मण हो, मुनि हो, जनेऊ धारी हो। मेरी बातों पर क्षमा करो और धनुषबाण और परसे को आज से उतार कर रख दो। ये आप के लिये शोभायमान नहीं हैं" यह कह कर लक्ष्मण विश्वामित्र के पास चले गये।

परशुराम ने विश्वामित्र की तरफ़ दृष्टि की। कौशिक! यह बालक महा मंद मति है। चंचल, कटु बचन बोलने वाला! मैं तुमसे कहता हूँ यह एक क्षण में काल का ग्रास हो जायगा। मेरे भुज-बल प्रताप की कथा सुना कर इसे रोको, डराओ, समझाओ। लक्ष्मण फिर हँसे—"आप जब अपनी बीती आप सुनाते हो, आप सुना रहे हो, सुना सक्ते हो, तो औरों की सहायता क्यों चाहते हो? क्या यही वीरपन का लक्षण है? बार २ अपने मुँह से अपनी बड़ाई करते हो और मुझे गालियाँ देते जा रहे हो। क्या कोई शूरबीर कभी ऐसा करता है? मुझे दिखाते हो अब तक किसी बाँके बीर से पाला नहीं पड़ा। ब्राह्मण और देवता घर ही के बली होते हैं, आमने सामने आने से कतराते रहते हैं,

जाओ अपना काम करो"। सब के मुँह से निकला "अब बहुत अनुचित हो रहा है।"

राम ने आँखों से लक्ष्मण को डाँटा। विश्वामित्र ने भी आखें दिखाईं। वह गुरू के पीछे आड़ में आ रहे।

क्रोध की दहकती हुई आग प्रचंड होती चली जा रही थी। राम अपनी शीतल वाणी के जल से बुझाने के लिये परशुराम जी के सामने आये। "नाथ! क्षमा कीजिये! साधु और माँ-बाप दूध पीने वाले बच्चे की बातों पर नहीं जाते, बच्चे अनसमझ होते हैं।"

ठंडी बातों का प्रभाव तो पड़ा। लेकिन लक्ष्मण गुरू के पीछे खड़े हुए मुस्करा रहे थे। मन को सम्भालते हुए परशुराम ने कहा, "राम! यह तेरा भाई महा पापी है। देखने में तो सुन्दर है, हृदय का ज़हर है यह सोने का घड़ा है जिस में विष भरा हुआ है। तुझमें और इसमें बड़ा भेद है।"

लक्ष्मण ने हँस कर उत्तर दिया। "पाप की जड़ तो क्रोध में रहती है। देखिये आप में क्रोध है या वह मुझ में है? आप बड़े ज्ञानी ध्यानी शूरवीर गम्भीर सब कुछ हैं अब तो सेवक समझ कर मुझ पर दया कीजिये। क्रोध करने से टूटा हुआ धनुष न जुड़ेगा, किसी कारीगर को बुलाइये, वह अभी जोड़ देगा। खड़े २ देर होगई, पांव दुख गये होंगे। बैठिये चित्त में शांति आये।" जनक को भय था, रानियां काँप रही थीं। यह चाहते थे यह आँखों की ओट हो जांय।

परशुराम लक्ष्मण की अभी वाणी सुन २ कर क्रुध हो रहे थे। क्रोधी शरीर निबल होता जाता है। बहुत सम्भले राम से कहने लगे—"तू उत्तम है तेरा भाई दुष्ट है वह कमल के फूल के भीतर छिपा हुआ काला नाग है, इसे केवल तुम्हारे शील स्वभाव को देख छोड़ रहा हूँ।"

परशुराम ने परसा ताना। हाहाकार मच गया। लक्ष्मण बोले—"ऐसा प्रतीत होता है काल तुम्हारे ही हाथ में है और तुम्हारा ही आज्ञाकारी है, तुम अपने मुँह मियां मिट्ठू बनते हो। शत्रू सामने खड़ा है बातें क्या सुनाना। गालियों का मेघ बरस चुका, अब जी में आये परसे की धुनि का कड़का भी सुना चलिये और बिजली की गर्ज और चमक दमक का तमाशा भी दिखा दीजिये"।

परशुराम क्रोधातुर होकर तड़प उठे, परसा भांजने लगे। "अब कोई मुझे दोष न दे। मैंने बहुत इस मूढ़ की असह्य वाणी का सहन किया बालक समझ कर छोड़ रहा हूँ"।

विश्वामित्र ने कहा—"लड़के तो लड़के ही होते हैं, बालहट को आप जानते हैं। जाने दीजिये इसके अपराध को क्षमा कीजिये"।

परशुराम—"सुनो विश्वामित्र! मैं स्वभाव का क्रोधी हूँ। इस समय मेरे सामने गुरू द्रोही खड़ा हुआ उलटी सीधी बातें सुना रहा है। चाहिये तो यह था कि इसका गला अभी काट देता और गुरू के ऋण से उत्तीर्ण होता। अच्छा! तुम्हारे शील स्वभाव को देखकर इसे छोड़ता हूँ।"

विश्वामित्र जी अपने मन में हँसे—"सावन भादों के अन्धे को जब देखो हरियाली की सूझती है। बसन्त ऋतु के अन्धे को आंख में सरसों फूली रहती है। इतनी बातें हो चुकीं अब भी इनकी आँखें नहीं खुलतीं।"

लक्ष्मण फिर मुस्कराये—"मुनिनाथ! आपकी कीर्त्ति को कौन नहीं जानता? वह संसार में फैली हुई है। मां बाप का ऋण तो आपने उतार दिया। गुरू का ऋण चुकाना रह गया है। सूद का रुपया बहुत बढ गया वह मेरे मांथे उतरने वाला है। जल्दी करो किसी महाजन को बुलाओ मैं थैली खोल कर उसे चुका दूँ।"

परशुराम की क्रोध अग्नि प्रज्वलित होगई। परसे को हाथ में उठाया। सभा में हाहाकार मच गया।

लक्ष्मण का जीवन भी बदल गया। "ब्राह्मण समझ कर तुमको छोड़ रहा हूँ, बार २ क्या कुल्हाड़ी मुझे दिखाते हो। लक्ष्मणजी कुछ और कहने वाले ही थे इनकी दृष्टि राम और विश्वामित्र की तरफ़ गई। उनके हृदय का भाव भांप गये और फिर गुरू के पीछे छुप रहे।"

राम ने कहा—"साधो! अब वह उपाय बताइये जिससे आपका क्रोध मिट जाये! आप बच्चे के बचपने पर न जाइये। वह निरअपराधी है आपका

अपराधी मैं हूँ, उसने धनुष को हाथ नहीं लगाया। मैंने उसे तोड़ा है। मुझको अपना दास समझिये और कोप को दूर कीजिये।"

परशुराम—"क्रोध जाय तो कैसे जाय, अब भी देखो तुम्हारा भाई कैसी क्रूर दृष्टि से मुझे देख रहा है, अगर इसका सर इस कुल्हाड़ी से नहीं उतारा तो मेरे कोप का परिणाम क्या हुआ। हाथ उठता नहीं छाती जल रही है। यह परसा आज मेरा आप शत्रु बन रहा है। पासा उलटा पड़ा हुआ है मुझ में दया कैसी! मैं तो दया के पीछे लाठी लिए फिरता हूँ। क्या करूँ बेबस हो रहा हूँ विधाता मेरे लिये बाम (टेढ़ा) होगया।"

लक्ष्मण से न रहा गया फिर हँस पड़े, आप जब बातें करते हैं मुँह से फूल झड़ते हैं। जब दया करने से आपकी छाती जलती है, तो क्रोध के समय ईश्वर जाने आपकी कैसी दशा होती होगी?

जनक ने देखा कि लक्ष्मण काल के मुँह में चले जा रहे हैं। विश्वामित्र से कहा-"लड़के को आंख की ओट करो। यह बालक देखने में छोटा लेकिन मन का खोटा है"

लक्ष्मण ने हँस दिया। आंखें बन्द करलो आप ही अँधेरा छा जायगा, चिराग़ गुल पगड़ी ग़ायब हो जाये!

अब तो परशुराम के क्रोध की सीमा न रही, राम से कहा "धनुष भी तोड़ा और मेरी हँसी करवा रहा है। तूने छोटे भाई को सिखा पढ़ा रक्खा है तब वह मेरे साथ ऐसी ढिठाई कर रहा है। अब या तो मेरे साथ युद्ध कर या राम कहलाना छोड़ दे। आजा युद्ध में तत्पर होजा नहीं तो दोनों को अभी अभी मार दूँगा।

परशुराम ने परसे को उठाया। राम की तरफ़ झुके। राम ने हृदय में हँसते हुए अपना सर नीचा कर लिया। "क्या अन्धेर है? अपराध लक्ष्मण का और धार मार मुझ पर हो। सच है इस संसार में सिधाई भी बहुत बड़ा दोष है, टेढ़े से कोई नहीं उलझता और सीधे के सर चढ़ता है, सीधे का मुँह कुत्ता भी चाटता है।"

"लो भगवन्! यह मेरा सर है जो आपके चरणों में झुका हुआ है। परसा उठाइये, इसे उतार कर रख दीजिये। किसी प्रकार तो आपका क्रोध जाये! मैं तो आपका मन, कर्म, बाणी से सेवक बना हुआ हूँ। मन, कर्म, बाणी के साथ सर भी सामने झुका हुआ है, काटिये और अपने हृदय को शीतल कीजिये।"

सेवक स्वामी में लड़ाई कैसी? और मेरा भाई भी निरअपराधी है। न आप वीर भेष में आते न वह खिल्ली उड़ाता। आप धनुषबाण और कुल्हाड़ी लिए हुए आये, इसने समझा कोई लड़ाका आगया। और उसके मुँह से अनाप शनाप बातें निकलने लगीं। वंश स्वभाव को वह कहां ले जाकर फेंके। आप साधू के भेष में आये होते तो वह और प्रकार का व्यौहार करता, आपके चरणों की धूली माथे पर लगाता।

हम आप से क्या लड़ें। कहाँ सर कहां पाँव। लड़के का अपराध क्षमा कीजिये, आप में दया और करुणा होनी चाहिये।

आपका नाम बड़ा है। मेरा छोटा है मैं केवल राम हूँ आप परशुराम हैं, मुझ में साधारण धनुष धारी होने का एक गुण है, आप में लाखों गुण हैं। मैं सब प्रकार आप से हारा हुआ हूँ, आप मेरे अपराध को क्षमा कीजिये।

परशुराम क्रोध की हँसी हँसते हुए बोले "तू भी अपने भाई के समान टेढ़ा है, जैसा वह वैसा तू। तूने मुझे साधारण ब्राह्मण समझ रक्खा है, मैं जैसा ब्राह्मण हूँ तुझे सुनाता हूँ। यज्ञ करना, कराना, वेद पढ़ना, पढ़ाना, दान देना, दिलाना, ब्राह्मणों का मुख्य धर्म है। इसी को षट (छै) कर्म कहते हैं।

मैं यज्ञ करता हूँ मेरा धनुष चमचा है जिससे बाण की आहुती देता हूँ, मेरा क्रोध वेदी की प्रचंड अग्नि है। चारों प्रकार की सेना (फ़ौज) इस यज्ञ की लकड़ियाँ हैं और राजे महाराजे पशु हैं जिनका बल दिया जाता है! करोड़ों ऐसे यज्ञ मैंने किये और ब्राह्मणों से करवाये। मेरा वेद क्षत्रियों का नाश करना करवाना है, यही मेरा ज्ञान है। जिन उपायों से मैं इनके समूह का विध्वंश करता कराता हूँ।

वही इस वेद के मंत्र हैं मैं ऐसा ही वेद पढ़ता पढ़वाता हूँ।

क्षत्रियों का राजपाट छीनकर ब्राह्मणों को देना मेरा दान है। मैं ऐसा ही दान देता दिलवाता हूँ। मैंने सारी आयु यही षट कर्म किये हैं। तूने धनुष को क्या तोड़ा सारे जगत् को अपने विचार से जीत लिया, अभिमान आगया।

राम ने कहा—"भगवन्! किञ्चित् मात्र अपराध और इतना बड़ा दण्ड! सोचिये तो सही पुराना धनुष छूते ही टूट गया इसमें मेरा क्या दोष था? आप मुझे लड़ने के लिए वार २ ललकारते हैं। मैं क्षत्री हूँ क्षत्री कुल में जन्म लेकर लड़ाई भिड़ाई से मुँह मोड़ना माथे पर कलङ्क का टीका लगवाना है। शत्रु चाहे कैसा ही बलवान हो, वह काल और मृत्यु ही क्यों न हो, जब हमको युद्ध के लिए ललकारेगा हम सुखी होकर उसका सामना करेंगे। आप मुझे क्या डराते हैं? मैं ब्राह्मणों का सन्मान करता हूँ, यह मर्यादा है, आप लड़ने पर उतर आये तो आइये मुझे डर नहीं है, इसे भी देख लीजिए। यहाँ कोई असमञ्जस नहीं है।

परशुराम ने जब राम की अन्तिम वाणी सुनी उनके हृदय के नैन खुल गये। महा आश्चर्य्य हुआ। आज तक इस साहस का कोई राजपूत उनके सामने नहीं आया था। कोमल वाणी में कहा—"मेरे धनुष का चिल्ला चढ़ा दीजिए मेरा संदेह मिटे।"

राम ने अपने दाहिने हाथ की एक उँगली से परशुराम के धनुष को छू दिया। ताँत खिंच गई, तड़ाखे का शब्द हुआ जिसे सुन कर सब डर गये। परशुराम को महा आश्चर्य्य हुआ, हाथ जोड़ कर राम को नमस्कार किया।

जै अगुण, गुण, निर्गुण, सगुण, गुण रूप गुणकारी प्रभो।
वैराग, राग, सुराग, रागी, तोत हितधारी प्रभो॥
नहिं वेद महिमा तेरी जाने, अजर अमर विशेश्वरम्।
जै अगम अलख अकाम जै, जगत धर धरणी धरम्॥
अज्ञान माया भ्रम में फँस, तुझको पहिचाना नहीं।
अनजान पन में होके बेवस, रूप को जाना नहीं॥
अपराध कीजै क्षमा मेरा, आप करुणासिन्धु हो।
जय राम लक्ष्मण अवधपति सुत, जै प्रभो जै जै प्रभो॥

परशुराम ने स्तुति और नमस्कार करने के पश्चात् वन का रास्ता लिया। किसी ने नहीं जाना कहां से आये थे किधर को गये। क्या हुए और क्या नहीं हुए।

सातवाँ समुल्लास

राम और विश्वामित्र का अन्तिम संवाद।

परशुराम के अन्तर ध्यान होते ही सब सुखी हुए। सातों प्रकार के बाजे, घण्टा, शङ्ख, पखावज, मृदंग, बाँसरी, सारंगी और वीणा बजने लगे।

जनक विश्वामित्र के पांव पड़ा। "आपने संसार में मेरी लाज रखली। मैं तो निराश होचुका था। सीता के लिए अधिकारी वर की प्राप्ति महा कठिन थी।"

विश्वामित्र—"प्रकृति बिना पुरुष के रह नहीं सकती, यह नियम है। लाज रखने वाला कोई और ही है मुझे उससे कोई सम्बन्ध नहीं है। स्वयंवर हो चुका। जयमाल के गले पड़ते ही सीता का ब्याह राम के साथ होगया। राम का सम्बन्ध मेरे साथ बस इतना ही था, अब आप दशरथ को बुलवा लीजिए। बारात आये, और कुल रीति देश रीति और वेद रीति, के अनुसार राजकुमारों का ब्याह कीजिए और करवाइए। मर्यादा भंग न हो और मुझे आज्ञा दीजिए मैं राजकुमारों को आपके पास छोड़ कर अपने आश्रम को जाऊँ।"

जनक की रानियां और सीता विश्वामित्र के पांव पड़ीं। सब ने उनका उपकार माना और वह राम लक्ष्मण को साथ लिये हुए महमानख़ाने में आये। जितने राजे महाराजे आये हुए थे वह भी विदा हो हो कर अपने घरों को चले गये।

निवास स्थान में आकर राम ने विश्वामित्र से पूछा, "भगवन्! परशुराम क्यों आये और क्यों चले गये यह कौन थे?"

विश्वामित्र हँसे ... "तुम जान जान कर अनजान होते हो। यह परशुराम भी ब्रह्म के अवतार हैं। मेरा इनका सम्बन्ध है। पिण्डों के बदलने से वह ब्राह्मण होगये और मैं क्षत्री के घर उत्पन्न हुआ। परशुराम को क्षत्री और मुझे ब्राह्मण होना था। पाँसा उलटा पड़ा लेकिन फिर भी कुछ न कुछ तो परिणाम हुआ।

वह ब्राह्मण होते हुए क्षत्री हैं और मैं क्षत्री होते हुए ब्राह्मण हूँ। गुण,कर्म और स्वभाव ने यहां और प्रकार का रूप धारण किया।"

राम—"यह कैसी कथा है?"

विश्वामित्र—"जब कभी अवसर मिलै तो यह बात वशिष्ठजी से पूछना। वह यह रहस्य तुमको बता-देंगे और बात जो तुम्हें जो पूछनी हो पूछो मैं समझा दूँगा।"

राम—"अवतार क्या है? यह परशुराम कैसे अवतार हैं। आप बार बार कह चुके हैं कि मैं ब्रह्म का अवतार हूँ यह क्या बात है?"

विश्वामित्र—"यहां सारे के सारे जीव जन्तु किसी न किसी काम के लिए प्रकट हुए हैं। बेकाम कोई भी नहीं है। भेद केवल यह है किसी का काम छोटा है किसी का बड़ा है और सब में ब्रह्म की सत्ता रहती है। जिसका काम बड़ा है और जिसमें ब्रह्म सत्ता विशेषता और अधिकता के साथ है, वह ब्रह्म का अवतार कहलाता है, ब्रह्म की अधिक सत्ता का जिसमें किसी विशेषता के साथ उतार हो वह अव-तार है। तुम में ब्रह्म बल और ब्रह्म तेज और ब्रह्म शक्ति अधिकता के साथ प्रतीत होती है इसलिए औरों को तो कोई अवतार नहीं कहता, तुमको अव-तार कहा जाता है।"

राम—"तब तो सारे जीव जन्तु अवतार ही हुए क्योंकि ब्रह्म सत्ता सब में है।"

विश्वामित्र—"बात तो तुम सच कहते हो। ब्रह्म सत्ता के बिना कोई भी न रह सकता है, न ठहर सकता है। सब में ब्रह्म सत्ता का उतार है, इसमें नाम के लिए भी संदेह नहीं है लेकिन वह अवतार नहीं कहलाते। मनुष्य मनुष्य सब एक हैं लेकिन सारे मनुष्य राजा नहीं होते।"

राम—"यह तो सच है। समुद्र की शक्ति एक एक बूँद में, सूरज का प्राण एक एक प्राण धारियों में, पृथ्वी का पृथ्वी पना सारे पृथ्वी तत्त्व से बने हुओं में होता है। यह बताइये मैं ब्रह्म अवतार हूँ तो मेरा काम क्या है?"

विश्वामित्र—एक ने नाई से "पूछा मेरे कितने बाल हैं?" उसने कहा, धैर्य धरो! अभी सामने काट कर गिराये देता हूँ। यह काम आप तुम्हारे सामने आयगा मैं कुछ नहीं कह सक्ता।"

राम—"फिर आपने कैसे जाना कि मैं ब्रह्म का अवतार हूँ?"

विश्वामित्र—"किसी की बुद्धि देख कर यह कहा जाता है वह बुद्धिमान् है। तुम्हारी विलक्षणता और विशेषता का लक्षण बता रहा है कि तुम असाधारण पुरुष हो।"

राम—"फिर भी कुछ कह दीजिए।"

विश्वामित्र—"जब जब संसार में धर्म की हानि होती है तब तब ब्रह्म के अवतार आकर उस हानि को दूर कर देते हैं।"

राम—"धर्म क्या है?"

विश्वामित्र—"धरी (धारणा) म (मन) मन की धारण शक्ति 'धर्म' कहलाती है। यह प्राकृतिक नियम है जिस पर संसार का प्रबन्ध निर्भर है। कोई कोई ऐसे प्राणी कभी कभी उत्पन्न हो जाते हैं जो इसे धक्का पहुँचाते हैं। प्रबन्ध बिगड़ने लगता है। तब कोई विलक्षण पुरुष आकर उस विघ्न को हटा देता है, इसी को अवतार कहते हैं।"

आठवां समुल्लास
राम का विवाह

स्वयंवर के दूसरे दिन जनक ने दशरथ के पास अपने कर्मचारियों को भेजा। जो कुछ हुआ था कहला भेजा। दशरथ, भरत, शत्रुघ्न, वशिष्ट, वामदेव, सुमन्त इत्यादि को लेकर आये और शुभ लग्न, शुभ दिन, शुभ मुहूर्त में ऋषियों ने वेद, कुल और देश रीति के अनुसार राम का विवाह सीता के साथ कर दिया। इस प्रसंग को विस्तार के साथ न सुनाना चाहते हैं न हम सुना सक्ते हैं, न इसकी बहुत आवश्यकता ही है। इतना ही कहना बहुत है कि राम का सीता के साथ विवाह होगया और उसी दिन उनके और भाई भी व्याहे गये। लड़कों के विवाह हो जाने पर दशरथ पुत्र और पुत्र बधुओं को लेकर अयोध्या में आया। वह संसारी और संसार बद्ध पुरुष था। उसके आनन्द की सीमा संतति की वृद्धि और उन्नति ही तक थी। वह मनमें बहुत प्रसन्न और सुखी हुआ, नगर में बधाई फिरी। सारी प्रजा ने इस सुसमाचार को सुन कर उत्सव मनाया और कुछ दिनों के लिए अयोध्या स्वर्ग-भूमि के समान बन गई।

राजकुमार अपने अपने महलों में रहने लगे। लक्ष्मण ने किसी विशेष कारण से कुछ दिनों के लिये ब्रह्मचर्य के पालन को चित्त दिया।

—o—

इति महारामायणम् पहला आरम्भ खण्ड का तीसरा भाग
॥ समाप्तम् ॥

दयाल शिवव्रतलाल कृत

सम्पूर्ण

महारामायण

द्वितीय अवध खंड

Shanti Press, Aligarh.

भूल सुधार

पिछले पृष्ठ ४८ से आगे ४९ के बजाय प्रेस की गलती से १२१ छप गया है। पाठक जन भ्रम में न पड़ कर पृष्ठ १२१ को सिलसिले का पृष्ठ समझें।

POPULAR PRESS, DELHI.

पहिला समुल्लास

राम ब्रह्म के अवतार थे

राम ब्रह्म के अवतार थे। निःसन्देह ब्रह्म के अवतार थे। मुझे उनके ब्रह्म के अवतार होने में कोई भी संशय नहीं। और किसी को हो तो हुआ करे। संसार में अनेक हस्ती, अनेक बुद्धि, अनेक मन और अनेक चित्त के मनुष्य होते हैं। मैं सब की नहीं कहता, अपनी कहता हूँ। क्यों ऐसा कहता हूँ? इस का विस्तार आगे आता चलेगा।

संसार में एक आता है, दूसरा जाता है। एक दूसरे की जगह ले लेता है। एक राजा मरा, दूसरा उसकी जगह सिंहासन पर बैठा। एक महन्त गया दूसरे को गद्दी दी गई। एक कर्मचारी के चले जाने पर दूसरा उसकी जगह नियत किया जाता है।

तुमने देख लिया परशुराम राम के देखते ही तेजहत और तेजहीन होगये। वह भी अवतार थे। सारे प्राणियों के समान अवतार भी काल के आधीन होते हैं। हां! इनकी आधीनता साधारण जीव-जन्तुओं के समान नहीं होती। लेकिन यह भी काल के जगत् में आकर काल के नियम का उल्लंघन नहीं करते और यह आते क्यों हैं? उसी नियम के उद्धार और सुधार के लिये यह प्रगट होते हैं। आए, काम किया और चले गये।

काल चक्र में भूत, भविष्य और वर्त्तमान तीनों रहते हैं। यह तीनों उस चक्र की कड़ियां हैं। चक्र रात दिन चला करता है। कभी ऊपर जाता है, कभी बीच में आता है और कभी नीचे जाता है। यहाँ भी ऊपर, बीच और नीचे का प्रबन्ध है।

ऐसा क्यों है? इसका कारण यह है कि काल का जगत् त्रिगुणात्मिक है। यहां तीन गुण रात दिन काम करते रहते हैं। गुण को और कुछ न समझो, गुण नाम है प्रकृति का। प्रकृति ही को गुण कहते हैं। संसारी विद्याओं की दृष्टि से गुण और गुणी के भेद में पड़े तो भूले, भटके, बहके और भ्रमे। गुण प्रकृति है और गुणी प्राकृतिक है। यह प्रकृति और गुण तीन रूपवाले हैं। एक को कहते हैं आधार, दूसरे का नाम है धार और जहाँ यह धार ठहरती है वह स्थल आधार है।

एक है 'सत', दूसरा है 'रज' और तीसरा है 'तम' और जब सृष्टि में यह रूपाकार होती है तो इन्हीं में

से सत 'विष्णु', रज 'ब्रह्मा' और शिव 'तम' बनते हैं। विष्णु सत्याकार, ब्रह्मा रजाकार और शिव तमाकार हैं।

अब इन तीनों पर विचार करोगे तो यह भी तीन २ अंगोंवाले प्रतीत होंगे, यह भी काल के नियम के अन्तर्गत हैं।

इनका भी झगड़ा छोड़ो। अपने ही शरीर पर दृष्टि डालो। यह भी तीन अङ्गोंवाला प्रतीत होगा—सिर, पेट, पांव। अजी एक उँगली को देखो। सबमें तीन तीन भाग दृष्टिगोचर होंगे। हाथ के तीन टुकड़े, पाँव के तीन टुकड़े, पेट के तीन टुकड़े और सिर पैर के भी तीन तीन टुकड़े तुम्हें दिखाई देंगे।

त्रिगुणात्मिक जगत् में हर जगह तीन तीन का प्रबन्ध सबमें दिखाई देगा—

तीन में है तीन ही का तीन खेल,
देखो तिल के गाछ में तिल गाछ तेल।
खेलते हैं विष्णु ब्रह्मा और महेश,
खेलते हैं चन्द्र तारे और दिनेश।
तीन वर्ण और देखो अपने वेद तीन,
तीन में हैं तीन गुण और भेद तीन।
देख लो तुम वस्तु देश और काल को,
देख लो तुम हड्डी माँस और खाल को।
सृष्टि लय और स्थिति में तीन तीन,
स्वप्न जागृति सुषुप्ति हैं तीन तीन।

यह कारण है कि ब्रह्मा के अवतार तक काल के आधीन रक्खे गये हैं, नहीं तो काल जगत् की सृष्टि का प्रबन्ध न चलता।

परशुराम गये, राम आये। विश्वामित्र निःसन्देह परशुराम के पद छीनने और राम को उनकी जगह दिलाने के लिए गये थे। उन्हें इसका गुमान नहीं था और साथ ही वह अज्ञानी भी नहीं थे लेकिन ठीक किसी बात का पता नहीं था।

हमारे अपने जीवन में भी ऐसा ही हुआ करता है। क्या होगा, क्या न होगा, इसे कौन जानता है? कोई भी नहीं जानता। हाँ! मन के अन्तर्गत एक प्राकृतिक कुरेद रहती है जो बराबर लिये चली जाती है। वह कहां, किधर और क्यों लिये जा रही है? जल्द इसका ज्ञान नहीं होता। ज्ञान कुछ कुछ उस समय होता है जब जीवन का रास्ता थोड़ा सा चल लिया जाता है।

ऋषि, मुनि, नक्षत्र, चाँद-सूर्य्य, देवी-देवता सब इसी कुरेद के रस्से से बँधे हुए हैं। ऋषि कहते हैं "मन्त्रदृष्टा या काम के प्रबन्ध के देखने वालों को" जो एक एक मंडलियों में बँधे हुए मंडलीक हो रहे हैं, अपने चक्र के बाहर नहीं जा सकते। इनकी गिनती सात बताई गई हैं। वह सप्त ऋषि कहलाते हैं। प्रकृति के सात तत्त्व काम में लगे रहते हैं। उनकी देख-भाल, जाँच-परताल सप्त ऋषियों से सम्बन्धित है। मुनि चुपचाप काम करने वालों का नाम है। यह बोलते नहीं, काम करते हैं। यह भी सात ही हैं। देवी देवता प्रकृति के उन सात दिव्य शक्तियों का नाम है जो बद्ध और मंडलीक है और चल फिर कर अपने सोते होते हुए काम में लगे रहते हैं, यह भी सात ही है—मित्र, वरुण, अर्यमन, इन्द्र, बृहस्पति, विष्णु, उरुक्रम। ऋग्वेद के इस मन्त्र में उनकी गिनती आती है:—

शन्नो मित्रः शं वरुणः शन्नो भवत्वर्य्यमा।
शन्नो इन्द्रो बृहस्पतिः शन्नो विष्णु रुरुक्रमः॥

नक्षत्र भी सात हैं। सूर्य्य, चन्द्रमा, मंगल, बुध, बृहस्पति, शुक्र और शनि।

इसी प्रकार सप्त लोक, सप्त सिन्धु, सप्त सूर्य्य इत्यादि को भी समझ लो। यह सबके सब बद्ध और मंडलीक हैं। इनके यहां बन्धन मुक्ति का प्रश्न नहीं उठता। यह प्रश्न केवल मनुष्य के लिए है जो सृष्टि में सर्वश्रेष्ठ है—

जानते हैं, जानकर भी, जानने वाले नहीं।
मानते हैं, मानकर भी, मानने वाले नहीं॥
क्या कहें, कैसे कहें, क्योंकर कहें हम अपना भेद।
हम को है पहिचान, और पहिचानने वाले नहीं॥
मन में अपने देखते हैं, है छुपी कोई कुरेद।
सबका है अनुमान, हम अनुमानने वाले नहीं॥

विश्वामित्र लेजाने को तो वह राम को जनकपुर लेगये। सीता के स्वयम्वर में सम्मलित किया, धनुष तोड़ने की आज्ञा दी, सिखाया, पढ़ाया सब कुछ किया। जयमाला पहिनाने का दृश्य देखा। परशुराम और लक्ष्मण के संवाद को भी सुना। उन्हें पहिले से भी कुछ २ राम के ब्रह्म अवतार होने की समझ थी। लेकिन यह समझ उस समय अपनी सीमा पर पहुँची जब परशुराम ने राम को अपना धनुष थमाया और राम का प्रभाव देख कर उन्हें अपना शीस झुकाते हुए पाया। वर्त्तमान कर्मचर्य्य की परिभाषा में राम ने अवतार पद का चार्ज लिया और परशुराम ने चार्ज दिया।

परशुराम और थे और राम और थे। परशुराम अधूरे थे, एक दृष्टि से राम पूरे थे। परशुराम ब्रह्मचारी थे, राम गृहस्थ में आगये थे। जिसके स्त्री नहीं है वह लाख पण्डित और सयाना हो, वह संसार की गति क्या जान सकता है? उसे प्रेम की समझ क्या और कैसे आवेगी? वह तो केवल बचपन की लीला का जीवन है। संसार के जीवन का आरम्भ उस समय होता है जब विवाह हो जाता है। पुरुष प्रकृति से मिलता है, नर और नारी का संयोग होता है, यह राजा और वह रानी ठहरती है और मनुष्य जगत् का भार इन के सिर पर और यह मनुष्य जैसी लीला करने लगजाते हैं।

राम ब्रह्म के अवतार थे। बारबार कहता हूँ कि वे ब्रह्म के अवतार थे। बुद्धि पूर्वक उन्होंने, मच्छ, कच्छ, नृसिंह, बावन और परशुराम के जीवन की कड़ियों को समाप्त किया। राम हुए, गृहस्थी बने। गृहस्थ धर्म की मर्यादा का पूर्ण रीति से पालन किया और मर्यादा पुरुषोत्तम कहलाए।

यह कार्य राम ने कब और कैसे किया? यह वृत्तान्त उनके अवध खंड के जीवन से आरम्भ होकर जीवन के अन्त तक के चरित्र विचार से समझ में आवेगा।

अवध कहते हैं अवधि (हद) को। अवध कहते हैं सुरति (तवज्जह) को। अवधि कहते हैं 'प्रतिज्ञा को' 'अव' पहले और 'ध' (धारण करना) यह अवध है।

राम इस जीवन में सुरतिधारी, प्रतिज्ञाधारी और धारणाधारी बने।

अब कथा प्रसंग सुनो।

——:o:——

दूसरा समुल्लास

युवराज पद विचार

दस इन्द्रियों के दस रथ के असक्त शरीरधारी दशरथ के आनन्द की कुछ सीमा नहीं रही। घर भर गया, पुत्र हुए, पुत्र बहू इन घर में आईं। गृहस्थी का सुख इन्हीं बातों में है। वह और उसकी रानियां सुन्दर जोड़ियों को देखकर सुख के समुद्र में डुबकियां लगाने लगीं। लड़के अच्छे, सुशील, आज्ञाकारी, धर्म परायण! उनकी स्त्रियां धर्मात्मा, पतिव्रता, सास ससुर की सेवा करने वाली! अब और क चाहिये?

घर बना मंगलभवन, मंगल की सुख की खान था।
मंगल इसका नाम रूप और मंगल उसकी जान था॥
मंगला सुख, सर्वदा सुख, मंगलम् मंगल सदा।
जान मंगल, मंगल और मंगल की यह पहिचान था॥
चन्द्र और रवि मिल गये, मंगल हुआ उससे प्रगट।
मंगल आया, ज्ञान अनुमान और यह परमान था॥

राम, लक्ष्मण और भरत और शत्रुघ्न, मंगल बने।
मंगल अब दशरथका बल, पराक्रम और अवसान था॥
था इधर मंगल, उधर मंगल, उसी की धूम थी।
धर्म मंगल, कर्म मंगल, दक्षिणा और दान था॥

सब के अन्तःकरण में इच्छा प्रगट हुई कि क्या अच्छा हो कि अपने जीतेजी बुद्ध सिद्ध के होते हुए यह अदेह असक्त दशरथ राम को युवराज पदवी देदें, तब प्रजा और अधिकतर सुखी होजायगी। एक मुँह से बात निकली दस कानों में गई, दस से बीस और बीस से सैकड़ों और हज़ारों तक पहुँची। सारे देश में फैल गई। सब में इसका चर्चा होने लगा।

आधार से जब धार निकलती है तो उसके प्रवाह को कौन रोक सक्ता है? सिर की शिखा से जब नस और नाड़ियों के रूप में सूत का ताना बाना फैलता है तो उसकी रोक टोक और रोक थाम कौन कर सक्ता है? यह सामर्थ्य किसी में नहीं है:—

धार जब आधार से निकली, हुई वह सहस धार।
सूत में होते हैं जैसे, सूत ही के तार तार॥१॥
धार सत्याकार होकर, जग तपाकारी बनी।
उसमें शून्याकार है, और है उसी में ओंकार॥
जगत् की रचना में द्वन्द्वाकार ही का है प्रबन्ध।
एक से जब दो हुए, दो से हुए लक्ष और हज़ार॥
त्वम् से तत् है, त्वम् पदम् और त्व पदम्।
तत्व है, तत्वम् असी, इसका करो साक्षात्कार॥
अपने तन में धारलो, तारों का तुम यज्ञोपवीत।
ईड़ा, पिंगला, सुषुमना का हो कभी मन में विचार॥

कौशल्या ने सुनी। दशरथ से कहा। दशरथ ने वसिष्ठ से सम्मति ली, वह बोले—"राम सुयोग्य पुत्र हैं, उनके युवराज होने में राज का कल्याण है। आप अवश्य उन्हें युवराज पद् देदीजिये। मैं इस विचार में आप का सहमत हूँ।" सारे मन्त्रियों ने अपनी प्रसन्नता प्रकट की। फिर क्या था? दशरथ ने इस प्रस्ताव को स्वीकार कर लिया। वसिष्ठ ने कहा—"कल का दिन बहुत शुभ है। कल ही राम का राजतिलक हो।" दशरथ ने कर्मचारियों को बुलाकर आज्ञा दी—"सारे नगर में ढिंढोरा पिटवा दिया कि कल दुपहर के समय राम अवध के युवराज बनाये जायँगे। नगर की शोभा करो और आज सब जगह सब के घरों में बन्दनवार बांधे जांय, अच्छी रोशनी की जाय, फल-फूल, जल-पत्र बहुतायत से एकत्रित किये जांय।"

मुंह खोलने की देर थी। राज आगया, महा आगया 'राज वाक्यम् जनार्दनम्'। सारे नगर में धूम मच गई। शुभ्रता का प्रबन्ध किया गया। सायंकाल के समय अयोध्यापुरी सूर्य्यमंडल के समान जगमगा उठी। दीपावली का दृश्य आखों के सामने आगया। हर जगह बाजे बजने लगे। सभायें नियत हुईं और धूम धाम होने लगी।

राम सब को प्यारे थे। इनका शीतल स्वभाव विचित्र था। जिसको एक दृष्टि से देखते थे वह मोहित होजाता था। बात करते समय मुंह से फूल झड़ते थे। इनका एक भी विरोधी नहीं था।

सब लोग बारी बारी पर बधाई (ऐडरैस) देने आये। राम ने सब का सन्मान किया। यह स्वाभाविक उदासीन वृति वाले थे। बधाई के उत्तर में कहा—"मेरे मन में किसी प्रकार की इच्छा नहीं है। मैं केवल जगत् की सेवा का भार अपने सिर पर उठाने आया हूँ। युवराज हुआ तो क्या, नहीं हुआ तो क्या? मेरा कर्त्तव्य सेवा करना है। यही मेरे जीवन का आदर्श है। आप मेरा सम्मान करते है। मैं आपका वाधित हूँ। ऐसा हो कि हम और आप मिल मिला कर ऐसा काम करें कि प्रजा सुखी हो। दुःख किसी को न सतावे। आप हमारे साथ साथ रह कर हमारे काम में हाथ बटावें तब आप के इन सन्मानपत्रों के भेंट देने का मन्तव्य पूर्ण होगा। यों तो राज दरबार में ऐसा हो होता रहता है।"

सब राम की बातों को सुन कर मग्न हो हो होकर अपने अपने घरों को गये।

—:०:—

तीसरा समुल्लास

स्वर्ग में सभा और देवताओं में खलबली

तुम को मैं बराबर बताता चला आरहा हूँ कि देवता दिव्य शक्तियों को कहते हैं जो प्रकृति के प्रबन्ध में लगे रहते हैं। यह शब्द संस्कृत धातु 'दिव्' (खेलने) से बना है। देवता खुल खेलना चाहते हैं। बन्धन में आना उन्हें स्वीकृत नहीं है और इनके अतिरिक्त अदेव या असुर वह शक्तियाँ हैं जो देवताओं को खुल खेलने नहीं देते।

तुम कहोगे "क्या यह शरीरधारी हैं ?" मैं कहता हूँ "हाँ ! यह शरीरधारी हैं। बिना शरीर के कोई शक्ति अपना प्रभाव नहीं दिखा सक्ती।" तुम देखो, विचारो, सोचो, समझो। किसी काम करने वाली दिव्य शक्ति को बिना शरीर के देखो तो मुझे भी दिखादो। कर्म जब होगा शरीर से होगा। विचार जब बनेगा मन ही से बनेगा। चाहे तुम मानो या न मानो। मैं मानता हूँ, मान गया हूँ, मुझे सन्देह नहीं रहा इसलिये एक नहीं हज़ारों मुँह से कहने के लिये तैयार हूँ कि वह शरीरधारी हैं।

ब्रह्म आप शरीरधारी है। साहस हो मेरी बात का खण्डन करो। यह ब्रह्माण्ड इसी ब्रह्म का शरीर है। विष्णु, ब्रह्मा, महेश सब शरीरधारी हैं। इसी प्रकार आकाश, वायु, अग्नि, जल, पृथ्वी सब के शरीर हैं। ये बिना शरीर के होते तो कभी कर्म न कर सक्ते।

जब देवताओं ने सुना कि राम अवध के युवराज होने वाले हैं, यह दुःखी हुये। दशरथ को बुरा भला कहने लगे, खलबली पड़ गई। सभा की। प्रजापति ब्रह्मा सभापति बनाये गये। विष्णु की सेना देवता है, यह अपनी सेना लाये। शिव की सेना भूत (पांच तत्त्व) वेताल, धुन, सुर, ताल। ब्रह्मा की सेना जीव जन्तुओं के बच्चों का समूह, यह भी आये। ठठ के ठठ देवता इकठ्ठा हुये।

ब्रह्मा ने कहा—"राम जिस काम के लिये प्रकट हुये हैं उसमें विघ्न पड़ने वाला दिखाई देता है।"

शिव—ऐसा कभी न होने पावे।

विष्णु—मैं अपना सारा बल लगा दूंगा। मेरे देवता राक्षस (देवी सम्प्रदाय वाले) बन्दर और रीछ बनकर राम की सहायता करेंगे।

ब्रह्मा—अच्छा ! तुम सब लोग कहे चलो। तुमको क्या हानि पहुँच रही है और साथ साथ उसके दूर करने का उपाय भी सोचा जावे।

चमकता और जगमगाता हुआ इन्द्र सामने आया—"मैं दिव्य शक्तिवाला देवता हूँ। खुल खेलना चाहता हूँ। रावण के लड़के मेघनाथ ने मुझे बांध लिया, मैं उसके आधीन होगया। मैं बेकाम तो रहना नहीं चाहता। काम करूँ और मेरा काम खेल खेल में हो। मनुष्य समझ से काम ले। लेकिन यह क्या, रावण और इन्द्रजीत ने मिलकर अपने कर्मचारियों द्वारा सैकड़ों प्रकार की कलें बनवाईं, उनमें मुझे बाँध लिया। लाखों काम लेता है। दिन को खेत मैं जोतूं, पंखा मैं करूं, सारी लंका को मैं रात्रि के समय प्रकाश दिया करूं। जो काम हज़ार मनुष्य करते थे वह एक कल से होजाता है। शेष बेकार पड़े रहते हैं और पृथ्वी में सब जगह झगड़ा बखेड़ा मचा रहता है।"

फिर आयु आया—"मुझे भी उसने कारागार में डाल रक्खा है। जब जैसा चाहता है कलों के बल से मुझे मोटा पतला बना कर अपने शत्रुओं को नष्ट भ्रष्ट कर देता है। मैं सधारण रीति में सब के जीवन का कारण हूँ। उसने लंका के पहाड़ में ऊपर, नीचे, बीच में नगर बसाये, कल लगाये उनके घरों में शुद्ध आयु बना कर मुझे भेजता है और उनसे कड़ लेता है और आकाश में इसके पुष्प विमानों को ढोना पड़ता है।"

वरुण (जल के देवता) ने कहा—"मेरी बड़ी दुर्गति है। मैं अपनी प्रकृति के अनुसार नहीं हूँ। जहाँ चाहता हूँ, रहने नहीं पाता। रावण अपने कलों द्वारा मुझे ऊपर नीचे लेजाता है। साधारण पानी किसी को नहीं लेने देता। शत्रु आया। रावण ने मुझे बड़ी बाढ़ बनाकर शत्रु के नष्ट भ्रष्ट करने को भेजा है। वह जहाँ चाहता है मुझे लेजाता है। मैं सर्व अङ्ग से रावण के वशीभूत होगया।"

अग्नि देवता बोला—"न कहीं यज्ञ है, न धर्म है। मैं जगत् का पुरोहित कहलाता हूँ। रावण के आधीन होकर उसके शत्रुओं को हज़ारों और लाखों मीलों की दूरी से जलाता हूँ, यह मेरी पुरोहिताई का धर्म हो रहा है। इसकी शतघ्नी को एक एक पल में हज़ारों बार दाग़ना और शत्रुओं को मारना पड़ता है।"

पृथ्वी रोती हुई आई—"मैं महा दुखी हूँ, मेरी बनस्पति, घास-फूँस, भंग-धतूरा सबको जला जला कर विष की धूली बनाता है और उसकी शतघ्नी द्वारा शत्रुओं की सेना में बरसा कर उन्मत्त कर देता है और हम से अनर्थ करा रहा है। उसने ऐसे चूरण बना रक्खे हैं कि चाहे तो लाखों और करोड़ों जीव जन्तुओं को पल में प्राणहत करदे और सृष्टि का तख़्ता पलट दे।"

सूर्य्य देवता अपनी किरणों के आँसू बरसाता हुआ आया "मैं रावण का बवर्ची बना हूँ, इसका पानी गरम करता हूँ, मेरी किरणों से उसका आहार पकता है। वह चाहे तो दिन को रात कर दे। धूप काल में वह मेरी धूप को समेट देता है और लङ्का को ठंडा बना देता है और शरद ऋतु में अपने देश को गरम कर लेता है। वह स्वर्ग में सीढ़ी लगाकर आने वाला है कि मेरी शक्तियों की तोल माप करे। अभी तक उधर उसका ध्यान नहीं गया है। यही दशा मेरे साथ चन्द्रमा की भी है।"

समुद्र आया। महिमा घटी समुद्र की, रावण लिया पड़ोस। मेरी दुर्गति जो कुछ हो रही है उसे कौन जान सकता है? सारा समुद्र खोखला कर दिया गया। हर जगह उसमें कलों की खानें नहीं बन रही हैं। पक्षी पखेरू तक उड़ते हुए समुद्र की राह से लङ्का में नहीं जा सकते। इनकी छाया के पड़ते ही खानों की कलों के पुर्ज़े हिलने लगते हैं। उनसे आकर्षण शक्ति उत्पन्न होती है और यह शक्ति उनको खींचकर समुद्र में डुबा देती है। *लाखों ऐसे जीव-जन्तु प्रति दिन मरते खिपते हैं।* देवताओं के आकाशी रथ और विमान तक उधर नहीं जा सकते। अब रावण इस उपाय में लगा है कि समुद्र के जल को मीठा कर दे। ऐसा हुआ तो मेरी मृत्यु समझो।

एक एक करके करोड़ों देवता इकट्ठे हो गये। ब्रह्मा, विष्णु और महेश घबराये। किस किस की बात सुनोगे? इतना समय नहीं रहा है। बातों में कुछ नहीं धरा है। काम करना चाहिए।

और निम्नलिखित प्रस्ताव उस सभा में समर्पण किये गये :—

(१) देवता रीछ व बन्दर और राक्षस बन कर जंगलों में रहें और राम के आने के निरीक्षण में लगे रहें।

(२) राम को किसी बात का पता न लगने पावे, वह अँधेरे में रहें। किसी को कानों कान यह समाचार न मिले कि देवता रावण के विरुद्ध द्रोह कर रहे हैं, वह भी न जानने पाये।

(३) कोई देवी या देवता ढूँड़ो जो मृत्युलोक में जाकर किसी ऐसे मनुष्य पर अपना प्रभाव डाले जो राम को युवराज न होने दे।

यह तीनों प्रस्ताव सर्व सम्मति से पास होगये और देवताओं की सभा समाप्त हो गई।

चौथा समुल्लास

हमारे अपने प्रश्नोत्तर

सम्भव है कि तुम पूछो—"यह देवी देवता जड़ हैं कि चेतन हैं?" मैं कहूँगा कि (१) ये प्रश्न बे ठौर ठिकाने के हैं। ब्रह्मा, विष्णु और महेश तीनों ही देवता इस जगत् के प्रबन्धकर्त्ता हैं। जगत् त्रिगुणात्मिक है। यह तीनों गुणों के रूपक हैं। तुम आप सोच सकते हो कि जगत् का प्रबन्ध चेतन कर सकता है या जड़? (२) जड़ चेतन दोनों उपेक्षिक शब्द हैं। यहाँ वास्तव में न कोई जड़ है, न चेतन है। जिसको तुम चलते फिरते देखते हो उसे चेतन और जिसे चलते फिरते नहीं पाते उसे जड़ कहते हो। यह केवल उपेक्षा मात्र है और उपेक्षिक मनतव्य सदा उपेक्षा के स्थल में हुआ करता है। उपेक्षा को उड़ा दो न कोई जड़ है, न चेतन है, जो है वह है (३) यदि तुम यह कहो कि बनस्पति इत्यादि में चेतन शक्ति नहीं है तो मैं कहूँगा कि यह तुम्हारी अत्यन्त भूल है। इनमें बल्कि कंकड़ पत्थर तक में उनके जीवन शक्ति के अनुसार चेतनता है। जिसे तुम चेतनता कहते हो उसके दो अंग हैं—एक बढ़ना, दूसरा सोचना। बनस्पति और कंकड़ पत्थर सब के सब बढ़ते, सोचते हैं। आज जो उनकी दशा है वह दो चार महीना, दो चार वर्ष पश्चात् नहीं रहेगी। इसका कारण यह है कि वह बढ़ते और सोचते रहते हैं। लाजवन्ती के छोटे पौधे को देख कर अनुमान करलो (४) यह ब्रह्म क्या है जिसे तुमने अपना इष्ट मान रक्खा है? यह जड़ है या चेतन है? तुम कहोगे कि यह चेतन है। यदि ब्रह्मा चेतन है तो उसका जगत् जड़ कैसे होगा? यह भी जब होगा चेतन ही होगा। ब्रह्म वह है जिसमें विरह (बढ़ना) और मनन (सोचना) हो। जगत् ब्रह्ममय है। इसमें जो कुछ है वह सब ब्रह्म ही ब्रह्म है। ब्रह्म के अतिरिक्त और कुछ भी नहीं है। ब्रह्मा से लेकर घास के तिनके तक सब बढ़ने और सोचने वाले ही हैं जो ब्रह्म का गुण, कर्म और स्वभाव है, जैसा ब्रह्म वैसा ही उसका जगत्।

सम्भव है तुम पूछो कि देवी देवता बोलते हैं या नहीं? यदि पहिले बोलते थे तो अब क्यों नहीं बोलते? मैं कहूँगा कि देवी देवता यदि पहिले बोलते थे तो अब भी बोलते हैं। हां! उनकी बोली का कोई समझने वाला तो हो। बोलना क्या है? केवल अपनी "अस्ति" की सत्ता का प्रगट कर देना है। कौन सी ऐसा वस्तु संसार में है जो अपनी सत्ता को प्रगट नहीं कर रही है? सब ही तो ऐसा कर रहे हैं। तुम इसे न समझो यह दूसरी बात हैः—

ब्रह्म है आधार सबका, ब्रह्म ही में धार है।
है शिखा जब ब्रह्म सूत्रों, का भी वह करतार है ॥१॥
ब्रह्म सत है ब्रह्म चित है, ब्रह्म से अनन्दगती।
ब्रह्म आनन्दकार, चेताकार सत्याकार है ॥२॥
ब्रह्ममय है जगत् और यह जगत् उसका रूप है।
ब्रह्म ही इस नाम रूप के जगत् का विस्तार है ॥३॥

——:o:——

पाँचवाँ समुल्लास

सरस्वती मन्थरा के परस्पर

रात का समय आया। अयोध्या में दीपावली का उत्सव मनाया गया। हर जगह नाच-रंग की धूम थी। सब सुखी थे कि कल राम के युवराज तिलक का दृश्य देखने में आयगा और राज-काज

का प्रबन्ध नवयुवक हाथों को सौंपा जायगा। लेकिन इस संसार की गति बड़ी विचित्र है। पल के पल में क्या हो जायगा, इसे कोई नहीं जानता और न जान सकता है। प्रकृति की शक्तियां आश्चर्यजनक खेल खेला करती हैं। देवासुर संग्राम की रणभूमि में किसे विजय और किसे पराजय प्राप्त होगी, इस का जानना हमारी बुद्धि के आधीन नहीं रक्खा गया।

मन्थरा, कैकेई की दासी हाट में कुछ मोल लेने आई हुई थी। यह कुबड़ी थी। विचार की क्रूर थी। देवताओं की प्रेरणा से सरस्वती शिकार के ताक में लग रही थी। इन्द्र ने अच्छे प्रकार उसे समझा रक्खा था। सरस्वती की दृष्टि मन्थरा पर पड़ी। काम का हथियार मिल गया। वह उसके सिर पर भूत बन कर चढ़ बैठी और क्षण मात्र में उसने उसकी बुद्धि को पलट दिया।

मन्थरा ने पूछा—"नगर में आज यह दीपावली क्यों होरही है? बहुत बड़ा उत्सव मनाया जारहा है"।

लोगों ने कहा—"बावली! तू रनवास में रहती है और महारानी कैकेई की दासी है और तू यह भी नहीं जानती कि कल रामचन्द्र को युवराज की पदवी दी जायगी और उनका अभिषेक होगा।"

मन्थरा—झूठी बात! असम्भव! रनवास में तो कानों कान किसी ने नहीं सुना। कोई बात होती तो मैंने अवश्य सुना होता।

लोग हँसे। जैसे तू कुबड़ी है वैसे ही तेरी बुद्धि भी कुबड़ी है। कुबड़ी के कान सम्भवतः कुबड़े ही होंगे। तू निपट अनाड़ी है जो इतना भी नही जानती।

मन्थरा चिढ़ गई। एक तो वह यों ही बुरे स्वभाव की थी, दूसरे हाट वालों की हँसी दिल्लगी और अनुचित असह्य बातों को सुनकर उसका चित्त और भी बिगड़ गया 'करेला और नीम चढ़ा'। करेला यों ही कड़वा होता है और नीम पर चढ़ने से तो उसका कड़वापन सौगुना बढ़ जाता है। हाट से लौटी और मन ही मन में सोचती गई "विधाता वाम है। राज महल की दासी होने पर भी मेरा कहीं मान और सन्मान नहीं है। हाट के छोटे छोटे बनिये मेरे अपमान का साहस करते हैं। अच्छा क्या हुआ? कुबड़ी हूँ तो कुबड़ी ही सही। इस राजतिलक के उत्सव को भंग न कर दिया तो कुबड़ी कैसी? महल की रानियां भी मुझ से कतराती और भेद की बातें छिपाती हैं"।

वह कैकेई के महल में आई। थर थर कांपती हुई, होट फड़क रहे थे और आंख लाल अंगारा बन रही थीं।

कैकेई ने उसकी दशा देखी, पूछा—"तुझे क्या होगया? क्या कहीं सिर पर भूत तो नहीं सवार होगया जो यों ही कांपती हांपती है?

मन्थरा—कुबड़ी को छोड़ कर भूत प्रेत किस के सिर पर खेलने आयंगे? अङ्गहीन प्राणी का बलिदान तो देवी देवताओं को भी नही चढ़ता। भला और नहीं तो भूत पिशाच ही मुझे स्वीकार कर लेंगे, यही सही।

कैकेई हंसी! तुझे हो क्या गया जो ऐसी उखड़ी उखड़ी बातें करती है?

मन्थरा—अभी हंसती हो और थोड़ी देर पीछे रोती फिरोगी।

कैकेई—चुप! मुंह संभाल कर बात कर नहीं तो इस अनोठी जीभ के काटने कटवाने की आज्ञा दूँगी। रोयें मेरे शत्रु, मैं क्यों रोने लगी?

मन्थरा—मेरी ज़बान पहिले कटवालो पीछे देखा जायगा। मैं इसी के योग्य हूँ।

कैकेई—अरे! तू कुछ कहती भी है या यों ही बड़बड़ाती रहेगी।

मन्थरा—मेरे सिर पर भूत खेल रहा है। रातदिन तुम्हारी सेवा करती हूँ और उसके बदले मेरी ज़बान काटी जारही है। या विधाता! तेरा खेल भी निराला ही है।

कैकेई—ले! ज़बान न कटेगी। बोल! कुछ कह तो सही।

मन्थरा—कहूँ क्या? कौशल्या ने तुम से आज अपना बदला लेलिया। बरसों से ताक में लग रही थी। अवसर पाया, दांव हाथ आया। उनके तो पौबारह होगये, तुम्हारे तीन काने हैं। किसीने सच कहा है :—

रूप जिसका है बुरा, उसका हुआ नाम बुरा।
चून की सौत बुरी, साझे का सब काम बुरा॥

कौशल्या का नाम सुनना था कि कैकेई के तलुओं में आग लग गई। पाँव के तले की पृथ्वी खिसकने लगी।

कैकेई—क्या हुआ?

मन्थरा—हुआ क्या? जो होने वाला था वही हुआ और क्या होता? कल राम का तिलक होने वाला है। कौशल्या के घर में बधाई बज रही है।

कैकेई—यह तो बड़ा आनन्ददायक समाचार है। राम अपने भाइयों में सब से बड़े हैं, वह बुद्धिमान भी हैं। तिलक तो उनका होना ही है, आज नहीं तो महाराज के पीछे वही तो कौशलराज होंगे। आ! तेरा मुंह मोतियों से भर दूं। तूने अच्छी खबर सुनाई है।

मन्थरा—वाहरे तेरा भोलापन! अभी मेरी ज़बान काटी जारही थी और अब मोतियों से मुंह भरा जायगा। मोती मेरे भाग्य में कहाँ हैं? हां! ज़बान के कटते ही लहू लहान हो जायगा और मेरा मुँह लहू से निःसन्देह भर जायगा। बलाये लूँ मैं तो अभी से अपना बोरिया बिस्तर समेटती हूँ।

कैकई ने सोचा मन्थरा के मन में कोई और बात है जिसे उसने अब तक नहीं कहा, पूछा—"तू स्पष्ट बात क्यों नहीं कहती?"

मन्थरा—तुम बड़ी भोली भाली हो। तुमको घमंड है कि महाराज तुम पर रीझे हुये हैं। यह सब झूठ है। राजा तो कौशल्या के हाथ के खिलौने हैं। यह भी उसी ने सिखा पढ़ा रक्खा जो तुम्हारे पास आकर नित नई चिकनी चुपड़ी बातें करते हैं। वह तो मोम की नाक हैं। कौशल्या जिधर चाहती है उन्हें मोड़ती रहती है। यही न देखो कि बिवाह होते ही भरत को काश्मीर नाना के घर भिजवा दिया। तुमको पता नहीं दिया कि राम का तिलक होगा। वह डरती है कि कहीं भरत राम के विरोध में सिर न उठायें और तुमको किसी ने अब तक यह समाचार भी नहीं सुनाया।

कैकेई—यह सब तेरी मिथ्या कल्पना है, कोई बात नहीं है!

मन्थरा—तो मुझे जाने दीजिये मैं और जगह जाकर अपना मुंह काला करूं। राम कौशल राज हों, महलों में कौशल्या का राज हो, भरत मारे मारे फिरें। मुझसे यह न देखा जायगा। तुमने पहले ही कह दिया है कि मेरे सिर पर भूत चढ़ा है। और तुम्हारे महल की दशा क्या होगी? यहाँ डांकनियाँ, साँकनियाँ नाचेंगी और तुमको उनका खेल देखना पड़ेगा। कौशल्या दशरथ को तो सौ सौ नाच नचाती ही हैं तुमको भी नये निराले नाच नाचने पड़ेंगे। मैं इसे नहीं देखना चाहती।

कैकई—कहती तो तू सच है, फिर क्या करूं जिससे कौशल्या के प्रभाव की दृढ़ता मिट जाय।

मन्थरा ने देखा कि उसका जादू प्रभावशाली सिद्ध हुआ, बोली—"यह काम कठिन नहीं है, सरल और सहज है। यों चुटकी बजाते हुये काम निकलेगा और कौशल्या तुम्हारा लोहा मान जायगी।"

कैकेई—वह उपाय क्या है?

मन्थरा—तुमने एक दिन मुझसे कहा था कि राजा ने तुम्हें दो वर दिये हैं। मुझ निगोड़ी को स्मरण नहीं है। तुमने समर भूमि में उसकी सहायता की थी, वह प्रसन्न हुये, तुम से कहा—"दो वर माँगो।" तुमने कहा था—"जब किसी बात की आवश्यक्ता होगी मैं कहूँगी।" अब उसका समय आगया।

कैकेई—सच है। राजाजी इन्द्र की तरफ़ से असुरों से लड़ने गये थे रथ का पहिया भूमि में गिर कर टूट गया। मैंने अपना हाथ धुरे में डाल दिया। राजा लड़ते रहे और विजय प्राप्त करली। जब वह रथ से उतरे मैंने अपना हाथ निकाल लिया। लहूलहान होगया। उन्होंने मेरी सेवा से प्रसन्न होकर दो वर माँगने की आज्ञा दी।

मन्थरा—अब वह वर माँगो।

कैकेई—क्या मांगू ?

मन्थरा—भरत को राज, राम को बनवास।

कैकेई—नहीं! नहीं!! नहीं!!! यह अनुचित होगा राम बड़े हैं, राज उन्हीं को मिलना चाहिये। भरत को इसका अधिकार! राम ने मेरा क्या बिगाड़ा है जो उन्हें बन दिया जाय। वह मुझे भरत से अधिक प्यारे हैं और कौशल्या से विशेषतर मुझे प्यार करते हैं। यह उपाय अच्छा नहीं है। घर में फूट पड़ जायगी। मैं बदनाम होंगी। पाप की भागी होंगी। मेरी शत्रु तो कौशल्या है, राम मेरे शत्रु नहीं हैं।

मन्थरा ने देखा कि इसका जादू उतर रहा है, मुंह बना कर बोली—"राम अच्छे, कौशल्या अच्छी! बुरी मैं ही हूँ। होम करते मेरा हाथ जलाया जाता है, सच्ची बात बोलते ज़बान काटी जाती है। मुझे हाँ में हाँ मिलाना और सत्य बचन कहनानहीं आता। मैं तो बाँदी की बाँदी ही रहूँगी, रानी नहीं हूंगी। यह घर न सही दूसरा सही, तुमने मुझे अच्छा पारितोष दिया। मैं घर में फूट डालने वाली हुई। कहीं कौशल्या सुन पायें तो अभी मेरी खाल खिंचवालें। सरस्वती उसकी जिव्हा पर बैठी थी। वह यह कह रोने लगी और साथ ही महल से चले जाने की धमकी भी दी।

कैकेई—मैं अन्याय नहीं करना चाहती। राम का राज छीनना नहीं चाहती और कोई उपाय बता दे।

मन्थरा—तो राम के लिये केवल चौदह वर्ष का बनवास और भरत के लिये चौदह वर्ष का राज्य। यह तो हो सकता है। बारह वर्ष का युग होता है, कौन जाने उस समय तक क्या हो? कौन राजा, कौन प्रजा? हां! कौशल्या का बल टूट जायगा और तुम अखंड और निर्द्वन्द्व राज करोगी।

कैकेई—इसमें इतनी हानि नहीं है, सोचने दे।

मन्थरा—'घड़ी में घर जले और ढाई घड़ी का भद्रा।' कल प्रातः समय राम युवराज होजायँगे। सोचने का समय कहाँ रहा है? बुद्धिमान मनुष्य अपना काम बनाते हैं। कायर निर्बुद्धि असमंजस में पड़े हुये आगा पीछा देखा करते है, इनसे कुछ नही होता।

> समय समय पर काम कर, समय विरोध और हेत।
> फिर पछताये क्या होत है, जब चिड़िया चुग गई खेत॥

कैकेई—मैं समझ गई। तू मेरा भला चाहती है, चली जा। रात सब गई, राजाजी आते ही होंगे। मैं कोपभवन में जाती हूँ। बिना काम बनाये हुये इसके बाहर न आऊंगी। भरत की सौगन्द है, जैसा तूने कहा है वैसा ही करूंगी"

मन्थरा—उठ कर चली गई।

छठा समुल्लास

कोप भवन

उधर मन्थरा ने पीठ फेरी। इधर कैकेई ने एक एक करके आभूषण उतारे। जो साड़ी पहिन कर बैठी थी उसे तन से दूर किया। मैला-कुचैला कपड़ा पहिन लिया और कुरूप कुबुद्धि, कुवस्त्रधारी बन कर कोप भवन में जाकर नंगी पृथ्वी पर लेट रही।

पहिले समय में राजाओं के महलों में एक कोठरी कोप भवन के नाम से बनी रहती थी। जब

कोई रानी रूठती थी तो उसमें जाकर बैठ रहती और राजे उसे मनाने जाते थे।

दशरथ महल में आया, कैकेई को वहाँ नहीं देखा, पूछा-"रानी कहां गई?" उत्तर दिया गया-"वह कोपभवन में पड़ी है।"

कोपभवन का नाम सुनते ही उसका माथा ठिनका। यह सुखी होरहा था कि राम कल के दिन युवराज होंगे और उस उत्सव को देख कर यह अपने जन्म को सुफल समझेगा। कोपभवन के शब्द से इसके कान खड़े हुए।

यह कोपभवन में आया। देखा कैकेई कुरूपवती बनी हुई सिसक रही है। पास गया। उसके हाथों को पकड़ कर कहने लगा-"प्रिया! तुझे क्या दुख है? किस पर कोप है?"

वह कुछ न बोली यह उसे मनाने लगा-"किसने तुझे क्लेश दिया, उसे राज से अभी निकाल दूँ। किसने तेरा अपमान किया उसे मरवादूँ। जो तू कहे मैं करने को उद्यत हूँ।"

फिर भी उसने अपने मुंह को नहीं खोला।

दशरथ ने कहा-" अरे! तू बोलती क्यों नहीं? क्या चाहती है? मुंह खोल! तू जो मांगेगी वही दूँगा। जिसे कहे उसे राज दूँ, जिसे कहे उसे देश निकाला दूँ। मुझे तेरा कहना सब प्रकार स्वीकृत है।

शिकार आप ही आप फंसता चला आरहा है। यत्न करने की किसे आवश्यक्ता है?

राज और बनवास के शब्द सुनकर वह तमक उठी। "न देना न लेना। तुम ऐसे ही बातें बनाते रहते हो। किसी को कब क्या दिया? हां! लेने के व्यौहार और व्यापार में तुम कुशल और प्रवीण हो।"

दशरथ—तुमने कब परीक्षा की? रघुवंशी बचन पालने, प्रतिज्ञा के निभाने और पन के निभाने के लिये जगत में प्रसिद्ध हैं—

"प्राण जाँय पर बचन न जाई"

कैकेई—मैं कसौटी पर कसे बिना सोने को सोना नहीं कहती।

दशरथ—तो सोने को कसौटी पर क्यों नहीं कसती? किसने रोक थाम कर रक्खा है?

कैकई—और सोना होने के बदले वह पीतल निकल गया तो क्या करूंगी? इससे तो चुपचाप धोखे के दुखों का सहना ही अच्छा है।

दशरथ—फिर तो कहना सुनना व्यर्थ है। मैं इस समय सब कुछ करने और सब कुछ देने को तैयार हूँ। राम की सौगन्द खाता हूँ, जो तू मांगेगी वही दूँगा।

कैकेई ने आंखें बनाईं। "तुमने पहिले मुझे दो वर दिये थे; स्मरण है कि भूल गये।"

दशरथ हंसा—याद है। दो क्या तीन मांग ले

कैकेई—दो वर दो और मैं सर्वस्व पागई।

दशरथ—अभी मुंह मांगा वर दूँगा। राम की सौगन्द खा चुका हूँ।

कैकेई—तो राम को चौदह वर्ष का बनवास और भरत को चौदह वर्ष का राज्य दो। यही मेरे दो वर हैं। इनके अतिरिक्त मैं और कुछ नहीं चाहती।

पके और सूखे हुये नाज के खलियान पर बिजली गिरी। वह जल भुन कर राख होगया। बसी बसाई बस्ती में बाढ़ आया। पानी पानी होगया। घर द्वार सब बह गये। जंगल में आग लगी। बृक्ष, बेल बूटे, घास-फूंस सब जल उठे। यही दशा दशरथ की भी होगई। देह शिथिल, इन्द्रियां निर्बल, मन दहला गया। हाय! हाय!! मनोरथ और कामना का गाछ बढ़ा, लहलहाया, कोंपलों और पत्तों से लद गया। फूलने और फलने के समय उसकी जड़ में कुल्हाड़ी लगी। हाय! हाय!! हाय!!!

कैकेई ने जले हुये मन के फफोले पर नौंन छिड़कना आरम्भ किया "वाह महाराज! क्या भरत आपके लड़के नहीं है? मुझे क्या आप दाम देकर बाँदी मोल लाये थे? वरों को सुन कर मिर्चें क्यों

लगी ? आपने समझा था कैकेई गंवार है, गाजर मूली मांगेगी। 'वचन बद्ध होने और प्रतिज्ञा आरूढ़ बनने' की सौगंद खाई थी। अब क्या होगया ? हाय हाय क्यों करने लगे ?

दशरथ—हाय ! हाय !! हाय !!!

कैकेई—आप रघु के वंश के मुनि कहलाते हैं और यह दशा है। शिवि ने क्या किया ? हरिश्चन्द्र और शिवि ने कैसे अपने प्रण का निर्वाह किया।

पपीहा पन को ना तजे, तजे तो तन बेकाज।
तन छांड़े तो कुछ नहीं, पन छांड़े है लाज॥

दशरथ—हाय ! सर्पनी ने मर्म स्थान को डस लिया। अब औषधि भी कुछ काम न करेगी।

कैकेई—मैं प्रिया से अब सर्पनी बन गई।

दशरथ—भरत को मैं राज देदूँगा। राम को वन न जाने दे। इतना तो तू कर सक्ती है।

कैकेई—मैं कौशल्या से अपना बदला लूंगी, बिना बदला लिये न छोड़ूंगी।

दशरथ—कौशल्या का कोई दोष नहीं है। उसने मुझ से कभी कुछ नहीं कहा था। अपराध मेरा है। मैंने तेरी सम्मति नहीं ली और तेरे पूछे बिना युवराज पद देना चाहा।

कैकेई—क्यों न हो ? तुम साधु और राम और कौशल्या साधु हैं। संसार में केवल कैकेई और उसका पुत्र भरत दोनों असाधु हैं।

दशरथ—कैकेई ! तू तो कहा करती थी राम भरत से अधिक प्यारे हैं और अब क्या होगया ?

कैकेई—मैं राम को बुरा तो नहीं कहती। समय समय की बात है। इस समय मैं ऐसा ही करना चाहती हूँ।

दशरथ—मछली पानी के बिना चाहे जीती रहे, जीव-जन्तु वायु न पाकर भी संसार में चाहे रहें, दशरथ बिना राम के नहीं रह सक्ते।

कैकेई—आप भरत के बिना जी सक्ते थे तभी उन्हें काश्मीर को भेज दिया। मेरे सामने आपका माया जाल नहीं चल सक्ता। प्रभात होते ही राम बन को नहीं जायें तो मैं प्राण त्याग दूंगी और संसार में आपको अपयश होगा।

सिर पर दुःख का पहाड़ टूट कर गिर पड़ा। दशरथ चट्टानों की चोट खाकर कुचल गया। सिर उठाने के योग्य नहीं रहा, फिर भी संभल कर बोला—"मेरा सिर लेलो, अभी उतार कर रखदूँगा। राम को वनवास न दो, यह दुःख असह्य होगा।

कैकेई—आपने वर दिया था, मैंने वर मांग लिया, सिर नहीं मांगती। उसे अपने धड़ पर रहने दीजिये। राम को बन, भरत को राज यह वर है।

दशरथ—राम को राज की इच्छा नहीं है, न भरत ही राज्य के अभिलाषी हैं। वह सुनेंगे तो उन्हें बड़ा दुःख होगा।

कैकेई—हिमालय अपनी जगह से टल जाय, सूरज पूरव के बदले पश्चिम से निकले, चन्द्रमा गरम होजाय, पानी आग और आग पानी बने, मैं अपने को कभी न बदलूंगी।

दशरथ—अच्छा ! जब तक जान में जान है अब अपनी बातों से मेरे मन को दुखी न कर। जो होनी था होगया, होकर रहेगा। तेरे सिर पर भूत सवार है और वह मेरा काल है।

यह कह कर दशरथ ने करवट बदली, आंख बन्द करली। प्रार्थना करने लगा—"हे ईश्वर ! राम का मन बदल दे, वह मेरी बात न मानें, या सूरज न निकले और राम बन को न जांय।"

लेकिन ऐसा कब होने वाला था ?

सातवां समुल्लास

राम—दशरथ

पौ फटते ही कुकड़ू बोलने लगे, कौए कांऊ कांऊ करने लगे। इधर दशरथ की आँख दुख के कारण नहीं झपकी, उधर अयोध्यावासी राम अभिषेक के उत्सव और सुख देखने के ध्यान में नहीं सोये। दुख की रात पहाड़ होती है और सुख के रात की आयु बहुत थोड़ी होती है।

राम उठे। न्हा धोकर सन्ध्या बन्दन किया। वह अपने इष्ट मित्रों से घर गये।

कर्मचारी मन्त्रीगण इत्यादि राज द्वार पर आये। राजा दशरथ प्रातः काल उठता था। आज दरबार भवन सूना पड़ा था। सबको आश्चर्य्य हुआ कि अभिषेक का दिन और महाराज अब तक नहीं आये सुमन्त मन्त्री था और हाथी, घोड़े, रथ सबका प्रबन्ध इसी के आधीन था। उससे कहा गया—"जाकर महल में देखो कि महाराज अब तक क्यों नहीं उठे ?" यह महल में आया। महल कैसा! दशरथ तो कोपभवन में पड़ा हुआ था, वह वहां गया। जिससे समाचार पूछता था, वह चुप रहता था। कोई किसी से बातचीत नहीं करता था। चारों तरफ़ उदासी छाई हुई थी। सब के मुंह पर हवाइयां उड़ रहीं थीं।

यह भीतर गया। देखा राजा महादुखी है और वे पानी की मछली के समान तड़प रहा है। नमस्कार किया। कुशल पूछी। दशरथ ने उत्तर दिया—"पहिले राम को बुला लाओ, पीछे समाचार पूछो।"

वह दौड़ा हुआ गया। मनमें तो समझ गया कि रानी ने कोई न कोई उत्पात मचाया है लेकिन पूछे तो किससे पूछे और उसे बताये भी तो कौन बताये ?

यह राम से मिला। रामने आदर सत्कार किया। सुमन्त ने कहा—"जल्द चलिये, महाराज ने बुलाया है।" यह आये, नमस्कार किया। बोले तो बोले कौन ? दशरथ तो लम्बी सांस ले ले कर ठंडी आहैं भर रहा है। तब राम कैकेई के पांव पर गिरे "मातेश्वरी! पिताजी को क्या दुख है ?"

कैकेई ने उत्तर दिया। सुनो राम! तुम सर्वप्रिय हो। महाराज तुमको सब से अधिक प्यार करते हैं। किसी समय महाराज ने मुझे दो वर दिये थे। कल मैंने उन वरों के पूरा करने के लिये कहा। आपने तुम्हारी सौगन्द खाकर मुझे वर मांगने की आज्ञा दी। मुझे जो भाया मैंने मांग लिया और वह यह हैं—भरत को चौदह वर्ष का राज्य और राम को चौदह वर्ष का बनवास। बात केवल इतनी ही है। महाराज को तुम्हारे वियोग का महादुख है। यह कारण हैं कि इनका मन मलीन होगया है। उनकी लाज तुम्हारे हाथ है। चाहे उनके वचन को सच करो चाहे झूंठ करो। मैंने यह भी कहा कि आप वर न दीजिये। अपने वचन को पलट दीजिये और संसार में अपनी अपकीर्त्ति कराइये। यह उन्हें स्वीकृत नहीं है। दुविधा में पड़े हुए हैं और दुविधा ग्रस्त प्राणियों की दशा में हैं।"

राम ने कैकेई को सन्तोष दिया—"माता! भरत में और मुझ में कोई भेद नहीं हैं, जो वह हैं वही मैं भी हूँ। उनके राजतिलक से मैं बहुत प्रसन्न हूँ, किसी को भी बुरा न मानना चाहिये। मैं जहाँ जहां वन में रहूँगा भरत की कीर्त्ति को फैलाता रहूँगा।"

फिर राम ने दशरथ के पांव को छूकर नम्रबाणी से निवेदन किया "चौदह वर्ष की अवधि बहुत नहीं होती। मैं सुखपूर्वक उसे व्यतीत करके फिर आपके चरण कमल का दर्शन करूंगा। यह कोई ऐसी बात नहीं है जिसके लिये आप इतने दुखी हो रहे हैं। आप प्रसन्न हो कर मुझे वन जाने की आज्ञा दीजिये।"

दशरथ का मुँह बन्द था। न हाँ कहा न नहीं कहा। सांप छछूंदर की दशा थी। राम ने फिर उन्हें समझाया "मैं आप का आज्ञाकारी बालक हूँ। माँ बाप की आज्ञा का पालन करना सन्तान का परम धर्म है। आप के प्रसन्न रहने से मुझे जीते जी अर्थ, धर्म, काम, मोक्ष की प्राप्ति रहेगी। मैं चलकर माता से मिल आऊँ फिर दर्शन करके वनको चला जाऊँगा।" राम को न हर्ष था, न विशाद था और वह कोप भवन से कौशल्या के महल में गये।

——:o:——

आठवाँ समुल्लास

नगर में कुहराम मचा

जंगल की आग के समान राम की वन यात्रा का समाचार सब जगह फैल गया। छोटे बड़ों ने सुना, बुरा लगा। हरी भरी खेती आँखों को भली लगती है। उसे कोई झुलस दे तो किसे अच्छा लगेगा ? या तो नगर में बधाई बज रही थी या अब जिसने सुना अपने कलेजे को थाम लिया। बना बनाया हुआ काम बिगड़ गया। लहलहाते हुये खेत में पाला गिरा और वह देखते देखते जल गया।

लोग कहते थे कैकेई को हो क्या गया ? वह इतनी बुरी तो कभी नहीं थी। हाँ! सौतिया डाह तो उस में कूट कूट कर भरी थी लेकिन राम से तो वह क्रुद्ध नहीं रहती थी।

एक ने कहा—अन्त बुरे का बुरा। जिस घर में कई स्त्रियाँ रहती हैं वहाँ तो ऐसा ही होता है और होना भी चाहिये। दशरथ लगभग बूढ़ा होगया था उसे नई नई स्त्रियों से प्रेम का नाता जोड़ना अच्छा लगता था। एक स्त्री कौशल्या ही बहुत थी। तीन २ रानियाँ पटरानियाँ! और फिर और और विषय के सामग्री की बहुतायत! अब जाकर उसकी कसर निकली।

दूसरे ने कहा-"इस में किसी का भी दोष नहीं है। जो कुछ किया, विधाता ने किया। देवता मनुष्य को अपने खेल का लट्टू बना बना कर नचाते रहते हैं। कोई करे भी तो क्या करे ? यह बिना खटपट मचाये हुए किसी को निश्चिन्त नहीं बैठने देते, बराबर लड़ाते रहते है।

तीसरे ने कहा—"संसार बदल गया। सब की बुद्धि पलट गई और तू अब भी वही पुरानी लकीर का फक़ीर बना हुआ है! कहाँ के देवी कहां के देवता! यह सब भ्रम ही भ्रम हैं। देवता होते तो हम को तुम को सब को दिखाई तो देते।"

चौथा बोला-"कहीं ना कहीं तो दाल में काला था। यह कर्म की गति है। कर्म का फल अवश्य मिलता है 'अवश्य मेव भोगतव्यम् कृतं कर्म शुभाशुभम्!' मनुष्य समझता है हमही सब कुछ हैं, अहंकार में चूर रहता है!"

पाँचवां—कैकेई को अपयश मिला था। उसके माथे कलङ्क का टीका लगने वाला था, सो लग गया। कोई क्या करे ? और वह भी क्या करे ?

छटा-यह ससार कुत्ते को पूँछ है। यह कभी सीधी नहीं होती। टेढ़ी की टेढ़ी बनी रहती है। आज तक किसी ने इसे सीधी नहीं किया। ब्रह्मा बनाता और विष्णु सम्हालते रहते है। शिवजी आकर दम के दम में तहस नहस कर देते हैं।

सातवाँ—नगर की बड़ी उन्नति होरही थी। कितनी ही चटशालायें, औषधि शालायें, कला-शालायें बनती चली जा रहीं हैं, अयोध्यावृद्धि के शिखर पर चढ़ रही थी। कैकेई के इस ऊधम का परिणाम सब को मिट्टी में मिलाये विना न छोड़ेगा।

आठवाँ—यह सब तो सच है। जगत् देवासुर संग्राम है। यहां तो ऐसा ही होता रहेगा, होता चला आरहा है लेकिन राम कैसे अच्छे स्वभाव वाले थे। ऐसा मनुष्य तो संसार में कहीं देखने में नहीं आता। उन पर ऐसी आपत्ति आये! बात समझ में नहीं आती।

नवां—राम मनुष्य नहीं है! सब के शत्रु होते हैं, इनका कोई शत्रु नहीं है। एक सिरे से लेकर दूसरे सिरे तक सब उनके शील की प्रशंसा करते हैं। यह देवता हैं।

दसवाँ—कैकई शत्रु बनी कि नहीं?

ग्यारहवाँ—नहीं! कौन जाने इस कर्म की लीला में क्या रहस्य है? वह तो भरत से अधिक राम को चाहती थी। भरत जब देखो नाना के घर परदेश में रहते थे और कैकेई की गोद की शोभा राम से रहती थी। कोई बात समझ में नहीं आती।

लाखों मुँह, लाखों बातें! कोई कहाँ तक इनका वर्णन करे।

—:✻:—

नवां समुल्लास

राम-कौशल्या

राम कोप भवन से कौशल्या के महल में आये माता के चरणों में शीस झुकाया उसने आशीर्वाद दिया।

कौशल्या—बेटे! कुछ जल-पान कर ले। देर होगई है। आज भीड़ भुड़कम रहेगी। तुझे मेरे पास आने का समय न मिलेगा। राजतिलक दो घंटे के पीछे होगा।

राम—राजतिलक न होगा। पिताजी ने मुझे बनवास की आज्ञा दे दी, मैं बन यात्रा करने जा रहा हूँ। तुझ से मिलने और तेरा दर्शन करने आया हूँ।

कौशल्या के सिर पर दुख का पहाड़ गिर पड़ा। "अभी तो ब्याह होकर आया है। बाप की आज्ञा न मान। मैं माता हूँ। बेटे और बहू के सुख का भोग तो मुझे कुछ मिले। माँ को पिता की अपेक्षता अधिक विशेषता है। उनकी बात जाने दे, मेरी बात मान।

राम—माताजी ने भी आज्ञा देदी।

कौशल्या समझ गई! अच्छा जब माता पिता दोनों ने कह दिया तो मैं क्यों अपना मुँह खोलूँ? माता पिता की आज्ञा और उनका आशीर्वाद तेरी सहायता करेगा।

राम—केवल चौदह वर्ष के लिये बन को जाता हूँ, भरत युवराज होंगे। मैं चौदह वर्ष बन में रह कर फिर तेरे चरण आकर देखूगाँ।

कौशल्या—भरत मेरे जीवन का आधार रहेगा। जैसा तू वैसा ही वह। दोनों ही मेरी दृष्टि में समान हैं।

राम—तुझे और जो कुछ कहना सुनना हो कहसुन दो।

कौशल्या—क्या कहूँ और क्या सुनूं। तूने कह दिया मैंने सुन लिया। माँ की मामता को धक्का तो पहुँचा। वह पत्थर नहीं है। मोम के समान कोमल है लेकिन झूठी है। रोती हूँ आँसू बहाती हूँ तो मेरे ठेस लगेगी, तू सुमरण करता रहेगा कि माता दुखी है। मैं आँसुओं को पीगई। तू संसार में किसी और काम के लिये उत्पन्न हुआ है। मेरा कर्त्तव्य (करतब) दूसरा है। तुझे सुख दुख की परीक्षा में आना पड़ेगा। मैं जानती हूँ वहां कष्ट क्लेश भुगतने पड़ेंगे। वीर बन कर जा, और वीर बन कर रह वीर की दशा में बन से अयोध्या को लौटआ। जीती रही तो फिर लौटने पर तुझे देखूंगी‥‥ ‥‥जा। वन देव तेरा पिता और वन देवी तेरी माता हो!"

राम को वन जाने का दुख नहीं था। वह स्वाभाविक उदासीनवृति वाले थे। अपनी मां को भोली भाली और सरल स्वभाव वाली समझते थे। उसका आशीर्वाद सुनकर हस पड़े "माता! क्या वनदेव और वनदेवी भी वन में हुआ करते है?"

कौशल्या ने भी उस समय राम को भोला भाला बच्चा समझा। सिर और माथा चूमा और छाती से लगा लिया। "हां बेटे! वन देवी और वन देव होते हैं। सृष्टि में जहाँ कहीं कोई केन्द्र बन जाता है इधर उधर से शक्तियाँ आकर्षित होकर उसे एक व्यक्ति बना लेती हैं और उसमें पुरुषत्व स्त्रीत्व भाव प्रगट होजाते हैं और इन्हीं को देवी देव कहते है। यह रचना केन्द्रों की समुदाय है। सृष्टि का समुद्र सदैव लहराता रहता है। उसके लहराने से जगह जगह केन्द्र बनजाते हैं और वही जीव हो जाते हैं। सूरज जीव है जिस के कुल से तू उत्पन्न हुआ। चांद जीव है, तारे जीव है। एक केन्द्र में एक तू, एक तेरा पिता, एक भरत इत्यादि। जीव संज्ञा सब में रहती है और जब यह सब में होती है तो फिर वन के समूह में क्यों न होगी? वन की पुरुषत्व शक्ति का समूह वनदेव, प्रकृत्व शक्ति का समूह वनदेवी कहलाते है और प्राणी अपने भाव से उन की सहायता के भागी होते है।

राम—क्या वृक्ष में भी जीव होते है?

कौशल्या—एक वृक्ष के पत्ते २, टहनी टहनी, ऐड़ी ऐड़ी, चोटी, डाली डाली, जड़ जड़ सब जगह अनेक जीव केन्द्राकार होकर बसे रहते हैं। तूने पीपल के गाछ की संतति में सुना होगा—

मूले ब्रह्मा त्वचि विष्णु शिखामध्ये महेश्वरः
पत्रे पत्रे देवानाँ वृक्षराज! नमोऽस्त, ते।

एक मिट्टी का ढेला, एक पानी की बूंद तक जीव जन्तु के बिना सृष्टि में रह नहीं सक्ता, सब जीव ही जीव तो हैं।

जीव बिना जीवे नही, जीये जीव अहार।
जीव रूप सृष्टि समझ, व्याप रही ससार॥

पुत्र तू सुपुत्र है। तूने मेरी कोख को पवित्र कर दिया। मैं बोलना नहीं चाहती थी। तूने अपनी बुद्धि से बुलवा लिया, सुनवा लिया, कहला लिया, देर होरही है। जा वनदेव और वनदेवी तेरे सहायक हों!"

राम माता के चरणों में झुके। उस से नहीं रहा गया। रो पड़ी और सिर पर हाथ रख कर आँसुओं के मोती न्योछावर किये और राम उस से विदा हुये।

दसवां समुल्लास

राम-सुमित्रा

राम अपनी दूसरी माता सुमित्रा के भवन में गये। वह काम काज में लगी थी। पाँवों पड़े। उसने छाती से लगा कर माथा चूमा, आशिष दिया।

राम ने कहा—"मातुश्री! वन जाने की आज्ञा मिले।"

सुमित्रा—मैं सब समाचार सुन चुकी हूँ। जाओ वन में सुखी रहो। तुम्हारे लिये वन उपवन, मधुवन, बस्ती और पहाड़ एक हैं। फलो-फूलो, बढ़ो-सोचो, तुम्हारे सहारे संसार का उपकार हो।"

राम—"तुम्हारा आशीर्वाद मेरा सहायक होगा। वन में मेरा बढ़ना और सोचना कैसे सम्भव है"

सुमित्रा—राम! तुम ब्रह्म के अवतार हो। ब्रह्म सागर तीनों काल में लहराता, बढ़ता और सोचता रहता है। तुम अपने इस विरह (बढ़ने) और मनन (सोचने) के गुण से रहित कैसे हो सक्ते हो? पराक्रम, प्रयत्न और परिश्रम से यश और कीर्त्ति में बढ़ो। विवेक, विचार और ज्ञान से नाता जोड़े हुए मनन (सोचने) की शक्ति से काम लो।

राम ने नमस्कार करके पीठ फेरी।

ग्यारहवाँ समुल्लास

राम—सीता

सीता ने सुना राम बन को जा रहे हैं। घबराई, व्याकुल हुई, दौड़ी हुई आई। चुपचाप! मुँह बाँधे हुये सामने आकर खड़ी होगई।

राम ने कहा—"प्राणप्यारी! बन को जारहा हूँ।

सीता—मुझे भी साथ ले चलो। यहाँ अकेले रह कर क्या करूँगी और कैसे रहूँगी?

राम—यहाँ रह कर सास की सेवा करो। जब माता उदास हो और मेरे वियोग के दुख से बेकल दिखाई दें, कथा वार्त्ता सुना कर उसे सन्तोष कर दिया करो।

सीता—मैंने यह तुम्हीं से सुना था कि स्त्री का धर्म पति की सेवा और साथ है और आज आप कुछ और ही उपदेश दे रहे हो। गौण और मुख्य पक्ष को दृष्टि मे रख कर कुछ कहते तो और बात थी। माँ बाप छूटे, कुटुम्ब और कुनबा छोड़ा, किसके लिये? आपके लिये या सास के लिये? मै यहाँ अकेले नहीं रह सकती।

राम—तुम सुकुमारी हो। बन और पवत में बड़े बड़े कष्ट और क्लेश भोगने पड़ते हैं। सिंह, रीछ और चीतों का डर, और फिर मनुष्यों का माँस खाने वाला निशाचर! कभी अन्न मिला तो पानी नहीं पानी मिला तो अन्न नहीं। पहाड़ों २ फिरना होगा। बड़े २ भयानक शिलाओं पर चढ़ना होगा। कैसे कहूं कि तुम्हारा कोमल शरीर इन दुखों को सह सकेगा?

सीता—जहाँ आप होंगे, वहाँ ही मेरा स्थान है। जहाँ गाछ खड़ा होता है वहां ही उसकी छाया रहती है। यह विपरीति बात देव सुना रहा है। इसका मुझे ... मान है और सुन कर मेरी छाती नहीं फट जाती। आप पर्वतों की शिलाओं पर मारे मारे फिरें और मै महल में रह कर सुख भोगूं! यह कैसे सम्भव है? प्राणनाथ! आप भूलते हैं। सीता आपकी अर्द्धाङ्गिनी है। आधा अंग आग में पड़े, आधा जल मे रहे, ऐसा न आंखों देखा न कानों सुना।

सिंह रीछ, निश्चर पहाड़ों पर बसते हैं। मै जानती हूँ तुम्हारे भय से कौन मेरे निकट आ सकेगा आहार मिले या न मिले, पानी हाथ आये कि न आये, मै आपके दर्शन मात्र से जीऊंगी। आपका मुँह देख कर दुख को भूली रहूँगी। नाथ! सुख रहता कहाँ है? वह तो आपके चरणों में है। मेरा सुख आप हैं। आप सामने हैं तो मैं सुखी, आप दृष्टि से ओझल तो मैं दुखी। कैसे समझूं कि आप से अलग रह कर मैं सुखी रह सकूँगी। सुख तो तुम्हीं हो। तुम कैसे मुझे छोड़कर सुखी रह सकोगे, यह असम्भव है।

मै कोमल हूँ, आप बलिष्ठ हैं। कोमल बलवान की शरण पाकर बलवान होजाता है, निर्बल बेल गाछ से लिपटी हुई कैसी शक्तिवाली होती है, छुड़ाये नहीं छुट सकती। सीता बलवान पति के संग रह कर कोमल और निर्बल कैसे होगी? और कौन उसे अबला कह सकेगा?

नाथ! मेरा और आपका जोड़ा है। स्त्री और पुरुष बैल के जोड़े के समान हैं। गृहस्थी का जूआ दोनों के कन्धे पर रहता है। दोनों मिलकर हल जोतते हैं, गाड़ी खींचते हैं। सोचिये

राम को बन जाने का द
भाविक उदासीनवृति
भाली और स
आशी

...म आप के चरण
...ध्या में !
...सूनी और अन्धकार-
...हाइ मे जब मै आप को
...के सामने सूरज चमकता हुआ
...हूँगा । मुझे न छोड़ो, साथ ले

राम—प्यारी ! समय विपरीति है। काल को काटना है, काल से कटवाना नहीं है। मै तुझे कहाँ कहाँ लिये फिरूँगा ?

सीता—मेरे लिये काल नही है, काल और किसी के लिये होगा। मैं तो अपने दयालु पति के संग का विलास लहूँगी। आपने पाणिग्रहण के समय क्या प्रतिज्ञा की थी ? कुछ स्मरण भी है ? संग रखना था या असंग !

आप मुझे अपने साथ कैसे रक्खोगे ? जैसे छाया गाछ के साथ रहती है। बिना पानी के नदी को नदी नही कहा जाता। पानी नदी के सहारे आप दौड़ता रहता है। जीव का साथ देह कैसे देता है ? किस जीव ने आज तक कहा है कि देह बोझल है ? समय ने मेरा कुछ नही बिगाड़ा। किसी और का बिगाड़ चाहे उसने किया हो। मेरा समय उस समय तक अनुकूल है जब तक आप मेरे साथ हैं।

मुँह खोलना सभ्यता के विरुद्ध है। मै तो आपके पीछे पीछे चलने वाली हूँ। स्त्री ही घर का झाड़ू-बुहारी करती है। आप मुझे आगे चलने का साहस देंगे तो मैं रास्ते के काँटे कटीले दूर करती हुई उसे साफ सुथरा बनाती चलूँगी। मै सेवा करने के निमित्त आप के साथ हुई हूँ। मेरी सेवा न छीनिये, नहीं तो मैं पतित हो जाऊँगी। संसार में मुँह दिखाने के योग्य न रहूँगी।

सेवक सेवा में रहे, सेवा करे दिनरात।
जो कोई बिना कुटेव का, सन्मुख ना ठहरात॥

राम—यह सब सच है। तुम असत्य नहीं कहती हो। हृदय मे सोच देखो।

सीता—सोच लिया, समझ लिया, मान लिया, जान लिया। जानने मे कोई कसर नही रक्खी। सेवक हूँ तो आपकी सेवा मे तत्पर रहूँगी। ऐ सूरजवंश के कमल ! जब धूप की गरमी आप को सतायेगी, गाछ के पत्तो का पङ्खा झलूँगी। अपने आँचल से तन का पसीना पोंछूँगी। आप थक जायंगे तो धीरे धीरे पाँव दबाऊँगी। घास-फूँस का बिस्तर बनाकर आपको सुला दूँगी।

झरनो से पत्तो के दौना मे पानी भर लाऊँगी, पृथ्वी से कन्द-मूल खोद लाऊँगी, चकमक से आग निकाल कर लकड़ी जलाकर उसे पका कर पत्तो की थाली मे अपने नाथ के सामने रक्खूँगी। खिलाऊँगी, पिलाऊँगी। जब आप सो जायंगे मै भी आपके पाँते पड़ रहूँगी। नीद को न आने दूँगी आप की रखवाली करती रहूँगी।

मुझे कोई रोग सोग न सतायंगे। यह तो मिथ्या मन की कल्पनायें हैं। आप को देखा, चित्त प्रसन्न हो गया, राह की थकावट गई। आप को उदास देखा मन बहलाने वाली दो चार बाते सुनादी। मेरी हँसी और मुस्कराहट मे आप अपना दुःख भूल जाओगे और वन अयोध्या से भी अधिक सुहाना प्रतीत होने लगेगा।

बन के जल-वायु, फल-फूल और मूल में अधिक स्वाद मिलेगा। नगरो के आहार मे नोन

मसाला डालना पड़ता है। उनका स्वाद विचित्र होगा जो यहाँ नहीं मिलता।

नाथ! मैंने सब कुछ सोच विचार लिया।
सीता अपने राम को, सुनिये स्नेही पीउ।
जलबिन मछली क्यों जिये? पानी का जो जीउ॥

राम—प्यारी! तू तो इस समय कवियों जैसी बातें कर रही है। कविता और है। जीवन व्यौहार में आकर यह विचार खो जाते हैं।

सीता—मैं आप की दासी आपके प्रेम जल की प्यासी हूँ। आप मेरे पति अविनाशी हो। आप साथ हैं तो मैं सुख राशि हूँ, नहीं तो उदासी और निराशी हूँ। कवियों की वाणी प्रेममय होती है। सम्भव है कि आपके प्रेम में निमग्न होकर मैं कविता करने लग गई हूँ। इसका मुझे ज्ञान नहीं है। ज्ञान है तो आपका, अनुमान है तो आपका और प्रमाण है तो आपका! मन बचन और कर्म से आप मुझे अपनी दासी समझते हो तो बन में अपने साथ ले चलो।

राम—तू मेरी प्राणप्यारी है। मैं तुझे अपने प्राण से भी अधिक प्यार करता हूँ इसलिये बन लेजाने में असमंजस कर रहा हूं और कोई बात नहीं है।

सीता—नाथ! असमंजस न कीजिये। मुझे दुःख होरहा है। साथ नहीं गई तो उधर आप गये और इधर सीता का प्राण गमन हुआ।

राम—बहुत अच्छा, चलो!

बारहवां समुल्लास

राम-लक्ष्मण

लक्ष्मण कहीं बाहर गये हुये थे। सुना कि राम बन को जा रहे हैं, दौड़ पड़े। हांपते-कांपते हुये आये, होंठ फड़कते हुये! मन धड़कता हुआ! सामने आकर खड़े हो गये।

राम ने कहा—"लक्ष्मण! पिता और माता ने मुझे चौदह वर्ष के लिये बनवास दिया। आज्ञा पालन करना बेटे का धर्म है। मैं तो जारहा हूँ, तुम अयोध्या में रहो।"

लक्ष्मण—मेरी अयोध्या तो आपके चरणों में है। मैं और कोई अयोध्या नहीं जानता और न जानना चाहता हूँ।

राम—भाई! समय प्रतिकूल है। मैं तो जा रहा हूँ। तुम यहां नहीं रहे तो माता, पिता और गुरु की सेवा कौन करेगा? इस समय तुम मेरे प्रतिनिधि हो। सोच समझ कर काम करने का अवसर है।

लक्ष्मण—ऐसे उपदेश के अधिकारी बहुत मिलेंगे। मुझ में न इसका अधिकार है, न संस्कार है। मेरे न गुरु है, न मां है, न बाप है। मैं किसी की सेवा क्या करूँगा? हां! आप चाहे, मां-बाप भाई बन्धु, सखा-मित्र, गुरु-इष्ट, जो कुछ हों आप के अतिरिक्त मैं किसी को नहीं जानता, न जानता हूँ, न जानूँगा, न जानने की इच्छा है।

राम—जाओ! अपनी माता से मिल आओ। तुमको न मैं समझा सका हूँ, न तुम समझ सके हो और साथ चलने में जल्दी करो।

और लक्ष्मण चले गये।

तेरहवाँ समुल्लास

लक्ष्मण—सुमित्रा

लक्ष्मण मां के पास आये। पांव पड़े। उसने आशीर्वाद दिया।

सुमित्रा—तुम अकेले कैसे हो? तुमको राम के साथ रहना चाहिये था।

लक्ष्मण—मैं साथ था। राम वन को जारहे हैं। तुम आज्ञा दो तो मैं भी साथ जाऊँ।

सुमित्रा—"हंसी। लक्ष्मण! तू कब कभी मेरी आज्ञा मानने आया था! आज यह नई रीति किसने सिखाई? क्या मैं तेरी माता हूँ? तू मेरी कोख से उत्पन्न हुआ। यह तो सच है राम तेरे बाप और सीता तेरी माता है। व्योहार की दृष्टि से तू मुझे माता कह ले। सच्चे माता-पिता वही हैं तू जिनके साथ रहता है। तू संसार में महा भाग्यवान है कि तेरे हृदय में राम की भक्ति है और तेरे पीछे मैं भी भाग्यवान हूँ कि जिसका पुत्र रामका भक्त है।

इस समय तेरे भाग्य का तारा गगन के मध्य में चमक रहा है। राम केवल तेरी भलाई के निमित्त वन को जारहे हैं। हाँ! उनकी सेवा में हजारों मनुष्य रहते हैं। वहाँ राम रहेंगे और तू रहेगा, और कोई दूसरा सेवा का भागी न होगा। तुम को क्या दुःख है? कोई भी नहीं, राम और सीता माँ बाप के रूप में साथ हैं। हाँ! यह देखना राम को किसी बात का क्लेश न होने पावे।"

लक्ष्मण ने पाँव छुआ। सुमित्रा ने माथा चूमा और वह राम के पास चले आये।

चौदहवाँ समुल्लास

राम—दशरथ

सीता, राम और लक्ष्मण तीनों कैकई के महल मे आये। दशरथ की दशा रथ के समान होगई थी। न बोलना, न चालना, न हिलना, न डोलना, चुपचाप पड़ा रहना।

तीनों ने प्रणाम किया। वह उन्हे गहरी दृष्टि से देखा किये। राम ने हाथ बाँध कर कहा—"पिताजी वन जाने की आज्ञा प्रदान कीजिये। आप को यश और कीर्त्ति प्राप्त हो। कोई यह न कहे कि आप प्रण को पाल न सके। चिन्ता अनुचित है। चौदह वर्ष देखने देखते व्यतीत हो जायँगे और मैं लौट कर आपके चरण कमल का दर्शन करूंगा।"

दशरथ राम की बात सुन कर उठा। उन्हें गोद में बिठा लिया। "राम! मुनियों का विचार और विश्वास है कि तुम ब्रह्म, ब्रह्म-मूर्त्ति और ब्रह्म के अवतार हो। तुम राज-पाट, मान-प्रतिष्ठा के भूखे नहीं हो, यह मैं जानता हूँ। यहाँ केवल एक सन्देह है। पाप कोई करे और बदला किसी और को मिले। यह मेरी समझ में नहीं आता।"

राम ने उत्तर देना उचित नही समझा।

दशरथ ने युक्तियों से उन्हें रोकना चाहा। वह रुकनेवाले कब थे? तब उसने सीता के सिर

पर हाथ रख कर कहा— " पुत्री ! वन में महा दुःख होता है। तुम कभी यहां रहो, कभी बाप के घर जाकर रहो। मेरा कहना मान जाओ।

सीता ने मुँह नहीं खोला। अपने पाँव की तरफ़ दृष्टि रक्खी।

लक्ष्मण ने प्रणाम किया। दशरथ उन्हें देखते रह गये।

नगर की स्त्रियाँ आई हुई थीं। सीता को समझाकर कहने लगीं—"तुम को तो बनवास नहीं दिया गया। तुम अयोध्या में रहो। बन मे तुम्हारा क्या काम है ?" सीता चुप ! इनकी बातें उसे बुरी लगती थीं लेकिन वह मुँह नहीं खोल सक्ती थी।

इन का समझाना बुझाना कैकई को जहर के समान कड़ुवा लगता था। वह क्रुद्ध होकर उठी। वल्कल (गाछ की छाल के) कपड़े सामने रख दिये। राम ने अपने कपड़े उतार दिये और इन्हें पहिन लिया। लक्ष्मण ने भी ऐसा किया। दशरथ की आँखों से आँसू की धारा बह निकली।

राम कैकई के चरणों मे पड़े "मातुश्री ! पिता की सेवा करना मेरा धर्म था। अब इसका भी भार तुम्हारे सिर पर पड़ा। मेरा अपराध क्षमा करना।"

कैकई—तुम तो बन जाओ। अपने २ सिर का बोझ सब सँभार लेंगे।

सीता और लक्ष्मण ने भी कैकई को नमस्कार किया और बिदा होकर महल से बाहर आये।

ठट-के ठट मनुष्य मण्डली वहाँ खड़ी थी। गुरु वशिष्ठ भी इनके साथ थे। राम ने दान दक्षिणा देकर सबको प्रसन्न किया और समयानुसार बात-चीत करके सन्तोष दिया।

सुमन्त दशरथ के पास आया। राजा ने कहा— "सुमन्त ! राम को लेजाओ, दो चार दस दिन इधर उधर घुमा फिरा कर ले आओ। वह आये तब तो मैं कुछ दिनों और जीऊँगा, नहीं तो मेरी मृत्यु को आई हुई समझो। यह बात राम से कह देना " और बाहर आकर उसने रथ को तय्यार किया। तीनों चढ़ बैठे और सुमन्त हाँकने लगा।

राम ने कहा— "सुमन्त ! रथ को ऐसा हाँक कि पृथ्वी पर लकीर न पड़ने पावे। अयोध्यावासी मेरे वियोग से बहुत दुखी हैं। ये पहियों की लकीर के सहारे मेरे पास आने के इच्छुक होंगे। इनको पता न लगने पावे कि मैं किधर को गया हूँ। "

सुमन्त ने ऐसा ही किया। लेकिन बहुत से अयोध्यावासी फिर भी उनके साथ चलने को तय्यार होगये। राम ने उन्हें समझा बुझाकर बड़ी कठिनाई से अयोध्या लौटाया।

पन्द्रहवां समुल्लास

राम—शृङ्गपुर

रथ चला। घोड़े हिनहिनाने लगे। इनको स्वाभाविक अनुभव था कि वह राम को बन पहुँचाने जारहे हैं। दुखी थे, बोल नहीं सक्ते थे। बागडोर सुमन्त के हाथ में थी। वह रथ चलाने के काम में प्रवीण थे। उनके भी मन को क्लेश था। अच्छे लोग बुरे कामों से कतराते रहते है। लेकिन कर्मचारी थे, क्या करते ? उन को क्या वश था ? वह जितना हो सका रथों को हाँकते हुये अवधपति के देश की सीमा पर आगये। रथ से उतर पड़े। शृंगपुर गंगा के तट पर बसा था।

सुमन्त ने कहा—" भगवान् ! आपके पिताजी ने आज्ञा दी थी कि बन को दिखाकर आपको लौटा ले चलूं। "

राम ने उत्तर दिया—" पिताजी मोह के वश में हैं। सुमन्त ! जगत का व्यवहार दैव आधीन है। प्राणी समझता है मैं ही सब कुछ कर रहा हूँ। यह उसकी भूल है। संसार में दैव शक्तियाँ प्रबल है। निर्बल मनुष्य उनका

नहीं कर सक्ता। चाहिये तो यह कि वह चुपचाप व्यौहार में लगा रहे। यह उससे नहीं होता। अहंकारी बन बैठता है और उसका परिणाम दुःख होता है।"

अब मैं जब आऊंगा, चौदह वर्ष के पश्चात् ही आऊंगा। पिताजी के वचन को जीतेजी झूठा न होने दूंगा, उन्हें समझा देना। दिन यों ही बीत जायगे और मैं फिर आकर उनका दर्शन करूगा।

सुमन्त रोने लगे। राम ने कहा—"आप बुद्धिमान हैं। समझ बूझ रखते हैं। मूढ़ प्राणियों की दशामें आप नहीं हैं। जाइये ईश्वर से प्रार्थना करते रहिये कि मैं बन से आकर फिर आप से मिलूं। पिताजी की सेवा आपको सौंपता हूँ। इससे अधिक न कहना चाहता हूँ, न सुनना चाहता हूँ। जाइये और अपना काम कीजिये।"

सुमन्त ने प्रणाम किया। राम ने उन्हें छाती से लगाकर विदा किया। वह रथ पर बैठे, लगाम पकड़ी। बैल चलने से रुकने लगे। सुमन्त ने उनकी पीठ पर हाथ फेरा, वह समझ गये। बेवश थे। आँसू बहाते हुये अवध की तरफ़ धीरे २ चल निकलने ही को थे कि सुमन्त ने बाग रोकी। यह सोचा राम जब बन को चले जायं तब मैं भी अयोध्या को जाऊं।

सोलहवां समुल्लास।

राम—निषाद

शृंगपुर में निषाद का राज था। वह वहाँ का राजा और जाति का माझी था जो मछलियाँ पकड़ते और हाट बाज़ार में लेजाकर बेचते हैं। राम से इसे पहिले परिचय नहीं था। कभी इन्हें देखा भी नहीं था। उनके गुण सुन कर मोहित हो रहा था।

उसने सुना राम गंगा के तट पर आये हुये हैं। उनके साथ केवल उनकी रानी सीता और भाई लक्ष्मण हैं। सुनते ही सिर के बल मिलने के लिये दौड़ा और अपने साथियों और सम्बन्धियों को बुला भेजा। वह बहुतायत के साथ खाने पीने की सामग्री लेकर आये।

निषाद ने आकर साष्टांग प्रणाम किया। अपना नाम बताया। राम ने उठकर उसे छातीसे लगाया। उसने फिर सीता को दण्ड प्रणाम करके लक्ष्मण के पाँवों को छूआ। उन्होंने भी उसे छाती से लगा लिया।

वहाँ आसन क्या था? राम भूमि में बैठे, निषाद भी आज्ञा पाकर बैठ गया।

निषाद ने कहा—"अयोध्या का अभाग्य शृंगपुर का सौभाग्य है। मैं किसी को क्यों बुरा भला कहूँ? आप मुझे दर्शन देने के लिये यहाँ पधारे हैं नहीं तो मेरा भाग्य कब ऐसा था कि आपके चरण कमल को देखता।"

राम प्रसन्न हुये—"भाई! तुम भक्त हो। इस प्रकार की बाणी को तुम्हारे मुंह से शोभा मिलती है। तुम से मिलकर इस समय मैं संसार को भूल गया।

निषाद ने उनके चरण की धूल को मस्तक पर लगाया।

निषाद के कर्मचारियों ने गंगा के तट पर दो फूस के झोंपड़े बनाये। एक में राम और सीता ने निवास किया और दूसरे में लक्ष्मण ठहरे।

खाना पीना क्या था? अब सीता, राम और लक्ष्मण बनवासी हो चुके थे। कन्द-मूल, फलफूल पत्ते मंगा लिये गये थे, उसी का आहार किया गया। सूरज डूबने से पहिले निषाद राम से मिला। राम ने उसके साथ भ्रात्री भाव का बरताव किया क्योंकि वह उस देश का राजा था और वह स्वाभाविक राम का सच्चा प्रेमभक्त बन गया।

इनमें जो बातें हुईं वह सुनने और विचार करने के योग्य थीं।

निषाद—नाथ! यह क्या है? आपको सुख जीवन होना चाहिये था और आप वन वन तपस्वियों के समान फिरेंगे! मेरी समझ में कोई बात नहीं आती। प्रारब्ध कर्म की गति प्रबल है।

राम—भाई! ब्रह्मा ने इस जगत को द्वन्द्व बनाया है जहाँ सुख है वहाँ दुख भी है। प्रातःकाल और सायंकाल, दिन और रात, धूप-छांह, गरमी-जाड़ा, युवा और वृद्धा अवस्था, मित्र और शत्रु विष-अमृत, बस्ती-उजाड़ सब साथ २ रहते हैं। बिना दुख के सुख नहीं, बिना सुख के दुख नहीं। द्वन्द्व का प्रबन्ध ही ऐसा ही है।

कभी हम जागते हैं और,
कभी सुख नींद सोते हैं।
कभी मैले कुचैले हैं,
कभी हम मल को धोते हैं॥
यहाँ देव और असुर संग्राम में,
लड़ते झगड़ते हैं।
कभी उठते हैं और उठ २ के,
सब भूमि में पड़ते हैं॥
कहीं पानी अधिक है और,
कहीं पर आग जलती है।
कभी डूबी समुन्दर में,
कभी मछली उछलती है॥

तुम मीठाही मीठा तो नहीं खाते, कड़वी मिर्च भी खाते हो। फिर इन बातों का उलहना कैसा! जैसी व्यापै आपदा, तैसा सहे शरीर। द्वन्द्व जगत न होता तो विचारशक्ति की फुरना न होती। यह न समझो कि सुख में कल्याण है, बल्कि जिसे तुम दुख समझ रहे हो वह भी मनुष्य के वृद्धि और उन्नति का सहायक होता है।

निषाद—हम अज्ञानी मनुष्य हैं। हम को इन बातों की समझ नहीं है। जब कभी आप जैसे महानुभावों का दर्शन प्राप्त होता है, तो ज्ञान-ध्यान की बातें सुनने में आती है लेकिन यह तो कहिये क्या आप जैसे पुरुष भी प्रारब्ध के वश हुआ करते हैं?

राम—नियम तो नियम है और नियम अटल हुआ करता है। वह सब के लिये एक ही प्रकार का होता है। हां! इस में इतना भेद है अज्ञानी तो मोहवश तड़पता रहता है और ज्ञानी समझ बूझकर शान्त हो जाता है।

निषाद—तो ज्ञानी और अज्ञानी दोनों ही को सुख दुःख हुआ करता है।

राम—हां!

निषाद—फिर भेद क्या हुआ?

राम—भेद यह है कि ज्ञानीको विवेक शक्ति के सहारे सुख दुख की समता रहती है। अज्ञानी मे असमता होती है। ज्ञानी निश्चल वृत्ति मे आरूढ़ होता है, अज्ञानी में चंचलता रहती है। उसे दुख विशेष होता है। मिर्च कहने वाले मिर्च की कडुवाई को बुरी नहीं कहते। जो उसे नहीं खाते उन्हें दुःख होता है और जिनको दोनों का अभ्यास हो गया है उनके लिये दोनों समान जंचते हैं। दुख अपने साथ बड़े बड़े गुण भी रखता है। इसकी निन्दा करना भी अच्छा नहीं है।

सुख के माथे सिल पड़े, जो नाम हृदय से जाय।
बलिहारी वा दुख की, जो पल पल नाम रटाय॥
सुख दुःख एक समान हो, हर्ष शोक नहिं व्याप।
निश्चल वृति ज्ञानी की, परखे अपने आप॥

निषाद—राम! आप ज्ञानी हो। मैं बहुत दिनों से आप की प्रशंसा सुन रहा था, देखा नहीं था। अब आपने मुझे दीन समझ कर दर्शन दिया और मैं कृत्य कृत्य होगया। इधर सब कहते हैं कि दशरथ के घर में राम ब्रह्म के अवतार प्रगट हुये हैं, क्या आप ब्रह्म के अवतार हैं?

राम इस भोले भाले माँझी के प्रश्न को सुन कर हंस पड़े, कहने लगे—"सुनो निषाद! जिसके मन मे शान्ती है वह शान्त है। जो सबको अच्छा समझता है अच्छाई उसी में है। तुम मुझे बड़ाई दे रहे हो, वह बड़ाई कहाँ है? तुम्हारे मन में है, तुम बड़े हो। जो वस्तु जिसके पास है वही वह औरों को दिया करताहै।

बड़े बड़ाई पाय कर, सब ही बड़ाई देत।
उसके बदले जगत में, यश कीर्ति सुख लेत॥

निषाद–बस! बस! अब मैं समझ गया। आप ब्रह्म के अवतार हैं। ब्रह्म बड़ाई दे। जो दीन मलीन और नीच निषाद को भी बड़ा दे रहा हो वह अवश्य ब्रह्म का अवतार होगा। मुझे पूरा पूरा निश्चय हो गया।

निषाद सीधा सादा मनुष्य था। यह कह कर राम के चरणों में गिरा। राम ने उसे उठा कर फिर छाती से लगा लिया।

बात चीत करते हुए रात अधिक व्यतीत हो गई। निषाद नमस्कार करके झोपड़े से बाहर आया। राम और सीता कुशासन बिछा कर सो रहे।

सत्तरहवां समुल्लास

लक्ष्मण—निषाद

निषाद बाहर आया। देखा कि लक्ष्मण हाथ में धनुष बाण लिये हुए झोपड़े के इधर उधर दूरी पर उसकी रखवाली कर रहे हैं। समझा कि लक्ष्मण राम के सच्चे भक्त हैं, पाँवों पर गिरा लक्ष्मण ने उसे छाती से लगा कर घर जाकर सो रहने को कहा।

निषाद—भगवन्! आप राम के भक्त हैं। मेरे भाग्य धन्य हैं कि मैंने भी इस उनके गाँव में आपका दर्शन पाया। मैं भी आज आपके साथ राम की रखवाली की सेवा करना चाहता हूं।

लक्ष्मण—सेवा करना तो मेरा ही धर्म है। मैं राम का सेवक बनकर रहना चाहता हूं और इस सेवा में किसी को अपना साझी नहीं बनाना चाहता।

निषाद—मैं आप का इस सेवा में साझी नहीं होना चाहता, न हो सकता हूं। आज्ञा मिले तो मैं आप की सेवकाई में यहां ठहर जाऊं।

लक्ष्मण—क्यों?

निषाद—

हरि सों तू मत हेत कर—हरिजन सों कर हेत।
माल मुल्क हरि देत हैं—हरिजन हरि को देत॥

लक्ष्मण जोर से हंसे। तुम बड़े चतुर और स्याने हो। अच्छा, ठहरो! मैं तुम को न रोकूंगा।

और निषाद वहां रुक गया।

दोनों कुटी से दूरी पर बैठ गये। राम और सीता विश्राम में थे। इन की नींद में विघ्न न पड़े, और दोनों में बातचीत होने लगी।

निषाद—क्या यह शोकजनक दशा नहीं है कि राम महलों से अलग होकर आज घास-फूस की सेजा पर शयन कर रहे हैं। विधाता की लीला बड़ी विचित्र होती है।

लक्ष्मण—यह न कहो। राम जगतपति हैं। वह जो न करें वह थोड़ा है। उनके लिये बस्ती और उजाड़ दोनों एक ही हैं।

वहां स्वर्ग में हैं यहां नर्क में हैं।
वही ज्ञान में हैं वही तर्क में हैं॥
जिधर देखिये राम ही राम व्यापे।
समाए हुए सब में रहते हैं आपे॥
यह लीला है नर लीला करने पर आये।
हैं सब उनके इस जग में अपने पराये॥
नहीं मीत और शत्रु कोई है उनका।
जो तुम देखते हो यह है उनकी लीला॥
करो दमन और भ्रम अज्ञान त्यागो।
पकड़ राम के पद कमल जग से भागो॥

निषाद—आप की बातों से मुझे निश्चय हो गया कि आप राम के सच्चे भक्त हैं और मैं बड़ा भाग्यवान हूं कि आपने मुझे दर्शन दिया है।

लक्ष्मण हंसे। भक्त तो तुम हो। मैं उनका सब से छोटा सेवक हूं।

निषाद—आप मुझे बड़ाई दे रहे हैं। कहाँ

राम और कहाँ मैं! राम सूर्यकुल के हंस और मैं नीच और अधम माझी!

लक्ष्मण—राम को कुल और जाति प्यारी नहीं है। राम भक्ति को प्यार करते हैं।

जात-पाँत पूछे नहिं कोई,
राम को भजै राम का होई।

निषाद—मैं नीच और पापी हूँ। मेरी दृष्टि छोटी छोटी बातों ही पर जाती है। मेरी समझ में कैकेई ने बड़ा अनर्थ किया जिसने राम को बनवास दिया। सुकुमारी सीता आज घास-फूँस पर लेटी हुई है। देखकर देखने वालों की छाती फटती है। कैसे कहूँ कि कैकेई का यह करतब उचित है? यह तो महापाप है।

लक्ष्मण—यहाँ तुम बड़ी भूल में हो। कोई किसी के दुःख सुख का देने वाला नहीं है। यह जो कुछ हो रहा है, प्रकृति के नियमानुकूल ही हो रहा है। कैकेई माता निर्दोष है। कौन जाने उसके इस करतब के पर्दे में क्या रहस्य छिपा है? जो हुआ, हो रहा है और होने वाला है उसका आधार कोई और ही छिपी हुई शक्ति है जिसका हमको ज्ञान नहीं है। तुम राम को प्यार करते हो। प्यार की दृष्टि से कैकेई को बुरा भला कहते हो। ऐसा न होना चाहिये। तुम नहीं जानते कि राम कैकेई को कौशल्या से अधिक मानते हैं और वह उन पर जान देती है। तुम अयोध्या में देखने तो कहते कि राम कौशल्या के पुत्र नहीं हैं, बल्कि कैकई के पेट के जाये हुये हैं। ऐ मित्र! जब मनुष्य के हृदय में किसी देवता का प्रभाव पड़ता है तब उसकी बुद्धि और प्रकार की हो जाती है। किसी को दोष लगाना अच्छा नहीं है। जहाँ बुद्धि काम न दे वहाँ चुप रहना अच्छा है।

निषाद—ऐसी दशा में मनुष्य करे तो क्या करे?

लक्ष्मण—राम के नाम का सहारा ले और संसार के व्यौहार को राम की लीला प्रतीत करे। इसी में उसका कल्याण है।

निषाद—आप जो कहते हैं वह सच है लेकिन क्या ऐसी वृत्ति को मूढ़ वृत्ति न कहा जायगा? जिसमें समझ बूझ से काम न लिया जाय वह मूढ़ वृत्ति कहलाती है।

लक्ष्मण—इस वृत्ति को मूढ़ नहीं कहते। यह तो समाहृत वृत्ति है। मूढ़ वृत्ति तो अज्ञान संयुक्त अहंकार वृत्ति है। इस वृत्ति के आते ही ज्ञानी संसार की तरफ से सोते और परमार्थ की तरफ से जागते हैं। मूढ़ वृत्ति बन्धन है। उस बन्धन में काम, क्रोध, लोभ, मोह जागते हैं और राम के नाम लेने से जो वृत्ति उत्पन्न होती है उसमें काम इत्यादि सो जाते हैं और मनुष्य का आन्तरिक अनुभव जागता है।

निषाद—मैं समझ गया। अब अपना मुँह बन्द रक्खूंगा।

इस प्रकार बात-चीत करते हुये रात बीत गई और सूर्य देवता निकल आये। राम सीता जाग उठे और न्हा धोकर गंगा के उस पार जाने की इच्छा प्रकट की।

महारामायण
के
अवधखण्ड का प्रथम भाग समाप्त।

पहिला समुल्लास
गंगा पार जाना

गुह निषाद से राम ने कहा—"डोंगी मँगाओ। मुझे गंगा के उस पार जाकर वनयात्रा करना है।"

निषाद ने साथियों को पुकारा। वह डोंगी लाये।

राम डोंगी पर पैर रखना चाहते थे। निपाद ने कहा "प्रभो! इस डोंगी के सहारे माँझियों की जीविका है। यहाँ सब लोग कहते हैं कि जनकपुर जाते हुये राम ने अपने पाँवों से एक पत्थर की शिला को छू दिया था। पाँवों की धूल लगते ही वह शिला अपसरा बन कर उड़ी और स्वर्ग को चली गई। हम को डर है कि कहीं हमारी काठ की नवका की यही दशा न हो जाय। तब तो माझी बिना जीविका के मरे। उनकी रोटी का सहारा चला गया। आज्ञा दीजिये तो मैं आपके चरण कमल को धोलूं। पाँवों की धूलि घुल जावे और हमारे मन का खटका मिट जाय।"

राम मुसकराये। सीता ने निषाद को गंवार समझा। लक्ष्मण ने उसे राम का भक्त जाना।

राम ने कहा—तुम मेरे पाँव धोलो। मन के अन्दर भय का रहना अच्छा नहीं है। निपाद ने काठ के बर्तन में उनके पाँव धोये। वह इस काम में अकेला ही नहीं था। सब के सब मांझियों ने चरण धोये। उस चरणामृत को पी गये और अपने शीस पर और आँखो पर लगाया। तब सीता को ज्ञान हुआ कि निषाद गंवार नहीं है। भक्ति भाव के आधीन होकर उसने इस गंवार युक्ति से काम लिया था।

नवका पर चढ़े। गुह निषाद आप उसे खे कर लाया। वह उतर पड़े। राम के पास कुछ नहीं था कि माँझी को देते। सीता भाँप गई। अपनी अंगूठी उतारी। लेकिन माँझी ने कहा—"सारी आयु मजदूरी की, अब तक उसी का फल नहीं मिला था, यह आज प्राप्त हुआ। मैं कुछ न लूंगा। जब आप लौट कर आयेंगे उस समय जो देंगे सर पर चढ़ाऊंगा।"

सीता ने अंगूठी लेली—"मैंने तुझे सीधा सादा मनुष्य समझा था। तू सचमुच निषाद गुह है। निपाद कहते हैं अन्धकार देने वाले या अन्धकार में पड़े हुये को और गुह नाम है गूढ़ रहस्य का और गुप्त भेद का। तू अन्धेरे के भेप में छिपा हुआ भेद है। तुझ में भक्ति है और इस भक्ति के प्रभाव से तू संसार में सदा सुखी रहेगा और लोग प्रभु का भक्त समझकर तेरी स्तुति करेंगे और यश कीर्त्ति फैलेगी। तू गुदड़ी में छिपा हुआ लाल है।'

निपाद ने अपना शीस झुका कर विनती की जिस पर आपकी कृपादृष्टि हो उसे चारों फल धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष सहज में प्राप्त हो जाते हैं मैं धन्य हूँ। आज मुझसे अधिक भाग्यवान् इस संसार में कौन है?

रामने कहा—"तुमने पार उतार कर मेरा उपकार किया। अब जाओ और अपने परिवार के साथ सुखी रहो; बन से लौटने पर मिलूंगा।

निषाद बोला—"मैं और आपके साथ उपकार करू! कैसी विचित्र बात है? मैं तो नीच, निकम्मा और अपकारी हूं। सर्वश्रेष्ठ उत्तम और उपकारी केवल आप का रूप है और आप संसारियों के उद्धार के लिये यह नर लीला कर रहे हैं। मुझे आज्ञा हो तो मैं साथ चलूं और कुछ न होगा तो प्रति दिन आप के लिये रात से पहिले वन में झोंपड़ी बना दिया करुंगा।"

राम ने स्वीकार नहीं किया और समझा बुझा कर उसे सन्तुष्ट किया और तीनों प्राणी भरद्वाज ऋषि के आश्रम की तरफ चले।

दूसरा समुल्लास

राम और भरद्वाज सम्वाद

भरद्वाज ऋषि बृहस्पति के पुत्र आत्मिक दृष्टि से गगन मण्डल के रहने वाले और स्वर्गीयध्वनि के अलापने वाले पक्षी कहलाते थे। संस्कृत भरत (पकड़ने वाले) और वाज (वाज पक्षी), इन के बाप बृहस्पति (संस्कृत विरह—वृद्धि और बढ़ना, पति—अधिष्ठाता) थे जो देवताओं के गुरु थे। यह वैदिक ऋषि थे। गुरु से अनबन हो गई। उसने कहा मेरा ज्ञान उगल दे। इन्होंने वमन कर दिया। गुरू के शिष्य तीतरी बन कर उसे चुन कर खागये। यह तीतरी शाखा के ब्राह्मण कहलाये। उगले हुये या वमन किये हुये मन्त्र संहिता का नाम कृष्ण यजुर्वेद हो गया। फिर यह ऋषि बाज पक्षी के रूप में उड़ा और सूर्य्य से ज्ञान प्राप्त किया और उस ज्ञान मंत्रों की संहिता का नाम शुक्ल यजुर्वेद रक्खा गया। भरद्वाज बड़े प्रतापी ऋषि थे जो अनहद वाणी, उद्गीत राग के आचार्य कहलाते हैं और जिसका वर्णन तुमको बृहद्-आरण्यक उपनिषद में मिलेगा। यह राजा जनक के बड़े प्रेमी थे।

राम इसी ऋषि के आश्रम में पहुंचे। दण्ड प्रणाम किया। ऋषि ने उन्हें छाती से लगाया। "सूर्य्य कुल के कमल! आज मेरे सौभाग्य का तारा चमक उठा। आप मेरे गुरु (सूर्य्य) के कुल से हो। मैं आपको देख कर बहुत प्रसन्न हुआ।

ऋषि ने कन्द-मूल, फल-फूल और पत्ते भेंट किये। इन्होंने आनन्दपूर्वक अहार किया। गंगा-जल पिलाया। तृप्त हुये। ऋषि चाहते थे कि राम वहां आयेंगे। बन जाने वालों को बिना प्रयाग की यात्रा के बनवास का कोई फल नहीं प्राप्त होता।

राम आश्रम में ठहरे। उनके सत्संग का लाभ उठाया। सत्संग के बिना जप, तप, वैराग, साधन सब ही को निष्फल समझो। जिस पर बड़ी कृपा होती है उसी को यह मिलता है नहीं तो प्राणी भटकते रहते हैं :—

जाके गुरु का संग कर, गुरु संग से अनुराग हो।
सफल जप,तप, यमनियम हो, सफल राग बिराग हो
क्या कथा में है धरा, क्या वार्त्ता में है धरा?
सत की संगत ही है सत्संग इस ही का लो आसरा॥

एक दिन राम का दर्शन पाकर भरद्वाज इतने मग्न हुये कि मन में फूले न समाये। राम सीता और लक्ष्मण बैठे हुये थे। ऋषि ने खुले मन से मुँह खोला। "ए राम! मैं तुमको क्या समझा सक्ता हूँ? तुम आप समझे बूझे हुये हो। सूरज को दीपक नहीं दिखाया जा सक्ता लेकिन तुम संसार में देखते हो लोग थाली में कपूर और घी जला कर सूरज के सामने फेरी करते हैं। इस बात को भूल जाते हैं कि जगत् का सारा प्रकाश सूरज से है। इसी तरह लोग नदी नाले और तालाबों में खड़े हो कर अपनी अंजली से सूरज को पानी देते हैं और उन्हें यह स्मरण नहीं रहता कि सूरज ही की गरमी से पानी बरसता है। मैं भी इस समय आपके सन्मुख बैठाहुआ ज्ञान ध्यान की बातें कर रहा हूँ।

"भक्ति और ज्ञान दोनों गुरू के आसरे होते हैं। जब तक गुरू न मिले तब तक भक्ति और ज्ञान दोनों की उपलब्धि नहीं होती। गुरू सत है जिसमें सत हो, जो सत स्वरूप हो और जो सत का जीवन हो उसी की संगत का नाम सतसंग है। गाना, बजाना, व्याख्यान सुनना, कथा कहानी का रस लेना सत्संग नहीं कहलाता। यह न हो तो साधुओं का संग भी सत्संग कहलाता है। इससे भी लाभ होता है।

साधु वह है जो साधना में लगा रहे। भेषधारी को साधु कहना भूल है। यह निरा स्वाँग है। साधना सम्पन्न ही साधु कहलाता है और ए राम! जो साधना-सम्पन्न होते हैं वही अनुभव सम्पन्न भी हो सकते हैं। अनुभव से परिचय मिलता है, रूप की समझ आती है। यह रूप की पहिचान है:—

पियु परिचय तब जानिये, पियु सों हिलमिल होय।
पियु की लाली मुख पड़े, प्रगट दीसे दोय॥
लाली अपने लाल की, जित देखूं तित लाल।
लाली देखन मैं गई, मैं भी हो गई लाल॥ २॥

ए राम! इसी सत्संग का दूसरा और उचिततर नाम प्रयाग, परे के यज्ञ को प्रयाग कहते हैं। परे का यज्ञ घटमें किया जाता है। यह यज्ञ साधुओं के मण्डल में रात दिन हुआ करता है। इन के अन्तर्गत वेदी है। उसमें श्रद्धा की आहुति दी जाती है और जहां यह अन्तरी आग एक बार प्रकट हो गई फिर कभी बुझने में नहीं आती।

यह साधु संग तीर्थराज या तीर्थों का राजा है। इससे बढ़ कर और कोई तीर्थ नहीं होता। इसमें तीन नदियों का संगम है—गंगा, यमुना सरस्वती।

गंगा, ए राम! तुम्हारी भक्ति की धार है जो ऊपर शिखा से बहती हुई आरही है और वह सुमेरु पर्वत (शिखा) से भी परे है। ए राम! इस तीर्थ की सरस्वती तुम्हारे स्वरूप के ज्ञान का विचार है जो सत के समझने और समझाने में सहायक होता है, और यमुना नदी ए राम! तुम्हारे ही कथा के चरित्रों का वर्णन है जिसके द्वारा मनुष्य विधि कर्म करता है और निषेध कर्म से बचकर रहता है। सतजीवन, ज्ञान, कर्म ये तीन धारें हैं। जो उस तीर्थराज में आकर मिलती हैं। यह तो मैंने तुम्हें तीर्थराज का बाहरी रूप बताया। तुम्हारे अन्तर शारीरिक मेरु दण्ड के सहारे तीन नदियाँ रहती हैं। वह इडा, पिंगला और सुषुम्ना कहलाती हैं। सुषुम्ना मध्य में है। दाहिने पिंगला और बांये इड़ा है। यही सच्ची गंगा, यमुना और सरस्वती हैं और इनका संगम स्थान भ्रू मध्य है जो रुद्र नेत्र, शिव नेत्र, रुद्राक्ष और तीसरा तिल या आज्ञा चक्र कहलाता है। सुषुम्ना (बीच की नाड़ी) गंगा (संस्कृत गम=चलना और गा—जो चलता है) पिंगला दांये नाड़ी (संस्कृत पिंग=पीला रंग) और इड़ा या इला (संस्कृत इल=पृथ्वी या वाणी है।

यही तीनों नदियों का संगम तुम्हारे भीतर है जिसका पता साधुओं के सत्संग में मिलता है।

ए राम! मेरे आश्रम का नाम ही प्रयाग होगया। इस आश्रम में अक्षय वट का गाछ है। सत्संग का अक्षय वट निज विश्वास और धर्म की दृढ़ वृत्ति है।

तीसरा समुल्लास

राम भरद्वाज सम्वाद

रामने कहा—प्रयाग परे का यज्ञ सही। यह क्या होता है? कैसे होता है? और एक स्थान में होता है या जगह जगह होता है?

भरद्वाज ने उत्तर दिया—प्रयाग वह यज्ञ है जो परे का है और बाहरमुखी संसारी करते आये हैं। संगम में नहाये, पर्व के दिन उत्सव मनाया और चलते बने। कहीं यज्ञ हुआ तो देखा भाव। कथा वार्त्ता सुनी और अपना रास्ता लिया। परे का योग या यज्ञ घट में किया जाता है और इसके दो रूप होते हैं। एक बहिरंग, दूसरा अंतरंग।

बहिरङ्ग यज्ञ बाहरी सत्संग है। यह यज्ञ मेरे आश्रम में पूरे माघ के महीना तक हुआ करता है, जब सूर्य मकर राशि में आता है। यह यज्ञ मैंने सूर्य से सीखा है। जो सत्संगी मेरे पास आते हैं मेरी बातें सुनते हैं यह बातें आहुति होती हैं जो कानों के द्वारा दी जाती हैं। इनके हृदय में वेदी बन जाती है। वहाँ विश्वास और धर्म की आग प्रज्वलित की जाती है और वह वचन के घृत को पाकर प्रचंड हो जाती है। जितने मनुष्य सत्संग में आकर सुनते हैं सब के अन्तर में यह यज्ञ आप ही आप होने लगता है। सौ मनुष्य हैं तो उनके हृदयों में सौ वेदियाँ बन जाती हैं, पाँच सौ हैं तो यह पाँच सौ बनती हैं। यह बहिरङ्ग यज्ञ का साधन है।

और जब बहिरङ्ग साधन की पूर्ति हो लेती है, अन्तरंग साधन की बारी आती है और उसके अन्तर्गत में पाँच अग्नि विद्या सिखा कर केवल प्राण द्वारा उद्गीत गाने का रहस्य बता देता हूँ। उद्गीत उधर का गीत है। वह उद्गीत उधर का गीत नहीं है। उसे न बाणी बोलती है, न कान, न आँख, न मन। यह राग केवल प्राण गाता है और इसी से इसका नाम प्रणव है। ए राम! इस प्रणव को संसारी प्राणी नहीं जानते। वह 'ओ३म्' को प्रणव मानकर सन्तुष्ट हो जाते हैं। प्रणव वह राग है जिसे केवल प्राण ही गा सकता है। मैंने इसकी कुछ विधि बृहद् आरण्यक उपनिषद में वर्णन कर दी है। इसके अधिकारी थोड़े मिलते हैं।

राम—यह बहुत ऊँची बात है।

भरद्वाज—हां! यह न प्राप्त हो तो साधारण बहिरंग सत्संग सब देश और सब जगह में प्राप्त होता है। यह त्रिवेणी वाला बहिरंग प्रयाग स्थायी है। साधु-समाज जंगम तीर्थराज है। इसकी सेवा करने से संसार के दु:खों का नाश हो जाता है, जीवन बदल जाता है, शान्ति आजाती है और मनुष्य देखते देखते कुछ का कुछ बन जाता है।

राम—यह इसकी सचमुच बड़ी महिमा है।

भरद्वाज—हाँ! इस में कोई सन्देह नहीं है। और तीर्थों का चाहे फल होता हो या न होता हो, कौन कह सकता है इस तीर्थ में नहाने का फल तुरन्त उसी समय मिल जाता है? बहिरंग तीर्थराज के सेवन करने का फल ऐसी जल्दी प्राप्त होना असम्भव है। नाम रूप चाहे न बदले, स्वभाव गुण और कर्म बदल जाता है। कौआ कोयल बन कर मीठी वाणी बोलने लग जाता है और मछली खानेवाला बगुला हंस बन कर मोती चुन चुन कर खाता है। कम से कम बोल-चाल और भिक्षा-भक्षण विचार में बड़ा परिवर्तन हो जाता है।

पहिले यह मन काग था, करता जीवन घात।
सत्संगत कर हंस हुये मोती चुन २ खात॥
पहिले यह मन पर्वत बना, पत्थर कठिन महान।
सत्संग टाँकी खाय कर, हो गया कंचन खान॥
पहिले मन नाला बना, बहता मैला नीर।
सत्संग गंगा से मिला, गंग समान गम्भीर॥
पहिले मन था लालची, कामी कुटिल कुभाव।
सत्संग के प्रताप से हो गया सुबुद्धि सुभाव॥

इस साधु समाज तीर्थराज की महिमा ब्रह्मा, विष्णु, महेष, नारद, शारद कोई नहीं गा सकता। साधु समाज जंगम कल्पवृक्ष है जो इसकी छाया के नीचे आ गया उस की सारी कामनायें सिद्ध हो जाती हैं। साधु समाज तीर्थराज वह शुद्ध, पवित्र और शीतल जलवाला गंगा है कि इस में दर्शन, परम पवित्र बचन पान करने से संसार के तीन पापों का दु:ख नाश हो जाता है। साधु संग का क्या कहना? साधु पर उपकारी, परस्वार्थी और पर-हितकारी होते हैं—

सुख देवें दुख को हरें, मेटें जगत उपाध।
भाग्य सुभाग्य उदय जब, मिलें कभी २ साध॥

नहिं कंचन नहिं रत्न धन, नहिं लालों की खान।
साध चरित परमार्थी, पारस परस समान॥
पारस में और सन्त में, अन्तर रहे महान।
वह लोहा कंचन करे, यह करे आप समान॥

संगत के फल का प्रभाव तुम जानते हो। आम की गुठली को केवड़े के जलसे सींचो। केवड़े की वास उसके फल में आजायगी। तिल के तेल को चमेली और मोतियाके फूल से मिला दो वह फुलेल हो जायगा। वाटिका के समीप जाओ। फूलों की महक से चित्त प्रसन्न होजायगा। नीम के जलते हुये पत्तों के पास से निकलो उसका कड़वापन चित्त को बिगाड़ देगा। सुसंगत से गुण और कुसंगत से अवगुण उत्पन्न होते हैं। ए राम! मनुष्य चाहे तो जीव जन्तुओं का रंग-ढंग, रूप-गुण, स्वभाव उनको अच्छा संग देकर बदल सकता है। अब साधारण पदार्थों के मेल का ऐसा प्रभाव होता है तो फिर साधुओं के संग का फल लाभदायक क्यों न होगा?

तुम बन में तपस्वी बन कर जारहे हो। क्या यह आश्चर्य और विचित्र बात नहीं है कितप और और तपस्या से पहिले तुम को तीर्थराज प्रयाग का दर्शन मिला? यह तप का फाटक औरजप के ऊंचे कुल की सीढ़ी है।

राम ने कहा—अहो भाग्य! मैं आपकेचरणों में आया।

—:o:—

चौथा सम्मुल्लास

राम वाल्मीकि सम्वाद

राम-कुछ दिनों प्रयागराज में रहकर भरद्वाज मुनि की संगत का लाभ उठाते रहे।

सत संगत मुद मंगल मूला,
सोइ सिद्धि फल साधन फूला।

सुख, आनन्द और मंगल की जड़ सत्संग है। साधन इसका फूल और सिद्धि इसका फल है। सत्संग के पीछे क्या अवस्था आती है, वह कथा प्रसंग में सुनाई जायगी।

प्रयागवासियों ने सुना कि अवध कुमार आये हुये हैं, अगणित नर नारी उनके देखने के लिये आश्रम मे आये। जो देखता था मोहित हो जाता था और सब मोहवश होकर कहते थे ब्रह्मा ने ऐसी सुन्दर मूर्तियाँ बनाईं और उन्हें बन की कठिनाइयां सहने के लिये डांवाडोल कर दिया। उसकी मति मारी गई। विष्णु ने जगत के पालन पोषण के निमित्त अच्छे २ पदार्थ रचे और राम, लक्ष्मण और सीता का आहार कन्द मूल ठहराया। उसने भी बुद्धिमता से काम नहीं लिया शिव ने और भी अनर्थ किया। ये कहाँ जप, तप और वैराग के योग्य हैं? इन काम के लिये उस कठोर हृदय, कठोरपन और कठोर बाँह भुजा वाले प्राणी चुनना चाहिये था।

कुछ दिनों आश्रम में रह कर राम ने भरद्वाज से विदा मांगते समय निवेदन किया—मैं बन में कहाँ जाकर रहूँ? ऋषि ने उत्तर दिया—"आप स्वयं सर्वज्ञ हैं, मुझसे क्या पूछते हैं? और मैं क्या बताऊँ? जाइये। आगे चित्रकूट में वाल्मीकि ऋषि रहते हैं, वह आपकोइस प्रश्न का उत्तर देंगे"

राम उठ खड़े हुये। आगे राम, पीछे लक्ष्मण और इन दोनो के बीच में सीता! अच्छा मनोहर दृश्य था। राम लक्ष्मण साधुओं के भेष मे थे सीता सुन्दर वस्त्र और आभूषण से सजी हुई थी देखने वाले देखकर विस्मत हो जाते थे।

राम ब्रह्म थे, लक्ष्मण जीव थे और सीता प्रकृति थी। राम और लक्ष्मण के बीच में सीता आड़ थी। जीव को ब्रह्म का दर्शन क्यों नहीं मिलता? क्योंकि प्रकृति बीच में आजाती है। लक्ष्मण बहुत सँभाल सँभाल कर पाँव रखते थे। उन का पाँव राम या सीताके पाँव के आकार पर नहीं पड़ता था।

जब जीव रूपी लक्ष्मण को राम ब्रह्म के दर्शन की अभिलाषा होती थी, प्रकृति सीता कुछ ओट होजाती थी, तब लक्ष्मण जीव को राम ब्रह्म क्षण-मात्र के लिये दिखाई दे जाते थे और फिर सीता बीच में आजाती थी और वह अपनी चाल चलने लग जाती थी।

इस प्रकार चलते हुये वह यमुना के तट पर पहुंचे। निषाद के सम्बन्धियों ने पार उतारा। तीनों ने यमुना में स्नान किया।

पहली भक्ति, दूसरा सत्संग तीसरे सुकर्म।

भक्ति में सुवासना है। वह सत्संग में लाकर सुइच्छा या शुभ इच्छा को उत्पन्न करने लगजाती है और तब अच्छे कर्म बनते हैं

गंगा भक्ति है। सत्संग भक्ति का उत्तेजिक है और यमुना कर्म की धार है।

यमुना में नहा कर राम ने आगे की तरफ पग बढ़ाया। गाँव वाले सुन सुन कर देखने आते थे। जहां यह ससताने के निमित्त किसी वृक्ष की छाया के नीचे बैठ जाते थे, भीड़ लग जाती थी। तीनों प्रेम की मूर्तियाँ थे और वह प्रेमियों से घिर जाते थे। सब अपना प्रेम प्रगट करना चाहते थे। कोई कलसे में पानी भर लाता है, कोई जंगल के फल, करौंदा, चिरोंजी, आम, जामन लाकर सामने रख देता है और राम सब के साथ यथोचित वाणीविलास करते हैं

स्त्रियाँ बहुत बकवासी और वातूली होती हैं। कोई कहती थी—वह बाप कैसे हृदय वाले होंगे जिन्होंने इन सुकुमारों को बन में भेजा है। दूसरी कहती थी। कौन जाने कि ये मनुष्य हैं कि देवता हैं? अवश्य देवता हैं। स्वर्गलोक से पृथ्वी को शोभा देने के लिये आये हैं।

तीसरी—तभी तो इनके साथ कोई नहीं है। इन को किसी की सहायता की आवश्यकता ही नही है।

स्त्रियाँ ऐसी कितनी बातें कह डालतीं थीं। पुरुष कहते थे—आज्ञा दो तो हम आप के साथ टहल-सेवा कर दिया करेंगे।

राम इनका भोलापन सुनकर कह देते थे "माता-पिता की आज्ञा है हम ही तीनों बन में रहें। यही कारण है कि हम अपने साथ किसी को नहीं लाये। वह बेचारे सुन कर चुप रहजाते थे। मुँह बन्द होजाता था। कहते भी तो क्या कहते?

गाँव गाँव की पगडंडियों से फिरते फिराते ग्रामवासियों को अपना दर्शन देते दिलाते और सब को सुखी करते कराते राम वाल्मीकि ऋषि के आश्रम में पहुंचे।

बाल्मीकि ने इन्हें दूर से देखा। मिलने के लिये गये। तीनों पांव पड़े। ऋषि ने उठा कर छाती से लगाया, आशीर्वाद दिया। फल-फूल, कन्द-मूल भेंट किया। यह सन्तुष्ट होकर बैठे। ऋषि ने पूछा—" यहां कैसे आये?"

राम ने अपनी कहानी सुना कर पूछा-"कोई ऐसा स्थान बताइये जहां कुटी बना कर कुछ दिनों निवास करूं। सीता साथ है, नहीं तो किसी सघन वट की छाया में ठहर जाता।"

वाल्मीकि ने कहा" राम! तुम ब्रह्म के अवतार हो, जगत के उद्धार, भक्तों के सुधार और देवताओं के उपकार के निमित्त तुम ने नर शरीर को धारण कर रक्खा है और ऐसी लीला कर रहे हो, मैंने तुम्हें देखा, मेरे जन्म २ की भक्ति की कमाई सफल होगई। खोया हुआ धन हाथ आगया। ऋषि मुनि, जोगी जप-तप में

आयु बिताते हैं और किसी बात का साक्षात्कार नहीं होता। तुमने सदेह, सगुण और साकार रूप में मुझे दर्शन देकर कृतार्थ कर दिया। अब मुझे कुछ भी करना धरना नहीं रहा। तुम तीनों का स्वरूप अन्तःकरण में आज प्रवेश कर गया। ईश्वर, जीव और प्रकृति तीनों एक साथ मिले और एक साथ ही उन का दरस परस और अनुभव होगया।

तुमने नर लीला के आश्रित मुझ से स्थान का पता पूछा है। तुम पूर्ण सच्चिदानन्द ब्रह्म हो। सर्व व्यापक और जड़ चेतन में समाये हुये अखंड मण्डलाकार होरहे हो। सारे स्थान तुम्हारे हैं, तुम्हारे लिये हैं और तुम्हारे ही आधीन हैं।' मैं कहूं भी तो क्या। कहूं? तुमने पूछा है इस लिये उत्तर न देना भी अनुचित होगा। सुनो --

तुम बसो उस घट मे,
जिस घट मे तुम्हारा ध्यान हो।
तुम बसो उस मन मे
जिसमें ज्ञान और अनुमान हो॥१॥
जो तुम्हारे चरित के,
सुनने से अकताते नहीं।
उनके कानों मे बसो,
भ्रम भरम में आते नहीं॥२॥
जिस को दर्शन होगया है,
राम के निज रूप का॥
तुम भी उसकी आंखों में बसो,
हे राम! निश दिन सर्वदा॥३॥
दानी के हाथों में रहकर,
दान और उपकार कर।
राम का स्थान यह है,
जगत का उद्धार कर॥४॥
तीर्थों में प्रेम और श्रद्धा से
जो फिरते हैं चक्कर काटने।
उनके पावों में रहो,
घूमो फिरो तुम नाचने॥५॥
ज्ञानियों के ज्ञान मे,
और ध्यानियों के ध्यान मे।
मेरे दाता! तुम बसो,
ऐसे ही शुभ स्थान मे॥६॥
योगियों के योग मे,
साधक के साधन मे रहो।
प्रेम जिनको है तुम्हारा,
उनके मन में जा बसो॥७॥
जो सुखी होते है,
औरों की भलाई देख कर।
राम! है अन्तःकरण,
उनका तुम्हारा अपना घर॥८॥
मंत्र मे शुभ यन्त्र मे,
शुभ तन्त्र मे बसते रहो।
पुन्य भूमी सब हैं इनमे,
धर्म के तुम हँसते रहो॥९॥
साक्षी के रूप में
जो देखते हैं जगत को।
इनके हृदय में निरन्तर,
आत्मवश जाकर बसो॥१०॥

त्याग कुल परिवार धन, और धाम भजते हैं तुम्हे।
राम सीता लक्ष्मण तीनों, वहां जाकर बसें॥११॥
कर्म से मन वाणी से जो दास सच्चे हो गये।
राम तुम उन मे बसो, मन बुद्धि उनके धो गये॥१२
चाह कुछ चित मे नहीं, चिन्ता मिटी दुविधा गई।
राम! इनके घट को जाकर, करदो अब श्रद्धामयी॥
गुरु की सेवा मे है, तत्पर यह करुणा कीजिये।
उन मे रहिये उन मे असिंग, उनकी रक्षा कीजिये॥
तुम हो स्वामी मैं हूं सेवक, मैं हूं भिक्षु तुम दयाल।
मेरे अन्तर मे बसो, और तुम करो मुझको निहाल
सच्चिदानन्दम् अखंडम् नित्य कुशलम् सर्वदा।
दीन दुखियों के सहाई, तुम हो करुणा तुम दया॥
भक्त हितकारी, अनाथों के हो सच्चे नाथ तुम।
भक्त अपना जान कर, अब रहना मेरे साथ तुम॥

कहते-कहते बूढ़े ऋषी की घिग्घी बँधगई। आँखों से प्रेम के आँसू बह निकले और उनका सिर राम के चरणों में झुकगया। चित्त समाधित हो गया।

अलख लखा-लख लखलिया; खुली दृष्टि से देख।
कहते सुनते ना बने, सूझा अगम अलेख॥
वह विदेह गति देह में, आकर बना सदेह।
दरस परस सत भावना, देख त्याग संदेह॥
गुरु मूरति गति चन्द्रमा, चालक चित्त चकोर।
आठ पहर निरखत रहे, गुरु मूरति की ओर॥

राम ने बालमीक के सर को अपने हाथों से उठाया, आँसू पोंछे। "भगवान्! मैं तो आपका सेवक हूं इतनी दूर से चलकर आपही के चरणों की छाया में रहने को आया हूं। इन चरणों को छोड़कर और कहाँ मेरा ठौर-ठिकाना है।"

बाल्मीक हँसे। राम का हाथ पकड़ लिया। एक खुली हुई जगह में लेगये, जो छोटी पहाड़ी की चोटी पर थी।

स्थान दिखाकर बाल्मीक ने कहा, "यह स्थान रमणीक है। चित्रकूट पर्वत पर ऊँची जगह है। इसके नीचे वैतरणी नदी बहती है। इसे अपने निवास से शोभा धाम बनाइये।"

लक्ष्मण तो लकड़ी और घास फूँस लेने गये। बाल्मीक और राम सीता पृथ्वी पर बैठ गये।

राम ने पूछा—"प्रभु! इस पहाड़ का नाम चित्रकूट क्यों पड़ा? और यह नदी वैतरणी क्यों कहलाती है?"

बाल्मीक ने उत्तर दिया, "चित्र कहते हैं छवि को —और कूट नाम है टीला—ऊँचा ठीकरा और समूह का। जहाँ चित्रों का विचित्र विचित्र समूह हो वह चित्रकूट कहलाता है। यह चित्रकूट पृथ्वी का हृदयचक्र है। तुम जिस वस्तु को देखते, सुनते, चखते, छूते और सूँघते हो, सबका गुप्त चित्र संस्कार रूप में तुम्हारे हृदय में बन जाता है और वह समय समय पर परिपक्व होकर अपना फल प्रगट करता है। जैसा तुम्हारा हृदय स्थल वैसा ही इस पृथ्वी मंडल में यह चित्रकूट है जिनको गुरु का सतसंग प्राप्त हो गया, उन्हें कुछ दिनों इस हृदय चक्र में बस कर श्रवण के पश्चात् सुमरण, ध्यान, भजन, मनन, निदिध्यासन और साधारण साक्षात्कार की आवश्यकता होती है। इस लिये इस काम के निमित्त तुमको यहाँ स्थल दिया गया। यह निर्जन और एकान्त स्थान है।"

राम—और यह वैतरणी क्या है?

बाल्मीक—वै (कई कई अनेक) तरन (तरना, पारजाना) अनेक उपाधियों के पार जाने का नाम वैतरणी है। इसे पार न किया गया तो नरकगामी होना पड़ता है। हृदय में विचार और विवेक उत्पन्न होता है और उसकी सहायता से अनेक वाद जगत के नाना प्रकार के उचित और अनुचित संस्कारों को त्यागना होता है। यहाँ रह कर तुमको यह काम कुछ दिनों करना पड़ेगा। अवध (शरीर की अवधि) में तुम प्रगट हुये। तीर्थराज प्रयाग में सावित्री कुल गुरु (भारद्वाज) मिला। सत्संग किया। यह साधन की पहली सीढ़ी थी। चित्रकूट में निवास करके मनन निदिध्यासन करना दूसरी सीढ़ी है। यहाँ इस अवस्था में आकर साधक-जन निवास करते हैं और तुम को भी यही कृत्य करना है। और तुम्हारे पीछे लोग स्मरणार्थ कहेंगे—

चित्रकूट चिन्ताहरण, वैतरणी के तीर।
कछु दिना यहाँ रम गये, सिया लखन रघुवीर॥

राम इस सम्वाद से बहुत प्रसन्न हुये। लक्ष्मण ने तीनों के लिये झोंपड़ा बना दिया। बालमीक अपने आश्रम को गये और राम सीता ने घासफूँस बिछा कर पर्णकुटी में निवास किया।

पाँचवाँ समुल्लास

चित्रकूट

राम चित्रकूट में बसे। पर्वत के निवासी ऋषि, मुनि, देवी, देवता, नाग और किन्नर सब मिलने के लिये आने लगे। राम सब का आदर सत्कार करते थे और वह प्रसन्न होकर जाते थे। इनमें से एक की

भी भ्रम नहीं हुआ कि राम ब्रह्म के अवतार नहीं हैं।

चित्रकूट में कोल, किरात, भील, गौड़ जंगली मनुष्य बसते थे। नंगधड़ंगे—तन पर कपड़ा तक नहीं रहता था। जब यह सामने आकर खड़े होजाते चित्र के समान प्रतीत होते। और राम इन्हें देखकर और ये राम को देखकर विह्वल और गद्‌गद् होजाते थे। प्रेम परस्पर का बर्ताव है। जैसे उदई भानु से वैसे भानु उदई से।

जंगली मनुष्य पहाड़ों के फल फूल अधिकता के साथ लाकर भेंट किया करते थे। राम ने कभी इनका तिरस्कार नहीं किया। और उनका बर्ताव उनके साथ वैसा ही था जैसा लक्ष्मण के साथ था।

यह कहते—"नाथ! हम तुम्हारी क्या सेवा करें? यहाँ कंदमूल, झड़बेरी, करौंधा और कमलगट्ठा के अतिरिक्त कुछ नहीं होता, चिरौंजी होती है, क्या लायें आपके योग्य कोई वस्तु नहीं है।"

राम हँस देते—"तुम तो हो। तुम्हारा भाव तो है तुमको देखकर मैं तृप्त रहता हूँ।"

इतना ही सुनकर वह मग्न होजाते थे और अपने भाग्य को सराहने लग जाते थे। जंगलियों ने कुटी के इर्द-गिर्द हरे-हरे गाछ लगाये। घास फूस के पौधे। यहाँ एक सुन्दर वाटिका बन गई।

गाछ फलने फूलने लग गये। पर्वत शोभायमान होगया। जिधर दृष्टि जाती थी हरा ही हरा और भरा ही भरा दिखाई देता था। लाल, पीले, नीले और श्वेत फूल खिले हुये ऐसी शोभा देने लगे जैसे किसी चतुर चित्रकार ने विचित्र चित्र खींचकर सामने खड़ा कर दिया हो।

पशु पक्षी पहले तो डर कर भाग जाते थे। कुटी के समीप नहीं आते थे। फिर धीरे-धीरे यह हिलते गये। फिर तो यह दशा होगई कि कुत्तों के समान यह पीछे-पीछे रहने लगे। सीता जहाँ अपने हाथ को हिलाती थे दौड़ते हुये चले आते थे। और उसके हाथ से घास-फूस, फल-पत्ते खाने लगते थे।

चित्रकूट का पर्वत रमणीक होगया था और राम और सीता अयोध्या के सुख भूल गये।

जंगल रमणीक था सुहाना। आनन्द का चैन का ठिकाना॥
गायें कहीं वृक्ष चर रही थीं। पेट अपने उसी से भर रही थीं॥
पक्षी वृक्षों में चहचहाते। अनहद की रागिनी सुनाते॥
कोई भी किसी से था न भयभीत। पक्षी पशु सभी हुए मीत॥
वन उपवन स्वर्ग बन गया था। जो था वही दृष्टि भला था॥

जंगली स्त्रियां सीता की सेवा में लगी रहती थीं। इनमें नगर-वासियों की सभ्यता नहीं थी। अनगढ़ थे लेकिन नगर वाले इनसे सहज स्वभाव प्रेम-प्रीति और प्रतीत कहां से लाते। यह तन बने हुये राम को अपना आत्मा समझते थे। और जीव ब्रह्म सब समानदृष्टि-गोचर हो रहे थे।

जहाँ राम राजा वहाँ है अयोध्या।
जहाँ जीव जन्तु वहीं ब्रह्म माया॥
नदी नाले पर्वत सभी बोलते थे।
पशु पक्षी निर्द्वन्द्व हो डोलते थे॥
किसी को किसी से कहाँ शत्रुता थी॥
यहाँ सिंह और बकरी में मित्रता थी।
कहे कोई कैसे कि पर्वत था जंगल।
यहाँ सब जगह सुख था और चैन मंगल॥

महारामायण
के
अवधखण्ड का द्वितीय भाग समाप्त
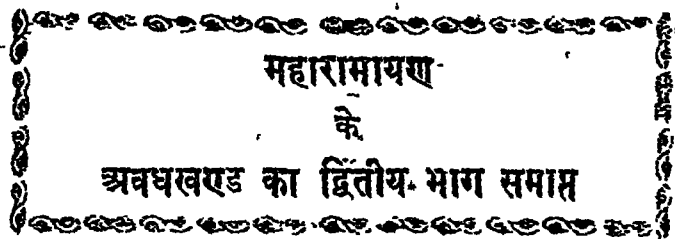
महारामायण का तृतीय भाग

पहला समुल्लास

दशरथ की दशा

निषाद लौटा। सुमन्त उसकी बाट देख रहे थे, "राम नहीं आये। किसी का कहना नहीं माना, अपने मन का किया, मेरा कहना सुनना व्यर्थ हुआ।" निषाद ने समझाया, "तुम ज्ञानी ध्यानी पंडित और मंत्री हो, तुमको यों विलाप नहीं करना चाहिए जाओ कौन जाने अयोध्या की इस समय क्या दशा होगी।"

सुमन्त रथ पर बैठे, निरखिया घोड़े बोल नहीं सकते थे। फिर भी उन्हें मनुष्य से अधिक समझ थी। जान गये कि राम अब नहीं आयेंगे। सुमन्त हार्दिक विलाप करते हुये रात के समय अयोध्या में पहुँचे। मन में विकल थे कि किसी को क्या समाचार सुनायेंगे महाअपराधी की दशा थी। किसी प्रकार महल के समीप पहुंचे। सुनसान जचने लगा अँधेरा गुप छाया हुआ! रथ और घोड़ों को घुड़साल में छोड़ा। दशरथ कोप भवन से उठकर कौशल्या के महल में चला आया था।

सुनाकि सुमन्त आगये, बुला भेजा, वह पाँव पड़े इसने छाती से लगाया—"कहो मित्र! राम ने क्या सन्देशा दिया। यह तो मैंने जान लिया राम सत्यवादी और सत्यव्रती हैं, मेरे समान पतित नहीं हैं, कहा क्या?"

सुमन्त बोले, "मैंने उन्हें बहुत समझाया। यह भी बताया कि महाराज आपके वियोग में जी नहीं सकेंगे। वह कहने लगे, सुमन्त! मैं अपने जीतेजी पिता के वचन को झूँठा न होने दूंगा। तुम जाकर उनको शान्ति दो। मैं ठीक चौदह वर्ष बीतने पर आजाऊँगा। मेरा दुख पिताजी को दुखी न करने पावे। ऐसा काम करना कि उनका चित्त सावधान रहे। जब तक मैं श्रृङ्गपुर नहीं पहुंचा था, तब तक वह बार-बार यहीं कहते रहे नौका पर चढ़ने के पीछे मुझसे फिर कहा, पिताजी और माताजी को समझाना। हानि लाभ, जीवन, मरण, यश अपयश को विधाता ने अपने हाथ में रक्खा है। जो हुआ वह होगया। सबको मेरा नमस्कार और प्रणाम कहना। डोंगी पर बैठे और गङ्गा के पार चले गये।"

फिर सुमन्त ने, जोकुछ निषाद ने सुनाया था, एक-एक बात दुहराई और उनके चित्रकूट पर्वत पर निवास करने का समाचार भी सुना दिया।

सुमन्त के चुप होने पर दशरथ का मुँह खुला:—

> बनाया दशरथ का प्यारा हाय-हाय।
> क्या हुआ आँखों का तारा हाय-हाय ॥१॥
> सुख नहीं मुझको दिया संसार ने।
> शत्रु ने बेमृत्यु मारा हाय-हाय ॥२॥
> भ्रष्ट बुद्धि भ्रष्ट तन मन होगया।
> हारा, हारा, हारा, हारा, हाय-हाय ॥३॥
> राम लछमण बन गये सीता गई।
> खोया जीवन का सहारा हाय-हाय ॥४॥
> मैं तड़फता हूं बिलकता रहता हूं।
> है धरा सर पर अंगारा हाय-हाय ॥५॥
> डूबता हूं दुख विपत के सिन्ध में।
> होगया कैसा निकारा हाय-हाय ॥६॥
> हड्डी पसली पीसदी दुष्कर्म ने।
> होगया सब में पुकारा हाय-हाय ॥७॥

दशरथ की दशा देखकर सुमन्त घबड़ाया, खाट के पास केवल कौशल्या रानी थी। वह देवी थी, रात दिन पति की सेवा में लगी रहती थी, वह भी बहुत व्याकुल हुई। इतने रोते और विलाप करते दशरथ को हिचकियाँ आने लगीं दो-चार क्षण के पीछे यह आप ही आप बन्द होगई। और दशरथ बेसुध होकर खाट पर पड़ रहा।

सुमन्त ने कहा, माता महाराज को नींद आगई इन्हें सोने देना। इनके दुख की औषधि नींद ही है। यह कहकर सुमन्त अपने घर चले गये।

दूसरा समुल्लास

श्रवण की कहानी और दशरथ की मृत्यु

आधी रात के समय दशरथ की मूर्छा गई। जाग आई, हाय राम. हाय राम! का शब्द मुँह से निकला। इधर उधर दृष्टि गई। दीपक जल रहे थे दशरथ को कुछ दिखाई नहीं दिया—"देवी कौशल्या तू है या कहीं चली गई ?"

कौशल्या—महाराज! मैं खाट को छोड़ कर कहीं नहीं गई। पास ही बैठी हूँ।

दशरथ—"तू दिखाई नहीं देती, और तेरी बात ऐसी ज्ञात हो रही है जैसे तू दूर से बोल रही है।"

कौशल्या ने राजा के सिर और माथे पर अपना हाथ फेरा—"प्राणनाथ! मैं पास ही बैठी हूं! क्या चाहिये ?"

दशरथ—"देवी! मैंने तेरे साथ अनुचित वर्ताव किया। अब मुझे पछतावा होरहा है। जिसे मैं प्राण-प्यारी कहता था, वह प्राण की घातिका निकली और तूने अन्त तक मेरा साथ दिया।"

कौशल्या—"पतीश्वर! इसमें किसी का दोष नहीं है यह दैवगति है। दैव जो चाहता है करता और करा लेता है। मनुष्य की मति मारी जाती है, बुद्धि भ्रष्ट होजाती। क्या मैं आप को पानी पिलाऊँ ?"

दशरथ—हां! प्यास लगी है।

कौशल्या ने पानी पिलाया। वह हाय राम, हाय राम! करते हुए फिर खाट पर पड़ रहा।

कौशल्या—"नाथ! अब धीरज धरिये। राम तो वन को गये। वह चौदह वर्ष तक न आयेंगे। आशीर्वाद दीजिये कि वह कुशलपूर्वक अवध में आवें और आपको उनके देखने का सुख प्राप्त हो।"

दशरथ—देवी! यह सुख तो गया! गया हुआ अब फिर नहीं आता। हाथ-पाँव ढीले हो रहे हैं। आँखें पथरा गई। यह सब मृत्यु के चिह्न हैं। मृत्यु मेरे सर पर खेल रही है। अब मैं जी नहीं सकता।

कौशल्या रोने लगी।

दशरथ—"अब रोने धोने से काम न निकलेगा। तू शान्ति कर। राम आयेंगे तू देखेगी, मैं न देखूँगा। राम से कहना तुम्हारा वियोग दशरथ के लिए दुःसह होगया। आँख की ज्योति मारी गई। तुम वन को न जाते तो दशरथ अभी न मरता।

कौशल्या ने अपने आँसू पोंछे। मैं अभागी हूँ। राम चले गये। मैंने इन आँखों से उन्हें जाते हुए देखा और अभागे प्राण तन से नहीं निकले!

दशरथ—देवी! तूने सच कहा। जो कुछ होता है वह कुछ तो अपने कर्मों का फल है और कुछ दैवगति से होता है। अब मेरे कूच का समय निकट चला आरहा है। मैं तुझे अपनी युवावस्था का वृत्तान्त सुनाता हूं।

"रानी! इस देशमें एक वैश्यऋषि हुआ है। उसका नाम श्रवण था। उसके माँ बाप दोनों अन्धे थे। इस श्रवण की स्त्री वर्कसा थी। वह अन्धे सास-ससुर को बड़ा कष्ट देती थी। श्रवण जितनी अपने माँ बाप की भक्ति करता था उसकी बीवी उतना ही इन अन्धों को रात दिन सताया करती थी और कोसती रहती थी। ये बेचारे चुपके रहते थे। श्रवण ने बीवी को बहुत समझाया। उसने अपने स्वभाव को नहीं छोड़ा। उस स्त्री को खाना देना भी बुरा लगता था। जब श्रवण दुकान से आता, इन्हें न्हलाता-धुलाता अपना खाना खिलाता और आप कई-कई दिन भूखा रहता था। वह बड़ा अच्छा मनुष्य था। जब स्त्री मा बाप को बहुत सताने लगी। उससे न देखा गया। उसने घर छोड़ा दुकान छोड़ी। स्त्री और बाल-बच्चों तक को छोड़ दिया। एक बहँगी बनाई। उसके एक तरफ माँ को बिठाया और दूसरी तरफ बाप को बिठाया और रातों रात घर से भाग गया और अयोध्या के इर्द गिर्द घूम फिर कर चक्कर लगाता, भीख मांगता, वृक्ष के नीचे या धर्मशालाओं में ठहर कर खाना पकाता। माँ बाप को न्हिला धुला कर पहले उन्हें खिला पिला देता था। पीछे आप खा पीकर

उसी बहँगी के पास सो रहता। यह उसका नित्य-कम था और वह दस बारह वर्ष तक यही काम करतारहा। ऐसा पैत्री और मात्री भक्त न किसी ने कभी आंखों से देखा न कानों से सुना।"

"रानी! उस समय मैं युवावस्था में था और शब्द भेदी बाण चलाने में प्रवीण था। रात दिन शिकार में रहता था। एक दिन सायंकाल के समय सरयू नदी के तट पर धनुष बाण लिये हुये आहेट (शिकार) की खोज में घूम रहा था। आकाश में काली-काली घटा छागई थीं। कुछदिखाई नहीं देता था। सरयू के तट पर पानी भरने का शब्द सुनाई दिया मैंने समझा कोई हिरन पानी पीरहा है। बाण को धनुषसे छोड़ा, और वह उछलता कूदता निकला, निशाने पर पहुंचा. शब्द सुनाई दिया। "हाय! किस निर्दई पत्थर के कलेजे वाले ने मुझे मार दिया। अब मेरे माँ बाप की कौन सेवा करेगा? उसने तीन हत्याएँ कीं। मेरे साथ मेरे माँ बाप को भी मार दिया।" "रानी! इन बातों के सुनते ही मेरे कान खड़े हुये। मैंने अपने मन में कहा—"दशरथ आज तूने किसी निर अपराधी मनुष्य को मार दिया।"

वहाँ गया जहाँ से वह शब्द आया था। देखा एक साधू पानी में पड़ा हुआ निर्जल मछली के समान तड़प रहा है। मैंने उससे कहा—"मैं दशरथ इस देश का राजा हूं। मैंने तुम्हारे कमण्डल में जल भरने के शब्द को किसी हिरण को पानी पीते हुए अनुमान किया बाण चला दिया। मुझे बड़ा शोक है। अब जो कहे वह करूँ?" उसने उत्तर दिया—"तूने अनजान में यह दुष्कर्म किया है नहीं तो मैं श्राप देता और तू क्षणमात्र में जलकर भस्म होजाता। मैं श्रवण हूँ। पाँच सौ पग की दूरी पर मेरे अन्धे माँ बाप मिलेंगे। वह प्यासे थे। मैं उनके लिये पानी लेने को आया था। अब मैं मर रहा हूँ। तू मेरे कमण्डल में पानी भरकर लेजा, और मुझे पानी से बाहर खींच कर तट पर लिटा दे। उन्हें पिलादे। मैं अधिक से अधिक पाँच मिनट तक जीऊँगा फिर मर जाऊँगा।"

"रानी! मैंने ऐसा ही किया और जल से बाहर आते ही श्रवण ने अपना प्राण त्याग दिया। मैं बहुत पछताया। लेकिन हो क्या सकता था। मुँह से निकली हुई बात और धनुष से उछला हुआ बाण फिर कभी नहीं लौट सकता।"

"रानी! मैंने कमण्डल में पानी भरा। उसे लेकर अन्धों की खोज में चला। वह दूर नहीं थे और दोनों दुखी होकर कह रहे थे, "बेटे श्रवण! तू किधर चला गया पहले इतनी देर कभी नहीं लगाता था आज तुझे क्या होगया। तू अन्धों का सहारा है तेरे बिना हमारा जीवन सम्भव नहीं है। बेटे! जल्द आजा हम तड़प रहे हैं।"

मैंने दबे पाँव उनके पासजाकर कहा, "लीजिये पानी पीजिये।" दोनों चौकन्ने हो गये! "तू कौन है जो हमें पानी पिलाने आया है? हमारा पुत्र श्रवण क्या हुआ? कहाँ चला गया?" मैंने सारा वृतान्त उन्हें कह सुनाया। वह रोये, चिल्लाये, तड़पे, घबराये। अन्त में मुझ से कहा। "चिता बना, अब हम नहीं जी सकते। जा हमारे पुत्र की लाश उठाला। तीनों एक साथ एकही चिता पर जलेंगे।"

"रानी! मैं उलटे पाँव गया। श्रवण की लाश पीठ पर लाद लाया। लकड़ियाँ इकट्ठी कीं। चिता बनाई और श्रवण की लाश को उस पर रक्खा। मां बाप दोनों बेटे की लाश पर गिरे और बिलखने लगे।"

हाय बेटे! तू मरा जीते हैं हम।
पानी दुर्लभ आँसू को पीते हैं हम ॥ १ ॥
तू नहीं नर देवता का रूप था।
तू मरा जीते हैं क्यों माता पिता ॥ २ ॥
हमको मरना चाहिये था तू मरा।
नर्क में हम स्वर्ग को तू चल बसा ॥ ३ ॥
मर गया तू हाय बेटे! हाय हाय।
मर मिटा तू हाय बेटे! हाय हाय ॥ ४ ॥
जिसने तुझको मारा होगा वह दुखी।
कैसे अपराधी कभी होगा सुखी ॥ ५ ॥

मरते हैं हम हाय तेरे शोक में ।
वह मरेगा अन्त में इस रोग में ।। ६ ।।
पुत्र उसका हाथ से खो जायगा ।
राजा अपनी करनी से पछतायेगा ।। ७ ।।
मर मिटेगा मर मिटेगा यह नरेश ।
क्या बचायेंगे इसे ब्रह्मा महेश ।। ८ ।।
पुत्र का संसार में सहकर वियोग ।
मर मिटेगा राजा सहते सहते शोग ।। ९ ।।

"रानी ! वह यों रोते रहे । बीच में बेटे की लाश रक्खी, लेट गये, और मरते समय मुझे श्राप दे गये ।"

"जो दशरथ ! तूने हमारा श्राप सुन लिया । कोई लोक परलोक का देवता इसके प्रभाव से न बचा सकेगा, हाँ तेरे सन्तती नहीं है यह हम जानते हैं समय पर बेटे उत्पन्न होंगे और तू उनके वियोग के दुख में हमारे जैसा दुखी होगा ।"

"रानी ! अन्धों ने मुझे यह शाप दिया और मर गये मैंने चकमक से आग लगाई,चिताको जलाया । लकड़ी बहुत थीं, वह जल कर राख होगये ।" मैं घर पर आया । संसार के व्यवहार में अन्धों के शाप को भूल गया । आज इस समय इसका स्मरण हुआ । जो तुझे सुना दिया ।

दशरथ ने फिर विलाप किया—

क्या हुआ बन को चले तुम हाय राम ।
मेरी गोदों के पले तुम हाय राम ॥१॥
इस समय मेरा सहाई कौन है ।
बाप बेटा और भाई कौन है ॥२॥
था अकेला और अकेला जाऊँगा ।
करनी जैसी वैसा ही फल पाऊंगा ॥ ३ ॥
इस बुढ़ापे में मुझे बेटा मिला ।
पाप से मेरे जगल को चला ॥४॥
हाय सीता हाय लक्ष्मण हाय राम ।
अब नहीं मुझको किसी से कोई काम ॥५॥

हाथ पांव ठण्डे होगये, अङ्गड़ाइयां लीं । गले में कुछ वायु और पित्त का आकर्षण हुआ । कण्ठ बोलने लगा । आंखें बन्द होगईं और अवधपति दशरथ का परलोक गमन होगया !

तीसरा समुल्लास

अयोध्या में कुहराम

अभी कुछ रात थी कि दशरथ का देहान्त हो गया । कौशल्या के सरपर दुःखका पहाड़ टूट पड़ा ! इधर बेटा बन को गया, इधर पति का वियोग हुआ । रोने चिल्लाने लगी । उसके रोने का शब्द सुनकर बांदियां और दासियां उठ कर आईं । सुमित्रा और कैकेई को खबर दी गई वह भी आईं दशरथ के अन्त समय में कोई भी इन में से पास नहीं था और न किसी ने उसकी सेवा की । ऐसा क्यों हुआ ? इसे परमात्मा ही जानता होगा । उसके जीवन का यह परिणाम हुआ जो बहुत उपदेशजनक है—

जो आया है जायगा, जायेगा संसार ।
रहने कोई आया नहीं झूठा है अहंकार ॥१॥
मान बड़ाई ईर्षा, माया का जंजाल ।
भूले भरमे भटक कर, अन्त काल विकराल ॥२॥
काम क्रोध मद त्याग कर, भज सतगुरु करतार ।
काम न आयेगा तेरे कुल कुटुम्ब परिवार ।।३।।
काल-काल सब जानि करे आज आज कर आज ।
आज के काम को काल पर, छोड़े होय अकाज ।।४।।
आज कहे मैं काल भजूँगा काल कहे फिर काल ।
काल अचानक आगया, सँभला नहीं सँभाल ।।५।।
काल काल में काज है, आज काज को साज ।
आज आज है हाथ में, काल काल सिर गाज ।।६।।

आज काल करता रहे, पहुँचा आकर काल।
काल केस कर में गहे, मारे तेग़ निकाल ।।७।।
पाउ पलक की सुध नहीं करे काल का साज।
काल अहेरी ताक में मारे जैसे बाज ।।८।।
समय समय पर काम कर निष्फल काम को त्याग।
कहाँ भरोसा काल का, काल है फनधर नाग ।।९।।
इक्षाकू, रघु चल बसे, मानधाता गया खोय।
शिव, दधीचि, हरिश्चन्द्र गये काल नींद में सोय ।।१०।।
मैं मैं करता मर गया, मैं था बुरी बला।
अहंकार के हाथ से, कहदे कौन बचा ।।११।।
राम लखन बन को गये, दशरथ काल के देश।
किस की आशा तू करे, मानि गुरु उपदेश ।।१२।।
अवसर आज का हाथ है, काल मिले यह नाहिं।
सोच सोच मन सोचले, ले सतगुरु की छांहि ।।१३।।

सब आये। दशरथ का शरीर मिट्टी के ढेर के समान पृथ्वी पर पड़ा था। क्या यह वही तिलकधारी, बलवान अवधपति था जिसका नाम सुन कर सब भय से कांप उठते थे। आज उसकी देह भयानक रूप में दिखाई दे रही है। सांस तक नहीं आती। मक्खियां भिनक रही हैं और वह नाक पर बैठी हुई मक्खी तक को नहीं हटा सकता।

अन्त समय में किसी ने कभी किसी का साथ नहीं दिया। काल कभी कभी अचानक आता है, नहीं तो वह बराबर चेतावनी देता रहता है। चेतवान नर चेत रहते हैं, और अचेत मारे जाते हैं।

कूच का नगाड़ा बाजा, सोच सोच भाई।
सोच समझ काज बना, काज में भलाई ।।१।।
काले केश स्वेत हुये, सुने नहिं काना।
दृष्टि ज्योति क्षीण भई, भूला क्यों दीवाना ।।२।।
हाथ पांव सख्त हैं, चलना फिरना दुस्तर।
केले के पत्ते कांपते, वायु से थर थर ।।३।।
सुत दारा रूठ गये, साथ कौन देवे।
धन सम्पति अलग हुई, हाथ क्या लेवे ।।४।।
ख़ाली हाथ आया प्राणी, ख़ाली हाथ जायगा।
सोच के कमाई कुछ कर, अन्त में पछितायेगा ।।५।।

महल में कुहराम मच गया! रोना पीटना आरम्भ हुआ। यह भी इस व्यावहारिक जगत का झूठा स्वाँग है. दिखावा है, रोने वाला किसके लिये रोता है? अपने लिये या मुर्दे के लिये? सच्चा हित होता तो एक तो काम आता। यहां कोई काम नहीं आता।

झूठा जग ब्यौहार, मित्रो झूठा जग ब्यौहार ॥ टेक ॥
मात पिता भाई सुत बन्धु, सम्बन्धी परिवार।
तन से प्राण होत जब न्यारे, घर से देत निकार ।।१।।
तन की त्रिया तन से लिपटी, भोगे भोग अपार।
तन से प्राण होत जब न्यारे टेरे प्रीति पुकार ।।२।।
कोई किसी का मीत न देखा, नहीं किसी में सार।
तन से प्राण होत जब न्यारे, फिर नहीं प्रेम न पियार ॥३॥

सुमन्त, वशिष्ठ, जाबाली, सारे मंत्रीगण स्यापे (मातमपुर्सी) रागिनी सुन सुन कर आ पहुंचे। जब कोई मनुष्य रोगी होजाता है तो औषधि बताने वाले बहुत इकट्ठे होजाते हैं। यों ही जब कोई मर जाता है तो झूठा ढाढस देने वाले चारों तरफ से घेर लेते हैं।

कौशल्या और सुमित्रा को सब समझाने लगे। दशरथ रोने के योग्य नहीं थे। ऐसा जीवन-मरण विधाता सब को प्रदान करें! जीते जी राम का मुँह देखते थे और मरते समय राम के वियोग में शरीर को त्याग दिया। यह रानियाँ इन बातों के समझाने वालों से अधिक समझती थीं। किन्तु यह स्यापा की सभ्य रीति है जो परम्परा से चली आरही है।

बहुत सी स्त्रियां कैकेई को उसके मुँह पर गालियाँ देती थीं कि इसी ने बना बनाया खेल बिगाड़ा और बसे बसाये घर को उजाड़ा। कैकेई को बुरा लगा। वह उठ कर चली गई। कौशल्या और सुमित्रा पति की लाश के समीप बैठी हुई रोती रहीं।

वशिष्ठ ने इन्हें समझाया—"रोना पीटना बन्द करो। लकड़ी की किश्ती मँगा कर उस में तेल भरो और लाश को उसमें रख दो। कोई मनुष्य कास्मीर जाये, जब भरत आजायेंगे, उनके हाथ से महाराज का अन्तिम कर्म किया जायगा।" और ऐसा ही किया गया।

चौथा समुल्लास

भरत आगमन

उस समय रथ किस प्रकार के होते थे, हम नहीं जानते। हिन्दुओं की प्राचीन कला-कौशल को अब किसी को ज्ञान और स्मरण नहीं रहा। यह सुनते हैं कि वह शीघ्र गामी थे और बहुत जल्द रास्ता समाप्त कर लेते थे।

अयोध्यावासी काश्मीर पहुंचे। भरत से मिले, जल्दी चलने की प्रार्थना की। यह किसी ने नहीं बताया कि राम का वनवास और दशरथ का देहान्त होगया। लेकिन भरत कई दिनों से बुरे-बुरे भयानक स्वप्न देखते थे। उनका चित्त विकल था। अवध के कर्मचारियों से बहुत कुछ पूछा। किसी ने यथोचित उत्तर नहीं दिया। वह केवल एक बात कहते थे-"गुरु ने जल्द आने की आज्ञा दी है।"

यह अपने नाना नानी से विदा होकर डाक की चाल, अयोध्या में आये। चहल पहल नहीं थी। नगर शोभाहीन था। सबके मुँह पर उदासीनता बरस रही थी। भरत को देखा, बोले नहीं न नमस्कार किया। यह चकित थे कि ऐसा क्यों है? पहले तो उनके साथ कभी ऐसा वर्ताव नहीं किया गया था।

इसी दशा में यह कैकेई के महल में पहुँचे माता ने बेटे का शुभ आगमन मनाया। प्रसन्न हुई। इन्होंने इस का पाँव चूमा। उसने छाती से भरत और शत्रुहन दोनों को लगाकर आशीर्वाद दिया।

भरत ने पूछा—"माता! अयोध्या की दशा क्यों बिगड़ी हुई है? रङ्ग में भङ्ग पड़ गया है। उसकी शोभा फीकी प्रतीत होती है। रास्ते में किसी ने न मुझ से बात चीत की, न यहाँ का समाचार सुनाया।"

कैकेई बोली—"तब तुमको यहाँ के समाचार की सूचना नहीं दी गई।"

भरत—मैं कुछ नहीं जानता।

कैकेई—अब आगये हो। अपने कानों सुनोगे, अपनी आँखों देखोगे। अपने आप जानोगे और अपने हाथों करोगे।

भरत—तो कुछ तो बतादे।

कैकेई—बात यों हुई। महाराज ने तुम को कपट छल से काश्मीर भेज दिया। कौशल्या की सम्मति से राम को युवराज करना चाहा। मैं भोली भाली और सीदी सादी हूं। मेरा स्वभाव तुम जानते हो। मैं महाराज के लप्पो शप्पो और झूंठे प्रेम भाव में भूली हुई थी। रात को नगर में दीपावली थी। उत्सव मनाया जा रहा था। मन्थरा हाट में गई। धूम धाम देखा! पूछा और समाचार पाने पर मेरे पास दौड़ी आई। इस अवसर में उसने मेरी बड़ी सहायता की। नहीं तो काम बिगड़ गया था उसने मुझे समझाया बुझाया। मैं कोप भवन में गई महाराज ने किसी समय मुझे दो बर देने को कह रक्खा था। मैंने सौगन्द देकर उन्हें माँगा राम को चौदह वर्ष का बनवास और भरत को राज दो। राम तो बन को गये और महाराज ने परलोक का रास्ता लिया। तुम काश्मीर में थे राजा कोई नहीं है सब तुम्हारी बाट देख रहे हैं। यह उदासी का कारण है। अब मन्थरा की यथोचित सम्मति से अखंड राज करो।

भरत ने बडी सावधानी से माता की बातें सुनी। उनके मुंह से 'हाय' का शब्द निकला और वह अभी तक खड़े थे या ताड़ के कटे हुये वृक्ष के समान धम से भूमि पर गिर पड़े। धमाके का शब्द हुआ

कैकेई उठाने दौड़ी। अरे! यह क्या होगया? "पुत्र उठो। चिन्ता न करो। तुम्हारे पिता बूढ़े थे। उन्हें तो एक दिन मरना ही था। राम साधु हैं। तुम से सच्चा और गहरा प्रेम रखते हैं। उनकी

तरफ से कोई खटका नहीं। मैंने कौशल्या से अपना बदला लिया। मन्थरा ने बड़ा काम किया है। उसे कुछ पारितोषिक दो, और राज करो।" भरत के घाव पर नौन पड़ा। वह बिल्ला उठे। बिलबिला उठे! आह! आह!! हाय! हाय!! क्या किया।

क्या बिगाड़ा था विधाता ने तेरा।
सर पै मेरे आपड़ी कैसी बला॥
हा पिता! हा राम, हा सीता! सती॥
हाय प्यारे सूरमा लछमन जती।
आके देखो तुम भरत की अब दशा।
जीता है या जीतेजी वह मरगया॥
क्यों पिता जी चल बसे सुरधाम को॥
क्यों नहीं सौंपा मुझे श्रीराम को।
क्या करूं कैसे जीऊँ कैसे रहूं।
चुप रहूँ किसको बिथा अपनी कहूं॥
हाय सीता! हाय लक्ष्मण!! हाय राम!!!
हाय माता! क्या किया यह तूने काम।
जीते जी बेमृत्यु के मारा मुझे।
क्या कहूं क्योंकर कहूं माता तुझे॥
ब्रह्म के अवतार थे श्रीरामचन्द्र।
जगत के उपकार थे श्रीरामचंद्र॥
तूने उनसे कर दिया मुझको विमुख।
राज पाकर क्या मिलेगा मुझको सुख॥

रो धोकर भरत बेसुध होगये। आँखें पथरा गईं। नाड़ी शून्य होगई। लोग दौड़े। समझा भरत भी सुरधाम को चल बसे। पिता और भाई के वियोग के दुःख को नहीं सह सके। मन्थरा उनके मुंह पर केवड़ा जल छिड़कने को लाई। अभी वह छिड़कने भी न पाई थी कि शत्रुहन की दृष्टि उस पर पड़ी। दौड़ कर कूबड़ पर एक लात लगाई। वह पृथ्वी पर गिरी, चिल्लाई। इतने में भरत की आँख खुल गई। शत्रुहन से बोले—"इसे न मारो। स्त्री जाति है। इसने बुरा किया। अब मैं यहाँ न रहूंगा। मुझे कौशिल्या के महल में ले चलो।"

पांचवां समुल्लास

भरत-कौशल्या

शत्रुहन जी भरत को थामे हुये कौशल्या के महल में पहुंचे। उसे इनके आगमन का समाचार मिल गया था। सुना, भरत आरहे हैं, उठी! इतने में भरत को आते हुये देखा, दौड़ी। पकड़ कर छाती से चिपटा लिया। माथा चूमा। पकड़ लाई और गोद में बिठा लिया। गाय बछड़े के मिलाप का दृश्य था। जब बछड़ा गाय के पास आता है, वह उसे चाहने लगजाती है। दिल से कौशल्या भरत को लाड़ करने लगी। इसकी दृष्टि में राम भरत थे और भरत राम थे। वह दोनों मे अन्तर नहीं समझती थी।

भरत की आँखों से आँसू की धारा बह निकली। रोने को तो कौशल्या ने भी रो दिया। इसका रोना कुछ और था भरत का रोना कुछ और था।

भरत बोले—"माई, मैं कैकेई की सम्मति में कभी नहीं था। मै अभागा हूं और अनर्थ का कारण होगया। राम क्यों बन गये? इसका कारण मैं हूं। पिताजी क्यों परलोक को चले गये। उसका कारण मैं हूं। ऐ मातेश्वरी! यदि राम के बनवास में मेरी सम्मति रही हो तो जो पाप दिन के समय सोने वाले को लगता है, मुझे भी लगे। जो अपराध गौ-हत्या, ब्रह्म-हत्या, पुत्री-हत्या से होता है, वह मुझे भी हो। मैं राम का भाई ही नहीं हूं। उन का भगत दास और सेवक हूं। वह मेरे ईश्वर हैं। भाइ! मैं तेरी शपथ करता हूं। सूर्य्यचन्द्र, अग्नि को साक्षी देता हूं कि मैं कैकेई के मन्तव्य को जानता भी नहीं था ••....."

कौशल्या—चुप बेटे! चुप! तू मेरे लिए

राम ही है। मैं जानती हूं, तू क्या है। सौगन्ध क्यों खाता है।

भरत—राम, लक्ष्मण और सीता का दर्शन करा दो।

कौशिल्या—"धीरज धरो! समय पर तुम सब मिलोगे, और संसार में तुम्हारे भैयापन का उदाहरण दिया जायगा। घबड़ाते क्यों हो?"

भरत—"माई! मैं फिर कहता हूं कि वेद के बेचने, परमार्थ के मोल लेने, लोभ, मोह, काम, क्रोध, अहंकार के करने से जो पाप होता है वह मुझे लगे। मैं निरअपराधी हूं। हाँ! मेरा यह पाप अवश्य है, मैं ऐसी कोख से उत्पन्न हुआ जो इस अनर्थ का कारण है।"

यह कह कर भरत फिर रो पड़े।

मैं अभागा हूं नहीं सन्मान योग।
देखकर मुझको घृणा करते हैं लोग॥
भाग्य में मेरे बदी थी यह दशा।
राम बन को जायें और सुरपुर पिता॥
होगया रघुकुल का घातक मातु मैं।
होगया इस जग में पातक मातु मैं॥
राम ने मेरा किया क्या लाड़ प्यार।
छोड़ कर बस्ती को पहुँचे जा उजाड़॥
वन के वनवासी उदासी बन गये।
बन के तपसी और उपासी बन गये॥
बन गये श्रीराम बिगड़ा मेरा काज।
मुंह दिखाने में मुझे आती है लाज॥
मैं कहां जाऊं सहारा है कहाँ।
इष्ट मेरा, मेरा प्यारा है कहां॥
जी में आता है हनूं इस प्राण को।
क्या करूंगा पाके मैं सन्मान को॥
राम के चरणों में मेरा है सुधार।
राम ही में है मेरा प्रतीत प्यार॥
क्या करूं और क्या कहूँ मैं हाय राम।
कैसे यह आपत सहूँ मैं हाय राम॥
मात मुझको आज्ञा दो जाऊं वन।
राम के चरणों में अरपूँ देह मन॥
राम दाता और विधाता हैं मेरे।
राम पितु भ्राता हैं माता हैं मेरे॥
मैंने समझा था मेरे स्वामी हैं राम।
यह विधाता होगया क्यों मुझसे वाम॥
क्या मेरा था पाप क्या अपराध था।
राम कहते थे भरत को साधु था॥
मेरे साधुपन का यह परिणाम है।
राम को दुख मुझ से आठों याम है॥

यह कह कर भरत फिर रोपड़े। अपने आप को रोक न सके। लोट पोट होगये। फिर पहली सी बेसुधी की दशा आने लगी। कौशल्या ने उन्हें उठाकर फिर अपनी गोद से चिपटा कर प्यार किया। सर पर हाथ फेरा। उनकी आँखें खुलीं।

कौशल्या बोली, 'अनजान बालक! क्या तू सचमुच अनाड़ी होगया। तू मेरा बच्चा है। यह समझ मेरी कोख से उत्पन्न हुआ है। जैसे तू वैसे राम! राम और भरत दोनों मेरी दायें बायें आँखें हैं। व्यौहार की दृष्टि से राम बड़े और तू छोटा भाई है। तुम मे कोई अन्तर नहीं है। तुम दोनों एक समान हो। बेटे अब तुम चिंता न करो। चिंता करोगे तो मेरी कोख का अपमान होगा। वैसे कभी कोई तुम्हारा अपमान न करेगा।

"तुमसे क्या कहूं। तुम्हारे पिताजी ने राम को वनवास दिया। माता ने बल्कल (छाल) वस्त्र सामने लाकर रक्खा। राम ने बाप की आज्ञा को सिर पर रक्खा। माता के वस्त्र का सन्मान किया। न हर्ष, न शोक—जोगी का भेष बनाया लक्ष्मण ने भी वैसा ही किया। सीता को मैंने रोकना चाहा। वह तीनों के तीनों मेरे रोके नहीं रुके। हँसते खेलते बन को चले गये। यह तेरे बड़े भाई, छोटे भाई, और तेरी नई नवेली-भावज का चरित्र था।

"तू राम को इष्ट कहता है और दुखी होता है। इष्ट देव और उसके भक्त में भेद कैसा? एक भाई ऐसा निष्प्रिय और निष्काम हो और दूसरा यों मन आसक्त और उसके विपरीत हो? आश्चर्य

है ! संसार दिव्य शक्तियों का खेल है । साक्षी रूप बन कर इस जगत की लीला को देखना चाहिये । न दुख हो न सुख हो ? ऐसा है तो तू कौशल्या पुत्र और राम का भाई ! और ऐसा नहीं है तो मैं क्या कहूं तू आप समझले ।

भरत को कौशल्या की बातों से धीरज आगया । पांव को छूआ । उसने आशीर्वाद दिया ।

इतने में एक मनुष्य ने आकर कहा—"वशिष्ठ जी बुला रहे हैं । कौशल्या से बिदा होकर यह सुमित्रा देवी से मिलकर गुरु के पास गये ।"

छठा समुल्लास

भरत और राम-दर्शन की इच्छा

वशिष्ठ ने भरत को दशरथ के अन्तेष्ठि कर्म करने की आज्ञा दी । और भरत ने शास्त्रानुसार चिता बनवाई । और कपूर, घी, गूगल और चन्दन की लकड़ी मँगा कर लाश का दाह किया । दस दिन तक क्रिया कर्म किये । दसवें दिन शुद्ध होकर ब्राह्मण, भिखारियों को इतना दान दक्षिणा दी कि वह अयाच्य होगये ।

जब यह सब हो चुका । वशिष्ठ ने सभा एकत्रित की । सबने मिलकर यह प्रस्ताव किया कि भरत को राज करना चाहिये । बहुत दिनों तक राजसिंहासन का शून्य रखना उचित नहीं है ।

भरत ने कहा—"आप लोग सच्ची बात कहते हैं । इस देश का राज्य श्रीरामचन्द्र का है । मैं उनका दास हूँ । राजा तो वह हैं । मै सेवक और दास हूं । सेवकाई करने में मुझे असमंजस नहीं है । राजा मैं नहीं हो सकता ।"

वशिष्ठ बोले, "दशरथ ने जीते जी तुम को राज और राम को बनवास दिया । राम तो उनके कथनानुसार बन को चले गये और क्षणमात्र भी विलम्ब नहीं किया । जिस दिन उन्हें आज्ञा सुनाई गई उसी दिन और उसी समय उन्होंने साधुओं के वस्त्र धारण करके यहां से कूच कर दिया । तुमको भी पिता का वचन मान कर उसे पूरा करना चाहिये ।"

भरत कुछ कहने ही को थे कि कौशल्या बोल उठी "हमारे कुल की यह रीति है कि पुत्र पिता का आज्ञाकारी होता है । राम ने बाप का वचन मान कर बन का रास्ता लिया । अब देश और प्रजा की भलाई इसी बात में है कि भरत वचन के दूसरे अङ्ग का पालन करें । यह धर्म है और यही मर्य्यादा भी है । राम चौदह वर्ष तक अयोध्या में नहीं आयेंगे । उस समय बिना राजा के देश का काज प्रबन्ध कैसे चलेगा । यह असम्भव है ।"

भरत ने कहा—"आप लोग जो कहते हैं उचित है और उसके मानने ही में मेरी और देश की भलाई है । लेकिन मैं एक बात कहता हूं । उसे मान जाइये । सिंहासन पर आसन जमाने से पहले इष्ट देव का दर्शन और पूजा मुख्य धर्म माना जाता है । राम मेरे इष्ट हैं । मैं पहिले उन का दर्शन करलूँ फिर जो कुछ होगा देखा जायगा । धर्म तो यह था कि राम राजा होते और मैं उनकी सेवा करता । मेरा यह भाग्य विधाता ने छीन लिया । पिताजी मुझे राम को सौंप कर परलोक को जाते तो मुझे दुख नहीं होता । दैवइच्छावश ऐसा नही हुआ । अच्छा ! इसमे मेरा पराक्रम चल नही सकता । लेकिन इतना तो हो सक्ता है कि मै कुछ दिनों के लिये यहां से चला जाऊं । राम चित्रकूट में रहते हैं । उनका दर्शन करूँ । वह जो आज्ञा दें उसको सिर पर धरूँ । इसमें न आपकी, न प्रजा की और न देश की कोई हानि होती है और मेरे दासपन को कोई धक्का भी नहीं पहुंचता ।

सभा के सब लोग कह उठे। "धन्य है भरत की बुद्धि को। क्यों न हो। राम के छोटे भाई के इस छोटाई के भाव में बहुत बड़ी बड़ाई है। भरत धर्म के पुत्र हैं। हम सब उस प्रस्ताव में सहमत हैं। किसी को किसी प्रकार का अनुरुद्ध नहीं है और न कोई इसका विरोध कर सकता है। लेकिन इसमें बहुत जल्दी करनी चाहिये। राज का प्रबन्ध बिगड़ रहा है। ऐसे समय में बहुत से शत्रु उठ खड़े होते हैं. और काम में विघ्न पड़ जाता है।"

भरत, रानियां, गुरू, मन्त्रीगण और सब प्रजा प्रसन्न होगये। दूसरे दिन प्रातःकाल चलने की सम्मति हुई। जिन-जिन को राम के दर्शन की इच्छा हुई सब अपने अपने ढङ्ग पर तयारियाँ करने लगे।
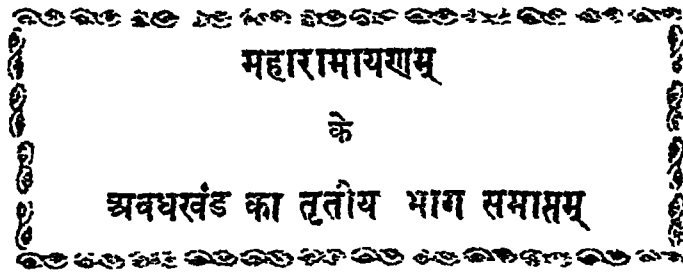
महारामायण के अवधखण्ड का चतुर्थ भाग

पहिला समुल्लास

भरत का राम के दर्शन के लिये बन को जाना

भरत राम के दर्शन के लिये चले, सुमन्त ने उन्हें पूरा पूरा वृत्तान्त सुना दिया जो उन्होंने निषाद से सुन रक्खा था।

अनगिनित मनुष्य साथ होगये। एक तो राम के दर्शन की प्रबल इच्छा! दूसरे प्रयाग तीर्थराज की यात्रा, तीसरे चित्रकूट स्वयं उस समय में भी प्रसिद्धि तीर्थस्थान था। रथ, बैहली, ऊंट, घोड़े, पैदल, सवार साथ थे। राम तो साधुओं के भेष में गये थे, भरत ने राज काज के ठाट का ध्यान रक्खा। वशिष्ठ, सुमन्त, जाबालि मंत्रीगण भी साथ हुये।

जब अयोध्या से कूच करके यह शृङ्गपुर में पुहुंचे, निषाद, गुह के गुप्त समाचार देने वाले कर्मचारियों ने उसे भरत के चित्रकूट जाने की सूचना दी। सुन कर इसे क्रोध आगया। उसने समझा भरत इतनी भीड़भाड़ लिये हुये राम के मारने को जारहे हैं। उनको अखण्ड राजा करने का विचार हुआ है। उसने अपने सेनापति को बुला कर कहा—"सिर देने का समय आगया। राम के काज में मर जाना अच्छा है।" यह सब के सब हथियारों से सजे सजाये गंगा के तट पर पहुंचे कि भरत पार न होने पावें।"

मर मिटो मरो मरो मरजाओ मर कर राज लो।
शत्रुघ्न और भरत को उस पार में जाने न दो।
दोनों को मारो धनुष से और चोखे बाण से।
भालों, बरछीं, छुरे व परसों से और कृपाण से।

सूरमा हो आज अपनी सूरमाई दो दिखा।
राम के शत्रु भरत को दो मज़ा इसका चखा ॥
धर्म का है युद्ध और तुम राम जी के भक्त हो।
तुम नहीं कायर न लम्पट और न तुम आसक्त हो ॥
मर के जाओ स्वर्ग को बलिदान हो जाओ अभी।
दोनों को यमपुर दिखादो उनको पहुँचा दो अभी ॥

गुह्य अभी अपनी सेना को चेता ही रहा था कि सम्मुख से छींक हुई। सेनापति बूढ़ा था। उसने समझाया, "तुम कैसे जानते हो कि भरत राम के शत्रु हैं. वह तो राम के सच्चे भक्त हैं। पहिले उनसे मिलो, वह लड़ने के लिये जारहे हों तो उनका सामना करो और राम को मनाने और लौटाने को चले हों तो उनके सहायक बनो।"

बात ठीक थी। वह फल, फूल और पकवान भेंट के निमित्त लेकर भरत के पास गया, वह निषाद की करनी सुन चुके थे। दोनों भाई उठे, उसे छाती से लगा कर कहा, हम "राम को मनाने और अयोध्या में लौटाने जारहे हैं। तुम भी हमारे साथ चल कर चित्रकूट का रास्ता दिखा दो।"

निषाद प्रसन्न हुआ सबको गङ्गा के पार लाया। अयोध्या वासियों ने स्नान, पूजा, पाठ और ध्यान किया और जलपान आदि करके भरद्वाज के आश्रम में आये। एक दिन वहाँ ठहरे। ऋषि ने बड़ी आवभगत की। आसन दिया। खाने-पीने की सामग्री इकट्ठा करदी। दूसरे दिन यह त्रिवेणी के संगम पर गये, स्नान-ध्यान किया:—

गङ्ग यमन बिच सरस्वती बैनी अस्नाना।
समझे कोई गुरु भक्त जो हो चतुर सयाना ॥
त्रिवेणी अस्नान कर गुरु ध्यान लगावे।
चार पदार्थ इच्छित तन निज घट में पावे ॥
सुरत चढ़े आकाश को सुन अनहद बाणी।
सुन सुन हंसा मगन मन हो बने निरवाणी ॥
जीवन मुक्त का पद लहे फिर बने विदेही।
काल कर्म की क्रूरता नहीं व्यापे तेही ॥

यमुना पार किया। वहाँ से चित्रकूट की सीमा आरम्भ होती है। पर्वत की तरफ पग बढ़ाया।

दिन अच्छे थे। समय सुहावना था। पहाड़ हरियाली से लदा हुआ था। सूर्य्य जब सर पर आता आकाश मण्डल में काली घटा हवा छाई हुई धूप से भरत की रक्षा करती थी। यमुना पार करके भरत पैदल चल रहे थे। निषाद उनके साथ-साथ था। जिस पगडण्डी से राम गये थे भरत उससे कतरा कर चलते थे, जिसमें उनका पाँव राम के पाँव पर न पड़े। निषाद इस चरित्र को देखकर चकित हुआ।

और भरत से पूछा, "भगवन्! मैंने, मैं राम के साथ था, यह दृश्य नहीं देखा। राम के सर पर बादलों की छाया नहीं थी। वह आपके सर पर बराबर रहती है। इसका कारण यह होगा कि राम साधु हैं। आप राजा हैं। राजा के ऊपर छत्र रहता है।"

भरत हँसे—'मित्र! इसका कारण यह है, मैं सूर्य्यवंश का छोटा बालक हूं। राम श्रेष्ठ पुरुष हैं। बड़ों को इतनी सहायता की आवश्यकता नहीं रहती। बालकों की सँभाल करना प्राकृतिक नियम है। राम स्वामी हैं, मैं उनका दास हूं। ऐसा ही होना चाहिये। ऐसा न होता तो प्राकृतिक नियम में विपरीतता आजाती।"

गुरु समरथ सिर पर खड़े, काह कमी तोहि दास।
ऋद्धि सिद्धि सेवा करें, मुक्ति न छाँड़े पास ॥१॥
दास दुखी तो मैं दुखी, आदि अनन्त बहु काल।
एक पलक में प्रगट होय, दया में करूँ निहाल ॥२॥
स्वामी सेवक में बसे, सेवक स्वामी के सङ्ग।
सेवक स्वामी के साथ में, करे न चित को भङ्ग ॥३॥
सेवक है मैली नदी, स्वामी निर्मल गङ्ग।
नदी जो गङ्गा से मिली, प्रगटी गङ्ग तरङ्ग ॥४॥
गगन मण्डल में गुरु रहें, घट में सेवक वास।
घट और नभ दोनों मिले, एक हैं स्वामी दास ॥५॥

निषाद अपने आप को बड़ा युक्तिवाला समझता था। भरत की बात सुनकर उसकी आँखें खुलीं। पाँव पड़कर अपनी प्रसन्नता प्रगट की।

दोनों इसी प्रकार बातचीत करते हुये और बात बात में भरत इस मॉंझी को भक्ति भाव की शिक्षा देते चले।

निषाद ने कहा,"भगवन्! आप राम स्वरूप हैं। आप में और राम में कोई भेद नहीं है। मैंने बहुत बड़ी भूल की थी। आप को शत्रु समझा था। अब मैं खुली आँख से देख रहा हूँ कि राम बिम्ब हैं और आप प्रतिबिम्ब हैं। मेरा ऐसा कहना अनुचित है इसमें द्वैत भाव आजाता है कि आप और राम समान नहीं हैं। भरत राम हैं और राम भरत हैं। समझने में दो और बूझने में एक।

भरत—नहीं मित्र! नहीं! राम सिर हैं, मैं उनका पांव हूँ।

निषाद,"भगवन्! आपकी शिक्षा धन्य है। आप बात बात में मुझे दीक्षा दे रहे हैं। पूजने का पदार्थ तो पांव ही है। मनुष्य किसी के सिर नहीं चढ़ता। बल्कि बड़ों के पाँव ही पड़ता है। राम की बड़ाई का फल आपके पाँव छूने से प्राप्त होता है:—

गुरु गोविन्द के रूप हैं, गोविन्द गुरु के रूप।
गति कृति देख चकित भई, को प्रजा को भूप॥१॥
गुरु गोविन्द दोनों खड़े, किस के लागू पाँय।
गुरु में गोविन्द परख कर, सूझा सुगम उपाय॥१॥
मन्त्र मूल गुरु वाक्य है, गुरु पद पूजा मूल।
ध्यान मूल गुरु मूर्ती, गुरु दया मेटे शूल॥१॥

भरत हँसे, "मित्र! तुम राम के सच्चे मित्र हो। राम तुम्हारे हृदय मे बस गये हैं और तुम्हारा हृदय चित्रकूट की लीला का दृश्य दिखाता है।"

दूसरा समुल्लास

लक्ष्मण की बेचैनी

भरत निशाद के साथ वार्त्तालाप करते हुये उस स्थान के निकट पहुंचे जहाँ चित्रकूट की चोटी पर राम की कुटी थी।

वन के पशु-पक्षी राम के आने से अभय होगये थे, और निर्द्वन्द विचरते थे। अयोध्या के राज दल को देख कर डर गये, और राम की कुटी के इर्द-गिर्द दौड़ कर चक्कर लगाने लगे। ऐसा पहिले कभी नहीं हुआ था। यह अनसमझ जीव-जन्तु भी राम की शरणागत में अपना स्थान समझते थे।

राम ने कहा—"लक्ष्मण! यह पशु पक्षी क्यों घबराये हुये हैं। क्या पहाड़ पर शिकारी तो नहीं आगये?"

लक्ष्मण बोले—"मैं बाहर जाकर अभी पता लगाता हूं।"

वह बाहर गये। देखा कि हिरन, बारहसिंहे, गाय, भैंस आदि सब भागे चले आरहे हैं। धूल उड़ रही है। आंखों पर जोर डाल कर देखा। कुछ दिखाई नहीं दिया। तब एक ऊँचे वृक्ष पर चढ़ गये। देखते क्या हैं कि सूर्य्य वंश का चमकती हुई झण्डे की ध्वजा धूप में जगमगा रही हैं। झण्डा लहरा रहा है और उस के साथ अयोध्या की सेना भी आरही है रथ, बहली, घोड़े, ऊंट, हाथी, पैदल, सवार सब ही उस में हैं। मन में सोचा-"हो न हो, भरत लड़ने वालों के समुदाय को लिये हुये चले आरहे हैं।" पेड़ से नीचे उतरे। क्रोधातुर हुये। आँखें लाल अँगारा बन गईं।

इसी रूप में राम के पास आकर कहने लगे—"भगवन्! भरत आरहे हैं। पलटन साथ है। आज्ञा दीजिये। मैं अभी जाकर भरत और शत्रुहन दोनों भाइयों को अपने तीक्ष्ण बाण से छेद कर भूमि में लिटा दूं। इन्होंने क्या समझ रक्खा है? लक्ष्मण के जीतेजी राम का द्रोही जी नहीं सकता। अयोध्या से निकासी हुई, बनवासी बने। अब भी चैन नहीं आया। चित्रकूट में सेना-दल

साज कर लड़ने आये हैं। राम को मार कर अखण्ड राज करने के अहंकार में चूर होरहे हैं। मैंने ऊंचे वृक्ष पर चढ़ कर उन्हें देख लिया। जी में तो आया कि धनुप चढ़ा कर सनसनाते हुये बाणों को उन दोनों शत्रुओं के कलेजों में धँसने के लिये भेजूँ। केवल आज्ञा लेने के लिये चरणों में उपस्थित हुआ हूं।

क्षण में दोनों भाइयों को मैं अभी कर दूं हनन।
धूल और मिट्टी में लेटेंगे भरत और शत्रुहन ॥१॥
मैं नहीं सेना से डरता शूरमा और शेर हूं।
जानते हैं सब मुझे मैं धीर और गम्भीर हूं ॥२॥
बाण बरसा कर करूंगा अवध की सेना को धूल।
आये हैं लड़ने भरत और शत्रुहन क्यों मुझको भूल ॥३॥
सिंहवत रणभूमि में मैं जय उछलता जाऊंगा।
दोनों को पृथ्वी में बेसुध घायल मैं पाऊंगा ॥४॥
दो मुझे आज्ञा चखादूं उन को लड़ने का मज़ा।
मैं अकेला हूं नहीं कोई कर सकता सामना ॥५॥

राम हँसे। लक्ष्मण को शान्त किया। उनके वीर भाव की प्रशंसा कर के समझाया, "लक्ष्मण! तुम नहीं जानते, ब्रह्मा जी कब अपने करतब से प्रसन्न हुये होंगे। मेरी समझ में उनको उस समय महा आनन्द प्राप्त हुआ होगा, जब भरत की प्रतिमा बनाई होगी। भरत केवल रघुकुल-भूषण नहीं हैं किन्तु वह जगत भूषण हैं। प्रेम-प्रीति की ऐसी मूर्ति संसार भर में कोई नहीं है। भरत अद्वितीय हैं। वह आप अपनी उपमा हैं।

"अच्छा! अब बाहर निकल कर देखो। भरत किस प्रकार आरहे हैं। अब बहुत समीप आगये होंगे।"

लक्ष्मण बाहर आये। देखा भरत, शत्रुहन और निषाद तीनों पैदल आरहे हैं। भरत आगे शत्रुहन पीछे और उनके पीछे निषाद है। तीनों पग-पग पर भूमि में दण्डवत् प्रणाम करते हुये कुटी की तरफ़ बढ़ रहे हैं। मन में लज्जित हुये- "राम सच कहते हैं भरत स्नेह और प्रेम की साकार मूर्त्ति हैं।"

लक्ष्मण कुटी में लौट आये। भरत के दण्ड प्रणाम का समाचार सुनाया।

राम ने कहा, "मैंने तुम्हें पहिले ही सुना दिया कि भरत इस संसार में विलक्षण व्यक्ति हैं।"

तीसरा समुल्लास

बिछुड़े हुओं का मिलाप

भरत ने देखा। पहाड़ में वसन्त ऋतु छाई हुई है। फूलों की वास लेने वाले भौंरे गूँज रहे हैं। सुन्दरताई अपने यौवन पर है। नाना प्रकार के फूल उसकी शोभा को बढ़ा रहे हैं। भागे हुये पशु-पक्षियों ने राम की कुटी को घेर रक्खा है और इनके समाज को भी भय की दृष्टि से देखते हुये कुटी का आसरा ले रक्खा है। यह त्रेता युग था। राम का अवतार त्रेता में हुआ है। कहीं कृष्ण ने उस समय जन्म लिया होता तो कुटी के चारों तरफ़ पशुओं की मण्डली को देख कर अपना ग्वाल-पना भूल गये होते। उनका जन्म द्वापर में हुआ था।

राम ने लक्ष्मण को अगवानी के निमित्त भेजा। भरत और शत्रुहन दोनों आँखों से जल बहाते हुये लक्ष्मण से लिपट गये।

धन्य लक्ष्मण धन्य तुम हो, सच्चे सेवक राम के।
भक्ति के भूषण हो तुम, हो भक्त आठों याम के।

लक्ष्मण फिर निषाद से मिलकर सबको कुटी के भीतर लाये। भरत ने देखा जटा-जूट धारण किये हुये वैराग ने युवावस्था का रूप धारण कर

रक्खा है। धनुष-बाण कन्धे से उतर कर हाथ में सुशोभित हो रहे हैं। सीता पीछे बैठी हुई खजूर के पत्तों का पंखा झल रही हैं। यह दशा देखकर तीनों के तीनों रोते हुये पृथ्वी पर गिरे। लक्ष्मण ने कहा, "भगवन्! भरत आपको नमस्कार कर रहे हैं।" यह उठे और भरत को उठा कर छाती से लगाया। आँसू पोंछे। सिर और माथा चूमा और वही बर्ताव शत्रुघ्न और निषाद के साथ किया। फिर इन तीनों ने सीता-सती के पाँव छुये। उसने मन में आशीर्वाद दिया, "राम की अटल भक्ति तुमको प्राप्त हो।"

दण्ड प्रणाम करते समय भरत का धनुष अलग, बाण का तरकश अलग और सिर का मुकुट अलग जा पड़ा। राम की भी यही दशा थी। भरत अपना दुःख वियोग भूल गये। देह की सुध-बुध जाती रही। चन्द्र चकोर की भाँति बन गई। वाणी निर्वाणी बन गई। बुद्धि ने अपनी विवेक वृत्ति त्याग दी। मन की चंचलता कोसों दूर भागी।

दर्पण आगे सुन्दरी, देख के अपना अङ्ग।
मन निमग्न अनबन बनी, दोनों अगम अभङ्ग ॥१॥
दर्पण अन्दर सुन्दरी, बाहर सुन्दर देह।
कौन बिम्ब प्रतिबिम्ब है, उपजा मन सन्देह ॥२॥
राम समाते भरत में, भरत समाते राम।
स्वामी सेवक यों मिले, चित उपजा विश्राम ॥३॥
यह तो गति है अटपटी, खटपट लखे न कोइ।
अब मन की खटपट मिटे, झटपट दर्शन होय ॥४॥
दर्शन दृष्टि ते किया, दृष्टी दरशन समान।
द्रष्टा दृष्टि दृश्य मिले, कौतुक देखहु आन ॥५॥
राम भरत के मिलन छवि, वर्णित बरणी न जाय।
कौन कौन है कौन है, बुद्धि न सकी 'बिलगाय' ॥६॥
रूप अरूप में धँस गया, सगण अगण गये भूल।
मन भागा बुद्धि हटी, उड़ गये भूल चंडूल ॥७॥
विस्माधी दोनों भये, लगी शून्य समाध।
साधन सिद्धि की गम कहाँ, कौन किसे कहे साध ॥८॥

निषाद ने देखा कि राम और भरत चित्रवत होगये। समयानुसार उसने कहा, "भगवन! इस चित्रकूट में एक अद्वैत ही चित्र नहीं हैं, यह चित्रों का कूट है। बाहर मुनिगण और मातायें चित्राकार होकर आप के सदेह चित्र की प्रतीक्षा और निरीक्षण कर रहे हैं।"

राम और सीता दोनों उठ खड़े हुये। सब से पहिले कैकेई के पाँव छुए। उसने दोनों को छाती से चिपटा लिया, "क्या यह वही कैकेई है जिस ने राम को बनवास दिलाया? दैव की गति समझ में नहीं आती। फिर यह जोड़ा सुमित्रा की गोद से चिमट गया और अन्त में कौशल्या के चरणों में गिरा। उसने इसे अङ्क लगाया।"

फिर राम ने तीनों के पास जाकर दण्ड प्रणाम किया। सब इन्हें देखकर प्रसन्न-चित्त होकर चित्रों की कुटी बन गये।

चितुर चेतरे सोच मन, तू है चित्राकार।
चित्र खींच ऐसी अगम, नहीं गुण कला विचार।

अयोध्या से पलटन की पलटन मिलने आई थी और यह सब राम से मिलने के अभिलाषी थे। राम ने देखा कि सब के साथ मिलने में बहुत समय लगेगा और इन सबकी आगत-स्वागत करना है। उसी क्षण वहाँ जितने नर-नारी थे, उतने ही राम भी बन गये। और राम ने एक २ से मिलकर सब को सुखी कर दिया। सब ने यही समझा कि राम केवल मुझ ही से मिले हैं, दूसरे उनसे न मिल सके।

जो लोग इस गूढ़ विषय और आत्मिक रहस्य को नहीं समझते उन्हें समझाना महा कठिन है। इनकी समझ बूझ की आँख पर पट्टी बांध रक्खी है। इनका दोष नहीं है। यह जानते हुये अनजान हैं। अपने प्रतिदिन के व्यवहार पर दृष्टि डालें तो सुगमता से इसे समझ सकते हैं। लेकिन अविद्या की युक्ति प्रतियुक्ति और चंचल बुद्धि के तर्क कुतर्क ने इन्हें ऐसा भ्रम में रक्खा है कि यह सहज सरल और सुगम बात तक को नहीं समझ सकते हैं। देखते हैं कि उनके देह में एक मन है

जो व्यापक शक्ति है और एक ही समय में वह चोटी से लेकर ऐड़ी तक रहता हुआ और रोम २ से मिला हुआ सब के काम किया करता है।

एक मन है चोटी से ऐड़ी तलक
इन्द्रिय में देखलो उसकी झलक ॥
आंख से वह देखता है हर घड़ी।
कान से सुनता है वह बातें बड़ी ॥
सूंघता रहता है निशदिन नाक से।
बोलता है वाणी अच्छी हांक से ॥
देखलो मन एक है और काम सौ।
एक रूप है और इसके नाम सौ ॥
सिन्धु है और सिन्धु में बूंद अनेक।
काम कितने करता है और रूप एक ॥
बूंद में है लहर में और झाग में।
सिन्धु गाता रहता है हर राग में ॥
एक है यह सिन्धु उसके काम सौ।
एक रूप है और उसके नाम सौ ॥
है गगन मंडल जो रवि तेजधाम।
किरनों किरनों में वह व्यापा है महान ॥
चन्द्र में तारों में है और आग में
देखलो उस रविको भाग और त्याग में
एक है रवि और उसके काम सौ
एक नाम है और उसके नाम सौ ॥
एक शब्द है कितने कानों में पड़ा।
वह कहीं खड़ा कहीं जाकर अड़ा ॥
गिटकरी है मीठ है और है अलाप।
बांसरी की धुन पखावज की है थाप ॥
एक है यह शब्द उसके काम सौ।
एक रूप है और उसके नाम सौ ॥
एक राम और काम उसके है अनेक,
भाव लो सौ और उसका रूप एक ॥
मन में आते हैं तुम्हारे सौ विचार।
तुम बनाओ इसकी मूरत सौ हज़ार ॥
सत है तुम में और सत श्रीराम में।
सत ही सत रहता है सारे काम में ॥
भावना से बन गये वह जब हज़ार।
सब से जाकर वह मिले फिर एक बार ॥
राम युक्तीवान थे योगी थे वह।
राम बुद्धिवान संयोगी थे वह।

चौथा समुल्लास

पहुनाई

चित्रकूट के पहाड़ पर तम्बू तन गये। भील, गौड़, कोल, किरात इत्यादि ने सुना कि अयोध्या से राम की माता, भाई और सम्बन्धी आये हुए हैं। इन वनवासियों ने पंचायतें की, "भाइयो! देखना कोई यह न कहे कि चित्रकूट गये थे और खाने पीने को भी नहीं मिला। ऐसा न हो। इसमें हमारी जाति की हँसी होगी।" और हज़ारों जङ्गली बात बात में वहाँ निष्काम कर्म के लिये आगये। इन सबमें राम की भक्ति और राम का प्रेम था। राम ने अपने प्रेम से इनके मन को जीत लिया था और इन्होंने अपने प्रेम से राम को बस में कर लिया था॥

कोई पानी लाता है। कोई दूध, दही, फल, फूल, घी लाता है। लकड़ी काटने वालों ने सब के तम्बुओं के सामने लकड़ी और घासफूस का ढेर लगा दिया, जो कुछ पहाड़ और जङ्गल में कन्दमूल चिरोंजी, अक्रोय और अनेक फल मिल सके सब के टीले बन गये।

अयोध्यावासी कहने लगे। राम अवध के राजा होते तो चाँदी सोने के सिंहासन पर बैठते। यहाँ इनका सिंहासन मनुष्यों का हृदय बना हुआ है। यह अब वन को छोड़कर क्यों नगर को जाने लगे। हम अयोध्या के रहने वाले अभागे हैं। नगर राम को छोड़ आए और यह वनवासी

भाग्यवान हैं जिनके यहाँ आकर राम ने अपने रहने की कुटी बनाई है ?

सीधे सादे लोग ! सीधी सादी बोलचाल । सीधासादा खाना पीना ! जङ्गल में मङ्गल होगया । इनको इस वनयात्रा से जो सुख प्राप्त हुआ है, सारी आयु कहीं नहीं मिला ।

राम प्रेमपूर्वक सबके साथ मिलते थे । यह सब उनकी लीला को देखकर अवध को भूल गए। उसका नाम तक उनके होठों पर नहीं आता था ।

शुद्ध वायु, शुद्ध जल, शुद्ध आहार का भी मन पर बड़ा प्रभाव पड़ता है । एक तो यह राम के प्रेमी थे, दूसरे वन के शुद्ध और पवित्र रहन सहन ने इनको कुछ का कुछ बना दिया । प्रकृति बदल गई । नगर की सभ्यता की जगह जंगल की सादगी ने ले ली ।

कोल किरात झूठ नहीं बोलते थे । जो मन में आया मुँह से सुना दिया । इनका सरल स्वभाव और आचरण देखकर नगरनिवासी चकित होगये ।

अवसर पाकर गुरु ने सभा की । राम को दशरथ के परलोक गमन का समाचार सुनाया । दुःख तो होता ही है । राम को यह सुनकर शोक हुआ । सीता और लक्ष्मण अधिक शोकातुर होने लगे, तब गुरु वशिष्ठ ने समझाया, "यह प्रकृति का नियम है । राजा प्रजा, ऋषि मुनि, ज्ञानी अज्ञानी, मनुष्य पशु सबको प्रकृति का यह ऋण चुकाना पड़ता है । कोई आगे जाता है कोई पीछे जाता है । जाना सबके लिये है । दशरथ वृद्ध थे । संसार के दुःख और सुख सब देख चुके थे । राम और भरत जैसे सुयोग्य पुत्र संसार में किसे मिलते हैं ? वह शोक के योग्य नहीं हैं । ईश्वर करे सबको दशरथ जैसा जन्म-मरण प्राप्त हो ! वह बड़े भाग्य वाले थे । उनके लिये शोक करना अनुचित नहीं, तो उचित भी नहीं है ।"

इस प्रकार ढारस देकर ऋषि ने राम के हाथों फिर क्रियाकर्म कराया । वैतरणी के तट पर जाकर उन्होंने पिंडदान आदि करके तिलांजलि दी। एक दिन का व्रत रक्खा, और फिर अवधवासियों की सेवा सत्कार में लगे ।

इस महमानदारी में राम तो आधार मात्र थे। वनवासियों ने इस में किसी को अपना साझी नहीं बनाया, और उनके प्रेम भाव को देख कर सबमें एक प्रकार की सुखदाई डाह उत्पन्न हुई । यह वनवासियों को महा भाग्यवान समझने लगे ।

गंधर्व, किन्नर, नाग आदि नभमंडल के देवता मनुष्य शरीर धारण किये हुये राम की सेवा में आये और जंगलियों के सत्कार और पहुनाई के भागीदार हुये । यह थे तो सूक्ष्म शरीर वाले लेकिन मनुष्यों के बीच में व्यवहार करने के निमित्त यह स्थूल शरीरधारी होगये । अपने सूक्ष्म शरीर में रहते तो वह चाहे सबको देखते इन्हें कोई न देखता । इसलिये सूक्ष्म अवस्था को त्याग कर उन्हें स्थूल रूप धारण करना पड़ा । राम तो इस रहस्य को जानते थे और उनका बर्ताव इनके साथ कुछ और था और लोग इन्हें मनुष्य समझते थे ।

हर व्यक्ति के तीन शरीर होते हैं—कारण, सूक्ष्म और स्थूल । कारण जगत् में केवल कारण शरीरधारी बसते हैं और उनका कर्म कारण रूप में होता है । सूक्ष्म शरीर के वासियों के दो शरीर होते हैं, कारण और सूक्ष्म और इनके व्यवहार भी कारण और सूक्ष्म रीति से होते हैं। और स्थूल जगत के रहने वालों के तीन शरीर होते हैं, कारण, सूक्ष्म और स्थूल और इनके व्यवहार भी कारण, सूक्ष्म और स्थूल रूप के होते हैं ।

सूक्ष्म जगत् में गंधर्व इत्यादि रहते हैं । कारण में नाग आदि और स्थूल जगत् में मनुष्य आदि निवास करते हैं ।

स्थूल शरीर का भान जाग्रत में, सूक्ष्म का स्वप्न में और कारण का सुषुप्त में होता है ।

सूक्ष्म और कारण जगत के रहनेवालों में कभी २ और किसी २ में यह शक्ति आजाती है

कि वह स्थूल रूप में प्रकट होकर लीला करे। लेकिन सब के लिये ऐसा नियम नहीं है।

इन शरीरों का चित्र इस प्रकार होता है:—
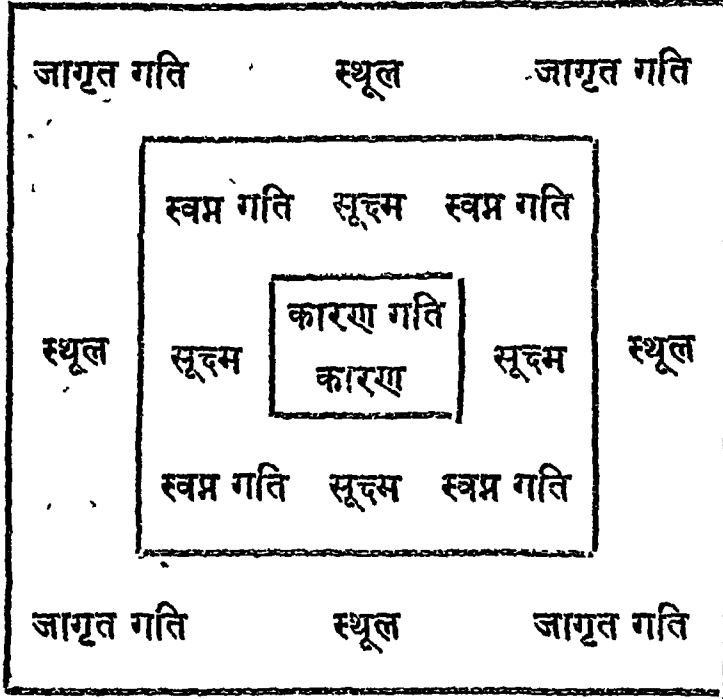
गंधर्व—संस्कृत शब्द गंध (वास) और अर्व (चलने) से बना है, जिनमें गंध मात्र वासना है वह गंधर्व हैं। यह सूक्ष्म दिव्य शक्तियां हैं जो प्रकृति से नाचती और गाती रहती हैं।

नाग संस्कृत शब्द नग (पहाड़) से निकला है जो सब की जड़ और केन्द्र है और जो दिव्य शक्ति सब मे लिपटी हुई है, यह कारण है।

मनुष्य मन वाले शरीरधारी को कहते हैं यह स्थूल है। यह सब देवता चित्रकूट में आकर रहने लगे।

राम रमने वाले जोगी सबके रमता राम हैं।
जोगियों के ज्ञानियों के ध्यान के विश्राम हैं॥
राम के आधार ही पर इस जगत का खेल है।
राम हैं सबसे मिले और उनका सबसे मेल है॥
राम में विश्राम है अनंद है और शांति।
राम का पल्ला पकड़ने से छुटेगी भ्रांति॥
राम में है चित्र सबका राम ही हैं चित्रकूट।
लूटते तुम से बने तो लूटो सद्‌गति की लूट॥
लूट है भक्ति की लूटो शांति विश्राम को।
होंठों पर अपने बसाओ राम ही के नाम को॥

बनवासियों ने इनकी सब प्रकार पहुनाई की, और वह अयोध्या (शरीर) को भूल गये। किसी को तन मन की सुध न रही।

पाँचवाँ समुल्लास

भरत-राम-सम्बाद

भूल गये और राम के प्रेम का जाल तन गया। उधर सीता ने अपनी माया का ताना-बाना फैला दिया। वह सासों की सेवा में लगी। यह सबसे प्रेम व्यवहार करने लगे। चित्रकूट भक्ति का मण्डल बन गया। जो है वह सब कुछ भूला है सबके सब इस भूलभुलइयाँ के भूले मे भूल गये।

कैकेई मन मे सोचने लगी, "मैंने क्या किया! ऐसे पुत्र और पुत्रबहू को मैंने क्यों बनवास दया? मेरी बुद्धि मारी गई। कुबड़ी ने मुझे बहका दिया? राम अब अवध को चलें, राज करें।" अब कैकेई मोहग्रस्त होगई।

भरत सोचने लगे, "मैं ही इस अनर्थ का मूल कारण हूं। ऐसे स्वामी को पाकर यह क्या अपराध हुआ? अब तो राम अयोध्या को चलें इसी मे सबकी भलाई है।

कौशल्या और सुमित्रा राम का मुँह देखकर चकोर गति होरही थीं। उसके प्रेम के केन्द्र राम थे। राजकाज की उनको समझ नहीं रही थी।"

वशिष्ठ अपने आपे में थे।

जब जनक ने सुना कि भरत राम के मनाने के लिये चित्रकूट गये हैं। वह भी सतानन्द दीवान को साथ लिये हुये चित्रकूट मे आगये। राम और सीता दोनो उनसे मिले। यह अपनी विदेह गति को भूल गये।

भूले सब भूले! किसी को राम के सिवा और किसी बात का ध्यान नहीं रहा था। नहीं भूला तो जावाली ऋषि नही भूला। यह दशरथ का मन्त्री था और नास्तिक था। यह इस संसार के भोग-विलास और राजकाज के व्यौहार को सब कुछ समझता रहा।

सुमन्त बहुत धीर गम्भीर थे, वह भी राम के प्रेम के वस में आगये।

अयोध्यावासी पर्वती गँवारों के प्रेम को देखकर मोहित होगये। उनकी पहुनाई की प्रशंसा करने लगे।

इन गँवारों ने उन से कहा, "हमारी प्रशंसा क्या करते हो? राम की प्रशंसा करो। हमने कुछ नहीं किया। हमसे क्या हो सकता था? राम न होते तो हम लूटपाट चोरी-चकोरी कर बैठते और तुमको अपने कपडे लत्ते संभालना कठिन होजाता। राम ने हमारे मन को फेर रक्खा है।"

सचमुच यह केवल सत्संग की महिमा और राम के प्रेम का प्रभाव था। राम ने अपनी रमणशक्ति से सबको बांध रक्खा था।

इन भूले हुये नरनारियों को चित्रकूट के अन्न-जल के प्रसंग और राम के भाव ने बावला बना दिया था। यह रहस्य केवल राम ही जानते थे या सीता उनकी माया जानती होंगी। पामर जीव को इसकी क्या समझ है।

राम ने इनकी दशा देखी। सोचा। यह सब मूढ और अज्ञानी बन गये हैं। अपनी मोहनी शक्ति को समेट लिया। उच्चाटन शक्ति की धार चारो ओर बखेर दी और उनकी मति पलटने लगी।

कई दिन बीत गये। वशिष्ट ने अपने तम्बू के सामने सबको निमन्त्रित किया। राम चारों भाई आये। कौशल्या आदि तीनो रानियां आईं, जनक, सुमन्त जावाली आदि आकर बैठ गये।

वशिष्ठ बोले, "चित्रकूट के चित्रों की चित्रकारी ने सब को मोह लिया था। अयोध्या सूनी है। यहाँ ही रहना नहीं है। राजकाज के प्रबन्ध को भी देखना है। सब लोग राम की आज्ञा लो। वह जो कुछ कहें, सुनो और मानो। उसी के मानने मे हम सब का कल्याण है।"

भरत ने मुँह खोला, "राम अयोध्या को चलें। सिंहासन आरूढ़ हो। राजकाज करें। उनका तिलक हो, यह सब की अभिलाषा है।"

वशिष्ठ, "वाह! वाह! भरत राम के भाई हैं। कैसी अच्छी बात कही है, जो सबको प्यारी लगती है।"

राम "भरत बड़े ज्ञानवान् हैं जिन की प्रशंसा गुरु अपने श्रीमुख से कर रहे हैं और मुझे इस इस बात पर घमंड है कि मैं भरत का भाई हूँ।"

वशिष्ठ, "सब की यह हृदय से इच्छा है कि राम अयोध्या को लौट चलें। वहां उनका राज-तिलक हो, वह राजकाज करे और प्रजा को सुख दें।"

रामने मुँह नहीं खोला।

भरत बोल उठे, "मुझे लज्जा आती है, मैं क्या कहूं क्या न कहूँ। विधाता ने मुझे अपराध का कारण बना दिया, मेरा विश्वास संसार से उठ गया। मैं जो कुछ कहूँगा वह लोगो के हृदय मे प्रवेश न करेगा। और न किसी को निश्चय आयेगा। मेरी प्रार्थना गुरु महाराज से यह है कि वह राम-लक्ष्मण और सीता को अयोध्या लौटा लेजांय और हम दोनो भाई भरत और शत्रुहन वन मे रहे। इस में बहुत लाभ और थोड़ी हा न है। आधा लाभ भी कम नहीं समझा जाता।"

भरत की बात सुनकर सभा का मन समुद्र के समान उमड़ने लगा। देहधारी विदेह होगये

जगत में किसने कभी ऐसे स्नेह की लीला देखी होगी !

समय और अवसर को देखकर वशिष्ठ जी बोले, "राम ! तुम धर्मात्मा हो । सब के घट २ के वासी हो । यहां कोई एसा मनुष्य नहीं है जिसके हृदय का भाव तुम न जानते हो । जिस बात में तुम सब की भलाई समझते हो वही और वैसा ही काम करो । भरत का मन इस अवस्था में आरत बना हुआ है और आरत को अपने अर्थ के अतिरिक्त और कुछ नहीं सूझता" ।

राम बोले, "काल विपरीत है । सोच-समझ से काम लेना है । भरत के आधीन हम सब की भलाई है । वह जो कुछ कहेंगे, करेंगे, सब हमारे अनुकूल होगा ।"

भरत ने देखा कि सारा बोझ उनके सिर पर रक्खा जा रहा है । वह दुखी होकर भरी सभा में खड़े होगये और नम्रता के साथ सब के ध्यान को अपनी तरफ़ आकृषित करते हुए बोले "मुझ पर गुरु की दया है । मुझे जो कुछ कहना था या कहना चाहिये था गुरुदेव ने आपसे कह दिया । मैं कश्मीर से आया । सुना, राम पैदल साधुओं के भेष में बन को गये; पिताजी मुझे अनाथ कर गये; मैं न इधर का रहा न उधर का ! बिन जल की मछली के समान मेरी दशा हो गई । न कुछ कर सकता था न धर सक्ता था । राम की तरफ दृष्टि गई । वही मेरे धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष के केंद्र है । मेरे लिये जो कुछ हैं वही हैं । विधाता ने मेरे मारने में कोई कसर नहीं रक्खी । राम चाहें तो मुझे पुनर्जीवन दान देसकते है । राम मेरी दशा को जानते हैं । जो कुछ मैं कहूँगा वह कम होगा और मेरा कहना सुनना निरर्थक होगा ।"

यह कह कर भरत राम के चरणो पर गिरे और धाड़ें मारकर रोने लगे । सारी सभा करुणा के सागर में डूब गई । वशिष्ठ और जनक तक की आंखों में आंसू भर आये ।

राम ने भरतको उठाकर छाती से लगा लिया, "धीर्य धरो, जब तुम को मुझ पर इतना विश्वास है तो मैं कब कोई काम ऐसा क[illegible] तुम्हारे दुःख का कारण रोगा !"

इन वचनों से भरत की तो ढाड़स [illegible] लेकिन सभासद न जान सके कि राम क्या [illegible] और इनको क्या सूझ बूझ आयेगी ।

राम ने सभासदो से कहा, "भरत निर[illegible] अपराधी ! माता कैकई दोषरहित हैं । यह सब प्रारब्ध का खेल है, जो मनुष्य बिना समझे बूझे भरत को दोष लगायेगा, वह अपना लोक परलोक बिगाड़ेगा । मैं सब को सुना कर कहे देता हूं, चाहे लाभ हो या हानि हो; चाहे यश हो चाहे अपयश हो; चाहे पिताजी का वचन प्रमाण रहे या न रहे; चाहे मेरी प्रतिज्ञा भंग होजाय या अभंग हो, मैं स्पष्ट वाणी में बिना किसी असमंजस के कह रहा हूं कि इस समय भरत जो कुछ कह देंगे मैं उसे मान जाऊँगा और उनकी वाणी को सर्वोपरि ही समझूँगा ।"

अयोध्या के लोग प्रसन्न हो गए कि भरत अवश्य राम को लौटने के लिये कहेंगे । राम का तिलक होगा, राम राज करेंगे, वशिष्ठ और जनक दुविधा में पड़ गए । वह इस वाणी के परिणाम को न समझ सके । देवताओं की मंडली में खलबली पड़गई । वह डरे कि कहीं ऐसा न हो राम मोहासक्त होकर भरत के कहने में आजाँय और उनका सब किया कराया काम निष्फल होजाय । सबको चाहिये कि भरत की शरण में चले जांय और उनके हृदय को प्रेरित करें, इसी में उनका कल्याण होगा ।

सब चुप ! किसी के मुँह से एक वचन भी नहीं निकला । देवताओं का जादू चल गया । वह मन ही मन में राम को छोड़कर भरत को मनाने लगे । सच है, जो ईश्वर से मिलने के अभिलाषी हों सारे कर्म धर्म को छोड़कर किसी सच्चे ईश्वर भक्त की शरणागत होजांय और उन्हें ईश्वर की प्राप्ति होजायगी । यह नियम है, यह निष्ठा बहुत प्रबल है, और सिद्धताई प्राप्त किये बिना नहीं रह सकती ।

जब जनक ने सोचा, "देखो रामचन्द्र जी मेरे लिये
के लिये चित्रकूटरने पर उद्यत हैं यहाँ तक कि मेरा
दीवान को सान्त्वना चाहते हैं और अपने आपको मेरे
राम और प्रतिज्ञा भंग करना चाहते है। संसार में ऐसा
विदेह गम्भी कहाँ कोई होगा! और मैं कैसासेवक हूं।"

भूले यह सोचकर वह कहने लगे, "कहना सुनना
किर्म सब हो चुका। अब और कहना सुनना निष्फल
है। आपने मेरा पन निबाहा अपने पन के निबाह
का कुछ भी विचार नहीं किया। आप मुझसे
प्रसन्न हैं और गुरु अनुकूल हैं, और चाहिये
क्या! मैंने कायर बनकर संसार की अपकीर्ति
के डर से जो कुछ कहा सुना क्षमा कीजिये!
मेरा भाग्य उदय हुआ। माता ने कुटिलाई की।
पिता जी आपके वियोग में परलोक को सिधारे।
ईश्वर ने भी मेरी सहायता नहीं की। देवता
अपने २ स्वारथ के वश होकर मुझे कठपुतली
बनाकर नचा रहे हैं। मुझे सब ने मिलकर मारा।
केवल आपनेमेरी रक्षाकी। मैंसेवक केधर्म का भी
पालन न कर सका। हाँ! इस कुसेवकाई में भी
आप प्रणतपाल हुए। अब आप जो चाहे करे
मुझे सब स्वीकृत है। स्वामी की आज्ञाको सिर पर
रखना सेवक का सब से बड़ा चिन्ह शिरोधार्य है,
ढाढस होगई। सारे संशय जाते रहे। जगत
चाहे मुझे कहे। इसकी न मुझे चिंता है मुझे
केवल आपकी प्रसन्नता की कमाई करना है।

सेवक स्वामी एक मति, मति में मति मिलजाय।
स्वामी की मति में रहे, सेवक सोई कहाय॥
राम स्वामी मैं दास हूं, स्वामी मेरे अनुकूल।
अब चिंता सब मिटगई, रहे जगत प्रतिकूल॥
सेवक अपना जान कर, क्षमा कीजे अपराध।
मै तो किंकर दास हूं, स्वामी अपार अथाह॥

एक अभिलाषा मन मे है, चाहे तो उसे पूरी
कीजिये चाहे न पूरी कीजिये। इसमें भी मैं
अहंकारी नहीं होना चाहता। वह यह है कि मैं
अयोध्या से अभिलाशापूर्वक तिलक की सामग्री
साथ लाया हूं। अपना तिलक करा लीजिये जिससे
लोग यह समझलें कि राजा आप ही हैं और तब
मुझे जो सेवकाई का पद आप प्रदान करेंगे
शिर पर चढ़ाकर आपकी आज्ञानुसार सेवा
करता रहूंगा। इस मेरे सेवकपन का लि
आपके हाथ मे है।

यह कहते हुए भी भरत की
की धार बहने लगी।

सभा प्रसन्न होगई। सब वाह
आकाश के रहनेवाले देवताओ ने
त्याग कर भरत के शिर पर फूलों की

भरत जी फिर बोले, "मै न नीति जा
न मुझे धर्म का ज्ञान है। आरत हो रहा
हार्दिक व्याकुलता रह रह कर सता रही है या
यह हो या आप सीता के साथ अवध को लौटिये।
हम तीनो भाई बन मे रहकर तपस्या करे। राजो
की पूजा पाठ प्रोहित करता है। राजाओ के
लिये उसका सेनापति लड़ता है। राजाओ का
राज प्रबन्ध उसके बदले मंत्रीगण ही किया करते
हैं फिर इस बनवास का धर्म सेवक क्यों न
पालन कर सकेगे।"

राम ने भरत को संतोषित किया "भरत!
जो कुछ तुम्हें कहना था कह चुके। मैंने सुन लिया
और जो कुछ मुझे कहना था मैं भी कह चुका
था और तुमने सुनलिया। अब कहना सुनना कुछ
नहीं है तुम मेरे भाई और बाप के सच्चेसपूत हो।"

जो लेना हो जल्द ले. कही सुनो मत मान।
कही सुनी जुग २ चले, आवागवन वधाम॥
जो करना हो जल्द कर, कथनी बदनी त्याग।
कथनी बदनी भ्रम है, नहीं भक्ति वैराग॥
चित्रकूट चिंता हरन, मन के लाख चरित्र।
इस परबत पर आय कर, लख २ अलख के चित्र
मन के चित्र विचित्र हैं, संसकार के रंग।
सब के रंग को त्याग कर, गहि अब गुरू का संग॥
जाय अवध में बास कर, राज काज दल साज
धर्म कर्म और प्रेम का, जुड़े विचित्र समाज॥

छठा समुल्लास

देवलीला

राम ने कहा, भरत ने सुन लिया। देवता इन दोनों के मुँह को देखने लगे। दैवलीला प्रबल होती है। मोहन, मारन, उच्चाटन, वशीकरन आदि इनकी भावनाओं के मंत्र हैं। भावना की धार इनके अंतःकरण के यंत्रों से निकल कर वह माया-जाल के तंत्र बन जाते हैं। कभी मनुष्य का मन किसी काम में लग जाता है, यह मोहन मन्त्र है। कभी वह उचता जाता है यह उच्चाटन है। जब वह मोह भ्रम को त्याग देता है तब उसी को मारन कहते हैं और जब किसी को अपने बस में लाना चाहता है तब उसका नाम वशीकरन हो जाता है। इन सब की जड़ मन के अन्दर हैं, और देवता इन तंत्रों से काम लेते रहते हैं। जहां इनके अन्तःकरण से धार निकली वह पोट जाती है और फैल कर लोगों के अन्तःकरण में समा जाती है।

इन्द्र इन सब तांत्रिक देवताओं का राजा है। उसने देखा राम को चित्रकूट में आये बहुत दिन होगये। उसने सब के मन को उच्चाटना आरम्भ किया। सब कहने लगे इस पर्वत पर अब कब तक रहें। यहाँ न खाने का सुख है, न पीने का! दिन प्रतिदिन वही एक समान दृश्य! मनुष्य का मन नित नये खेल देखने का अभिलाषी रहता है।

देवता इनकी दशा को देख कर प्रसन्न हुए। राम, लक्ष्मण, सीता, भरत और शत्रुघन उदासीन थे। जनक और वशिष्ट और सुमंत साक्षी मात्र थे। इन पर इन देवताओं का मन्त्र नहीं चल सका। रानियों में राम का प्रेम तो था, उनकी दासियाँ देव तंत्र के अधीन आगई और उनसे कहने लगीं, "राम को अयोध्या लेचलो। न जांय तो इन्हें पिता के वचन पालन करने दो।"

सबने इस मंत्र को स्वीकार कर लिया, मूहा मुँह इसी प्रकार की बातें होने लगीं।

राम तो पहले से ही चाहते थे कि जितनी जल्द यह यहाँ से चले जाँय अच्छा है, लेकिन कहते हुए इन्हें संकोच था। इन्द्र ने उनके काम को सरल बना दिया।

सातवाँ समुल्लास

भरत का अयोध्या की तरफ़ लौट जाना

चित्रकूट के चित्रों की चित्रकारी कोई कहाँ तक और कब तक देखे। उसके लिये थोड़ा सा समय नियत है। स्वप्न अवस्था के दृश्य अस्थाई नहीं होते। इसके ऊपर और नीचे जाग्रत और सुषुप्ति भी तो रहते हैं—देख लिया तो देख लिया।

मन का खेल विचित्र है, चित्रकूट समुदाय।
देखतदेखत मिट गया, देख के गया भुलाय॥
मन की गति अति अटपटी, खेल खेल का खेल।
खेल खेल खेले कोई, खेल से मन को मेल॥
साधू साधन में रहे, खेले चित्र के खेल।
चित्रकूट चिंता हरन, वैतरनी से मेल॥

कई दिन बीत गये, कोल, करात, भील और गोंडों की जंगली पहुनाई से सब का मन उकता गया। स्वप्न में भोग की तृप्ति नहीं होती। जब कोई प्रेत सूक्ष्म मँडल के फल से तृप्त नहीं होता तब किसी जीवित प्राणी के सर पर खेलने आता है। इसे दक्षिण देश या द्रवड़ भाषामें 'अंग भरना' कहते हैं। और इस दशा में वह उन पदार्थों को मांगता है जिनकी उसे प्रबल रुचि होती है। तुमने देखा होगा स्वप्न में सैकड़ों लोटे पानी पीगये प्यास नहीं बुझी। प्यास तो तब ही बुझेगी जब जाग्रत का पानी पीओगे।

साधन अवस्था चित्रकूट में ही कीजाती है इसके पश्चात चाहे जाग्रत में चाहे सुषुप्ति में चले जाओ।

राम ने कहा "यहां रहते बहुत दिन होगये, अवध सूना पड़ा है। भरत रहस्य को समझ गये, अब जल्द लौट जाना चाहिये।"

किसी ने पूछा "भरत ने क्या समझा?"

राम ने उत्तर दिया "भरत मेरे रूप हैं, मुझमें और भरत में भेद नहीं है। मैं भरत का हूं और भरत मेरे हैं। भरत संस्कृत धातु 'भरी (पालन, पोशण)' से बना है उनका काम प्रजा के पालन पोशण का है। वह इस अवध (शरीर) के राजा हैं। दशरथ ने यह काम उन्हें सौंपा है। मैं रमता राम हूं। मुझे रमने और रमण करने का काम दिया गया है। भरत इसे अच्छे प्रकार समझ गये हैं और उन्हें कुछ समझाना बुझाना नहीं है। मै चौदह वर्ष वन में रहकर फिर अवध में भरत से आकर मिलूँगा और वह मेरे चौदह अस्थलों (५ कर्मेन्द्रियां, ५ ज्ञानेन्द्रियां और ४ अंत: करण के रमने में अब बाधक न होंगे।"

वशिष्ठ ने पूछा, "भरत! क्या तुमको कुछ कहना है?"

भरत ने उत्तर दिया:—

मैं सेवक हूँ राम का स्वामी मेरे राम।
सेवकाई का धर्म है सेवक हूँ नि:काम॥
अपना मुझ में कुछ नहीं नहीं शरीर नहीं मन।
सेवक सेवा में रहे यही है युक्ति जतन॥
मैंने समझा है मेरे देह सीस और तन।
अब तो चरण में सब झुके राम का देख बदन॥
राम हैं मेरे साँईया मैं हूँ राम का दास।
राम नाम चित में बसा राम से पास सुपास॥
एक राम को जानकर सब का कर दिया त्याग।
सब में व्यापक राम हैं खुले हमारे भाग॥

वशिष्ठ, "तो अब चित्रकूट से कूच करना चाहिये, मनोरथ सिद्ध होगया।"

राम के पास कुछ देने को नहीं था, आये थे पैदल कोल किरात ने एक जोड़ा लकड़ी का खड़ाऊँ भैंट किया था वह भरत को दिया। भरत ने उसे अपने सिर पर रख लिया।

राम लक्ष्मण और सीता बारी बारी पर सब से मिले, जनक वशिष्ठ, सुमंत सब को प्रणाम किया और फिर पहिले के समान सारे पुरवासियों से एक-एक करके मिले। इन्द्र ताक में था कि कहीं इनमें फिर राम का प्रेम न आजाय। वह अपने उच्चाटन मंत्र का जाप करता रहा।

सीता ने तीनों सासों से मिल कर प्रार्थना की 'माताओ! दैव प्रबल है सेवा के समय वनवास है मेरा अपराध क्षमा हो।" सबने उसे आशीर्वाद दिया।

सीता फिर जनक का पांव पकड़ कर रो पड़ी, जनक ने उसे देखा कि वह चित्रकूट के पर्वत पर तपस्या की चित्र बनी हुई है। समझाया बुझाया स्त्री का धर्म बताया।

और सब राम से विदा होकर उलटे पाँव वहां से सिधारे।

भरत अयोध्या के समीप यमुना गंगा शृंगपुर पार करके आये। तपस्वियों का भेष बनाया। सिर पर जटा जूट धारण किया सिंघासन पर राम का खड़ाऊँ रक्खा। आप उसके नीचे बैठ कर राज का काम-काज करने लगे। और उजड़ी हुई अयोध्या फिर बस गई। भरत ने अयोध्या को अपनी राजधानी नहीं बनाई। वह नँदी गाँव में रहकर राज धर्म का पालन करते थे और योगियों के भेष मे केवल कंदमूल फल के आहार पर रहते थे।

चलते समय राम ने कहा था "मैं १४ वर्ष बिता कर अयोध्या में आजाऊँगा" वह इसी आशा पर उनके लोटने के दिन गिना करते थे।

*** महा रामायण का दूसरा अवधखण्ड समाप्त ***

प्रथम भाग

पहिला समुल्लास।

जयन्त का राम की परीक्षा करना

संस्कृत भाषा में 'वन' शब्द का अर्थ है सहायता करना, पूजना, थाह लेना, सेवा करना, व्योहार और व्योपार करना।

राम बन को किस अभिप्राय से जारहे हैं? बन जंगल को कहते हैं। अब उनके चरित्र मे तुम देखो कि राम इस मंतव्य से बन को जारहे हैं या आज कल के दिखाने वाले साधुओं के समान अपना समय आलस्य और मूढ़ता में बिताने के लिये.! तुम चाहो तो संस्कृत कोषों को ... परिभाषा में अपना सतोष कर सक्ते हो और फि... अवगुण सम... उनके कर्म और कर्तव्यों, बचन ... भी दृष्टि रक्खो। आप ही समझ जाओगे कि सच्चे मनुष्य का जीवन काम के निमित्त बना है और राम का कर्तव्य जगत में सबसे उच्चतर उदाहरण तुम्हें दिखाता है।

राम बन को जारहे हैं। चित्रकूट के मानसिक चित्रों के चरित्रों को देख लिया। अब उनको बन का अभ्यास करना है।

बन साधान साधू नहीं, बन बन के नहीं बन।
सत संगत के पीछे होवै साधन और जतन ॥१
साध साध के साध लो, साधन के सब काम।
साधन में अनुभव रहै, साधन में विश्राम ॥२
साधू जो साधन करे, बन साधन नहीं साध।
जो कोई साधन करे, उसका मता अगाध ॥३

यह दो ... साधन करने वालों की परीक्षा होती है। यह ...तिक नियम है। जब कोई साधन में लगता है प्रकृति की दिव्य शक्तियाँ उसकी जाँच-परताल आती हैं। उनसे घबराना नहीं चाहिये। यह महा आवश्यक है। यह साधन प्रकृति का पहिला नियम है और उसी को तप कहते हैं। तुमको बता दिया गया है कि सत जीवन है और उस सत का दूसरा चरण तप है। उसके पश्चात् धीरे धीरे व्योहार की बारी आती है। ऋषियों ने उसकी सात भूमिकाएँ ठहराई हैं जिनका चित्र नीचे देखोः—

	सीधा चित्र				उलटा चित्र
१	ओ३म् सत्यम्	१	सत	१	ओ३म् भूः
२	ओ३म् तपः	२	तप	२	ओ३म् भुवः
३	ओ३म् जनः	३	जन	३	ओ३म् स्वः
४	ओ३म् महः	४	मह	४	ओ३म् महः
५	ओ३म् स्वः	५	स्वः	५	ओ३म् जनः
६	ओ३म् भुवः	६	भुवः	६	ओ३म् तपः
७	ओ३म् भूः	७	भूः	७	ओ३म् सत्यम्
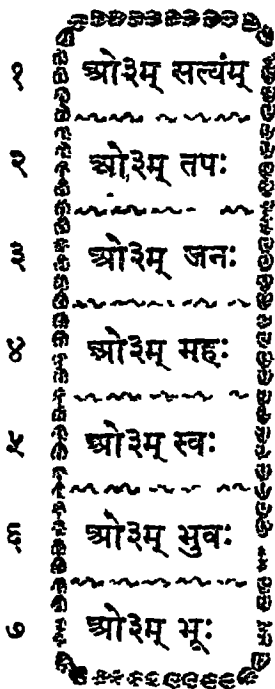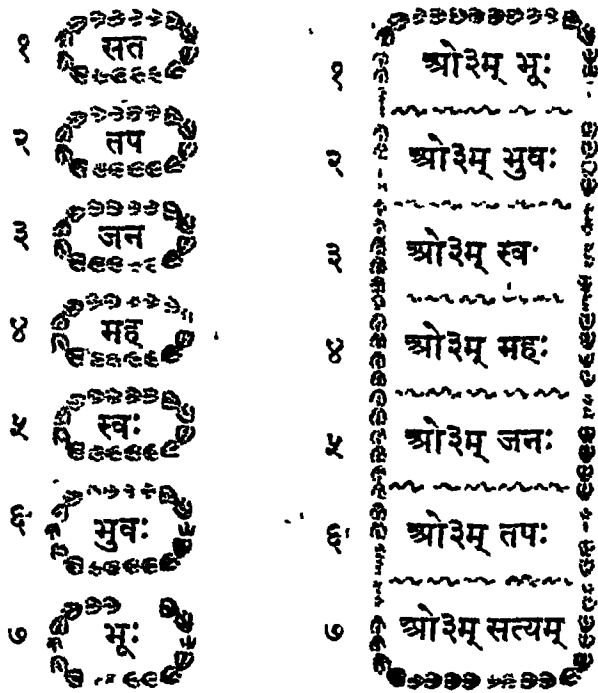
यह साधना की सात भूमिकाएँ हैं। इनको तुम काण्ड कहो, खण्ड कहो, या मानस चरित रामायण के मान-सरोवर के सप्त सोपान कहो, शब्दों में अड़ना निष्फल है।

आरण्य खंड साधन की पहिली सीढ़ी है, अवधखंड दूसरी और यह वनखंड तीसरी सीढ़ी है। आगे औरों का वर्णन आयेगा।

राम ने किस साधन को चित्त दिया, यह रहस्य तुम्हें बताना है। बताने को तो हम पहिले ही से तुम्हें बताते चले आरहे हैं तुम न समझे तो हम क्या करें! हम कोई बात छिपाते नहीं हैं! अधिकार और संस्कार की बात है। [illegible] फिर बताते हैं। साधना की जड़ और साधन का मूल कारण सीता सती है। उसी के साथ से जीवन का आरम्भ होता है और अन्त तक उसीका उद्योग किया जाता है।

जब नहीं सत्ता तो सत का ज्ञान क्या।
जब न सत्ता हो तो फिर अनुमान क्या॥
सत का निर्णय है उसीके आसरे।
अब नहीं यह सम परे हो या वरे॥

ओ३म् पद का ज्ञान देती है उमा।
राम पद का ज्ञान देती है उमा॥
यह सहायक है तो सब कुछ साथ है।
जब नहीं है फिर कहो क्या हाथ है॥
सत के सत्ता रहती है आधार पर।
धर है यह और समझना उसको अधर॥

जनक ने हल चलाया। हल जोतने से सी[illegible] (लकीर) प्रकट हुई। रामने विश्वामित्र (जगत्प्रे[illegible] के सहारे भ्रू-मध्य के अन्तर्गत शिव (कल्याण[illegible] का धनुष तोड़ा सीता से विवाह हुआ और [illegible] हुई सीता शरीर (दशरथ के घरमें) आई।

[illegible] को अपनी [illegible] सीता (लकीर) शुषुम्ना नाड़ी है जो [illegible] में रहकर राज धर्म के बीच में है और राम उसी [illegible] योगियों के भेष में, सिंगारने के लिये बन में आये। [illegible] का अर्थ तुमको बता दिया गया है। साधन उसी शुषुम्ना नाड़ी में केवल उसी शुषुम्ना का किया जाता है। यह मूलाधार में कुण्डल मारकर बैठी हुई कुण्डलनी शक्ति है जो साधन करने से उभर कर और उठ कर आज्ञा चक्र (भ्रूमध्य) के ऊपर आकर सहस्रार तक पहुंचा देती है और तब स्वरूप का सच्चा ज्ञान प्राप्त होता है।

अब कथा प्रसंग की तरफ़ चित्त दो।

राम सीता के साथ स्फटिक शिला पर बैठे हुए अनेक प्रकार के फूल लाये। आभूषण बनाया सीता के अंग अंग को संवारा, सिंगारा और सजाया। और उसकी सुन्दरता की छबि को देखकर समाधित होगये। मूर्छा आगई। बेसुध होगये। लेट गये। सीता ने उनका सिर अपनी गोद में रख लिया। गर्मी थी, धूप चटकी हुई थी और वह पत्तों का पंखा झलने लगी।

लक्ष्मण नहीं थे। जंगल से फल-फूल, पत्ते लेने गये हुए थे। सीता अकेली थी। इन्द्र के लड़के जयन्त ने देखा, सोचा, "यह राम ब्रह्म का अवतार कहलाता है और देवता और पृथ्वी की रक्षा के लिये प्रकट हुआ है। सीता उसकी शक्ति है। अकेली है। मैं चल कर इसकी परीक्षा करूं कि यह पराक्रमी और पुरुषार्थी है या यों ही देवता बिना समझे-बूझे उसके अभिमानी होरहे हैं।" जयन्त ने कौवे का भेष बनाया। सीता के सन्निकट आया और सीता की छाती में चोंच मारकर भागने ही को था कि लहू की धार राम के मुँह पर पड़ी। जयन्त ने अपनी ठोंठ से सीता को घा[illegible] दिया था। रा[illegible]

सती की छाती [illegible] शब्द जो (विजय करने [illegible] जीतने) से बना है। साधन अवस्था में मन की यह विजय करने वाली शक्ति अहंकार रूप में प्रगट हो जाती है। इसे एकाक्षी बनाना पड़ता है जिससे यह दो न देखे और एकाग्र करदे। योग की परिभाषा मे इसे प्रमाद कहते हैं। यह बड़ा अवगुण समझा जाता है।

[illegible]म्मुलास

[illegible] आदि से मिलना।

[illegible] सोचना) है। यही प्राणी जीवों का आदर्श है जो [illegible] बढ़ते और सोचते हैं उनको जीवन का भोग प्राप्त [illegible] रहता है। यह सार है। सार में दो बातें मुख्य हैं

अपने निज रूप में बाप के पास सहायता माँगने गया। इन्द्र ने कहा जा दूर हो। मैं राम के विरोधी की रक्षा नहीं कर सकता। चींटी में क्या सामर्थ्य है जो समुद्र की थाह ले सके। जा, जैसा किया वैसा तेरे आगे आया। वह ब्रह्मा और शिव के पास भी गया। किसी ने न आसन दिया न पास विठाया। बात तक नहीं पूछी। राम के विद्रोही की यही दशा होती है। माँ-बाप के मारने वाला कब सुखी हुआ है। उसके लिये तो पानी भी आग के समान जलन उत्पन्न करता है। बैतरणी नदी तक उसके डुबा देने का यत्न करने लग जाती है। नारद ने उसकी दशा देखी। दया आई। अभी राम के पास जा। उनकी शरण ले। वह दयालु हैं। शरण में आये हुये की संभाल करते हैं। वह राम के पास पहुंचा चरणों में गिरा। त्राहि माम! त्राहि माम! बचाइये मैंने मूर्खता की। अपनी करनी का फल पा चुका। आपके अतिरिक्त मेरा रक्षक जगत में कोई भी नहीं है। राम ने कहा यह ब्रह्म सर अपना काम किये बिना नहीं रहता और उन्होंने उसकी एक आँख फोड़कर जीवन प्रदान किया और अभय करदिया।

[illegible]स शरीर में न आवे।

नोट:—जभ्यां (नहो) और हार (थकावट) और सूक्ष्म रुचि दायक और जल्द पचने वाला हो (न कम हो न अधिक) सीधा साधा भोजन! और स्त्री अपने मन वचन और कर्म को प्रेम मय बनाकर उसे पकाये। पकाते समय पकाने वाले के मन मे द्वेष और ईर्षा नाम के लिये भी न हो। क्योकि ऐ देवी! जैसा अहार पेट के भीतर जाता है खाने वाले का मन भी उसी प्रकार का बनता है। भोजन मे चिकनाई का अंश थोड़ा हो। अधिक होगा तो उससे [पे]ट मे हानिकारक कीड़े उत्पन्न होगे। और [श]रीर रोगी हो जायगा। चिकने चुपड़े भोजन [क]ो अहार नही बल्कि सहार (हराने वाला हार समान) समझना चाहिये। खाने का समय

एक तत् दूसरा त्वम । तत् (वह) त्वम (तू) है। इन दोनों को तत्व कहते हैं। ब्रह्म तत्व तत और जीव तत्व त्वम है। वह और तू (तत और त्वम) यही तत्व है। इसके अतिरिक्त और कुछ तत्व नहीं है। जीव के सामने ब्रह्म (ब्रह और मन) के बढ़ने और और सोचने का आदर्श दृष्टि के सामने रहता है।

इस पढ़ने और सोचने का सहायक आहार होता है। बिना आहार के पढ़ना और सोचना एक प्रकार से असम्भव भी है मनुष्य की जीवन रक्षा के लिये आहार का चिन्तन हुआ करता है।

चित्रकूट में राम के सहायक किरात कोल हैं। यह हर जगह नहीं मिलते। तब राम ने अत्रेय ऋषी की खोज की, और दोनों भाई सीता के साथ चल खड़े हुये। और ऋषी की जगह पर पहुंचे। इनको देख कर वह बहुत प्रसन्न हुये। उठे। राम ने नमस्कार किया। दोनों गले मिले। इस ऋषि की धर्मपत्नी का नाम अनुसुईया था वह सीता से मिलीं।

ऋषि ने राम की स्तुति की:—

राम ! तुम इस जगत के आधार हो।
तुम ही त्रिलोकी में सबके सार हो ॥१
[illegible] दूसरी [illegible] हो तुम।
अर्थ हो और अर्थ के जीवन हो तुम ॥२
मोह हो तुम को कोई बंधन नहीं।
काम हो तुम को कोई साधन नहीं ॥३
सब के घट के वासी सब में व्याप्त तुम।
भक्त जन को रात दिन हो प्राप्त तुम ॥४
तुमको कुछ दुर्लभ नहीं, दुर्लभ हो आप।
है तुम्हारी माया सब की तोल माप ॥५
ईश हो जगदीश जग नायक हो तुम।
शूर और वीरों के प्रभु सहायक हो तुम ॥६
आगये इस जगत के कल्याण को।
ब्रह्म के विश्व लाया आकर प्राण को ॥७
मंगलम् मंगलमम् मंगल ध्वनम्।
मंगलम् मंगल सदन मंगल धयम् ॥८
सेतु हो संसार सागर के लिये।
इष्ट पद पामर के नागर के लिये ॥९
भक्ति मुक्ति योग युक्ती आप तुम।
रिद्धि सिद्धि निद्धि शक्ति आप तुम ॥१०
तुम हो दाता तुम विधाता तुम दयाल।
तुम हो रक्षक तुम सहायक तुम कृपाल ॥११
भक्ति दीजे नाम की नामी हों हम।
सेवा पूजा करके शुभ कामी हों हम। ११

राम अत्रेय से मिलकर बहुत प्रसन्न हुये।

है। आगे औरों का वर्णन आयगा।

राम ने किस साधन को चित्त दिया, [illegible] समुल्लास
रहस्य तुम्हें बताना है। बताने को तो हम पहिले ही से तुम्हें बताते चले आरहे हैं तुम न सम[illegible] तो हम क्या करें। हम कोई बात छिपाने न[illegible] हां ! अधिकार और संस्कार की बात है। [illegible] फिर बताते हैं। साधना की जड़ और साध[illegible] का मूल कारण सीता सती है। उसी के साथ से जीवन का आरम्भ होता है और अन्त तक उसीका उद्योग किया जाता है।

जब नहीं सत्ता तो सत का ज्ञान क्या।
जब न सत्ता हो तो फिर अनुमान क्या॥
सत का निर्णय है उन्हीं के आसरे।
अब नहीं वह सत परे हो या वरे॥

[illegible]नी सयानी और बुद्धिमानी है। तुमको उस[illegible] तुम सब कुछ जानती हो। तुम्हारा [illegible]रि में हुआ जहां सभ्यता है। मैं वन की [र]हने वाली जंगली स्त्री हूं। तुमने उपदेश की [इ]च्छा की मेरा सन्मान किया। इसलिये तुम्हारी [इ]च्छानुसार मैं मुँह खोलती हूं।

"स्त्री जाति का केवल एक धर्म है और [व]ह पति की सेवा है। पति चाहे अयोग्य हो, [नि]र्बल हो, काम काज न कर सक्ता हो, स्त्री को [चा]हिये उसका कभी अपमान न करे। नहीं तो वह

नर्कगामी होगी। ए सोता! पुरुष उसे कहते हैं जो पुरु--शरीर -- देह और काया में रहे। (संस्कृत पुर—शरीर और अस—रहना) और स्त्री उसे कहते हैं जो स्त्री (परदा) हो। पुरुष के औगुन को ढके। उसके यश को फैलावे। उसकी संतति को बढ़ावे। उसे आहार दे। उसे वस्त्र पहनाये। इस करतव से वह उसकी अन्नदाता हो। उसे बल और पौरुष दे। अच्छी २ और मीठी २ बातें करके उसके साहस और पराक्रम की वृद्धि करे और उसके लिये बल दाता बने। वह उसे बुद्धि दे। सुमार्ग दिखावे। बुद्धिमान बनाये और वह अपने पुरुष के लिये बुद्धि दाता समझी जाय।

यह अच्छी स्त्रियों के तीन धर्म हैं। पुरुप को आहार या अन्न देकर बलवान करने से वह लक्ष्मी, बुद्धि देने से वह सरस्वती, और पराक्रमी तेजस्वी और पुर्षार्थी बनाने से वह पार्वती कहलाती है। एक स्त्री के यह तीन रूप हैं जो उसके तीन प्रकार के करतब की दृष्टि से हैं।

संसार में चार प्रकार की पतिव्रत धारण करने वाली स्त्रियां होती हैं। पहली उत्तम, जिसके लिये कि संसार में एक पति है और इसके अतिरिक्त और सब जीव-मात्र हैं, पति कोई भी नहीं है। दूसरे मध्यम, जो पति को पति समझती हैं और दूसरे पुरुष उसके लिये भाई, चाचा, ताऊ के समान हैं। तीसरे कनिष्ट स्त्री वह है जो पति को पति तो समझती है लेकिन और पुरुप भी पुरुप होते हैं। वह केवल भय वश और लाज वश स्त्री धर्म का पालन करती हैं। चौथी महानीच स्त्री वह है जो ब्याही तो गई, समाज के सामने पति का व्रत धारण तो करलिया लेकिन उसने पति को अपना इष्ट नहीं धारण किया"।

"ऐ सीता! स्त्री का कर्तव्य मन वचन कर्म से पुरुष की सेवा है। जो जीते जी इस धर्म का निबाह और पालन करती है। उसे और कुछ करने धरने की आवश्यक्ता नहीं है। उसे लोक में यश [illegible] प्रका[illegible] महा आनन्द है और उसका दोनों [illegible] कल्याण और सम्मान है।"

पतिव्रता को सुख घना, पति में प्रेम प्रभाव।
सुख सुन्दर की सुन्दरी, सुमुखि सुचाल सुभाव॥
पतिव्रता मैली भली, काली कुचल कुरूप।
पतिव्रता के रूप पर, वारूं कोई सरूप॥
पतिव्रता मैली भली, मले कांच की पोत।
सब सखियों में यों दिपे, ज्यों रवि शशि की जोत।
पतिव्रता के एक पति, सहित विचार विवेक।
भीतर बाहर सम दशा, वही एक का एक॥

"ऐ सीता! पति सेवा योग है। पति सेवा अमूल्य भक्ति है। और पति सेवा ही सच्चा ज्ञान है। जिसे यह प्राप्त है वह सुभागा स्त्री है। और जिसे यह प्राप्त नहीं है उससे अभागी स्त्री संसार मे कोई नही है।"

सीता ने पूछा—"माई! स्त्री किस प्रकार का भोजन खिलाकर पति को प्रसन्न करे?"

सरल स्वभाव वाली सीता के इस प्रश्न पर भोली भाली अनुसुइया हँसी। "आहार इस प्रकार का हो जिससे हार या थकावट या निर्बलता का रोग इस शरीर मे न आवे। संस्कृत शब्द आ (नहो) और हार (थकावट) अहार सूक्ष्म रुचि दायक और जल्द पचने वाला हो (न कम हो न अधिक) सीधा साधा भोजन! और स्त्री अपने मन वचन और कर्म को प्रेम मय बनाकर उसे पकाये। पकाते समय पकाने वाले के मन मे द्वेष और ईर्षा नाम के लिये भी न हो। क्योकि ऐ देवी! जैसा अहार पेट के भीतर जाता है खाने वाले का मन भी उसी प्रकार का बनता है। भोजन में चिकनाई का अंश थोड़ा हो। अधिक होगा तो उससे पेट मे हानिकारक कीड़े उत्पन्न होंगे। और शरीर रोगी हो जायगा। चिकने चुपड़े भोजन को अहार नहीं बल्कि सहार (हराने वाला हार के समान) समझना चाहिये। खाने का समय

... उत्तेजन करती ... का भोजन जठराग्नि को मंद कर देता है। षट् रस भोजन हो तो क्या कहना है। नहीं तो सीधा सादा! और स्त्री सामने बैठकर पति को भोजन करावे। भोजन, ध्यान, स्वाध्याय एकान्त में हो तो अच्छा है। दूसरों की दृष्टि पड़ने से खाने में रोग के कीड़े बहुत जल्द पड़ जाते हैं। माता, मोर, कुत्ता और प्रेम वाली स्त्री की दृष्टि अहार को अहार बनादेती है, और खाने वाला रोगी कम होता है। अहार ब्योहार निद्रा और साधन सब का युक्ति के आधीन रखना लाभदायक होता है।"

सीता--'माई! हम लोग वन में है। षटरस भोजन का प्रबन्ध कठिन है।"

अनुसुइया—"कुछ कठिन नहीं है वन में सब प्रकार के मूल, फल, फूल, पत्ते मिलते हैं। सब रसों का सेवन करना लाभकारी होता है। और जिस रस की शरीर में न्यूनता रहती है। उसकी पूर्ति होती रहती है। षटरस यह है—मीठा, सलोना, कसैला, चरपरा, कड़वा और निरस। बन में इनकी कमी नहीं है। और अहार भी छः प्रकार किया जाता है। पीना, चवाना, चूसना, चूस कर या तो पेट के भीतर पहुंचाना या रस लेकर मीठी को बाहर थूक देना, चखना और चाटना। और पाक विद्या भी छः प्रकार की होती है जिस घर की स्त्रियां जो पकवान बनाती हैं जानती हैं।

सीता—यह अहार केवल छः प्रकार का ही क्यो होता है? मैं तो हजारो प्रकार का बना सक्ती हूं।

अनुसुइया हंसी—"देवी! तूने अहार का विषय छोड़कर ज्ञान और सृष्टिक्रम प्रकरण की भूमिका में आगई। हजारों क्या तू चाहे तो लाखों करोड़ों और अनगिनती पकवान बना सक्ती है। यह सब मिलावट का प्रसंग है। सामिग्री को अधिक और न्यून करके मिलादेने से स्त्री चाहे तो नाना प्रकार के भोजन बना सक्ती है। यह कोई कठिन बात नहीं है।"

"मैंने छः प्रकार के भोजन का वर्णन इसलिये किया कि सृष्टि मे सात तत्व है। पहला तत्व अधार मात्र है। शेष छः मे छः प्रकार की धारें रहती है। और इन धारो से सृष्टि क्रम का प्रवन्ध रहता है। और यह अहार का विषय भी उसके अंतरगत है।"

सीता—"मै इन बातो की समझ नहीं रखती। अधिकारी समझती हो तो बतादो। नहीं समझती तो जाने दो।"

अनुसुइया हँसी—"सीता और अधिकार का प्रश्न! देवी! तू जगत की माता है और आदि शक्ति है। सारा जगत तेरे आधार है। मेरे पति ऋषि जी ने एक दिन मुझसे कहा कि सीता (लकीर) शुशुम्ना नाड़ी है, जिसके आधार पर यह जगत है और सारे लोक लोकान्तर इसी मे पिरोये हुये है। और इसी नाड़ी के अंतरगत वह छः तत्व छः रस आदि रहते हैं। उन सातो तत्वो का वर्णन ऋषियों ने इस प्रकार किया किया है:—

यह छः रस इन्हीं के आधार पर हैं।

सीता—"माई! तूने मुझ पर बड़ा उपकार किया। मुझे थोड़े में इस सृष्टिक्रम के नियम को समझा दिया। मैं कृत्य कृत्य हो गई। अब यह अभिलाषा है कि जिस प्रकार तू अपने पति का पालन पोषण और आहार व्योहार करती है, उसका संक्षिप्त [illegible] और लाभ उठाऊं।"

अनुसुइया खिल खिला कर हँस पड़ी। "देवी तू जान बूझ कर यह प्रश्न करती है। अच्छा! तेरी इच्छा पूरण हो! कान लगा कर मेरा वृतान्तसुन":—

चौथा समुल्लास

अनुसुइया की कथा

अनुसुइया बोली—"ऐ सती! तू सती है। तेरी रुचि सत की तरफ है। तू सीता है। और सुशुम्ना नाड़ी का सम्बन्ध सत तत्व से है। इसलिये मैं तुझे सती कहती हूँ। और जगत मे तू इसी सीता सती के नाम से प्रसिद्ध रहेगी। मैं अत्रेय ऋषि की धर्मपत्नी हूं। कुरदम मुनि की लड़की हूं। अत्रेय शब्द संकृत धातु 'आव' खाने से निकला है। मेरे पति ने अहार के नियमानुकूल रखने ही को सिद्धि शक्तिमान रक्खा है और वह सच्ची बात है। जो मनुष्य युक्ति के साथ अहार करता है वह इसी अहार के प्रताप से सिद्ध हो जाता है। अन्न (नाज-संस्कृत आव-खाना) औषधी है। सिद्धि शक्ति की प्राप्ति कई प्रकार से होती है। मंत्र से, योग से, नाम से, औषधि से, तप से और जप या बुद्धि के एकाग्र करने से। इस प्रकार अन्न मय जगत में जो युक्ति के साथ अन्न खाते हैं, वह भी सिद्ध पुरुष हो जाते है। मेरा नाम अनुसुइया यो पड़ा कि मै इस ऋषि की व्रती हूं। और उसके खाने पीने के प्रबन्ध मे लगी रहती हूं। और तरफ मेरा चित्त डांवाडोल नही होता।

मेरे पति को तप करने की इच्छा हुई। वह गुफा मे बंद होगये। मेरा काम अन्न जल लाने का है। मैं जंगल से कंद मूल खोद लाती और पहाड़ के झरनों से पानी भर लाती और समय पर पति के आहार की सेवा कर देती। देश में काल पड़ गया। पानी सूख गया और घास फूंस सब झुलस कर जल गये। अन्न-जल दोनों का मिलना कठिन होगया। मैं दूर-दूर पहाड़ों में खोजने जाती और बड़ी कठिनाई से यह सेवा करती थी। फिर तो यह दशा होगई कि चाहे मैं कितनी ही दूर जाती कही अन्न-जल का पता न लगता था। ऋषि तो गुफा मे रहते थे। वह क्या जानते थे कि देश में काल आया हुआ है और मैंने उन्हे सूचित करना उचित भी नहीं समझा।

एक दिन मैं जड़ी बूटी और पानी की खोज में दस बारह मील तक गई। बड़ा परिश्रम किया। जड़ी तो कुछ हाथ लग गई। पानी नही मिला। एक जगह तोबा रखकर रोने लगी। एक ऋषि आया। मेरे रूप को देखकर मोहित हुआ क्योकि लोग मुझे बहुत सुन्दर समझते हैं। मैंने उसकी तरफ़ से आँख फेर ली। कहने लगा जहाँ तेरे पति की गुफ़ा है उसी के नीचे पानी भरा है। तू यदि पतिव्रता स्त्री है तो पृथ्वी को खोद, पानी निकल आयेगा। मैं जानती थी कि मैं सच्ची पतिव्रता स्त्री हूं। उसकी बात का विश्वास किया। कुटी की तरफ लौटी। पृथ्वी को खोदा। पानी की सोती निकली और उसकी धार बह निकली और यह कुछ दिनो पीछे जब ऋषि का अनुष्ठान समय बीत गया और उन्होने जाना कि मै बड़े प्रयत्न और परिश्रम से उनके खाने पीने का प्रबन्ध करती थी तो उन्हें शोक हुआ। लेकिन नदी के प्रवाह को देखकर बहुत प्रसन्न

होगये। और [illegible] परिणाम समझने लगे। अकाल और [illegible] पानी बरसा। खेती हरी-भरी होगई। और वन, पहाड़-पर्वतो पर हरियाली दौड़ गई।

उस ऋषि ने जो मेरी परीक्षा करने आया था सारे आकाश मंडल की देवियो को जा जाकर सूचित किया कि जगत में केवल एक पतिव्रता स्त्री है और वह अनुसुइया है। इन देवियो को डाह उत्पन्न हुई। वह कहने लगीं कि "हम भी पतिव्रता स्त्रियाँ हैं।" वह पतिव्रता तो है या होगी लेकिन सम्भव है कि उन्हे सच्चा ज्ञान न हो। नारद ने फौलाद के चने बनाये और इन देवियो से जाकर कहा कि "जो कोई इन्हे गलादे वह पतिव्रता और जो न गला सके वह कुलटा।" देवियो ने चाहा कि वह चने गल जायं लेकिन वह न गल सके। तब नारद मेरे पास आये। मुझसे भी वही बात कही। मैं बोली, "यह कौनसी कठिन बात है। मेरे पति के कमण्डल मे जो जठराग्नि रहती है वह सबको भस्म कर सकती है।" मैंने उनके चने पर कमण्डल का जल छिड़क दिया। वह गल गये। नारद को आश्चर्य हुआ। वह देवियो के पास गले हुये चने ले गये। उन्हे दिखाया। सबने उन को चबाया। अब तो उन्हे और भी डाह हुई। ब्रह्मा, विष्णु, महेश संसार के त्रिदेवो को मेरे पतिव्रत भंग करने के लिये उकसाया। वह मेरे पति की कुटी मे आये। मै अकेली थी। अतिथि सम्मान के नियमानुसार उनको भोजन कराना चाहा। वह बोले, "नंगी होकर खाना परसो तो हम स्वीकार करेंगे।" उनकी बात बच्चो जैसी थी, मैंने स्वीकार कर लिया। पति के कमण्डल का जल उन पर छिड़क दिया और वह कुटी में रहने और बाल लीला करने लगे। देवियाँ घबराई और मेरे पास आई। मैंने उन्हे दुखी देख कर फिर कमण्डल का पानी छिड़का। वह फिर पुरुषत्व बुद्धि को प्राप्त होगये। और प्रसन्न होकर तीन पुत्रो का वरदान दिया। इससे पहले मैं पुत्रवती नही थी मेरे यह लड़के चंद्र, दत्तात्रेय और दुर्वासा कहलाते हैं।

सीता हंसीं, "तुम्हारे पति के कमण्डल मे आश्चर्यजनक प्रभाव है ?"

अनुसुइया बोली—"ऐ सीता! यह जगत मनोराज है। यहाँ जो कुछ है सब मानसिक है। अत्रेय ऋषि का कमण्डल मेरा नहीं है। उसमें मनन करने का प्रभावशाली जल भरा रहता है। जिसका मन निश्चल है वह जिस भाव से जो विचार का जल किसी पर छिड़क देगा वह उसके वशीभूत होजायगा। ऐ सती! इस मन की शक्ति से आकाश, जल, पृथ्वी, अग्नि और वायु उत्पन्न होते है। यह सब में श्रेष्ठ और प्रबल है। मनुष्य समझता है कि आकाश के अवकाश मे हम निवास करते हैं लेकिन यह उस की समझ मे नही आता कि इन तत्वो की उत्पत्ति मन ही से है। मानसिक जगत का राज्य यह मन ही है। तू राम के साथ वन मे आई है। यहां इस मन का खेल तेरी समझ मे आयेगा।

मन गोबिन्द मन गोरखा, मन ही औगढ़ जान।
जो मन राखे जतन से, करता पुरुष महान ॥ १ ॥
मन पानी मन पारथी, मन वायु मन आग।
जैसो मन से ऊपजे, तैसे ही पावे भाग ॥ २ ॥
मन अज्ञानी मूढ़ है, मन है चतुर सुजान।
मन चचल मन निश्चला, मन को सब कुछ जान ॥३
मन मत सब संसार है, गुरु मत कोई साध।
जो पावे गुरु गम गती, उसका मता अगाध ॥४
कबहूं मन गगना चढ़े, कबहूँ गिरे पताल।
कबहूँ मन उन मनु लगे, कबहू जावे चाल ॥५

ऐ सीता! पति के प्रेम मे मन को दृढ़ कर रख और तब तू इस प्रसंग को समझेगी। योगी मन की योगाग्नि से जिसे चाहे भस्म कर सकता है। फौलाद का चना क्या होता है? ध्यानी अपने मानसिक ध्यान से ईश्वर तक को वशीभूत कर सक्ता है। देवी देवता उसके आगे

क्या होते हैं। हां! यह बात साधारण मनुष्य नहीं समझ सकते।

सीता अनुसुइया के पांव पड़ी। राम ने भी ऋषि के चरण पकड़ कर विदा माँगी। ऋषि ने कहा धन्य तुम! धन्य तुम्हारी लीला! अब तो ऐसा हो कि तुम मेरे मन में निवास करो और अपनी दृढ़ भक्ति प्रदान करो। मैं कैसे कहूँ तुम ... आप हैं निर्गुण प्रकाश ... काम हैं ऋषि राम के चरणों में गिरे ... उसे उठाकर छाती से लगाया और वन यात्रा को चले।

—:o:—

नोटः—इससे पहले समुल्लास में प्रमाद के वशीभूत करने का रहस्य है। इसमें आहार के युक्त नियम पालन का भेद है।

पाँचवा समुल्लास

विराध और मुनियों का समागम

प्रकृति में बाधक और सहायक दोनो प्रकार की वृतियाँ काम करती हैं। जब मनुष्य काम करने लगता है यह दायें बायें आजाती हैं। एक रुकावट का कारण होती है दूसरी वृद्धि के मार्ग की तरफ ढकेलती है। एक को दबाना और दूसरी को उभारना होता है। और फिर दोनों अपने २ ढंग पर काम देने लग जाती हैं। यह कई प्रकार की होती हैं। लेकिन द्वन्द जगत में इनके दो ही रूप माने जाते हैं।

असुर विरोधी वृतियाँ होती हैं और सुर सहायक होती हैं। विरोधी वृति विराध कहलाती है और सहायक वृति के नाम ऋषि और मुनि हैं। ऋषि वह हैं जो केवल मंत्र द्रष्टा होते हैं। इनका धर्म देख-भाल है और मुनि वह हैं जो चुप चाप संभाल में लगे रहते हैं। सारा जगत इन दोनों प्रकार की वृतियों से भरा हुआ है। काम करने वाले विरोध से नहीं घबराते। यह न हो तो क्रिया कारता की प्राप्ति असम्भव हो जाय।

राम, सीता और लक्ष्मण ने पग बढ़ाया। देखा आगे की तरफ से विराध राक्षस के रूप में हाहाकार करता हुआ भयानक बना डराने आरहा है। राम ने ब्रह्मबाण (ब्रह्म-विचार का ज्ञान) उठाया और ऐसा तीर मारा कि रास्ते ही में पतन होगया। वह घायल होकर गिरा और तड़पने लगा। राम को दया आई। उससे कहा—"तू मेरे धाम को चला जा वहाँ तेरी दशा बदल जायगी।" और उसने अपना प्राण त्याग दिया।

—:o:—

यह आगे बढ़े और सरभंग मुनि के आश्रम मे पहुंचे। मुनि ने देखा। प्रसन्न हुये। बोले, "भगवन! मैं शिवजी (कल्याण) के धाम को जा रहा था। सुना, आप आरहे हैं। आप इस कल्याण सागर (शिव) के मान सरोवर के हंस है। दर्श मिला और यह दर्शन मेरे लिये कल्याण-कारी हो गा। मैं साधन में हूं। अब ऐसी कृपा कीजिये; जबतक मैं इस स्थूल शरीर का त्याग न करूं तब तक आपको देखते देखते सूक्ष्म अवस्था लय हो रहूं और मेरा सरभंगपना (संस्कृत 'सर'-चलना और 'भंग'-दरार, टूटना) सुप्त हो जाय।

राम सीता और लक्ष्मण वहां बैठ गये। मुनि ने योगाग्नि से अपने तन को जला दिया। राख की ढेरी बन गई देवताओं ने स्तुति गाईः—

जय राम करुणासिन्ध, दीन दयाल परमानन्द घन।
जय प्रणतपाल कृपाल, अद्भुत रमापति करुणा अयन॥
दर्श पर्श विचार सेवा, ध्यान जप तप में लती।
देखा जो रूप अनूप, निर्गुण सगुण पाई सद्गती॥

वृत्ति है तो ... टूट जाती है। एक भाव एक समान एक दशा और एक अंश में नहीं रहता। ध्यान इस प्रकार हो कि बीच-बीच में उसका तार न टूटे तब यह बहुत सुखदाई प्रतीत होता है।

राम ने उसे सुलभा लिया। इसका यह अलंकार है उसके नाम पर विचार करने से यह समझ में आजायगा।

—:o:—

राम आगे की तरफ बढ़े। बहुत से ऋषि मुनि दर्शन के निमित्ति आये। रास्ते मे हड्डियों का ढेर पड़ा हुआ था। आपने उनसे पूछा, "यह क्या है?" उत्तर मिला, "भगवन्! आप जान बूझकर क्या पूछते है। यह ऋषि मुनि आदि की ठठरियाँ हैं जिन्हे निश्चरो (रात की चर्य्या करने वालों) ने खा लिया। उन्हें दिनचरों (दिन की चर्य्या करने वालों) की सहायता न मिली। यह मरकर मिट्टी में मिल गये।" ... की आँखों में आँसू भर आये। उन्हें ढाढस ... कहा—"मैं इन सारे निशाचरों को ... मार गिराऊँगा। तुम धीरज धरो।"

नोटः—निश्चर महा तामसी होते हैं। उनकी वृतियाँ भी तामसी होती हैं। दिनचरो की वृतियाँ सात्वकी होती हैं। निश्चर और दिनचर का यह भेद है।

अनेक ऋषियो और मुनियों के आश्रम में जा जाकर राम ने अपने दर्शन से उन्हें सुखी किया। फिर अगस्त ऋषि के आश्रम मे आये।

अगस्त के शिष्य सुतीक्षण ने सुना कि राम आये हैं, वह सर के बल दौड़ा। चरणों में आकर गिराः—

किसको थी आशा अयोध्या, त्याग वन में आयेंगे।
राम इस मधुवन को आकर, शोभावान करायेंगे ॥
तारा चमका भाग का, दर्शन मिला आनन्द हुआ।
धन्य महिमा आपकी है, काम सहजे ही बना ॥

... में भक्ती है कहाँ मुझ में, कहाँ है कर्म
... युक्ती से न परिचित, है न मन में गुह का
... में शक्ती है कहा, मुझ में समरथ की गम
... काम और धर्म कब, मुझ में है अर्थ की गम
... दीजे पावनी सुखदायनी, सेवक
... का सुमिरन सदा हो, आपके चरणों का

सुतीक्षण प्रेम में मगन होकर कभी नाचता ... गाता था। फिर आंख, कान, होंट ... गये। न कुछ दिखाई देता था न सुनाई और न उसके मुंह से वाणी निकलती ... क्या हुआ यह अचेत होकर राम के ... ला बन कर धम से गिर पड़ा। यह ... थी? उन्मत्त तो वह था नहीं। न ... आवे का सांग भरा था। बात जो हुई वह थी। ओ३म् भूर भुवः स्वः।

नहीं पृथ्वी का रहा ध्यान उसमें।
नहीं नभ का था अनुमान उसमें ॥
कहाँ अंतरिक्ष कहाँ जगत माया।
किधर धूप और थी किधर छुप के छाया ॥
न तन की बदन की न मन को थी सुध बुध
न श्रवण मनन और कथन की थी सुध बुध

राम मुनि को इस दशा मे देखकर सुखी हुये। वह तो अचेत पृथ्वी पर पड़ा था। इन्हें दया आई। उसके अंतःकरण मस्तिष्क मे सूरज के समान जगमगाते हु प्रगट हुये। प्रकाश तेज और तीक्ष्ण था। ... तेज को सहार न सका। घबरा गया। ... खोल दीं। इधर उधर देखने लगा। यह ... दशा थी? कोई साधक हो तो इसे समझे ओ३म् भूर भुवः स्वः के पश्चात् जो दशा है वह थी और उसे "तत् सवितुर ..." कहते हैं।

पृथ्वी अंतरिक्ष नभ मंडल,
तीनों का नहीं ध्यान ...।
ओ३म् जाप का नाम ...,
नहीं ज्ञान अनुमान ...

सवितुर प्रगटा जोति निराली,
जोति जोति में जोति की खान॥
वह प्रकाश था अगम अनूपा,
क्यों कर कोई करे बखान॥
"धी मही धियो भर्गो "घट छाया;
धियो योनः परिचात महा।
यह रहिस्य था सुगम सुहेला,
संत बिना नहीं कोई कहा॥
आगे पीछे राम की मूरति,
हंस वंश का अंश लखा॥
देखा सवितुर रूप अनोखा,
मन भया शान्त विचित्र महा॥
यह रहिस्य है गुप्त भेद है,
बने सुतीक्षण तब जाने।
जान २ पहिचान करे कोई,
कर पहिचान के तब माने॥

आंख खुली। उठा। पांव पड़ा।

धन्य लीला आपकी और, धन्य महिमा आपकी।
किस से दूँ पूरण धनी ! मैं अधम उपमा आपकी।
आप हैं निर्गुण प्रका[illegible] काम हैं।
सच्चिदानन्दम् अखण्ड, और शोभा धाम हैं।
मोहमाया में फंसे क्या, समझे आपके रूप को।
यह दुखी परजा कहां और, कैसे जाने रूप को॥
अब तो चरणों में पड़ा, चरणों की छाया दीजिये।
अपना किंकर मान कर प्रभु, दास सांचा कीजिये॥
आपको भूलूँ नहीं, भूलूं मैं अपना देह गेह॥
आपके पद कमल से, मेरा लगे दिन रात नेह॥

राम ने कहा—"एवमस्तु"!

फिर पूछा - "मैं अगस्त्य ऋषि से मिलना चाहता हूं। क्या तुम उनका पता दे सकोगे ?"

सुतीक्ष्ण—"मैं आपके साथ चल कर उनका निवास स्थान दिखा दूंगा"।

राम समझ गये कि इसकी इच्छा साथ रहने की है और इसकी प्रार्थना को स्वीकार किया।

नोट:— सु (अच्छा) और तीक्ष्ण (तेज़)

आश्चर्य[illegible]
दुःख दो[illegible]
कन यह[illegible]

छटा समुल्लास

राम और अगस्त्य ऋषि

राम को और [illegible]ण अगस्त्य ऋषि के पास लाया वहां अ[illegible]र रह[illegible] से ऋषि थे जो चकोर के समान उनके चन्द्र[illegible] को देख कर चकित रह गये। राम ने सद[illegible] नमस्कार किया। अगस्त्य ऋषि से मिलकर आपने कहा—"मैं जिस मंतव्य से बन को आया [illegible] आपको वह विदित है। मुझे उसके विषय में [illegible] कहना सुनना नहीं है। अब ऐसा उपाय बता[illegible] कि यह मनोरथ सिद्ध हो।"

अगस्त्य [illegible] उत्तर दिया—"आप सर्वज्ञ है। आपकी म[illegible] आप बल है जिस की थाह किसी को न आज [illegible] को[illegible] न आगे मिलने की आशा है। आप आनन्द [illegible] के पूर्ण भंडार हैं। आपको उपाय [illegible] को दीपक दिखाना है। मान [illegible] आप ने यह प्रश्न पूछ कर मेरा सन्मान और सत्कार किया है। यह कोई नई बात नहीं है। आप जिसे चाहो वड़ा बनाओ, जिसे चाहो छोटा बनाओ। मैंने आप के इस वर्तमान स्वरूप में सगुण ब्रह्म का दर्शन किया और कृत्य-कृत्य हो गया"

"ऐ राम! इस संसार का यह नियम है जिस के मन में जो प्रबल इच्छा उत्पन्न होती है प्रकृति आप उसकी क्रय कारता में सहायक होती है। और उसकी आवश्यक सामिग्री के इकट्ठा होने का प्रबन्ध आप ही आप होता चला जाता है। मनमें सच्ची चाह हो और यह चाह उसका रास्ता निकाल देती है। आप दण्डक वन में

जाकर 'पंचवटी' ... में जाकर निवास कीजिये। स्वयं सारा काज सिद्ध होने लगेगा"।

राम उठे। नमस्कार किया। चल खड़े हुये। राह में गृद्धराज को दर्शन देकर सुखी किया। और गोदावरी तट पर दण्डक बन की पंचवटी में आकर गुफा में फूंस का झोंपड़ा बना कर रहने लगे। उस तपोवन में जितने ऋषि मुनि रहते थे, उनके दर्शन को आने लगे और उनके निवास करने से वह वन स्वर्गधाम बन गया।

सातवां समुल्लास

राम लक्ष्मण का संवाद

एक दिन इस पंचवटी की पर्णकुटी के आगे राम और लक्ष्मण दोनो भाई पत्थर की चट्टान पर बैठे हुये थे। सीता झोंपड़े में थी।

लक्ष्मण ने पूछा—"प्रभू! मुझे आज आज्ञा हो तो मैं आपसे कुछ साधारण और असाधारण प्रश्न करूं, और आप मुझे संक्षिप्त रीति से उत्तर देते हुये समझा दीजिये। इस प्रश्नोत्तर का अभिप्राय केवल शंका समाधान और शंका निवारण है। जब मनुष्य के हृदय में शंशय आकर्षण करते हैं तो उसके मन की शान्ति जाती रहती है और भ्रान्ति मे पड़कर दुखी होता है।"

राम ने कहा—"समय अच्छा है। एकान्त का अवसर है। तुम्हें जो कुछ पृछना हो पूछो। मैं बहुत संक्षिप्त और सूक्ष्म रीति से तुम्हे उत्तर दूंगा और तुम्हारे मन का भ्रम दूर हो जायगा।"

लक्ष्मण—"जीव और ईश्वर मे क्या भेद है? और यह माया क्या वस्तु है जिसके भ्रम मे पड़कर जीव बिल्लाता और घबराता है?"

राम—"ईश्वर जगतपति है और जीव उसकी प्रजा है। जो सम्बन्ध किसी राजा को उसकी प्रजा के साथ है वही ईश्वर और जीव में है।"

"ईश्वर में महान शक्ति रहती है। जीव में अल्प शक्ति है। ईश्वर सर्वज्ञ है। जीव अल्पज्ञ है।"

"माया और कुछ नहीं है यह बुद्धि है। यह शब्द संस्कृत धातु 'मा' (माप) और 'या' (यंत्र) से बना है जिस यंत्र से सबकी तोल माप होती है और माप की जाती है वह बुद्धि के अतिरिक्त और कुछ नहीं है।"

"यह माया या बुद्धि दो प्रकार की है एक ईश्वरीय और दूसरी जीवी।"

"ईश्वर इसी अपनी बुद्धि से संसार का प्रबन्ध करता है और जीव भी इसी के सहारे अपना व्यापार और व्योहार का साधन करता है। ईश्वरीय माया सर्वज्ञ है और जीवी माया अल्पज्ञ है। यह दोनों में भेद है।"

"ईश्वरीय माया ... है और जीवी माया अव्याप्त शक्ति है इस दशा में केवल एक माया है और जीव की माया ... ता है।"

ईश्वर मायापति है। उसके ईश्वर के अधीन है। और जीव माया के आधीन है। माया जिसके अधीन हो वह ईश्वर है और जिस माया के अधीन यह प्राणी है वह जीव ...।"

"ईश्वर, जीव और माया की ...श्नों के यह संक्षिप्त उत्तर हैं।"

लक्ष्मण—"यह सच है। इसे मैं समझ गया यदि यह माया बुद्धि ही मात्र है सो जीव को इससे दुख क्यों होता है?"

राम—"ईश्वर की माया ... है। वह उसके सहारे रहता है। और ... माया मे अनेकता है। यह अनेकता ... दुःख का कारण है।"

"एक बात तो यह हुई। दूसरी बात यह है कि जीव पर दो मायाओं का प्रभाव पड़ा हुआ है। ईश्वरीय और जीवी माया का, और द्वन्द होने से यह द्वन्दपना उस के सुख-दुख का मूल कारण बन गया है।"

'तीसरी बात यह है कि ईश्वरीय माया सूक्ष्म है। और यह पर्दा तो है लेकिन सूक्ष्म होने से वह ईश्वर की शक्ति को ढक नही सकती। जीव पर दोनों मायाओं ने पर्दा डाल रक्खा है, और वह अँधेरे मे रहता है। ईश्वरीय माया ईश्वर की और ईश्वरीय शक्ति की प्रकाशक मात्र है। और जीवी माया स्थूल होने और ईश्वरीय माया [illegible] बनने से मोटा पर्दा बन गई है।"

लक्ष्मण—"यह ईश्वरीय और जीवी माया का रूप क्या है?"

राम—"एकता और अनेकता। उदाहरण से समझो। ईश्वर ने अपनी माया से स्त्री को बनाया। वह ईश्वर के जगत में एक स्त्री मात्र है। लेकिन जीव की दृष्टि में वह स्त्री स्त्री तो है लेकिन वह माता, बहिन, फूफी, चाची ताई, दादी, नानी, और अनेक नाम वाली हो जाती है और इस अनेक नामवाद को प्रपंच कहते हैं। यह भेद है।"

आठवाँ समुल्लास

राम-लक्ष्मण सम्वाद (लगातार)

लक्ष्मण—"यह आश्चर्य्य है कि एक को माया दुखी नहीं करती और दूसरे को दुखी करती है।"

राम—"इसमें आश्चर्य्य कोई नहीं है एक में दुख नहीं है। दुःख दो और दो पने में है।"

लक्ष्मण—"लेकिन यह दोपना तो ईश्वर में भी है। एक ईश्वर और दूसरी उसकी माया।"

राम—"यह ईश्वर का दोपना ईश्वर की दृष्टि से नहीं है बल्कि जीव की दृष्टि से है। नहीं तो, ईश्वर और ईश्वरीय माया अभेद ही है। जीव ही ने इस भेद की कल्पना कर रक्खी है।"

लक्ष्मण—"तो जीव में यह शक्ति है कि वह अपनी कल्पना से द्वन्द को रच सक्ता है।"

राम—"क्यों नहीं! दोपने का भाव तो जीव मे रहता है।"

लक्ष्मण—"आपने ईश्वर में और जीव मे [illegible] और प्रजा की उपमा बताई है। क्या यही सम्बन्ध है या इससे और भी है।"

राम—"जीव ईश्वर का अंश है और यह [illegible] के समान अविनाशी है।"

लक्ष्मण—"जब जीव ईश्वर का अंश है और अविनाशी है तो वह फिर दुखी क्यों है? ईश्वर तो सुख रूप है जीव को भी सुख रूप होना चाहिये। दुखी तो नहीं होना चाहिये।"

राम—"ईश्वर में न सुख है न दुख है क्यों कि जहाँ और जिसमें सुख रहेगा वहाँ और उसमे दुख भी रहेगा। बिना सुख के दुख नहीं और बिना दुख के सुख नहीं। दोनों साथ २ चलते हैं। जीव ने ईश्वर को सुख कल्पना कर रक्खा है और अपने को दुखी मान रक्खा है। इसलिये ईश्वर का सुखी होना जीव की दृष्टि से है। नहीं तो उसमें सुख है न दुख है।"

लक्ष्मण ने कहा—"ईश्वर सच्चिदानन्द कहा जाता है।"

राम—"यह सच है लेकिन यह कहना भी जीव दृष्टि से है। जीव मे सत की सत्ता (जीवन) है। जीव मे चित की चिता (बुद्धि) है और जीव में आनन्द की आनन्दता (सुख) है। यह तीनों गुण जीव मे हैं। वह इन गुणो को साथ रखता हुआ अपने आपको अधूरा और ईश्वर को पूरा

समभता ... उसमें सत चित आनन्द की पूर्णता को आरोपण करता है। जो जैसा रहता है उसका विचार वैसा ही हुआ करता है और जो जैसा विचारता है और सोचता है वह वैसा ही वन जाता है।"

लक्ष्मण--"यह सच है लेकिन यह तो बताइये कि जीव का अंशा अंशी भाव किस प्रकार का है?"

राम--"जैसे समुद्र और समुद्र की बूंद, जैसे सूरज और सूरज की किरण, जैसे रेत का टीला और रेत का अणु, जैसे जंगल और जंगल के वृक्ष, या जैसे पानी और मछली।"

लक्ष्मण--"यह उदाहरण तो मेरी समझ में आगये। अब मैं यह समझता हूं कि ईश्वर का अंश होते हुये यह अंश दुखी होता है। मरता खपता है। समुद्र खारा है। यह खारापन उसकी एक-एक बूंद मे है ऐसा गुण जीव मे नही दिखाई देता।"

राम--"ईश्वर अविनाशी है। जीव भी अविनाशी है। ईश्वर जीता जागता है। जीव भी जीता जागता है ईश्वर में वुद्धि है। जीव मे भी वुद्धि है। ईश्वर में सुख है जीव मे भी सुख है। ईश्वर सच्चिदानन्द है। जीव भी सच्चिदानन्द है। इस दृष्टि से सारे गुण जो ईश्वर मे हैं या जीव ने कल्पना कर रक्खे हैं वह सबके सब जीव में हैं। एक जीव भी इनके विना नहीं है तुमको जो शंका सता रही है वह केवल इतनी है कि जैसे समुन्द्र खारा है वैसे ही बूंद भी खारा है। यह शंका तो सही है लेकिन तुम यह नहीं पूछते कि यह शंका क्यो है! यह प्रश्न किये होते तो सहज रीति से शंका का समाधान होगया होता। मनमें है कुछ, और कहते कुछ हो।"

मै आपही इसकी जड़ मे तुमको पहुंचा देता हूँ। जीव ने समुद्र को अपने से अलग मान रक्खा है। इसकी दृष्टि मे समुद्र पूर्ण है और वह अधूरा है। अधूरे पन के गुण से वह अपने आप को हर बात मे अधूरा समझ रहा है और ईश्वर को अपने आपसे अलग मान रक्खा है तो उसे अधूरा और अलग होना भी चाहिये। नही तो जीव और ईश्वर मे यह भेद न होता और न ऐसी शंका उठती।

लक्ष्मण--"यह भेद क्यो है? और किस लिये है? इसका कारण क्या है?"

राम--"माया, वुद्धि और माया वुद्धि का प्रपंच।"

लक्ष्मण--"इस माया का विस्तार कितना है?"

राम--"जहाँ तक तुम्हारी इन्द्रियां जाती हैं, जहां तक तुम्हारी वाणी कथन कर सक्ती है, जहां तक तुम्हारा मन पहुंचता है और जहां तक का निर्णय तुम्हारी वुद्धि कर सक्ती है वहां तक इस माया का विस्तार है।"

लक्ष्मण--"उसके आगे क्या है?"

राम--"उसके आगे इन्द्री, मन, वाणी और वुद्धि नही जाती। ऐसी दशा में न कोई कुछ कह सक्ता है न समझ सक्ता है, न विचार सक्ता है, फिर कोई कहना भी चाहे तो क्या कहे, कैसे कहे और क्यो कहे?"

नवाँ समुल्लास

राम लक्ष्मण का सम्वाद [लगातार]

लक्ष्मण--"प्रभू! आपने समझाने को तो सब कुछ समझा दिया और मै समझ भी गया, लेकिन इतना स्पष्ट रीति से और भी वता दीजिये कि ईश्वर और जीव की माया का भेद क्या है?"

राम--"ईश्वर की माया मे मेरा तेरा

पना नहीं है। जीव की माया में मेरा तेरा पना है। इस मेरे तेरे पने मे अहंकार रहता है। और यह अहंकार मोटा रस्सा बनकर जीवों को कसकर बाँध लेता है और वह असमर्थ होकर दुखी रहते हैं। यह मेरा तेरा पना न रहे तो दुख का नाश हो जाये। ईश्वर की माया में यह नहीं है इसलिये उसे बंधन नहीं है।"

मोर तोर संसार है, और नहीं संसार।
मोर तोर बंधन महा, बंधन का विस्तार॥
मोर तोर करता फिरे, भ्रम अज्ञान भुलान।
मोर तोर में फंस मरा, निबल जीव अजान॥
मोर तोर को त्यागदे, सहित प्रेम अनुराग।
मोर तोर में जो फँसा, मन्द हैं उसके भाग॥

लक्ष्मण—"प्रभो! यह बन्धन महा कठिन हैं। इसके काटने का सहज उपाय क्या है?"

राम—"ईश्वर की सगुण उपासना। गुण के साथ २ जो मनुष्य ईश्वर की उपासना करेगा वह सहज रीति से इस संसार के बन्धन को काट सकेगा। इससे सुगम, सहज और सरल साधन कोई नहीं है।"

लक्ष्मण—"क्या निर्गुण उपासना लाभ-दायक नहीं है?"

राम—"क्यो नहीं! लेकिन उसके अधि-कारी लाखो मे एक-आध मिलते हैं। वह ज्ञानियों का पंथ है। ज्ञानियो की संख्या अधिक नहीं होती। साधारण बहुत होते हैं। कहने के लिये तो लोग अहंकार और अभिमान से कहते रहते हैं कि हम निर्गुण ब्रह्म के उपासक हैं लेकिन यह कहना ही कहना है। इन बेचारों को तो इतनी भी समझ नहीं है कि किसे सगुण और किसे निर्गुण कहते है।"

लक्ष्मण—"सगुण और निगुर्ण का भेद क्या है?"

राम—"जो गुण के साथ हो वह सगुण और जहाँ गुण का पता न लगे वह निर्गुण है।"

"गुण तीन हैं— [illegible]। तत्व तीन हैं—कारण, सूक्ष्म, स्थूल। अवस्था तीन हैं—जाग्रत, स्वप्न, सुषुप्ति और इन्हीं तीनों के अंतरगत सगुण और निर्गुण का भेद है। इस पर विचार करो तो यह रहस्य तुम्हारी समझ में आजाय।"

लक्ष्मण—"तब समझाइये।"

राम—"मुझे देखो। मैं सगुण स्वरूप हूँ। मेरे शरीर है। इन्द्रियाँ हैं और मन आदि में मुझे तुम देखते हो। यह देखना जाग्रत अवस्था में होता है। और उसे दर्श पर्श कहते है। जब उस रूप के साथ प्रेम होगया तो जाग्रत को छोड़ कर तुम स्वप्न में मेरा सूक्ष्म रूप देखोगे। यह गुण है और उसी मे गुणों के आकार रहते हैं। जब इसमें घनापन आगया तो यह स्वाभाविक रीति से तुम को कारण अवस्था में लेजायगा, जो सुषप्ति है। यह निर्गुण कहलाता है। इसमे किसी गुण का भास नहीं होता।

सगुण (गुण के साथ) है गुण गुण ही है और निरगुण में गुण का अभाव है।

कर्म सगुण में ध्यान मन के गुण में, और लय निरगुण मे होता है।

मूढ़ और अज्ञानी प्राणी कहते हैं कि अच्छे गुणों का होना सगुण है और बुरे गुणों का न होना निर्गुण है। ईश्वर को अच्छा गुण वाला मान कर पूजो और उसे बुरा गुण वाला न समझो, और पूजा करो। यह भाव तो अच्छा है लेकिन इसमें सचाई का अभाव है। यह न सगुण है न निर्गुण है, जाग्रत लीला सगुण, स्वप्न लीला गुण, और सुषुप्ति लीला निर्गुण है। यह व्याख्या है।

सगुण में दर्शन, गुण में ज्ञान और निर्गुण के लय में चरित्र है।

निर्गुण उपासना मे न कर्म है न ज्ञान है न उपासना है। यह तो मन को इनसे रहित करना है। यह इसकी समझ से वाहर है।"

लक्ष्मण—'ईश्वर यदि व्यापक है तो

सब मे इस [illegible] ...सना और ज्ञान होना चाहिये'

राम – 'यह कहने ही सुनने की बात है। ध्यान कहते हैं धारण करने को, पकड़ रखने और अपने अंतर मे प्रगट करने को और उस की सम्भावना केवल दृष्टि मे आने वाले रूप में है और हो सकती है।'

जिसको आँखों से नहीं देखा है, उस का ध्यान क्या ?
जब न कानों से सुना, तुम ही कहो फिर ज्ञान क्या ?
देख लो आँखों से पहिले सुन लो इस के भेद को ॥१॥
देखने सुनने बिना होगा तुम्हें अनुमान क्या ?
है सगुण पहिला, है निर्गुण इसके पीछे, ऐ लखण ॥२॥
जब नहीं यह फिर बताओ जान क्या ? पहिचान क्या ?
नाम लेते हो, तो नामी से मिलो। समझो उसे ॥४॥
जब नहीं मिलते तो फिर है नामी का अस्थान क्या ?
पोथियां को पढ़ लिया और स्तुति को गा लिया ॥५॥
ऐसे जन का क्या बजाना और उस का गान क्या ॥६॥

"मूढ़ अज्ञानीजन बड़े अहँकार से कहते फिरते हैं कि हम तो व्यापक ईश्वर का ध्यान करते हैं! उन की बातो को सुन लो। वह ध्यान और ज्ञान दोनों से रहित है। इन्हे किसी बात की समझ नहीं है।"

लक्ष्मण—"आप ने सगुण उपासना की महिमा की और वह सच भी है, लेकिन इस मे रहस्य क्या है ?"

राम—'आग अपने अग्नि मँडल में सारी वस्तुओं में सूक्ष्म रूप से व्यापक है। वह मिट्टी में, पत्थर मे, लोहे मे, पानी मे, लकड़ी में, सब जगह है। लेकिन वह न किसी की साथी है न किसी की विरोधी है। उससे न तुम्हें गरमी मिलेगी। न खाना पकेगा। चाहो, उसे प्रगट करो और अपने व्यवहार में उस से लाभ उठाओ। यूँ काम करने और करते रहने से तुम उस के स्थूल रूप को देख कर उस के सूक्ष्म रूप का 'अनुमान' कर सकोगे और फिर धीरे २ उस का कारण रूप भी समझ मे आजायगा—यह रहस्य है।"

दसवाँ समुल्लास

राम लक्ष्मण का सम्वाद (लगातार)

लक्ष्मण चुप हो गये। राम ने अपने व्याख्यान को बंद नहीं किया।

राम ने कहा—"भाई! विद्या और अविद्या, ज्ञान और अज्ञान है। ज्ञान से भ्रम की जड़ कटती है और अज्ञान से भ्रम बढता है बन्धन का मूल कारण अविद्या और अज्ञान है और मुक्ति का मूल कारण ज्ञान और अविद्या है।"

"इस विद्या के दो रूप हैं-एक परा और दूसरी अपरा। परा विद्या केवल गुरू की कृपा और सतसङ्ग और भक्ति से प्राप्त होती है। अपरा विद्या पुस्तक, ग्रन्थों, और लेखकारों की रची हुई वाणी से मिलती है। उपयोगी दोनो हैं लेकिन परमार्थ में केवल परा विद्या सहायक हो कर परम पद दिला देती है एक व्यवहार है और दूसरी परमार्थ है।"

"धर्म से वृत्ति और और योग साधन से ज्ञान होता है। बिना धर्म और साधन के परम पद नहीं मिलता।"

"अविद्या से संसार उत्पन्न होता है और यह गले की फाँसी बन कर जीवों को दुखी करती रहती है। विद्या से इस का नाश होता है। विद्या का मन्तव्य परा विद्या से है।"

"जब परा विद्या से उपलब्धि होती है तब सारा जगत ब्रह्ममय प्रतीत होने लगता है-"एको ब्रह्म द्वितीयो नास्ति, अखिलम् इदम् ब्रह्म, ब्रह्म सत्यम् जगत मिथ्या" और इस एक का भाव अंत. करण मे इस प्रकार प्रवेश कर के दृढ़ हो जाता है कि फिर भ्रान्ति अशान्ति और दुख क्लेश नाममात्र भी नहीं रहते।"

"इन सब का सार भक्ति है जो हर बात का अधिकार और संस्कार प्राप्त कराती है। इससे लोक और परलोक दोनो ही का सुधार होता है।"

जो मेरे मन वचन और कर्म से भक्त हैं वह माँ, बाप, अड़ौसी, पड़ौसी, बड़े छोटे सब के साथ प्रेम का बर्ताव करते है। उनमें न दंभ है, न कपट है, न मान है, न ईर्षा है, न काम है, न क्रोध है, उनका काम निष्काम होता है। ऐ लक्ष्मण! मेरे भक्तो के यही लक्षण हैं, और चाहे मैं अयोध्या में रहूं या बन मे, चाहे तुम्हारे साथ रहूं या सीता के। सच्ची बात यह है कि मैं निरन्तर रात दिन इन्ही भक्तों के अन्तर मे निवास करता हूँ। जिनको मुझसे मिलने की इच्छा हो वह मेरे भक्तों से मिल कर मेरी खोज करें। यह उन्हे मेरा पता देंगे। और मुझ तक मेरे परमधाम तक यह उन्हे पहुंचायेगे।

एक हूँ मैं एक और भक्तों के निश दिन पास हूँ।
मैं ही उनका शिव हूं और मैं मानसर कैलाश हूं ॥ १ ॥
मैं नहीं हूं जल न अग्नि मैं न वायु पृथिवी।
मैं न जल थल का हूँ बासी और न मैं आकाश हूँ ॥२॥
प्राण हूँ प्राणों का, जीवन का हूँ सबके तत्व सार।
मैं हूं क्या तुमको बताऊँ सांसों का मैं साँस हूं।३॥
भक्तों के हृदय [illegible] में है निवास।
उनका रमता राम उनका साथी और सहवास हूं ॥४॥
एक हूँ कहने को भक्तों के लिये हूं मैं अनेक।
उनका मैं विश्वास निश्चय सच्ची उनकी आस हूँ ॥५॥
मैं हूं उनका वह हैं मेरे औरों से मैं हूं अलग।
दास जो मेरे बने लक्ष्मण! मैं उनका दास हूँ ॥६॥
छोड़ो भ्रम और भ्रान्ती मेरी करो भक्ती सदा
सुख लो और आनन्द मुझसे मैं सदा सुखरास हूँ ॥७॥

यह कह कर राम चुप होगये, लक्ष्मण पॉव पड़ गये।

मैं अज्ञानी और मूढ़ जीव हूं। मुझे ज्ञान ध्यान की समझ नहीं है। आपने आज दया करके मुझे सबका सारांश थोड़े मे समझा दिया। इससे अधिक समझ बूझ मुझे नहीं चाहिये। हॉ! इतना हो कि मै आपका मन, बचन, कर्म से सेवक बना रहूँ। इस के अतिरिक्त मुझे और कुछ नहीं चाहिये।

राम ने लक्ष्मण को उठाकर छाती से लगाया उनके सिर पर दया का हाथ फेर कर कहा—"एवमस्तु!" इतने मे सीता जी पर्णकुटी से बाहर आगई और इनका सम्वाद समाप्त होगया।

द्वितीय भाग

पहला समुल्लास

सूर्पनखा का पँचवटी में आना

रावण लंका का नीतिवान् प्रतापी राजा था। सारे भूमंडल मे इसी के नाम की बधाई बजती थी। उसने देश देशान्तर के राजाओ भुवन भुवनान्तर के ऋषियो, मुनियो और लोक लोकान्तरो के देव और देवताओ को वश मे कर रक्खा था। उसके एक सिर में दस सिरों की शक्ति थी और उसके दो हाथो मे बीस भुज दण्डो का बल था। दसों इन्द्रियों के मुख्य-मुख्य देवता उसके आधीन थे इसी दृष्टि से वह दशमुख कहलाता था। पंडित, शास्त्री और वेदो के जानने वाला था। यहाँ तक कि वह तमाम वेद का पाठ बड़े सुरीले राग में करता था और इसवेद पर उसने अपनी टीका कर रक्खी थी। लंका उसके राज्य में स्वर्णभूमि कहलाती थी। सभ्यता मे उसकी साख मानी जाती थी। लॅका का प्रबन्ध उसने इस प्रकार कर रक्खा था कि अन्य देश के मनुष्य वहाँ नही जा सकते थे। मनुष्य तो मनुष्य ही थे, लंका जाते समय अन्य देश के पक्षियों के पँख जलते थे। उसके गुप्त दूतों की सेना अनेक भेषो मे फैली हुई थी जो कि हर जगह के समाचार पहुंचाया करती थी, इस सेना में उसके सम्बन्धी भी थे।

राम जब [illegible] वटी मे आ कर ठहरे। रावण की बहिन [illegible] गुप्त दूती थी, वहा बड़ी सुन्दर और रूपवती थी। उसके उंगलियो के नख सूप (छाज) के आकर के थे। इसलिये बचपन मे उसका नाम सूर्पनखा रक्खा गया और इसी नामसे प्रसिद्ध थी।

उसने सुना दो तपस्वी युवा पुरुष वन से आकर रहने लगे। वह क्यो आये ! इसका उसे ज्ञान नही था। भेद लेने और रावण का समाचार सुनाने के विचार से वह पंचवटी मे आई। राम और लक्ष्मण की सुन्दरता इस की आंखो मे गई, देखतेही मोहित होगई।

राम सॉवले रंग के थे। उनका श्याम वर्ण का शरीर नीले कमल या अलसी के नीले रंग का सा था। सॉवला रूप गोरे रग से भी अधिक सुन्दर लगता है। वह राम के पास आई और पूछा तुम कौन हो ?" राम ने उत्तर दिया,"हम दोनो भाई अवध देश के राजकुमार हैं। पिता जी ने हम को वनवास दिया और हमारे छोटे भाई भरत को राज दिया। हम यहाँ तप करने आये है। हमारे नाम राम और लक्ष्मण है। साथ मे हमारी पत्नी सीता भी आई। यह अकेली हमारे बिना अवध मे न रह सकी। हम ने तुम्हे अपना चरित्र सुना दिया। अब यह बताओ तुम कौन हो और इस वन मे कैसे अकेली फिर रही हो।"

सूर्पनखा ने उत्तर दिया—" मै रावण की बहन हूं। तुम ने उसका नाम सुना होगा। मैं बहुत सुन्दर और रूपवती हूँ। मेरी सुन्दरता का कोई पुरुष अब तक दृष्टि मे नही आया। इस लिये मैंने अब तक अपना विवाह नही कराया। क्वारी हूं। दैव-योग आज तुम को देखा। जैसी मै रूपवती हूँ वैसे ही तुम भी रूपवान् हो। तुम को देख कर मेरा मन मोहित हो गया। तुम मुझे अपनी स्त्री बनालो। हम दोनो का जोड़ा बहुत अच्छा रहेगा।"

राम बोले—"सुन सुन्दरी ! मै तो अपनी पत्नी के साथ हूँ और मै ने प्रतिज्ञा की है कि स्त्री वृत धारण कर रक्खूं और एक को छोड़ कर दूसरी स्त्री का मुंह भी न देखूं। इस लिये मै बेबस हूं। प्रतिज्ञा बद्ध हू। मेरा छोटा भाई लक्ष्मण जो उस वृक्ष की छाया मे बेठा हुआ है। ब्रह्मचारी है। तू उसके पास जा, वह तुझे स्वीकार करता है तो मै प्रसन्नता पूर्वक उसे आज्ञा दूंगा।"

सूर्पनखा लक्ष्मण के पास गई। वह गोरे रंग के थे, सुनहला छरैरा बदन। सूरज के समान उनका तेज था। उनसे भी उसने वही बात कही।

लक्ष्मण ने कहा—"मै राम का सेवक हूं। मैंने १४ वर्ष तक अखंड ब्रह्मचर्य्य व्रत धारण करने की प्रतिज्ञा कर रक्खी है जिसे मै भंग नही कर सकता। और यदि मैं तुझे अपने साथ रख भी लूं तो तू सीता महारानी की सविका और दासी बनना स्वीकार न करेगी। मै स्वयं राम का दास और सेवक हूं। सेवक का का धर्म महा कठिन है। इसलिये मैं तुझ से बेवश होकर कहता हूँ कि मेरे विचार को तो तू त्याग दे। राम के पास जा वह राजा महाराजा हैं। राजाओ के रनवास मे कई २ रानियां रहती हैं और रह सकती हैं।"

वह निराश होकर राम के पास लौट आई। "तुम्हारा भाई मुझे अपने पास रखना नही चाहता।"

राम ने उसे समझा बुझाकर लक्ष्मण के पास भेजा। वह आई। लक्ष्मण ने कहा—"सुन्दरी ! तुझे लज्जा नही आती। तूने लाज को धोकर पी लिया है। मै ब्रह्मचारी हूं। स्त्री करना तो अलग रहा, मैं स्त्री का रूप तक देखना नही चाहता।"

वह खिसियानी हो गई। लक्ष्मण की बातो ने उस के हृदय की वेदी के अग्नि कुंड मे आहुति का काम किया। क्रोधाग्नि प्रज्वलित हो कर प्रचंड हो गई। उसने कहा—"यह सीता मेरे रास्ते में कांटा है। यह न होती तो तुम मुझ पर लट्टू हो गये होते और मेरे रूप को देख कर रीझ गये होते। यह निबल, दुबली पतली अबला मेरे सामने क्या है। मै इसे अभी देखतेर खा जाती हूँ। इस की हड्डी पसली को इस प्रकार चबा जाऊँगी कि डकार तक न लूंगी, तुम स्त्रियो की डाह की समझ नही रखते।"

वह सीता पर झपटने ही को थी कि राम ने

अपनी आँखों से लक्ष्मण को इशारा किया। वह दौड़ कर आये और उसकी नाक और कान काट कर उसके हाथों में दिया—"तेरी जैसी निर्लज्ज स्त्री के साथ ऐसा ही बर्ताव करना उचित है।"

वह रोती [illegible] नाक कान काट कर [illegible] में देना रावण के साथ लड़ाई मोल लेने का चैलेंज था:—

नोट—सूर्पनखा–स्थूल रूप कामातुर स्त्री का क्षोभ

दूसरा समुल्लास

राम और खर-दूषण और त्रिसरा के साथ युद्ध

रावण का यह नियम था कि उसके गुप्त दूत और गुप्त दूतियों की सहायता के निमित्त पास २ एक बलवान् सेना भी रहती थी। इस सेना के सेनापति खर और दूषण थे। यह दोनो रावण के भाई भी थे।

सूर्पनखा की नाक कान दोनों कट गये। गेरू के समान इन इन्द्रियों से रक्त की धारा बह चली। सारा मुँह और शरीर लहू लुहान होगया, और क्रोध से उसकी आँखें लाल अँगारा हो रही थीं।

तीनो भाइयों ने उससे पूछा—"तेरी यह गति किसने बनाई।"

आग भभूका बनी हुई सूर्पनखा बोली—"बन मे दो तपस्वी लड़के आये हैं। उन्होंने मेरी दुर्गति की है।"

इतना सुनना था कि भाइयों ने उसी समय कटक सजाने और तपस्वी बालकों को दण्ड देने का विचार किया। राक्षसो का दल एकत्रित हुआ और जब यह पंचवटी के समीप पहुंचे राम ने देखा, बहुत धूल उड़ती आरही है और इसके पीछे लड़ाको का दल आरहा है। लक्ष्मण से कहा—"निश्चर आगये। सूर्पनखा उन्हे बुला लाई है, तुम सीता को किसी वृक्ष मे छिपा आओ और इस भयंकर युद्ध मे मेरा साथ दो।"

लक्ष्मण ने ऐसा ही किया और दोंनो रणभूमि मे आकर डट गये।

सूर्पनखा राक्षस दल के आगे थी। यह कुसुगुन था। राक्षसो ने राम को आकर ललकारा।

शूर हो, वीर हो, रण भूमि में आकर डट जाओ।
अपनी करनो का जो फल पाना है आकर वह पाओ॥
तुम हो कायर तो न मुँह सामने आकर दिखलाओ।
भागो और भाग के तुम प्राणों को अब अपने बचाओ॥
मृत्यु का सामना है, सामने आओ वीरो।
खोल कर छाती लडो, रण से न जाओ वीरो॥

राम और लक्ष्मण दोनों ने बाण बरसाने आरंभ किये। जैसे सूर्य्य की किरणों से बादलों की काली २ घटायें फट जाती हैं शत्रुओं के दल पल के पल में परे के परे निपात होने लगे।

केवल दो ही लड़के थे और इधर हजारों थे। वह इनका सामना न कर सके। सांप के समान जब लपलपाते हुये बाण धनुष से छूटते थे एक के साथ साथ दस को डस लेते थे और वह बेदम होकर पृथ्वी पर कटे हुये ताड़ों के समान अड़अड़ाधम करते हुये गिर पड़ते थे। खर दूषण ने इन योद्धाओं के बल को देखा। यह महाबली राजकुमार हैं इनका सामना करना महा कठिन है। दूतों को फेज कर कहला भेजा। "तुम छोटी आयु के बालक हो अपनी तीर कमान हमें देदो, घर लौट जाओ हम तुम्हे मारना नहीं चाहते।"

राम ने उत्तर में कहा—"हम अपने राजा भरत के भेजे हुये तुम जैसे खलों को दण्ड देने और तुम्हारे नाश करने को आये हुये हैं। तुम जैसे दुराकर्मी, दुष्टों को ढूंढते फिरते हैं। तुम हमको क्या रक्षा दोगे, हम उस समय तक तुम्हें चैन न लेने देंगे, जब तक एक २ को मिट्टी और भूमि में न लिटा देंगे।

जब दूतों ने आकर यह बात सुनाई राक्षस दल मे क्षोभ आया और समुद्र की लहरों के समान रण भूमि में पिल पड़े। "मारो, मारो, इन्हे भागने न

दो, हो सक[illegible] समान [illegible] सेना [illegible], इन्हे लड़ने भिड़ने का स्वाद [illegible]

राम लक्ष्मण ने धनुष वाण संभाला, फिर वही मार धाड़ का दृश्य आंखों के सामने आया। शत्रु दल हथियारों से सजा सजाया आया था। बर्छे, भाले, तलवार, फर्से, वाण, सब ही कुछ उनके साथ थे। यह राम लक्ष्मण के वाणो के सामने नही ठहर सके। वाण क्या गिरते थे, बिजली गिरती थी। राक्षस जल भुन कर मर जाते थे। वाणों की वाढ़ ने राक्षसी सेना को दम के दम मे लहू की बहती हुई नदी में डुबा दिया। यह इस प्रकार उसकी धार मे डूबे जैसे कोई बहती हुई बरसात की नदी अपने उमड़ते हुये पानी में दोनों तरफ के तटों की पृथ्वी को काटते हुये गिराती चलती है। एक भी तो लड़ाकुओं में से नही बचा, जो कायर थे, उनमें भगदड़ पड़ गई। राम ने इनका पीछा नहीं किया। हां, जो सामने आया उसे अपने वाणों का निशाना बनाने से नही चूके।

जब यह मर मिटे आकाश के रहने वाले देवताओ ने अपनी प्रसन्नता प्रकट की। फूल बरसाये, और नभ मन्डल से जै-जै के शब्द की ध्वनि चारो तरफ से आने लगी। अब जाकर उन को निश्चय हुआ कि राम से इनकी पूरी पूरी सहायता होगी और जिस काम के लिये उनका अवतार हुआ है वह सब प्रकार से पूरा होगा।

सीता खोखले वृक्ष की कन्दरा से बाहर आई। दोनों वीर उस समय वीर रस के रूप बने हुये थे। यह उन्हे देखकर प्रसन्न हुई।

नोट—खर-गिद्ध बुद्धि
दूषण-दोष बुद्धि
त्रिशरा-तीन सिर वाला (सतोगुणी, रजोगुणी, तमोगुणी) राक्षस

तृतीय भाग

पहला समुल्लास

सूर्पनखा आने को तो तीनों भाइयों के साथ रणभूमि में आगई थी, लेकिन जब राम लक्ष्मण के वाण बरसने और राक्षसों के सिर कट-कट कर आकाश मंडल में पंख खुले पक्षियों के समान उड़ने लगे, वह उसी रणभूमि से भाग निकली और अपने निवास स्थान मे ठहर कर उनकी प्रतीक्षा करने लगी।

जब युद्ध समाप्त हुआ, और धुंआ उठने लगा, इसने समझा निश्चर दल सब का सब मारा गया और उनकी लाशो को आग देदी गई। इसके पीछे भगोड़े पहुंचे। लड़ाई के परिणाम से उसे सूचित किया।

वह घबराई, डरी, और व्याकुल हो गई। स्त्री थी। शूर वीर योद्धा न स्त्रियो पर हाथ उठाते हैं, और न उनका अपमान करते हैं। यहां पंचवटी में यह अनर्थ हुआ कि उसके नाक कान काट लिये गये। कहीं ऐसा न हो राम लक्ष्मण वहां पहुंच कर उसे भी ठौर ठिकाने लगादें। वह वहां से भी भागी, लंका में पहुंची।

रावण अपने महल में था, इसने जाते ही उसे उकसाना आरंभ किया। "सुरापान पीकर तू मतवाला बना रहता है। खाया पीया और पांव फैला कर सो रहा। सिर पर आपत्ति मंडला रही है और तुझे अपने सिर और पांव तक की खबर नहीं है। विना नीति के राज काज नहीं चलता, विना सत कर्म के धर्म नहीं ठहरता। जब तप का नाश कुसङ्ग से होता है, विन सोचे समझे विवेक की हानि होती है। जो मनुष्य वैरी, आग, पानी, ऋण (कर्ज) और पाप को छोटा समझता है, उसके बचाने में ईश्वर भी असमर्थ है। देख मैं तेरी बहिन कहलाती हूं तेरे होते हुये मेरी क्या दशा की गई है। इतना कह कर वह रोने लगी।

रावण या तो उन्मत पड़ा हुआ लेटा था, या घबरा कर उठ बैठा—"यह क्या हुआ! किसने तेरे नाक कान काटे है।" सूर्पनखा ने अपने नाक और कान उसके आगे रख दिये। अवध नरेश के दो लड़के राम और लक्ष्मण अपना देश छोड़ कर दक्षिण मे आये हैं। दण्डक वन की पंचवटी मे ठहरे हुये हैं, और कछार के सिंहो के समान वन में निडर फिर रहे हैं। उनका बल पाकर ऋषि मुनि जो अब तक तेरे वशीभूत थे, अभय हो गये हैं। यह देखने मे छोटे लड़के हैं, लेकिन वल, पौरुष और पराक्रम मे अद्वितीय हैं। यह सुन्दर भी बहुत हैं और इनके साथ एक स्त्री है, जो चाँद का टुकड़ा है। मैं समाचार पूछने गई। राम के भाई लक्ष्मण ने तेरी गुप्त दूती समझ कर नाक कान काट लिये और कहा—"राजनीति गुप्त दूतों का दण्ड भी बताती है।" मैं इस अपमान को सह कर खर दूषण और त्रिसरा के पास गई। उन्हे अपनी दुर्गति सुनाई। वह उन्हें मारने दौड़े, और उल्टे आप मारे गये एक वीर राक्षस भी जीता नहीं बचा।"

रावण महल से उठकर सभा में आया। अपने कर्मचारियों से कहा—"खर दूषण और त्रिसरा मुझसे बलवान थे। राम ने उन्हे मार गिराया। मेरी बहिन के कान नाक काटे। यह महा अनुचित काम हुआ। कहो [illegible]

सभासदों ने [illegible] का बदला जान, स्त्री के बदले स्त्री, उनपर चढ़ाई की जाये। उन्हें जान से मार दिया जाये और उनकी स्त्री छीन ली जाये।"

रावण सभा से उठकर महल मे आया रात भर विचारता रहा—"यह राम लक्ष्मण कौन है जो निडर होकर इस प्रकार मेरे राज मे आये है उसे नींद नहीं आई। करवटें बदलता और सोचता रहा। सम्भव है कि महा प्रभु ने पृथ्वी का भार उतार ने के लिये अवतार धारण किया है और यह लीला तेरे कल्यान के हेत हो रही है निशाचर होने से मैं भक्ति और ज्ञान का अधिकारी नहीं हूं। अब और कुछ न करूँगा। उन से वैर और विरोध ठानूंगा, लड़ूंगा खेल खिलाऊंगा, कटंगा, मरूंगा इसी मे मेरी भलाई है।

ज्ञानी कहते हैं कर्म का अन्त करदो। दो अन्त एक साथ मिल जाते हैं वैर भाव मेरे लिये सुगम है। मेरी भलाई उनके मित्र या भक्त बनने में नहीं है, बल्कि शत्रुता के व्यवहार में ही मेरा कल्याण है। इससे जल्द उद्धार हो जायेगा।"

उसे पहले जन्म की दशा और कथा का स्मरण हुआ। नींद आगई और सो गया।

दूसरा समुल्लास

राम सीता का सम्वाद

जिस रात को रावण सूर्पनखा से राम के आने का समाचार पाकर करवटे बदलते सो रहा, उसी रात के दूसरे दिन प्रातः काल राम उठे। लक्ष्मण तो कन्दमूल की खोज में वन को गये। सीता अकेली थी।

राम ने कहा—"प्रिया! तू मेरी अर्द्धाङ्गनी है मैं तेरा अर्द्धांगी हूं। मैपुरुष हू, तू प्रकृति है। मैं जगत मे सत का रूप हूं और तू मेरी छाया है। मुझसे कभी अलग नहीं। सत (Positive) और असत्ता (Negative) तत्व है। इस संसार में सारे प्राणी किसी न किसी कर्तव्य के निमित्ति आते हैं। जब तक वह उस कर्तव्य को नहीं कर लेते तब तक इस भूमण्डल मे रहते हैं. और जब उनका कर्तव्य हो चुका तो या तो दूसरे लोक मण्डल में चले जाते हैं, या अपने लोक का लौट जाते हैं। मैं किसी विशेष कारण से यहाँ प्रकट हुआ हूं और तू भी इसी निमित्ति आई है। मै नर हूं, तू नारी है। मै कुछ नर लीला करना चाहता और

. . जा ...

। तेरी सहायता [illegible] समान ... सिना ... के लिये अग्नि से प्रवेश करना [illegible] मात्र इस देह मे रहे ।"

यह कह कर राम ने अग्नि जलाई और सीता उस अग्नि मे प्रवेश कर गई, वह केवल छाया ही छाया रह गई। और राम चित्त मे प्रसन्न हुये।

यह अग्नि उनके अन्तर की योगाग्नि थी और पृथ्वी की अग्नि बहाना मात्र थी।

राम का यह रहस्य लक्ष्मण पर भी प्रगट नहीं हुआ, क्योंकि वह वहां नही थे और राम यह नही चाहते थे कि वह इसे न जाने।

तीसरा समुल्लास

सोने का हरिण

सवेरा हुआ। रावण उठा। और मारीच के घर गया, पहिले कभी यहाँ नहीं गया था। उसे बड़ा आश्चर्य्य हुआ नमस्कार करके आसन दिया, कुशल पूछी। रावण ने उत्तर दिया —"राम ने मेरी बहन सूर्पनखा की नाक कटवाई! मैं उनसे अपमान का बदला लेना चाहता हूं। तू अपनी माया से सोने का हिरण बन कर राम की कुटी मे जा, सीता तुझे देख कर लालच करेगी, राम तेरे मारने के लिये उठेंगे, चौकडी भरते हुये उन्हें दूर लेजाना, मै सीता को हर लाऊँगा।"

मारीच ने कहा—"सुन रावण! यह राम लक्ष्मण साधारण मनुष्य नहीं हैं। कहा जाता है कि राम ब्रह्म के अवतार है। जब वह विश्वामित्र के यज्ञ की रखवाली के लिये आये मै ऋषि का यज्ञ विध्वंस करने चला। साथ मे ताड़िका थी। वह लक्ष्मण के बाण से मारी गई। राम के बाण के ने मुझे कई योजन की दूरी पर फेंक दिया। और इन दोनो भाइयों का रूप अब तक मेरी आँखो में नाचता है। जो लड़के ताड़का और सुबाहु के मारने का बल रखते हैं और खरदूषण, त्रिसिरा को सहज में मार खपाते हैं, वह मनुष्य नही होसकते। तू राम के साथ में बैर न कर। इसमें भलाई नही होगी।"

रावण को क्रोध हुआ—"मैं तुमसे मंत्र लेने नहीं आया। जो गुरू बन कर मुझे उपदेश देने लगा है। तू मेरी प्रजा है। मैं आज्ञा देता हूँ, या तो तू मेरा कहना मान और या मै इसी समय तुझे प्राणहत करूँगा। बोल क्या चाहता है।"

मारीच ने मन मे विचारा—" यह पाजी मुझे बिना मारे हुये न छोड़ेगा। इससे तो यही अच्छा है कि मैं राम के बाण से मारा जाऊँ। अन्त समय वह मेरे पीछे, धनुष बाण लेकर दौड़ते फिरेंगे। मैं उनका दर्शन पाऊँगा और मेरी सदगति होगी।"

उस ने रावण से कहा-" बहुत, अच्छा! तू जो कुछ कहता है, मै वही करूँगा।"

मारीच ने अपनी मानसिक शक्ति की विद्या से हिरण का रूप बनाया। चौकड़ियाँ भरता हुआ मारीच पंचवटी के झोपड़े के निकट जाकर चरने लगा। इसका रूप सुहावना और सुन्दर था। पीठ पर सोने की धरियाँ पड़ी थी। सीता की दृष्टि इस पर पड़ी।

राम से कहा-" इस हरिण को मार दो, इसकी मृगछाला बहुत अच्छी बनेगी।"

राम धनुष बाण लेकर उठे। इन्हे देख कर मृग भागा। वह आगे २ यह पीछे २!

कभी उछला, कभी कूदा, कभी भागा, कभी चमका।
कभी दौड़ा तो उनके सामने आकर कभी ठमका॥
इधर से वह उधर आया, उधर से वह इधर आया।
कभी था धूप में, और था कभी वह पेड़ की छाया॥
हिरण क्या था छला वह था दिया चकमा यह घबराये।
कभी वह दूर भागा, और कभी इनके समीप आये॥

हिरण राम को घुमाते फिराते हुये कोसों की दूरी पर लेगया। इन्होंने भी उसका पीछा न छोड़ा, वह दौड़ते २ थक गया। राम ने उसी समय अपना बाण सर किया। यह घायल होकर गिरा। हाय-लक्ष्मण! हाय लक्ष्मण! करके पुकारा और फिर राम के रूप की तरफ अपनी दृष्टिजमाई। ऋषि मुनि

ध्यान करते २ मर जाते हैं और राम उनके ध्यान में नहीं आते और यहाँ एक कपटी और छली राक्षस के सामने आकर वह खड़े हो गये। मरते समय उस ने अपना रूप धारण कर लिया। राम जानते थे कि यह राक्षस है। उसमे इनकी भक्ति थी। अन्त मती सो गती। जिसे राम का दर्शन मिला, उसकी दुर्गति क्यो होने लगी। उसकी सद्गती होगई और वह प्राण त्यागते ही राम के धाम को चला गया।

—:—

नोट– अभी मनुष्य अपनी प्राकृतिक सामिग्री और अपनी बुद्धि की सहायता से नाना प्रकार की कल बनाता है। समुद्र की छाती पर उन्हे दौड़ाता है। इसके हवाई [illegible] में फिरा फिरते हैं। यह बाहर [illegible] है। एक सम आने वाला है जब वह अंतर मुखी साइंस या अप मानसिक विद्या से जैसा चाहेगा रूप बनायेगा। औ जहाँ चाहेगा ध्यान करते हुये पहुंच जायेगा। ज चाहेगा, करेगा। यह और कुछ न होंगी उसक म नसिक शक्तियां होंगी। इनके नाम महिमा, लघि गिरमा, आदि है। लंका की प्राचीन सभ्यता में य शक्तियां राक्षसो को प्राप्त थीं। पहिले भी ऐसा चुका है। कुछ दिनों पीछे फिर ऐसा होगा। य आश्चर्य्य जनक बात नहीं है। केवल मानसिक वि की क्रिया शक्ति के साधन से सम्भव है।

चौथा समुल्लास

सीता-हरण

मारीच ने मरते समय भयानक शब्द करते हुये लक्ष्मण का नाम लेकर पुकारा था। उसकी भनक सीता के कानो मे पड़ी। वह लक्ष्मण से कह उठी—"भाई! राम पर बन में कोई आपत्ति आपड़ी। वह बन चारों तरफ से राक्षसो से घिरा हुआ है। संकट के समय तुमको पुकारा है। जाओ, उनकी सहायता करो।"

लक्ष्मण बोले—"माता! राम को कोई नहीमार सकता, वह संसार मे किसी महान् कार्य के लिये उत्पन्न हुये हैं। वह कोई साधारण मनुष्य नहीं है। तू किसी बात की चिन्ता न कर। राम मुझको तेरी रखवाली करने की आज्ञा दे गये हैं। ऐसे गहन बन मे तुझे अकेली छोड़कर जाना मेरे लिये उचित नहीं है।"

सीता ने कहा—"क्या कहीं तुम्हारा मन तो नहीं बिगड़ गया, जो राम के विपत्ति के समय तुम मेरे पास से नहीं हिलते!"

लक्ष्मण बहुत लज्जित हुये। धनुष बाण लेकर खड़े हुये। राम की माया को नमस्कार करके कुटी के चारों तरफ धनुष के आकार की गोल लकीर खींच कर कहा—"देखना इस लकीर के बाहर न आना। इसके भीतर कोई दुखदायी जीव जन्तु आ सकेगा।"

यह कह कर वह बन में राम को खोजने च गये। इधर रावण ताक में लगा हुआ कहीं छिप था, लक्ष्मण के जाते ही वह भिक्षु 'साधु' के भेष कुटी के समीप पहुंचा। वह डरते हुये चोर के सम आया। भिक्षा माँगी, सीता उसे कुछ फल फूल लगी। रावण बोला—"मैं बन्धन की बंधी हुई भि नहीं लेता। तुम लकीर के बाहर आकर मुझे भ दो।"

स्त्री जाति! कोमल हृदयवाली! वह जानती थी कि यह रावण है। उसने उसे स समझा। लकीर के बाहर आते ही रावण ने उस हाथ पकड़ा और कुछ हँसी ठट्ठे की बातें क सीता बिगड़ी—"रे दुष्ट! तू कौन है? जो राम धर्मपत्नी से अनुचित बात कहने का साहस कर है। ठहर! राम हरिण मारने बन को गये आते ही होंगे और इन अपशब्दो का उत्तर देंगे रावण हँसा—"क्या तू मुझे नहीं जानती। मैं रा हूं। जिसके आधीन सारा जगत होरहा है। मैं

लंका ले जाकर ... समान ... सिना बनाऊँगा।" सीता को क्रोध आया। वह कुछ कहने को ही थी कि रावण ने उसे जबरदस्ती से अपने आकाशी विमान पर बिठाया। कल फेरी और वह पक्षी के समान आकाश में मँडलाता हुआ उड़ चला। सीता को जो दुख इस समय हुआ, कहा नहीं जा सकता। वह रोती हुई चली।

तुम कहाँ हो हाय राम,
आओ सीता को बचाओ हाय राम !
दुष्ट रावण ले चला लंका मुझे,
जल्द पहुँचो जल्द आओ हाय राम !
राम को लछमण संदेशा दो मेरा,
उनको मेरे पास लाओ हाय राम !
दुख में आपत्ति में विपत्ति में हूं पड़ी,
आके छुटकारा दिलाओ हाय राम !
देश छूटा, झोंपड़ा उजड़ा मेरा,
तुम बसो मुझ को बसाओ हाय राम !
मैं नहीं सह सक्ती हूं ऐसा वियोग,
अपने चरणों से लगाओ हाय राम !
कहना लछमन का न माना खोगई,
राम को जाकर मनाओ हाय राम !
बेकड़े कारण हुई दुख का मेरे,
छोड़ कर मुझ को न जाओ हाय राम !
मै वचन से कर्म से दासी बनी,
तुम न दासी को भुलाओ हाय राम !
सिंह की पत्नी को गीदड़ ले चला,
इसको फांसी पर चढ़ाओ हाय राम !
घिर गई हूं दुखसे और बेबस बनी,
आके आपत्ति को मिटाओ हाय राम !
जीते जी मुझ को न आई मृत्यु क्यों,
मरती हूं मुझ को जिलाओ हाय राम !
दासी प्यासी है तुम्हारे प्रेम की,
प्यास को मेरे बुझाओ हाय राम !
राम शरणागत की सुध बुध हो तुम्हें,
आओ,आओ, आओ, आओ, हाय राम !

सीता विलाप करती हुई झुक २ कर आकाशी विमान से नीचे झांकती है, कि कोई सहायक आजाये। 'हाय राम का शब्द उसके होटों पर वहां सुनने वाला कौन था। पहाड़ों ने सुना, पृथ्वी ने सुना। बन के गाछ और वृक्षों ने सुना। हाय राम का शब्द चारों तरफ ऊपर नीचे गूँज उठा। और सारा आकाश मंडल उससे भर गया।

पाँचवाँ समुल्लास

गृद्धराज जटायु

उस बन मे बड़े डील डौल का एक पक्षी रहता था जो राम का भक्त था और पहिले राम से मिल भी चुका था, उसे लोग गृद्धराज जटायु कहते थे। यह दूरदर्शक ऋषि था। हाय राम, हाय राम, के शब्द की गूँज को सुना। उसकी तरफ कान लगाया। शब्द ऊपर से आरहा था। वह ऊपर उड़ा, देखा अबला सीता को रावण आकाशी रथ पर बिठाये उड़ा चला जारहा है। रथ फिर फिराता हुआ दक्षिण की तरफ लंका को जारहा है। इसने ललकारा— "दुष्ट रावण ठहर जा! तू कायर है, जो पराई स्त्री को हर लाया है। उसे छोड़ दे। नहीं तो मैं, तेरे सरों और हाथों को नोच खोंट लूंगा, और तू मेरी चोंच के घाव से, तड़प-तड़प कर मरेगा।"

रावण अपनी धुन मे उन्मत्त था। उसकी कब सुनने वाला था। और इसे समझता क्या था।

पक्षी तो पक्षी। यह उसका सामना कब कर सकता था। उसने आकाशी रथ की कल को ऊपर चढ़ा दिया। गृद्ध-राज झपटा। उसके सिर पर चोंच मारी लहू लुहान होगया। फिर हाथो को नोंचा खसोटा। उस से भी लहू वह निकला। रावण काले पहाड़ के आकार का था, और बहता हुआ लाल लहू गेरू की धार के समान निकलने लगा—

बार बार ठोंठो और पंजों के घाव से वह व्याकुल हो गया—"मूर्ख पक्षी! क्या तू नहीं जानता, मैं कौन हूँ।" जटायु ने कहा—"तुझे कौन नहीं जानता, तू पापमय पर्वत है। अधम पापी! अधर्मी राक्षस! यह तेरा कर्तव्य महा घृणित है। छोड़ इसे! योद्धा और शूरमा है तो ठहर! राम सीता की खोज में आते होंगे, और तेरी हड्डी पसली को बाणों से छेद देंगे।"

रावण—"जा अपना काम कर। मैं अपना कर रहा हूँ"।

जटायु—"तू नर्क को जारहा है। मैं कभी भी जीते जी तेरा पीछा नहीं छोड़ूँगा।"

मर मिटूंगा सीता को जाने न दूंगा मैं कभी।
दुष्ट! मैं मारूंगा तुझ को, मार डालूंगा अभी॥
तूने क्या समझा है मुझको, काल तेरा मैं बना।
ले संभल जा चोंचों से काटूंगा मैं तेरा गला॥

यह कहा और उसकी गरदन पर ठोंठ मारी। वह व्याकुल होगया। कमर से कृपाण निकाला। उसके पँखो को काट गिराया। पक्षी का बल उसके पँख ही होते हैं। वह घायल होकर नीचे गिरा और हाय राम! हाय राम! करने लगा। ऊपर हाय राम! नीचे हाय राम! सीता की पुकार और जटायु के हा हाकार के शब्द गूंज उठे।

वह पृथ्वी पर गिर कर अचेत होगया और रावण आकाश-मार्ग से सीता को भगा ले गया। लंका की अशोक [illegible] रक्खा। त्रिजटा (तीन सिर वाली) राक्षसी को उसकी सेवा के लिये नियत किया कि यह भागने न पावे। पहरा चौकी रहे।

रावण ने सीता को बहुत फुसलाया, लालच दिया, पटरानी बनाना चाहा। सीता उससे घृणा करने लगी।

रावण ने कहा—मेरी रानी बन के रह,
इसमें तेरा कल्याण है।
राम क्या हैं निबल नर हैं,
किसका तुमको ध्यान है॥
सीता—दुष्ट पापी दूर हो सामने मेरे न आ।
मृत्यु तेरी आगई है, उससे तू अँजान है॥
रावण—मारने वाला मेरा, कोई नहीं संसार में।
हाथ से तुझको न दूंगा तू तो मेरी प्राण है॥
सीता—राम मारेंगे तुझे, छेदेंगे तुझको बाण से।
है धनुष उनका बली और तीव्र उनका बाण है॥
रावण—राम क्या हैं, आयेंगे, खाऊंगा उनको स्वाद से।
कौन रावण से बली जग में कोई बलवान है॥
सीता—तू है गीदड़! तू है कायर! तुझमें बल का काम क्या।
दुष्ट तेरा आना मेरे सामने अपमान है॥

वह जब-जब सीता के पास आया, उसने इसी प्रकार के वचनों से उसका अनादर किया, और अशोक की छाया में बैठी हुई राम के आने का रास्ता देखने लगी।

तृतीय भाग

पहला समुल्लास

राम को सीता के वियोग का दुख

राम ने हरिण को मारा। मृग चर्म हाथ में नहीं आया। हाँ! उसे राम धाम को भेज दिया और आप पर्णकुटी की तरफ फिरे। रास्ते में लक्ष्मण जी मिले।

राम ने कहा—"भाई! तुमने यह क्या किया? सीता को वन में अकेली छोड़ कर यहाँ आना नहीं था। यह जंगल महा भयानक और राक्षसों से घिरा हुआ है। उनसे लड़ाई मोल ले ली

गई । यह [illegible] बनाऊँ होगे । अब सीता का हाथ लगना [illegible] कौन जाने उसकी क्या दशा हुई होगी ।”

लक्ष्मण ने अपनी बेबसी प्रगट की । राम कुटी में आये । वहाँ कोई भी नहीं था । इधर उधर देखा । पर दिखाई नहीं दी । कुटी के चारों तरफ घूम फिर कर खोज किया । उसका नाम ले ले कर पुकारा । जब वहाँ कोई हो तो उत्तर दे । राम ने कहा—“सीता ! तू कहाँ है ।” और वही शब्द प्रतिबिम्ब होकर उन्हें सुनाई दिया । “सीता ! तू कहाँ है ।” जैसे कोई किसी को चिढ़ाता हो ! वह घबराये । कुटी में ठहरना असम्भव था ।

सुन सान कुटी खड़ी हुई थी ।
उजड़ी हुई वह पड़ी हुई थी ॥
वह लाश थी और लाश बेजान ।
सुध बुध गई इन की और औसान ॥
वन था और वन था सघन वन ।
जो भूले वह खोये अपना तन मन ॥
तन मन गया रामचन्द्र का खो ।
हो कर दुखी अन्त में पड़े रो ॥
सीता तू कहाँ छुपी है आ कर ।
पा जाऊँ पता मिलूँ मैं जा कर ॥
लाया था कौन ले गया कौन ।
चकमा मुझे आ के दे गया कौन ॥
ऐ चन्द्रमुखी, दुखी बहुत हूँ ।
तू है कहाँ, तुझ को जा के खोजूँ ॥
जोड़ा मेरा मिल के कैसे बिछुड़ा ।
बन २ कर भाग कैसा बिगड़ा ॥
घड़ी गिनो, रहूँ लग मेरा ।
करता हूँ ध्यान रह २ के तेरा ॥
तू प्राण है, प्राण से भी प्यारी ।
कैसी विपदा पड़ी है भारी ॥
ढूँढूँ कहाँ, किस से जाके पूछूँ ।
तू है कहाँ चल के तुझ को खोजूँ ॥

यों विलाप करते हुये नदी नाले और पहाड़ लाँघते २. राम सीता की खोज में निकले । कोई उन को देखता तो कहता कि यह कामी पुरुष है और कामिनी के वियोग में मारा२ फिर रहा है, लेकिन यह केवल 'नर-लीला थी । जैसा काछा काछे, वैसा नाच नाचे! जैसा स्वाँग भरे वैसा खेल करे !

वह आगे बढ़े । देखा कि गृधराज जटायु पृथ्वी पर घायल पड़ा हुआ हाय राम ! हाय राम ! कर रहा है। पूछा—“किस ने तेरी यह गति बनाई ?” । उस ने आँख खोली, सुध बुध आ गई । राम को सामने खड़ा हुआ देख कर नमस्कार करने के पीछे उत्तर दिया, “भगवन ! यह दुर्गति रावण ने की है । मैं इस तरफ उड़ा जा रहा था, आकाश मंडल मे हाय राम, हाय राम,का शब्द गूँज रहा था । ध्यान कर के देखा रावण सीता कोपुष्पक विमान पर बैठाये लिये जा रहा था। वह धाड़ें मार २ कर रोती और चिल्लाती थी। मैंने रावण को समझाया,—इस अवला को छोड़ दे । इसे न सता । उस ने मेरी नही सुनी । मैंने अपनी चोंच से उस पर आक्रमण किया । वह घायल हो गया और तलवार खींच कर मेरे दोनों पँख काट दिये । सर और गले पर वार किया । मैं भूमि पर गिर पड़ा और वह उस सती को उड़ा कर ले गया । यह मेरा वृतान्त है ।”

राम ने उसे सँतोष दिया । “अब तू इस क्षण-भँगी शरीर और इस संसार की ममता को छोड़ दे । मैं रावण के कुल का नाश किये हुये बिना न रहूंगा । संसार मे इसी निमित्ति मेरा जन्म हुआ है ।”

जटायू ने लम्बी साँस भरी । राम को खुली आँखो से देखा और स्तुति करते और उनका गुण गाते हुये हिचकियाँ ली और फिर उसकी बंद आँखें नहीं खुली, । सारा शरीर पल क्षण मात्र मे ठंडा पड़ गया । लक्ष्मण ने वन की लकड़ियां चुनी । चिता बनाई। उसकी लाश को उस पर रक्खा । दोनों कटे हुये पंख से उसे ढक दिया और राम ने चकमक पत्थर से आग निकाल कर उसका दग्ध कर्म किया और वह थोड़ी ही देर में राख का ढेर बन गया ।

आये हैं जो आयेंगे साधू राजा रंक।
रहना है दो चार दिन, जाना है निःशंक ॥
एक स्वर्ग को जायगा, एक नर्क में वास।

जो जन्मा सो [illegible] ।
भजि भजि मर नर [illegible], भज सतगुरु जगदीश ॥

दूसरा समुल्लास

शबरी भीलनी से मिलाप

राम लक्ष्मण सीता को खोजते हुये आगे बढ़े। आगे कनबद्ध राक्षस दौड़ता हुआ आया। इन पर झपटा। राम ने उसको अपने बाण से ठौर ठिकाने लगाया।

यह कनबद्ध पेट का गन्धर्व है, जो साधन करने वाले तपस्वियों को सताता रहता है। दुर्वासा के श्राप से यह विना सिर का ठोंठ बन गया था। संस्कृत कन (सिर) और बद्ध (दुखी करना, मारना।) सिर का जिससे दुख पहुंचे, वह कन बद्ध है। यह और कुछ नहीं है. मनुष्य शरीर में यह पेट है जो अपना ही गीत गाता रहता है और मस्तिष्क में रहने वाली शक्तियां (चित्त, मन, बुद्धि और अहँकार) को दुखी करता रहता है। दुर्वासा (दुर–बुरी, और वासा– वासना) ऋषि थे जो बहुत खाते थे। उसके हाथ से बहुत तंग हुये, और उसे श्राप दिया। यह राक्षस होगया। यह राम पर झपटा। राम ने उसे उसी बन में मार कर सन्तुष्ट कर दिया और फिर उसने इनके सताने का नाम नहीं लिया।

प्रेमियों के तीन लक्षण को सुनो।
बोलना कम नींद और आहार खो ॥
खाओ कम और बोलो कम और सोओ कम।
तप में, जप में, तब भरो साधन का दम ॥
साधना में प्यार इनका है बुरा।
साधु इनसे बचके रहता है सदा ॥

कन बद्ध के आक्रमण से बच कर यह शबरी भीलनी के झोंपड़े मे आये। यह जंगल की भीलनी थी, जिसे अपने रूप का का भी चेत नहीं था। भीलनी तो भीलनी होती है। हाँ, उसमे प्रेम और प्यार बहुत था। जिधर झुकी, उधर झुकी! दिखावा नहीं! शृँगार नहीं! बनने ठनने की इच्छा से रहित! एक धुन एक ध्यान और एक दशा में रहने में वाली! समझ बूझ सब अपने इष्ट के निमित्त अर्पण किये हुये! जीते जी मरी हुई! राम इससे मिल कर बहुत प्रसन्न हुये। यह उन्हें देख कर मग्न होगई। तन मन की सुध तो पहिले भी नहीं थी। दर्शन पाते हुये अपने आपे को भूल गई। जब चेत आया, आसन पर बिठाया। फल फूल, कंद मूल लाकर आगे रक्खे। कहते हैं यह इतनी सरल स्वभाव वाली थी कि राम को अपने झूँटे बेर खिलाये और राम उसके प्रेम स्वरूप को देख कर मोहित हो गये।

जब मनुष्य, सुवासना. सतसङ्ग, दीक्षा, चित्रकूट का मनन, विराध (विरोधी वृत्ति) सूर्पणखा-वध (स्थूल रूप काम अंग का नाश) खर (गधपन) दूषण (दोष वृत्ति) त्रिसरा (सत रज तम के त्रिगुणात्मक विकार) का नाश कर लेता है तब इस में प्रमाद आजाता है। इससे रावण (रजोगुण) प्रधान होकर उसकी सीता (सुषम्नावृत्ति) को हर लेता है। तब वह व्याकुल होकर इस की फिर प्राप्ति में लगता है। कन बद्ध (खाना) आलस्य और प्रमाद को बशीभूत करके अन्त में उसे भक्ति की सूझती है जो सब से सुगम और सहज साधन है, और यही भक्ति उसे सषुम्ना वृत्ति (सीता) की पुनः प्राप्ति का उपाय सुझा देती है। इसी भक्ति का नाम शबरी है। संस्कृत शव (मुर्दा) रा (लेना) यह जंगली रूप वाली होती है।

दिखावा नहीं। जीते जी मर जाना किसी को अनुमान तक न होने देना कि यह भक्त है।

रा... बनाऊँ... स्थानों और उनके भेद ... भली भाँति दरसा दिया है। रामायण की कथन अलंकृत और कथा प्रसंग को लिये हुये, इसका मन्तव्य साधन विषय को रोचक बना कर समझा देना है।

भक्ति सुगम साधन सहज, सरल भाव लौ लाय।
गुरु की कृपा महान से, धर्म मोक्ष फल पाय॥
दिखलावे की भक्ति का, नहीं आदर सन्मान।
जीते जो मर कर मिटे, तब पावे निर्वाण॥
भक्ति भाव भादों नदी, चली बही गहराय।
सरिता सोई सराहिये, आठ माँस ठहराय॥
जैसी लौ पहिले लगी, तैसी अन्त रहाय।
अपने जीव को को कहे, लाखों तरे तिराय॥
दिखलावे की भक्ति को, भक्ति प्रेम मति जान।
भक्ति है जीते जी मरण, यह निश्चय कर जान।
माला पहिरी सात लर, यह माला है छल।
मन माला को फेरिये, भक्ति का तब मिले फल॥
तिलक त्रिपुण्ड लगाय कर, माथालिया सजाय।
भक्ति सुशुम्ना साधना, पिंगला ईड़ा बिलगाय॥

शबरी ने राम से कहा—"मैं नीच अधम हूँ। न मेरा कुल है, न मेरी जाति है। भीलनी तो ...लनी! न मुझमें बुद्धि है, न कर्म है न उचित ...की समझ की समझ है। मैं तो तुम्हारी ... करना भी नहीं जानती। तुम्हें कहूं भी तो ...। कहूं। मैं भीलनी हूँ। मा बाप विवाह करने लगे। सैकड़ों भेड़ बकरे मारने के लिये बाँधे गये कि महिमानों को उनका माँस खिलाया जाये। हजारों मटके मदिरा से भर कर रक्खे गये कि उन्हें पिलाया जाये। मुझे यह अच्छा नहीं लगा। जिस उत्सव में इतना प्राण-वध हो उसका अन्तिमे परिणाम भी दुख ही होगा। मैं रात को उठी। बँधे हुये पशुओं को खोल कर भगा दिया। वन में भाग आई। गुरू मिले। उनकी सेवा टहल करने लगी। उनका नाम मतँग (संस्कृत 'मदी' सुखी रहना, सुखी करना) ऋषि था। मुझे देख कर सुखी हुये। जाँत पाँत का विचार नहीं किया। सेवा टहल स्वीकार की। वह तो परम धाम को गये। मुझ से कह गये कि तू धीरज रख। राम (रमने वाले, सुख स्वरूप भगवान) तुझे आकर दर्शन देंगे। मै बरसों से तुम्हारी राह-बाट देख रही थी। बहुत दिन लगे। तुम आये। दर्शन दिया। अच्छा किया। तुम राम हो। रम (आनन्दघन) हो। देख लिया सन्तुष्ट होगई। इच्छा पूरी होगई। अब और कुछ नहीं चाहिये। जो कुछ होना था होचुका, बस इतना ही बहुत है।"

राम कहत बीता दिवस, सोचत बीतो रात।
राम दर्श बिन क्या करूँ, समझ न आवे बात॥१॥
जिव्या में छाले पड़े, नाम पुकार पुकार।
आँखो में झाईं पड़ी, पंथ निहार निहार॥२॥
तुम आये दर्शन मिला, देखा बिमल सरूप।
मैं सेवक बिन दाम की, तुम मेरें सत भूप॥३॥
तुम आये शीतल भई, मिल गया सुख आनन्द।
चित चकोरनी दृष्टि में, तुम मेरे हो चन्द॥४॥
तुम ही पूर्ण काम हो, तुम हो मोक्ष प्रभाव।
अर्थ धर्म शुभ हो मेरे, पड़ गया पूरा दाव॥५॥

शबरी ने फिर कहा, तुम मुझे मिले। सब कुछ मिल गया। अब न कुछ मुझे माँगना है, न जाचना है।

तुम हो मेरे मातु पितु, तुम विद्या तुम धन।
तुम शरीर, नस नाड़ी हो, तुम हो मेरे मन॥
तुम भाई तुम सखा हो, तुम सम्बन्धी मीत।
मिल गये तुम सब कुछ मिला, होगया शीतल चीत॥

राम ने कहा—"मैं भी कर्म धर्म, ज्ञान, वैराग्य, की तरफ ध्यान नहीं देता। केवल भक्ति का नाता मानता हूं। भक्ति मे जात पाँत नही है। यह सामाजिक व्यवहार है। इसका अधिकार संस्कार भक्ति मे नहीं रहता। भक्ति करना ही सच्चे भक्तो का अधिकार सँस्कार है। यह भक्ति गुरू की कृपा से मिलती है, और तुझे मतङ्ग ऋषि से मिली जो आनन्द रूप, मतवाले हाथी के समान मस्त और सुखी रहते थे। वह सन्त थे, मेरे भक्त संतों को मुझ से अधिक मानते है।

यह भक्ति नौ प्रकार की होती है। पहिली पाँच इन्द्रियो की भक्ति जो तत्वो से सम्बन्ध रखती है,

यह सेवा टहल है। आँख से रूप का देखना, कानों से बचन सुनना, हाथों से पाँव को छूना, नाक से चढ़ाये हुये फूलो को सूँघना और जिभ्या से चरणामृत का रस लेना। जो इस प्रकार की इन्द्री भक्ति करता है, उसे फिर चार प्रकार की ऊँची मानसिक भक्ति का प्राप्त अवसर मिल रहता हैं।

चित्त से गुरू के शब्द (बचन) का चिंतन, मन से गुरू की वाणी का मनन, बुद्धि से सार पदार्थ को छाँट कर निर्णय करते रहना और उसके अनुसार अपनी रहनी बना लेना और अहँकार से इष्ट पद का अभिमानी बनकर उसमे आरूढ़ हो रहना।

यह नौ प्रकार की नवधा भक्ति कहलाती है। जो ऐसी भक्ति करता है; उसके लिये कुछ दुर्लभ नहीं है। तू मुझे प्यारी है, और तुझ से बढ़ कर मैं और किसी को नहीं जानता।"

शबरी हँसी –"उल्टी सुल्टी बात! मेरा काम तो तुम्हारा दर्शन पाकर होगया और जब मैं और तुम दोनो एक हैं तो मुझे तो कुछ नहीं चाहिये। मेरे सर्वस्व तुम थे। अब तुम अपना काम कहो, क्या चाहते हो?"

राम बोले— "सीता हरी गई। मेरी सुषम्ना वृत्ति का हरण हो गया। मैं दुखी हूं। भक्ति भक्तो को नई २ सूझ सुझाती है। यह उसका स्वभाव है। तू भक्ति का रूप हैं। मुझे वह उपाय बता दे कि मेरी खोई हुई सीता फिर मेरे हाथ लगे।"

शबरी मुस्कराई –" तुम जान अनजान बनते हो। यह तुम्हारी लीला मुझे बड़ी प्यारी लगती है।"

जान बूझ कर पूछी बात मैं क्या कहूं खोल विख्यात।
पंपा सर में करो निवास। वहाँ सुग्रीव बनेगा दास॥
उस के संग तुम करो मिताई। मन बच कर्म करे सेवकाई॥
सो सीता का खोज लगावे। बिगड़ा हुआ सब काज बनावे॥
बानर कुल की यह है रीती। निज स्वामी हित पाले प्रीती॥
बानर साथ सधे सब काम। बानर प्रीत बनाओ काम॥
बिन सुग्रीव काज नहीं होगा। वह नहीं देगा तुम को धो [illegible]॥

राम शबरी का [illegible] हुये।

शबरी ने फिर उनसे सरल भाव से और नम्र वाणी से कहा "–सुनो राम! अब तक तुम मुझ में बसते थे। मेरा हृदय बरसों से तुम्हारा निवास स्थान बना था। अब मैं इस शरीर को रखना नहीं चाहती। मतङ्ग ऋषि कह गये थे कि राम का मिलना तेरी अन्तिम अवस्था है। अब मैं अपनी बारी पर तुम में बसना चाहती हूँ। भक्त और भगवन्त का परस्पर बर्ताव होता है। कभी नदी नाव में, कभी नाव नदी मे। अब तक लोग मुझे देखते थे। अब कोई न देखें। देखने दिखाने से मुझे चिढ़ सी हो गई है। चित्त उपराम हो गया।

पहिले मैं थक २ गई, सुमिर २ कर नाम।
आय मिलोगे कौन दिन, मेरे प्यारे राम॥१॥
राम मिले ममता गई रमता राम को देख।
अलख लखा लालच लगी, सूझा अगम अलेख॥२॥
तुम तो मुझ में रम गये, तुम में रमूं मैं राम।
रम रम कर रम रम रहूं, मन पावे विश्राम॥३॥

मेरे सामने खड़े हो जाओ। मैं तुम से और तुम्हारे रूप से आँख लड़ाऊँ। यक टक दृष्टि से तुम्हें देख कर तुम को आँखों मे, हृदय मे, एड़ी चोटी में बसालूँ और तुम में समाजाऊँ।"

नैनों अंदर आव तू, नैन झाँप तोहि लूं।
ना मैं देखूं और को, ना तोहि देखन दूं॥"

राम उसके सामने वीर रूप में धनुष बाण लेकर खड़े हो गये। वह दर्शन करनेलगी। दृष्टी से दृष्टी मिली। दृष्टि साधन हो गया। तीन हिचकियाँ आई। आखे बंद होगई। और शबरी ने प्राण त्याग दिये।

राम ने अपने हाथ से चिता बनाई। मरी हुई शबरी (शव,= मृत्यु, रा= लेना) को उस पर लिटा दिया। आग दी। ज्वाला प्रगटी। शरीर का सार तत्व अग्नि विमान पर चढ़कर कहाँ चला गया, कौन जाने! वह देखने में तो राख का ढेर प्रतीत हुआ, और उसका प्राण राम के प्राणमें मिल गया।

तीसरा समुल्लास

बसँत ऋतु और राम का विरह

शबरी का अन्त्येष्टि संस्कार करके राम और और लक्ष्मण ने उस वन से भी कूच किया। दोनों भाई साथ २ चले। वह चलते हुये, कछार के दो निडर सिंहों के समान प्रतीत होते थे।

यह तो निडर स्वभाव ही से थे। वन के पशु पक्षीभी इनके प्रभाव को देख कर 'निडर' होगये। कोई इन्हे देखकर भागता नहीं था। बल्कि इनके सुहावने, सुन्दर, रूप को देखकर थकटक देखने लग जाता था।

यह एक घने जंगल में पहुंचे। वह रमणीक था। वर्षा ऋतु का समय! पृथ्वी हरी भरी! वृक्ष हरे हरे पत्ते फल फूल से लदे हुये! यह घूमते फिरते हुये चले जारहे थे।

राम ने कहा-"लक्ष्मण! जब हम अहेर (शिकार) खेलने निकलते थे, पशु और पक्षी डर से भाग निकलते थे। एक वह दिन था, और एक दिन आज है, कि यह खड़े होकर मेरा मुँह ताकते हैं। तुम जानते हो, ऐसा क्यों है!"

लक्ष्मण ने कुछ उत्तर नहीं दिया। राम ने कहा-"इसका कारण यह है, कि जब हिरण और बारह-सिंगे भागने पर आते है इनके जोड़े समझाते हैं। तुम इनसे न डरो यह सोने के हिरणो के खोजी हैं। इनकी बुद्धि भ्रष्ट होगई। "विनाश काले विपरीति बुद्धि।" भला कहीं सोने का भी हिरण होता है। ऐसा कभी न देखा गया, न सुना गया और सोने के हिरन की खोज में राम का जोड़ा बिछुड गया। अब यह अकेले नारी विहीन होकर सोने के हिरणों की चिंता में रहते हैं। इनसे क्या डरना है! यह मुझे उपदेश दे रहे हैं, द्रव्य हाथ का, जोरू साथ की!" लक्ष्मण कुछ न बोले।

राम ने कहा—"उड़ते हुये पक्षी हमारे सिर और कन्धे पर आ आकर बैठ जाते है। यह क्यों ऐसे निडर हो रहे हैं।? कारण यह है कि यह सब मुझे शक्ति हीन समझ रहे हैं। सीता मेरी शक्ति थी। वह खो गई। मुझ मे शक्ति नहीं रहीं। कोई डरे तो क्यों डरे!"

लक्ष्मण बोले—"नाथ! वन मे आने से आप से हिंसा वृत्ति दूर होगई। अहिंसा परमोधर्मः आप धर्मात्मा हैं। हिंसक से प्राणीमात्र भय खाते हैं। अहिंसक से कोई नहीं डरता। सब उससे प्रेम करते है। यह आपकी प्रेम वृत्ति से मोहित होकर आपको अपना रूप समझ रहे हैं।"

राम हँसे—"बसँत ऋतु है। बन, पर्वत, नदी, तालाब, सब कैसे शोभायमान हो रहे हैं। मोर नाचते हैं। कोयल कूकू कर रही है। कबूतर और पँडकी अपने जोड़ों के साथ बिचर रहे हैं। सुगन्धित फूलों की महक से सारा जगत मह मह कर रहा है। तीतर फुदकते हैं, भौंरे मँडला रहे है और कैसी रुचि के साथ खिले हुये कमल की पँखड़ियों के होंट चूम रहे हैं। क्या तुम जानते हो कि ऐसा क्यों है?"

लक्ष्मण चुप! कहते भी यो क्या कहते! साधारण मनुष्य देखता तो निसँदेह कह उठता कि राम सीता के वियोग में पागल बन गये हैं। और पागलो जैसी बात चीत कर रहे हैं।

राम आप ही बोल उठे—"बसंत ऋतु काम देव का बाहन है। यह हाथ मे फूलो के धनुष लिये हुये, फलों ही के बाण से पुरुष और स्त्रियो के हृदयों को बेधता रहता है।"

इसने अपना दल संवारा। अपना साज सजाया। क्यों? मेरे ललचाने और लज्जित करने के लिये! वह यो खिले। मुँह से तो कुछ कहता नहीं, हाँ मानसिक वाणी में हँस २ कर खिल्ली उड़ाकर कह रहा है—"और जाओ, सोने का हिरण मारो। सोने का सुख तो उसे है, जिसके साथ स्त्री है। जो स्त्री को खो बैठा है, वह सोने के सुख को क्या जानेगा! सोने के हिरण की खोज मे जो सोने और सुलाने वाली स्त्री को गवाँ बैठा, उसपर मैं अपने

पुष्प वाण से क्या आक्रमण करूँ !" कामदेव मुझे अपनी सम्पति और अपनी सम्पदा को दिखा २ कर लज्जित कर रहा है।"

लक्ष्मण फिर चुप !

राम बोले-"केले के पौधे कैसे लहलहाते हुये पत्तों से परस्पर हाथ मिला रहे हैं। उनके लाल २ पत्ते अपनी कोमलता का दृश्य दिखा रहे हैं। फल नीचे की ओर लटक रहे है। तुम जानते हो ऐसा क्यों है ?"

लक्ष्मण चुप !

राम ने कहा-"आकाश और पृथ्वी परस्पर मिल रहे हैं। परस्पर प्रेम का बर्ताव कर रहे हैं। मैं किस के साथ बैठूं, उठूं। मेरा जोड़ा बिछुड़ गया। हाय सीता ! हाय [illegible] ॥

तू समुन्दर मे छुपी हो, जल के [illegible] की थाह लूँ।
उड़ गई आकाश को, आकाश की मैं राह लूं ॥
पृथ्वी में धँस गई, उस का कलेजा फाड़दूं।
बादलों में जा छुपी हो, बाणों से मैं झाड़दूं ॥
हाय सीता हाय सीता, हाय वह क्या होगई।
आप मैंने खोया उसको, और मुझ से वह खोगई ॥

लक्ष्मण को बड़ा दुख हुआ। यह केवल न[illegible] लीला थी, जो राम कर रहे थे। लक्ष्मण इसे जान[illegible] भी थे। फिर भी वह राम को शान्त और निःश्रा[illegible] देखना चाहते थे। राम ने अपना मुंह बन्द क[illegible] लिया। लक्ष्मण को और अधिक चेतावनी दे[illegible] नहीं चाहा।

चौथा भाग

पहिला समुल्लास

नारद

एक सुन्दर, गहरा और निर्मल जल से भरा हुआ झील मिला। उसके चारों तरफ बड़े और छोटे वृक्ष खड़े हुये थे। उनकी छाया पानी मे दिखाई देती थी। ऐसा प्रतीत होता था जैसे विम्ब और प्रतिविम्ब दोनों जड़ से जड़ मिलाये हुये जुड़े थे। सम्भव था कि राम उस दृश्य को देख कर लक्ष्मण से कुछ और कहते, लेकिन वहाँ देवताओं का समाज उनसे मिलने के लिये आगया। राम ठहर गये। पत्थर के चट्टान अधिकता के साथ वहाँ विछ रहे थे। एक चट्टान पर राम और उनके सामने की चट्टान पर लक्ष्मण बैठ गये और देवगण ने भी वहाँ पर आसन ज़माया। यह आये, मिले परस्पर बात-चीत की और मिल जुल कर चले गये। दोनों भाई अकेले बैठे हुये थे।

नारद कहीं जारहे थे। राम को देखा वह सीता के विरह में उन्मत्त बने हुये थे, मन से प्रेम उत्पन्न हुआ। आये और प्रणाम किया। राम ने सन्मान करके सिंहासन दिया। नारद ने कहा-"हाय प्रभू ! मैं बड़ा अपराधी हूँ। यह जो आप को दुख होर[illegible] है, इसका कारण मैं ही हूँ। मैं पामर जीव हू[illegible] आपकी माया बड़ी प्रबल है, और हम जीव उस[illegible] हाथ मे कठपुतलियों के समान नाचते रहते है[illegible] आपने मुझे विवाह करने से क्यों रोका ? न आ[illegible] रोकते न मैं आप को श्राप देता। यह आप की बहु[illegible] बड़ी महिमा है कि हम नीच जीवों के वचन [illegible] मान कर प्रतिपालना करते हैं। आप के अतिरि[illegible] ऐसा कौन कर सकता है !"

राम बोले-"सुनो नारद ! तुम और किसी का[illegible] के लिये हो और मैं किसी और काम के लिये[illegible] मेरा धर्म है कि तुम जैसे जीवों की सँभाल कर[illegible] रहूँ। माता उस समय तक छोटे बच्चे को पाल[illegible] है, जब तक उसमें सँभलने की शक्ति नहीं आत[illegible] जब वह अपनी रक्षा आप करने लग जाता [illegible] यह अपना ध्यान उससे हटा लेती है।

तुम मेरे बाल बच्चे हो। मैं ने देखा तुम गह[illegible] खाई में गिरने जारहे हो। तुम्हारे गिरकर डूब ज[illegible]

का भय थे [illegible] बना [illegible]ग। मैंने तुम्हे बचा लिया। तुम ने श्राप दिया। मैंने उसको भी अपने सिर पर सह लिया। मैंने क्या बुरा किया? उस दिन तुम ने मुझे बुरा भला कहा था। आज उसके विरुद्ध कह रहे हो।

नारद! तुम संत हो, सन्तो का जन्म दूसरो के उद्धार सुधार के लिये होता है। यह निष्काम कर्म करते हैं। दूसरो का दुख अपने ऊपर ले लेते हैं।

तरुवर फलें न आपको, नदी न पीवे नीर।
परमारथ के कारणें, सन्तन धरा शरीर॥
तरवर सरवर सन्त जन, चौथे बरसे मेह।
परमारथ के कारण, चारों धारें देह॥

इन सन्तों के महाशत्रु काम क्रोध, लोभ मोह और अहँकार हैं। इन पाँचो मे से एक भी इनके सामने आजाये तो पाँचो के पाँच मिलकर जीवो को दबोच लेते हैं और वह मारा जाता है। सन्त कामी, क्रोधी लोभी और अहँकारी हुआ तो फिर उसमे और साधारण जीवो मे क्या अन्तर रहा। तुम पहिले अहँकारी बने फिर कामी, क्रोधी, लोभी और मोही होगये। पाँचो रोगों ने तुम को ग्रस लिया।

मैंने सोचा बड़ा चीरा लगाया जायगा, तब ही बचाव होगा, और मैंने जान बूझ कर बड़ा चीरा लगा दिया और तुम बालरबच गये। मैंने क्या बुरा किया! तुमने श्राप दिया। मैंने उसे भी अङ्गीकार कर लिया। यह भी उस रोग का अन्तर मे भरा हुआ पीव था।

वह रहता तो तुम रोगी के रोगी बने रहते। कभी न कभी जब यह उभरता, तुमको दुखी करता। मेरा वर्तमान कर्तव्य तुम्हारे उसी दुष कर्म का प्रायश्चित है। इसे होने दो, इससे मेरा क्या बनता बिगड़ता है। मै ही तो इस संसार की व्यापक शक्ति हूँ। जो खेलखेल मे खेल हो रहा है, वह मेरा ही खेल है। मै विचित्र खिलाड़ी हूं।

कभी जड़ में हूँ और जड़ता बना हूं।
कभी चित हूं, चित्त की चिन्ता बना हूं॥
हुआ सत तो इस सत् की सत्ता बना हूं।
रमा रम के मैं राम रमता बना हूं॥

यहां हूं, वहां हूँ वहां हूँ, यहाँ हूँ।
खुले ज्ञान दृष्टि, जहाँ का तहां हू॥
हुआ पानी-पानी का सागर बना मै।
बसाया नगर और नागर बना मै॥
गुणी गुण हुआ हूँ गुणागर बना मै।
सहस रूप से हूँ, उजागर बना मै॥
जो कुछ देखते हो वह मेरी है दृष्टी।
मेरी दृष्टि में रहती सारी है सृष्टी॥
हुआ फूल और फूल का वास ठहरा।
हुआ तत्व, तत्त्वों का आकाश ठहरा॥
धरा रूप शिव का कैलाश ठहरा।
हुआ सांस सासों की मै श्वास ठहरा॥
है क्या जगत! माया का मेरा पसारा।
निराधर होके हूँ सब का सहारा॥
मेरा शब्द कोयल के है मुँह का कूक।
मेरी शक्ति करती है 'मैं' 'मैं' में तू तू॥
हूँ फुदकी के मैं चोंचें। का आप चूचू।
सुनो आग में रह के करता हूं सूसू॥
मुझे कहते हैं ओ३म् यह नाम मेरा।
मेरी सांस प्रणाव है और काम मेरा॥

जो सत हूँ तो सत का सतो गुण हुआ मैं।
हू तम और तम का तमोगुण हुआ मैं॥
हुआ व्याप्त रज में रजोगुण हुआ मैं।
हुआ शून्य इनसे तो शून्य हुआ मै॥
प्रकृति हूं मैं और मेरे सहारे प्रकृती।
मैं ही ऋद्धि सिद्धी मैं ही योग युक्ती॥

लीला—लीला मात्र है। किस दुविधा में फिर पड़गये। ऐसे संशय को चित न दिया करो। लीला देखो, और अपना काम बनाओ। नारद की आखे खुली।"

धन्य महिमा आपकी, है धन्य अद्भुत ज्ञान है।
आपही के पद कमल मै सद् गति निर्वाण है॥

प्रभु! यह वर दीजिये कि त्रेता के इस अन्तिम भाग से लेकर द्वापर और कलयुग में 'राम' नाम

की गूँज हर जगह में गूँजी रहे। और इस नाम में सब योग-युक्ति, ऋद्धि सिद्धि, निद्धि शक्ति का फल प्राप्त करें।

यही होके अनहद करे काम सबका।
इसीसे हो कल्याण विश्राम सबका॥
यही मुख्य हो नाम और नाम सबका।
यही ठहरे पर[illegible] एकका॥
यही बर मिले मुझको, बरदान दीजे।
इसीसे हो कल्यान कल्याण कीजे॥

रामने कहा—"एवमस्तु" और नारद पाँव पड़ कर, वीणा बजाते, नाचते गाते, प्रेम में निमग्न होकर जिधर को जारहे थे चले गये।

दूसरा समुल्लास

नारद की कथा

एक समय नारद तपस्या कर रहे थे। इन्द्र को भय हुआ, कहीं तप बल से मेरा इन्द्रासन न छीन लें। अप्सराओं को सिखा पढ़ा कर भेजा कि नाना प्रकार से इस तपस्वी के तप को भंग करदो।

वह आईं, बैठीं। नाचीं गाईं, भाव बनाये, करतब दिखाये, नारद परइनका प्रभाव नहीं पड़ा। इन्हे प्रमाद और घमण्ड हुआ। मैंने काम को जीत लिया।

विष्णु लोक में गये, विष्णु को प्रणाम करके बोले—"प्रभो! मैं ही अकेला इस संसार मे आपका सच्चा भक्त हूं। काम मेरे तपको भंग करने आया। वह मेरा कुछ भी न करसका। हार मान कर चला गया। मैंने उसे जीत लिया।"

विष्णु हँसे, मुस्कराये—"तुम्हारे लिये काम का जीत लेना कितनी बड़ी बात है। सन्त जो चाहे कर सकते हैं"

नारद घमंड में चूर, नमस्कार करके लौटे। विष्णु ने माया को प्रेरणा की, "जाओ, अभी इस घमंडी के गर्व पात्र को तोड़ फोड़ दो।"

माया ने अपना चमत्कार दिखाया। नारद के रास्ते मे एक सुन्दर और विचित्र नगर रच दिया। यह भौंचके रह गये। जगंल मे यह मँगल कैसा! नगर में गये। राजा से मिले। इसने अपनी शोभा रूप कन्या को दिखाकर पूछा—"इसे कैसा बर मिलेगा? कल स्वयम्बर होगा।" नारद ने कन्या का हाथ पकड़ा। उसकी काम वृत्ति भी इनके रग २ मे दौड़ गई। कहने को तो यह कह दिया कि यह लक्ष्मी है. लेकिन मोहित होगये। मन में सोचने लगे—"क्या अच्छा हो जो यह कन्या मुझे अपना दूलह बनाले! विष्णु महा सुन्दर हैं। चलो, उनसे उनका रूप माँग कर कल स्वयंम्बर में आऊँ और इसे व्याहूँ।"

विष्णु लोक मे गये। विष्णु से प्रार्थना की—"अपना रूप मँगनी दीजिये।" विष्णु का नाम हरी भी है और हरी बन्दर को भी कहते हैं। उनको वर दिया। इनका मुँह बन्दर जैसा हो गया।

यह आये, स्वयंम्बर शाला मे ऊंची जगह पर बैठे। राज कन्या तीन बार घूमी फिरी। यह उछल २ कर मुँह बनाते, आँखे मटकाते। वह हंस कर चली गई। अन्त मे विष्णु के गले मे जैमाल डाल कर उनके साथ स्वर्ग को चली गई।

नारद निराश होकर बड़ बड़ा उठे। "मुझसे अधिक सुन्दर आज इस संसार मे कौन है। कन्या ने मुझे क्यों नहीं व्याहा।" पास ही विष्णु के तीन द्वारपाल इनका उछलना कूदना देखकर मुस्कराते और हँसी ठट्ठा करते रहे। इनसे कहा—"बन्दर-राज! पानी मे जाकर अपना रूप तो देखो!" यह गये, पानी में अपना रूप देखा।

सब रूप था लँगूर का और दुम की कसर थी। लौटे, द्वारपालो को श्राप दिया—"जाओ" राक्षस हो जाओ और क्रोधाग्नि मे भर कर विष्णु की सभा मे पहुंच कर दुर बचन कहा—"छली, कपटी! मुझे बन्दर बनाया। मेरी चहती कन्या को हर लिया।

जाओ, नर [illegible] ।, और बन्दरों से सहायता लो

विष्णु हँसे—"एव मस्तु।" और माया ने अपना प्रभाव समेट लिया। विष्णु बोले—"तुम को हो क्या गया। अभी गये, अभी आये, आसन गर्म का गर्म है।" यह कुछ न बोले लज्जित होकर बाहर आये, तीनो द्वारपाल मिले। अब नारद नारद के बन्दर नहीं रहे थे। अपराध की क्षमा माँगी" नारद को दया आई, कहने लगे—"राक्षस तो तुम अवश्य होगे। विष्णु से वैर भाव करना। तीन जन्म मे तुम्हारा उद्धार होगा।"

यह रामावतार नारद के श्राप से हुआ था, जिसका वर्णन संकेत मात्र पहिले समुल्लास मे आगया है और विष्णु के सेवक देवता बन्दरो के रूप मे प्रगट होकर दक्षिण देश मे इनकी प्रतीक्षा करने लगे। द्वारपाल, रावण, कुम्भकर्ण, और विभीषण होगये, जिनकी लीला आगे के खंडो मे आयेगी।

महारामायण का बन साधन खंड

समाप्त

प्रथम भाग

पहिला समुल्लास

किष्किन्धा

बन खंड (आरण्य) का साधन समाप्त हुआ। अब पहाड़ और पहाड़ी गुफा में निवास करना है। बन में तप होता है। इन्द्रियों के शम (शान्त) करने की आवश्यक्ता रहती है, और पहाड़ के एकान्त सेवन से मन के दम (दमन-रोकना) का लाभ होता है।

बन में राम ने सब कुछ कर लिया, लेकिन शुषुम्ना की हानि हुई। भक्ति की सूझी। शबरी से मिले। इसनेशिक्षा दी। किस बात की शिक्षा दी? सुग्रीव से मित्रता करो। वह काम आयेगा और खोई हुई सीता मिल जायेगी। पम्पासर का पता दिया, ऋष्य-मूक पर्वत का ठिकाना बताया जो किंषकिन्धा राज में है।

सुग्रीव कौन है? सुन्दर-सु (अच्छा) और ग्रीव (कँठ गला), इसका नाम सुकँठ भी है। सुकँठ कहते हैं मिठ भाषण करने वाले को। सुन्दर और सुभाषण! क्या कभी ऐसा सुना है? या कभी ऐसा देखा है? असँभव। व्यवहार के जगत में ऐसा सुनने और देखने मे नहीं आया। यह रामायण ही है जो बन्दर को सुग्रीव और सुकँठ की पदवी देती है।

बानर. सँस्कृत 'बा' (सदृश-समान) 'नर' (मनुष्य) जो मनुष्य के सदृश और समान हो वह बानर कहलाता है और मनुष्य वह है जिसमें म की मनन वृत्ति की प्रबलता हो!

पम्पासर, पम्प (पानी) सर (तालाब), ऋष्यमू ऋष्य (चलना) और मूक (चुप चाप), जहां चुप च चला जाता है वह ऋष्यमूक पर्वत है। किषकिन्ध संस्कृत किष (गुफा) किन या किम् (क्या) औ धा (धारण करना), क्या धारण करना है? गुप को धारण करना यह किषकिन्धा है। इतनी बा बता दी गई। यह सच्ची हैं या झूँठी? इसका बिच तुम आप करो।

यह प्रसँग मन के दमन का है, और इस म का रुप क्या है? बन्दर का। यह चित्त में रक्खो

बाल—लड़का।

अयोध्या—अवधि, शरीर-दशरथ, दश इन्द्री वा की राजधानी।

आरण्य-बन, तप जप से इन्द्रियों को शान्त किय जाये।

किषकिन्धा-जिससे मन की रोक थाम हो सके

यह चार खँड या काण्ड हैं।

इस काण्ड मे मन रूपी बन्दर के खेल क लीला है। इस का ध्यान रहे। फिर आगे प्रसँग क

आप ...मे आता चले... ...सोचने, सोचते रहने ... दृढ़ करने से समझ मे आयेगा। ...; रामायण को पढ़ते, गाते, रामा भज रामा करते हैं। उनका अधिकार और संस्कार वस इतना ही है। उन्हें छोड़ो। तुम विचार-शील और विवेक शील हो। तत्व ग्राहक बनो। इससे बहुत लाभ होगा और महीनों ही मे जीवन कुछ का कुछ बनने लगेगा।

यह मन क्या है? बन्दर है और बन्दर भी महा बिचित्र बन्दर है।

बिना हाथ के शाखा पकड़े, बिना पाँव के डोले।
मुंह के बिना स्वाद रस लेवै, बिन वाणी के बोले ॥१॥
लूला लँगड़ा पर्वत लाँघे, लंका पर चढ़ जावे।
सीता सती का पता लगावे, राम की भक्ति कमावे ॥२॥
चित से चिंतन मन से मनन करे, बुद्धि से नाता जोड़े।
राम का सच्चा अभिमानी मन, जगका भाडा फोडे ॥३॥
दृढ़ निश्चय विश्वास की दृढ़ता, किष्किन्धा में वासा।
राम मिलें करे राम की भक्ती, सबसे रहे उदासा ॥४॥
किष्किन्धा का मर्म सुगम है, कोई २ भेदी जाने।
ले दुरबीन हाथ में अपने, लंका देख दिखावे ॥५॥

यह इस खंड की भूमिका है। इसे चित्त में रखकर तब कथा प्रसंग का रस लो।

दूसरा समुल्लास

राम हनूमान

ओ३म् भूः ओ३म् भुवः ओ३म् स्वः ओ३म् भूर् भुवः स्वः चुप!

चुप हो जाओ छोड़ो चिंता इस भू लोक की।
...स्थिरभ्रान्ती, निर्वाणवती सुख शोक की ॥१॥
फिर भुलाओ भुवर को, और ओ३म् का साधन रहे।
अन्तरिणी भाव छूटे, ओ३म् निस दिन मन कहे ॥२॥
इतना करलो और फिर, सुर लोक की चिंता को त्याग।
आगे हो, 'सवितुर वरेण्यम तत, तो जागे सोया भाग ॥३॥
बंध जब तीनों लगे, बन्दर की करनी रोक थाम।
हलके, पीछे मेरे मित्रो! पाओगे तुम राम नाम ॥४॥
नाम लेने की यह युक्ति है, इसी से काम लो।
यत्न हो सच्चा निरूपण, नाम में विश्राम लो ॥५॥
उलटो भव को, और मन से राम का लो उलटा नाम।
वाल्मीकि वन के पाओ, ब्रह्म का फिर सच्चा धाम ॥६॥
भेद देता हूँ तुम्हें, भेदी हू मैं सत देश का।
मैं नहीं सांगी बना, साधक नहीं हूँ भेश का ॥७॥

राम लक्ष्मण ने आगे की ओर पग बढ़ाया। चलते चलते ऋष्यमूक पर्वत की चोटी दिखाई दी। इसकी तराई में बंध बाँध कर पम्पासर का झील बनाया गया था। ठंडी २ हवा बह रही थी। झील लम्बा चौड़ा था। दोनों भाई उस की परिक्रमा करते हुये पहाड के नीचे जा पहुंचे।

वहां अपने मन्त्रियों के साथ सुग्रीव रहता था। उसने ऊपर पहाड़ की चोटी से इन दोनो सिंहों को आते हुये देखा। डरा, सहमा, भयभीत हुआ। उसके सहायक युवकों मे एक बन्दर का नाम हनूमान था। वायु के समान तेज दौड़ने वाला था और इसी उपेक्षा के कारण वह मारुती, मारुत सुत और पवन कुमार भी कहलाता था। इसका शरीर वज्र के समान बली था जिसको न शस्त्र छेद सकता था, न कोई हथियार घायल कर सकता था। उसको लोग बजरंग बली भी कहते थे।

सुग्रीव ने हनूमान को बुलाया। वह आगये। सुग्रीव ने हाथ की उँगली के सँकेत से पहाड़ पर चढ़ने वाले वीरों को दिखा कर कहा—"वह देखो, दो वीर पुरुष चले आरहे हैं। इनका बालकपन विचित्र है। मस्त मतंग हैं। इनके अंग २ से वीर रस टपक रहा है। यह कौन हैं कौन नहीं हैं इसका पता लगाना है। कहीं यह 'बाली' के गुप्त दूत तो नहीं हैं जो मेरा पता लेने को आरहे हैं। ऐसा हो तो मैं इससुन सान

पर्वत से भी अपना डेरा दण्डा उठाऊँ। यहाँ से कूँच करूँ। बाली जब तक जीता है, मुझे सुख चैन न लेने देगा।"

हनूमान ने उसी समय ब्राह्मण का भेष बनाया। गले में यज्ञोपवीत डाला। तिलक लगाया। एक हाथ में पोथी पत्रा लिये, दूसरे मे एक पानी पीने की छोटी लुटिया ली। नंगे सर, नंगे पाँव और नंगे बदन पहाड़ की चोटी से नीचे उतरे। राम लक्ष्मण चले आरहे थ, इनसे मिले।

हनूमान ने पूछा—"आप कौन है? बाँके और वीर राजपुत्रों के समान इस पहाड़ पर चढ़ रहे हैं! साँवला गोरा रङ्ग! सुडौल, साँचे में ढला हुआ शरीर! आपकी हालत बता रही है कि आप यहां के रहने वाले नहीं हो। आपकी देह कोमल है। वह ऐसी कड़ी और पथरीली भूमि मे चलने के योग्य नही है। सम्भव है कि या तो आप नर नारायण है या त्रिदेवों ब्रह्मा विष्णु शिव की श्रेणी के देवता हैं। यहां आने का कारण क्या है? कही तुम ब्रह्म के अवतार तो नहीं हो, जो इस भूमि के भार उतारने के लिये प्रगट हुये हो!"

राम ने उत्तर दिया—"सुनो वीर! हम अवध के राजकुमार राम और लक्ष्मण है। भाई भाई हैं। हमारे साथ, मेरी स्त्रीसीता थी। राक्षस धोका देकर उसे हर लेगये और हम उसीको वन २ पर्वत २ और कन्दरा २ में खोजते फिरते है। राक्षसो ने उसे कहां लेजाकर छुपाया है, इसका हमको पता नही है। हमारा चरित्र बस इतना ही है। तुम कौन हो और किस मन्तव्य से हम परदेशियों से यह पूछा पेखी कर रहे हो इसका कारण बताओ?"

उत्तर के सुनते ही हनूमान राम के चरणो मे गिरे, पहचान गये। सोया और दबा हुआ संस्कार जाग उठा:—

मेरे स्वामी आप हैं और मैं तो किंकर दास हूँ।
माया ने भ्रमाया मैं भर्मा हुआ दुख रास हूँ॥
एक तो बुद्धि से मन चित से रहता हूँ विकल।
दूसरे माया तुम्हारी हो रही है अति प्रबल॥
कैसे मैं पहिचानता और कैसे तुमको जान।
जान कर पहिचान कर भी कैसे यह मन मानता॥
आप हैं अनुमान के और ज्ञान के बुद्धि की खान॥
औगुणी हूं निर्गुणी हूं दुर्गुणी बानर हूँ मैं।
भव में लम्पट होगया, नागर न गुण आगर हूँ मैं॥
भूलना मेरे स्वभाविक, जीव पामर बन गया।
जीवों में मै हूँ अधम और नीच बानर बन गया॥
तुम मुझे भूले भुलाया दास को क्यों हाय राम।
क्या नहीं सेवक तुम्हारा, क्या नही लेता हूँ नाम॥

यह कर हनूमान विकल होकर चरणों से लिपट गये, और लगे धाड़ें मार मार कर रोने!

राम ने उन्हें उठा कर अपनी छाती से लगा लिया—"

चुप रहो भांडा न फूटे, लीला करने आया हूँ।
लीला, नर लीला है नर का भेष भरने आया हूँ॥
तुम मुझे प्यारे हो, और प्यारे हो लक्ष्मण के समान।
मैं नहीं भूला तुम्हें, तुम ही मेरे हो जान प्राण॥
जगत के ब्यौहार में व्यौहार का करता हूँ खेल।
खेल देखो खेल में आनन्द और सुख का हो मेल॥
नर बना नर रूप में नारी की संगत हो गई।
मै दुखी होकर फिरा बन २ में जब वह खोगई॥
तुम हो बन्दर बन्दरों की लीला की दो अपना चित्त।
अन्त करदो लीला का इस अन्त ही से होगा हित॥

हनूमान राम की कृपा को देखकर सारा दुख क्लेष भूल गये, और राम के चारों ओर परिक्रमा करते हुये बन्दर के समान कूदने फांदने लगे। उनके आनन्द की सीमा न थी।

हनूमान बोले—"प्रभो! इस ऋष्यमूक पर्वत पर सुग्रीव रहते है, उन मे चलकर मिलिये। वह आपकी सेवा करेंगे और सीता का खोज लगायेंगे। आप दोनों भाई मेरे कँधों पर चढ़ बैठिये। मैं उछलता कूदता आपको पर्वत पर पहुंचा दूंगा। वैसे इसकी चढ़ाई कठिन है। चढ़ते हुये मनुष्य का पांव डगमगाता और लड़खड़ाता है।"

राम लक्ष्मण दोनों हनूमान के कँधो पर चढ़ बैठे और उसने सुग्रीव के पास पहुंचा दिया।

राम-सुग्रीव

राम को देख कर सुग्रीव सुखी होगया, जैसे निरधन को धन मिल जाय तो वह आनंद को प्राप्त हो जाता है। उठा, भाइयों के पाव मे झुका। दोनों ने उसे छाती से लगाया।

हनूमान ने उसे सब समाचार सुना दिया। उसने आग जलाई—"भगवन! सूर्य, आकाश की ज्योति और अग्नि, पृथ्वी की ज्योति को साक्षी देता हूं। दिन का समय है। चन्द्रमा, रात्रि की ज्योति होती तो इसको भी साक्षी करता। मन, वचन, कर्म से आपकी सेवा करता रहूँगा। जैसे हो सकेगा, सीता का खोज लगाऊँगा। यही नहीं, उसे आप से मिला कर छोड़ूँगा। सिर चाहे जाये, चाहे रहे, जीवन पर्य्यन्त सीता के खोज की धुन को न छोड़ूंगा। आप सन्तोष करें। मेरे साथ जितने बन्दर हैं सब आपके सच्चे सेवक होंगे।

एक दिन हम सब बन्दर यहाँ बैठे हुये थे। एक आकाशी विमान फड़फड़ाता हुआ जा रहा था और उसमे से हाय राम! हाय राम! के साथ रोने का शब्द आरहा था। हम सब उठे, पूछा "कौन"? उत्तर नहीं मिला। हाँ, एक स्त्री ने विमान की खिड़की से सिर निकाल कर कुछ वस्त्र और आभूषण नीचे गिरा दिये। आकाशी रथ तो चला गया, वस्त्र और आभूषण मैंने रख छोड़े हैं।"

राम ने कहा—"जल्द लाओ।"

बन्दर दौड़े। उन्हे सामने लाकर रख दिया।

राम पहिचान तो गये कि यह सीता के है लेकिन लक्ष्मण से पूछा—"देखो तो सही यह सीता के हैं या किसी और के?"

लक्ष्मण ने उन्हें देख कर कहा—"कंगन और आरसी को तो मैं पहिचानता नहीं, हाँ! प्रातः काल सीता के चरणों मे सिर झुकाने जाता था। यह नूपुर (अनवट) उसी के पाँव के हैं। इसमे किंचित् मात्र संदेह नहीं है।"

राम ने वस्त्र और आभूषणों को लेकर अपनी छाती से लगा लिया। सुग्रीव ने कहा—"आप चिन्ता न कीजिये। मैंने दृढ़ प्रतिज्ञा कर ली है। मैं आपकी सीता का पता लगाकर छोड़ूँगा।"

राम बोले—"मुझे तुम्हारी बात का विश्वास है, लेकिन यह तो बताओ तुम हो कौन! और यहां इस निर्जन और सुनसान पर्वत पर क्यो बसे हो? इसका कारण क्या है?"

सुग्रीव ने ठण्डी साँस खींची।

"मैं और बाली दो भाई हैं। हम दोनो में परस्पर प्रेम था और सब सुखी थे। एक रात ऐसा हुआ कि हमारे महल के सामने माया का सथ सुत आया और बाली का नाम लेकर पुकारा। वह गहरी नींद मे सो रहा था। अपना नाम सुन कर उठा। मुझे साथ मे लिया और हम दोनो उसके शब्द की ओर गये। वह बाली २ पुकारता जाता था और भागा चला जाता था और हम दोनो उसके पीछे २ थे। पहाड़ के समीप जाकर वह एक गुफा मे छुप रहा। फिर पुकारने का शब्द बन्द हो गया। बाली ने कहा—"तू गुफा के मुँह पर बैठा हुआ मेरी बाट देखा कर। मैं इसको मार कर अभी आता हूँ" बाली महा बलवान है। उसे अपने बल का बहुत घमण्ड है, वह निडर होकर गुफा के अन्दर बैठा। मैं उसकी आज्ञानुसार गुफा के मुँह पर एक महीने तक बैठा रहा। वह नही आया और गुफा से रक्त की धार बहने लगी। लोग नगर से आये। मुझे समझाने बुझाने लगे कि बाली मर गया। राजसिंहासन को सूना नहीं रखना चाहिये। प्रजा बिगड़ जायगी या कोई शत्रु आगया तो सब कुछ छीन लेगा और दुखी करेगा।"

"मुझे राज की इच्छा नहीं थी। क्या करूं बेबस था। प्रजा और मन्त्रियो ने मिल मिलाकर मेरा तिलक-उत्सव मनाया और मैं राज करनेलगा।"

"छः महीने पीछे बाली लौटा। मुझे सिंहासन पर बैठा हुआ देख कर क्रोधित होगया। तान कर एक घूँसा मारा। मैं बिकल हो गया। नगर को छोड़ यहां इस ऋष्यमूक पर्वत पर आकर ठहरा। बाली को श्राप है कि वह यहां नहीं आसकता। मैं फिर भी उससे भयभीत रहता हूँ। कौन जाने वह कब आजाये और मुझे मार खपाये। यह मेरे जीवन का मुख्य संक्षिप्त वृतान्त है। बाली ने मेरा सब कुछ छीन लिया, घर बार, धन स्त्री, तक को लेलिया।"

राम हँसे—"बाली के नाम का जो शब्द सुना गया, वह उसकी मृत्यु का संदेशा था। मय सुत (संस्कृत 'मय' चाल, और 'सुत'—लड़का), विश्वकर्मा (जगत के कर्मों) का प्रबन्ध करता है। जब कर्मों का प्याला घिर कर झलक उठता है, तब मरने वाले मनुष्य को यह काल चेतावनी देने लगता है:—

रह संभल कर तेरे चलने का समय अब आगया।
भोग हैं योनि के जो कुछ थे उसे भी पागया ॥१॥
अब नहीं रह सकता दो दिन के लिये संसार मैं।
चल तुझे बंधना पड़ेगा विश्व कारागार मैं ॥२॥
दुष्ट बन कर झुका
भाव भक्ति छोड़ कर दु[illegible] पगा ॥३॥
नर्क में चल, नर्क में चल कर [illegible]निवास।
आश सब की छोड़ कर होजायेगा सब से निरास ॥४॥
जैसी करनी वैसी भरनी मिलता है करनी का फल।
रहते हैं फिर भी यह नर अहंकार में अपने मचल ॥५॥

यह शब्द क्या है उसे भी सुनो—

क्या तू सो वे मोह नींद में जाग कूचका दिन नियराना ॥
पहिले नगाड़ा केश भये उजले दूजे शब्द नहि काना ॥१॥
तीजे नैन दृष्टि भई थोड़ी, चौथे आया साहब परवाना।

बाली को काल ने पुकारा। उसने उसके अभिप्राय को नहीं समझा, उल्टे उसके साथ युद्ध करने चला। काल की गुफा मे बैठ कर उसने मय सुत को तो पाया नहीं। वह मायावी था। हाँ, वहाँ के जीव जन्तुओ को मारते हुये लहू की नदी बहादी। अभी कुछ आयु शेष थी। लौट कर तुम को सताने लगा। अब उसके कर्मों का प्याला भर कर झलकने को है और मैं इस दुष्ट को एक ही बाण से मार गिराऊँगा। इस मे सँदेह न करो।"

चौथा समुल्लास

सुग्रीव का सँशय

सुग्रीव ने कहा "भगवान्! मुझे आप के वचनों का विश्वास तो है, लेकिन बाली को मै बचपन से जानता हूं। वह महा बलवान है। एक समय रावण उससे लड़ने आया। उसने उसे दबोच लिया और छः महीने तक अपनी बगल में दबाये रक्खा। बहुत प्रार्थना करने पर छोड़ दिया। मैं कैसे कहूँ आप सहज रीति में उसे मार सकोगे!"

राम बोले—'रावण रजोगुणी वृत्ति है। बाली काम का रूप इसका प्रबल अंग है। स्थूल काम अंग ने रजोगुण को दबा रक्खा यह संभव है। कोई आश्चर्य्य की बात नहीं है, लेकिन कामी पुरुष अपने काम के बल से, निर्बल, निर्बुद्धि और निर्विवेक बना रहता है। अकामी और निष्कामी पुरुष के हाथ से उसकी मृत्यु होती है।"

सुग्रीव का संशय निवारण फिर भी नहीं हुआ और कैसे होता! एक तो स्वाभाविक चँचल दूसरे आपत्तियो का मारा हुआ। तीसरे भयभीत होकर भागा हुआ!

चंचल मन अति पातकी, तिसपर मदिरापान।
बिच्छू ने तब डस लिया, पाया दुःख महान ॥
उछले कूदे विकल हो शान्ति होगई दूर।
तलपे तड़पे रात दिन, चंचलता भरपूर ॥

सुग्रीव ने कहा—"नाथ आप जो कुछ कहते हैं, सब सत्य है। बाली महा बलवान है। आज तक किसी ने उसका सामना नहीं किया और जिसने कभी उस से लड़ने का साहस किया कुत्ते की मृत्यु मरा है। यहाँ सात ताड़ के लम्बे २ गाछ हैं, जो बीच से टेढ़े और झुके हुये हैं। साथ ही दुदुंभी

नामक ... सिर की खोपड़ी पड़ी हुई ... जो कोई एक बाण से इन ताड़ों को छेदता हुआ गिरादे और साथ ही उसी बाण से दुन्दभी की हड्डी को उड़ादे केवल वही पुरुष वाली पर विजय पा सकता है।"

राम ने पूछा—'इनका वृतान्त क्या है ?

सुग्रीव ने उत्तर दिया—"वाली नित्य ताड़ी पिया करता था। वह प्रातःकाल आकर सातो ताडो को हाथ से पकड़ कर झुका देता था और उनका रस पी लेता था। वह अब तक खड़े हैं। और दुन्दभी एक राक्षस था जो मायावी वेमय के गुफा में छुप जाने के पश्चात् वाली से लड़ने आया। वाली ने ऐसी गदा तान कर मारी कि वह मर गया। उसकी खोपड़ी मे रक्त बहता था और वह यहाँ इसी पर्वत की चोटी पर आकर गिरा। मूक ऋषि इस स्थान पर तपस्या कर रहे थे। रक्त उनके शरीर पर आकर गिरा। उन्हें बुरा लगा। श्राप दिया कि वाली यहाँ पर आयगा तो उसकी मृत्यु होजायगी, और जो कोई पराक्रमी पुरुष एक बाण से इन ताड़ों को छेद कर गिरा देगा और दुन्दभी को उसी से उड़ायेगा तो उसको इस अधम पर विजय मिलेगी। ऋषि ने तो इस स्थान को अशुद्ध समझ कर छोड़ दिया; और कहीं चले गये। वाली भय वश यहाँ नहीं आता।"

राम ने कहा—"चलो मुझे दिखा दो।"

सुग्रीव उन्हें वहाँ ले गया। राम ने बाण को धनुष से जोड़ा। वह उड़ा! सातो ताड़ों को छेद कर गिरा दिया और दुन्दभी की भी खोपड़ी मृदङ्ग के समान बजती हुई उड़ी। कहाँ गई किसी को पता नहीं मिला। सबको आश्चर्य्य हुआ।

> यह सप्ताह का मर्म है, समझें सन्त सुजान।
> सुरत धनुष में जोडकर, मारे शब्द कर बाण ॥१॥
> तरुवर माया का गिरे, खँड खँड सत खँड।
> ऐसे साधक सुजन को, नहि बाधा नहि दण्ड ॥२॥

सुग्रीव को विश्वास तो हुआ, लेकिन यह मन बड़ा पापी है। इसके भीतर इतने सँशय और विपर्य्य भरे हुए हैं कि वह जल्दी दूर नहीं होते।

> गुरु बिचारा क्या करे, जो हृदय भया कठोर।
> नौ नेज़े पानी चढ़ा, मूखी कोर की कोर ॥१॥
> गुरु बेचारा क्या करे, चेले में है खोट।
> वचन भाव विश्वास नहिं, सहे काल की चोट ॥२॥
> गुरु बेचारा क्या करे, चेले में अभिमान।
> तिस को जम न्योता दिया, हो हमरे महिमान ॥३॥
> सतसंग सतसग क्या करे, सत सगी नहिं कोय।
> कथा, वार्ता, कीर्तन, यह नहिं सत सँग होय ॥४॥
> सत का सग सतसंग है, और नहीं सतसंग।
> सत गुरु सङ्ग सतसङ्ग है, करे भ्रम को भङ्ग ॥५॥
> गुरु के सङ्ग में जाय कर, मिसरी नीर सम बन।
> घुल ना मिल जा नीर में, यही है मुख्य जतन ॥६॥
> पत्थर सम जल में पड़ा, सुने न माने बात।
> गुरु बेचारा क्या करे, कुछ नहिं आवे हाथ ॥७॥

पाँचवाँ समुल्लास

राम का सुग्रीव को प्रेम भाव सिखाना

राम ने सुग्रीव को समझाया—"प्रेम में बल और शक्ति है। अप्रेम (द्वेष) मे निबलता और कायरपन रहता है।"

"प्रेमी अपने प्रेम बल से बलवान्, धैर्य्यवान् और शान्तिवान बना रहता है। और जिसमे प्रेम नहीं है वह ईर्षा और द्वेष-अग्नि से अपने मन मे आप जला करता है"।

'प्रेम मे ठंडक है। प्रेमी का हृदय ठंडा रहता है। और जो लोग उससे मिलते हैं और उसकी बाते सुनते हैं, वह भी ठंडे और शीतल स्वभाव वाले हो जाते हैं।"

"मेरे गुरू विश्वामित्र ने मुझे चेतावनी दी कि विश्व (जगत) के मित्र बनो—"मित्रस्य चक्षु सा महे" (सब को मित्र की दृष्टि से देखो) हिंसक बनकर

किसी का हृदय न दुखाओ–"अहिंसा परमोधर्मः" (सबसे बड़ा अधर्म इस जगत में अहिंसा ही है)।"

"ऐ सुग्रीव! अब मैं तुम्हारा मित्र हूँ। जो मित्र के दुख से दुखी नहीं होते उन पर आपत्ति और विपत्ति का आक्रमण होता है।"

"मित्र का दुख राई के समान छोटा हो, तो उसे हिमालय पर्वत समझे और अपना दुख हिमालय है तो उसे राई प्रतीत करे।"

"मित्र वह है, जो संकट के समय मित्र के काम आवे। और वह जो स्वार्थी है सामने चिकनी चुपड़ी बातें करता है, पींठ पीछे निन्दा करता रहता है, यह न मित्र है और न हो सकता है।"

"मैं तुम्हारा मित्र हूं। एक तुम और एक मैं! एक २ मिलकर दो और एक २ मिलकर ग्यारह होते हैं।"

"दो जन मित्र हैं और दोनो के मन मिल गये हैं तो वे पहाड़ को खोद कर ढा सकते हैं। उस में से ३ २ नदी और नाले निकाल सकते हैं। और दो नुष्य जिनके हृदय नहीं मिले हुए हैं वह न लोक । काम कर सकते हैं न परलोक का।"

"मित्रता निष्काम कर्म है। मित्र निष्काम होता है। वह अपने आप करता है।"

"वह पुरुष धन्य है जो निष्काम जीवन व्यतीत करता और दूसरों के काम आता है। यह मित्रताई का सच्चा लक्षण है।"

"मरना भला है उसका जो अपने लिये जिये।
जीता है वह जो मर चुका है औरों के लिये॥"

"जिसे मित्र मिल गया वह सहज में भक्ति भाव का अधिकारी बन गया। और जिसे मित्र नहीं मिला वह भक्ति भाव को कदापि नहीं समझ सकता।"

"(१) निज स्वार्थी, कपटी और छली सेवक, (२) कंजूस राजा, (३) दंभी मित्र और (४) बुरी स्त्री के छोड़ने में भलाई है। यह चारों के चारों काले कौड़ियाले नाग हैं न जाने किस समय डसलें।"

"तुम को मेरा पूर्ण विश्वास होना चाहिये। नहीं तो यह मित्रताई कैसी।"

"मैं तुम से सच२ कहता हूँ कि मेरी मित्रताई से तुम में बल की वृद्धि होगी। सोच न करो। अब चिन्ता को छोड़ दो। मैं इस वाली को बिना मारे हुये अब नहीं छोड़ूंगा।"

छठा समुल्लास

सुग्रीव में वैराग्य

राम ने साधारण बातें कही थीं। सुग्रीव के अन्तःकरण में विश्वास तो उत्पन्न हो गया लेकिन पांसा उल्टा पड़ा। व्यवहार की ओर से उसका मन पलट गया। ज्ञान का प्रभाव विशेष पड़ा।

सुग्रीव बोला–"मै मन बचन कर्म से आपका दासतो हो चुका। परिवार समेत आपकी सेवकाई करूंगा, और करता रहूँगा, बल्कि इन सब को भी त्याग दूंगा और त्याग सकूंगा। आपकी सेवकाई मेरा संपूर्ण इष्ट होगी।"

"यह सब माया और प्रपंच है। शरीर क्षण भंगी है। आज है कल नही है। इसकी क्या ममता की जाये। मित्र, शत्रु, सुख, दुख, धन, दरिद्रता, जीवन, मरण, लोक, परलोक, नर्क स्वर्ग यह सब के सब माया कृत हैं। वाली की शत्रुता आपके दर्शन का कारण बनी। इसे भी क्या कहूँ। वह भी धन्य है और मैं भी धन्य हूं। स्वप्न में किसी के साथ लड़ाई हुई। नींद के खुलने पर न कहीं लड़ाई है न भिड़ाई है। यह संसार स्वप्न मात्र है। स्वप्न तो स्वप्न ही है। जागृत और सुषुप्ति भी स्वप्न के समान है। जब किसी में कुछ सार नहीं है तो स्वप्न के अतिरिक्त उसे और क्या कहा जाये! आपके चरण कमल की भक्ति ही सार पदार्थ है, और अब किसी बात की इच्छा नहीं है।"

कहते हो सच ही है। इस कोई सँदेह नहीं है लेकिन इस की जड़ नहीं है। वैराग दो प्रकार का होता है कारण वैराग और अकारण वैराग ! सँसार के दुख से दुखी होकर इससे भागना कारण वैराग है। इसका कोई ठौर ठिकाना नहीं है।"

वन में गये तो वनवनें, घर में अन वन होय।
मन का सकल प्रपंच है, ज्ञान भक्ति गये खोय ॥
घर के मारे वन गये, वन तजि बस्ती आय।
दुख दाई है यह दशा, मन नहीं कहीं ठहराय ॥

"अकारण वैराग में ग्रहण और त्याग कुछ भी नहीं है क्या किसी से लेना है और क्या किसी को देना है ! क्या छोड़ा और क्या लिया ! शरीर इन्द्री मन तो हर जगह साथ हैं और यह प्रपंच के मूल कारण हैं। यह न सुगमता से त्यागे जाते हैं और न त्यागे जासकते हैं। जब तक यह है तब तक कैसा ग्रहण और कैसा त्याग !"

घर छोड़ा वन को गये, फूस की कुटी छवाय।
क्या छोड़ा और क्या लिया, भ्रम ले रहे भ्रमाय ॥
घर वन एक समान हो, हर्ष शोक में सम।
यह वैराग महान है, मन इन्द्री शम दम ॥

इस लिये ऐ सुग्रीव ! इस मन के धोके में न आओ। यह खेल खिला कर ऐसा मारता है कि इसका मारा हुआ फिर नहीं सँभल सकता।" सुग्रीव ने पूछा—"फिर मनुष्य का क्या कर्तव्य होना चाहिये ?"

राम ने उत्तर दिया—

घर में रह कर भक्ति कर, भक्ति साज दल साज।
लोक परलोक का जगत में, कभी न होय अकाज ॥१॥
भक्ति ग्रहण कर गृही हो, यह गृही का धर्म।
घर बारी गृह धर्म का, यही मुख्य है कर्म ॥२॥
गृह मर्यादा त्याग कर, वन में करे जो वास।
आदि अन्त सुग्रीव सुन !, वह नर सदा निराश ॥३॥
मर्यादा का पालना, उत्तम है व्यवहार।
मात पिता गुरु विप्र का, सदा करे सत्कार ॥४॥

"तुम मेरे मित्र बने। मैं तुम्हारा मित्र हुआ। मित्रताई उत्तम मर्यादा है। मैं सब से पहिले तुम को वाली के हाथ से छुटकारा दिलाऊँगा। अब और कुछ नहीं। इसके साथ लड़ने की तय्यारी करो। देखो मैं कैसे अपने एक बाण से जीवन सागर के पार उतारता हूँ।"

सुग्रीव सुन कर प्रसन्न हुये।

सातवाँ समुल्लास

सुग्रीव और बाली की पहिली लड़ाई

सुग्रीव ने वाली को सन्देशा भेजा—"तुम ने मुझे निरपराध मारा, अपमान किया और मेरे प्राण लेने के इच्छुक बने। मैंने भयभीत होकर ऋष्य मूक पर्वत पर आकर शरण ली। घर, बार, स्त्री धन सब कुछ तुम ने छीन लिया। यह भी विचार नहीं किया कि मैं तुम्हारा भाई हूँ। मेरी स्त्री को भी मेरे पास भेजा दिया होता तब भी कुछ बात थी। तुम ने ऐसा भी नहीं किया। काम के वश में होकर उसे अपने पास रख लिया। अब मैं पहाड़ पर रहना नहीं चाहता। घर आना चाहता हूँ। तुम शत्रु हो गये। अब या तो मुझ से लड़ो या इस झगड़े को दूर करके राजकाज में मुझे मेरा भागदो।"

वाली ने सुग्रीव का सन्देशा सुना। उसी समय पर वह मल्लयुद्ध करने को तैय्यार होगया।

तारा उसकी समझदार रानी थी। वाली को समझाने लगी—"सुनो पति ! सुग्रीव को जो तुम्हारे साथ लड़ने का साहस हुआ है। उस का कारण यह है कि इस ने राम लक्ष्मण का सहारा ले रक्खा है और उनकी शरण मे आगया है। वह अपने बल से नहीं बल्कि उनके बल से लड़ना चाहता है। ये अवधपति दशरथ नरेश के राजकुमार हैं। सुना जाता है कि सँसार मे उनके समान कोई बली

नहीं है। तुम इन के सामने न जाओ। इसमें तुम्हारी भलाई नहीं है। मेरा कहना मान जाओ।"

बाली ने उत्तर दिया—"मुझे इन बातो का ज्ञान है। सुग्रीव मुझे लड़ने के लिये ललकारता है। मैं लड़ाई में पींठ नहीं दिखाना चाहता जिया तो क्या! मरा तो क्या! राम के बाण से मर कर मेरी सद्-गति होजायगी। मैं जानता हूं वह ब्रह्म के अवतार हैं। ब्रह्म के साथ किसी प्रकार का सम्बन्ध लाभ-दायक सिद्ध होगा।"

> वही है सब, तौ उसी के है हाथ सब का निवाह।
> और उसके काम की मिलती नही किसी को भी थाह॥

तारा को समझाकर वह सुग्रीव के सामने आया। मल्ल युद्ध के दाव पेच होने लगे—

> कभी उसने मारा, कभी उसने झटका।
> कभी वह गिरा, और कभी इसने पटका॥
> यह था खेल और खेल था सच्चे नट का।
> चले दाव पेच और लड़ाकों का लटका॥
> था हाथी का बल हाथी लड़ने पर आये।
> लड़े और लड़ाई के करतब दिखलाये।

बाली में एक विचित्र आकर्षण शक्ति थी जो साधना करने से नहीं आई थी। स्वाभाविक थी। वह जिसे देख लेता था उसका आधा बल छीन कर अपने मे मिला लेता था। आप ड्योढा होजाता था और दूसरा चौथा [illegible] इस सैन और कहाँ एक! जब तक आँख [illegible] शक्ति मिली तब तक कल्याण था और आँखों के दी चार होते ही वह बढ़ गया और यह घट गया।

सिंह में, साँप मे, चीते मे और बिल्ली मे यह शक्ति होती है। किसी मे कम और किसी में अधिक। इन सब की आँखें रात में भी चमकती रहती हैं।

दृष्टि साधन करने वाले मनुष्य इस साधना से अपनी आँख की आकर्षण शक्ति को बढ़ा लेते हैं और उसकी सहायता से उनका दाव दूसरे पर चल जाता है।

सुग्रीव में बल तो था ही, बाली को उठा कर उसने पृथ्वी पर पटक दिया। वह गिरा। उसने उसकी आँखों को देखा फिर क्या था! इसका आधा बल उसमे समा गया। वह संभल कर उठा। इसे ऐसी पटकनी दी और ऐसा तान कर घूंसा मारा कि वह सहार न सका। किसी प्रकार उठा। और बग टट भागा। बाली ने इसका पीछा नहीं किया। और जब तक वह राम के पास नहीं पहुंचा उसे चैन नहीं आया।

दोनों लड़ाके अपने २ निवास स्थान को चले गये। और पहिले दिन का मल्लयुद्ध इस प्रकार समाप्त हुआ।

आठवाँ समुल्लास

सुग्रीव और बाली की दूसरे दिन की लड़ाई

सुग्रीव ने राम से कहा—"यह बाली मेरा भाई नहीं है। यह काल है। मेरी मृत्यु इसके हाथ से होगी! देखिये उसने मुझे कैसी मार मारी है। सारा शरीर घायल होगया और घावों से चूर २ है। मैं केवल आप के सहारे पर उससे लड़ने गया था, नहीं तो मुझ मे इतनी शक्ति कहाँ थी कि मैं इसका सामना करता।"

राम ने उस के घायल शरीर पर दया का हाथ फेरा। तन की पीड़ा जाती रही और उस मे नया बल उत्पन्न हुआ। रात ज्यों त्यों काटी। प्रातः काल राम ने सुग्रीव से कहा कि—"जाओ आज फिर जाकर लड़ो।"

वह हिचकिचाने लगा। दूध का जला छाछ को फूंक फूंक कर पीता है। बाली के डर का संस्कार उसके नस नस और नाड़ी मे प्रवेश कर गया था।

राम ने ढारस का बल देकर कहा—"घबराओ नही। लड़ाई तो तुम को लड़नी पड़ेगी, इससे छुटकारा नहीं है। हाँ, आज मैं अवश्य अपने बाण

से ७ ... बाण नहीं चला सका ... है है कि तुम दोनो भाई एक रूप हो। ... का होगया। पहिचान न सका। बाण चलाना तो क्या जाने किसको लगता। इसी असमंजस से मैं रुका रहा। आज मै तुम्हारे गले में चमेली का हार पहनाये देता हूं, और वह पहचान कराता रहेगा। इस हार को युद्ध का विजय माल समझो। आज बाली मरेगा। मृत्यु उसके सिर पर खेल रही है।

राम ने पुष्पों का हार उस के गले मे डाल दिया। तुम उसकी आँख बचा कर लड़ना।"

सुग्रीव हाथ में गदा लेकर कूदते फाँदते हुये उसे ललकार ने लगे।

बाली इन के गर्जन के शब्द को सुन कर बाहर निकला—"तेरी मृत्यु तुझे घेर २ कर मेरे पास लाती है। अब तू उस से नहीं बच सकता।"

सुग्रीव बोले—"देखा जायगा।"

दोनो भिड़ गये. पटकम पटका होने लगी। गदा हाथ मे ली। वह बजने लगीं और टूट टाट कर बेकाम होगये। तब मल्ल युद्ध मे दोनों एक दूसरे के साथ गुथ गये। राम वृक्ष की ओट मे थे। देखा कि सुग्रीव के जान जोखिम का समय आ पहुंचा और तब अपना बाण चला दिया। बाली घायल होकर पृथ्वी पर गिरा और सुग्रीव ने फुदक कर अपना शरीर उस के हाथों की पकड़ से छुड़ा लिया।

नवाँ समुल्लास

बाली की मृत्यु

बाली का पृथ्वी पर गिरना था कि राम उसके सम्मुख आकर खड़े होगये। उसका प्राण निकलने ही को था कि राम का दर्शन पाकर वह रुक गया और उन्हें प्रेम भरी हुई आँखों से देखने लगा। "नाथ! तुम ने तो धर्म के हेत अवतार धारण किया था। मुझे व्याध बन कर क्यों मारा? क्या यह अधर्म नहीं है?"

राम ने उत्तर दिया—"ऐ बाली! तू महा कामातुर हो रहा था। तेरी बुद्धि भ्रष्ट होगई थी। तेरे लिये ऐसा उचित नहीं था। छोटे भाई की बहू, बेटी, बहिन और बेटे की स्त्री तक का तुझे ध्यान नहीं रहा था। तू आप समझ सक्ता है कि ऐसा मर्यादा भ्रष्ट जीवित रहने के योग्य है या मरने के योग्य है! मनुष्य का सारा काम मर्यादा के नियमानुसार होना चाहिये। तू जानता था कि मैं संसार में गृहस्थ आश्रम की मर्यादा स्थापन करने को आया हूं। लोग मुझे मर्यादा पुरुषोत्तम कहते थे। मैं तुझे न मारता तो क्या करता! तेरे बाप इन्द्र ने मर्यादा को भंग करदिया था। तू जानता है गुरू के श्राप से उस की क्या गति हुई! और तू ने भी वही काम किया। जो जैसा करता है वैसा भोगता है। "अवश्य मेव भोगतव्यम् कृत्य कर्म शुभा शुभम्।" जान बूझ कर तूने कुमार्ग पर पग धर रक्खा था। अनजान में कोई काम होता तब भी एक बात थी। तुझ में इन्द्र की बिजली की आकर्षण करने वाली शक्ति अधिकता के साथ थी। जिस स्त्री की आँख तुझ से लड़ी वह तुझ पर मोहित हो गई, और जिस पुरुष ने तुझ से आखें मिलाई, तूने अपनी आकर्षण शक्ति से उसका आधा बल छीनकर अपने मे मिला लिया और उसे परास्त कर दिया। देव, दनुज सब तेरे हाथ से तंग आगये थे। स्त्री और पुरुष अधर्म के पंथ पर चलकर त्राहिमान २ कर रहे थे। तू अपनी मां के बाल से उत्पन्न हुआ था, इसलिए तेरा नाम बालि पड़ा। बाल में बिजली की शक्ति बहुत होती है, जैसे मोरपंख के मोरथल या और पशुओं के बालों—सुरा गाय इत्यादि की पूंछ में होती है। यह बिजली की आकर्षण करने वाली शक्ति तेरे रोम २ मे व्याप्त हो रही थी। तूने इससे अनुचित काम लिया और सर्वांग

से व्यौहार भ्रष्ट हो गया। अब बता कि मैं तुझे न मारता तो क्या करता! और इस पर भी तू मुझे व्याध की पदवी दे रहा है। तेरी स्त्री ने तुझे कितना समझाया। तूने उसकी भी नहीं सुनी। बता मैंने व्याध कर्म किया है या साध कर्म किया है। अपने दोष को तो तू देखता नहीं। मुझे दोष लगाता है!"

पते २ की बात सुनकर बालि मन मे तो लज्जित हुआ लेकिन मरते २ भी अपना अहंकार का त्याग नहीं किया। हंस कर बोला—"अंत मत सो गता ." मरते समय तुमने ऐसे अधम को अपना दर्शन दिया। यह सौभाग्य है या अभाग्य है! क्या तुम मे सामर्थ्य है कि इस अंतिम दर्शन का फल मुझ से छीन सको?"

राम दयालु और कृपालु थे। उसके इस दृढ़ भक्तिभाव के विश्वास को देख कर उसके सिर पर दया का हाथ फेरा। "मांग! मांग!! क्या मांगता है!!! क्या मैं तेरे शरीर को अचल करदूँ!"

बालि मुस्कराया—"वाह राम वाह! यह तो तुम ने बहुत अच्छी बात कही! ऐसा शुभ अवसर अब कब हाथ आयेगा! जन्म जन्मान्तर मुनि जन जप तप करते रहते हैं और अंत में तुम्हारा नाम उनके मुँह पर नहीं आता। और मेरी क्या दशा है! मैं मर रहा हूँ और तुम मेरे सामने खड़े हो। तुम्हारी आखें मेरी आख[illegible] इस समय मैंने तुम्हारे रूप को आखों [illegible] शक्ति से अपने हृदय के अंतर में नहीं भरा तो फिर उसका लाभ क्या हुआ! ऐसे ही मेरे सामने खड़े रहो। मैं तुम को अपने अंदर भरलूँ और तुम्हारी शक्ति को लेलूँ तब तो मैं बाली हूँ!"

राम ने उसके कोमल हृदय की कठोर वाणी का सन्मान किया। "तू बड़ा चतुर और सयाना है और कुछ कहना है कि बस!"

बाली ने कहा—

अन्त में दर्शन दिया कल्याण मेरा हो गया।
मैं अधम कैसे हुआ निर्वाण मेरा हो गया॥
तुम मिले शीतल हुआ, मैं शांत हूँ निर्भ्रान्त हूँ
थी इसी की लालसा अभिमान मेरा हो गया॥
चाह और चिंता हटी भक्ति का वर मुझको मिले।
मेरे हृदय में बसो, स्थान मेरा होगया॥

"अंगद मेरा इकलौता पुत्र है। मैं तो आपकी सेवा नहीं कर पाया। इसे अपना दास बनाइये और सेवकाई का पद प्रदान कीजिये।"

बालि ने फिर वाणी को रोक लिया। राम को प्रेम और भक्ति की दृष्टि से देखकर आँखें बंद करलीं और मरगया।

दसवाँ समुल्लास

सुग्रीव का राज तिलक

सम्बन्धी, कुल, कुटम्ब और परिवार के लोग आये। रोना पीटना मच गया। तारा उसकी स्त्री आई। पति की लाश पर गिरी। रोई चिल्लाई। दो चार घड़ी का कुहराम मचा।

यह लीला संसार में नित्य नई होती रहती हैं। आने वाला आता रहता है। जाने वाला जाता रहता है। अकेला आता और अकेला ही जाता है। किसी ने आज तक किसी का साथ नहीं दिया। जैसे प्रपंच के सब खेल मिथ्या और कल्पित हैं वैसे ही यह भी है।

यह जगत भूल भुल्लैयां है। रो पीट कर दो चार दिन के पीछे सब भूल जाते हैं और कोई किसी का नाम तक नहीं लेता।

आने वाले गये और जिन को था आना आये।
बन के बन ठन के बनावट की फ़सल दिखलाये॥
खेल नाटक का था नट क्रिया का था सांग भरा।
देखने वालों ने जब देखलिया उससे हटे हटवाये॥
इन्द्र का जाल है संसार यह प्रपंच का खेल।
भरमे सब देख के आप औरों को भी भरमाये॥
नाचने गाने की है धूम मची रास दिखा।

के न, ... गले से गाये ॥
बाजे बजते ... है और क्या है यह जगत।
जिसका जी चाहे वह नचवाये बजाये गाये ॥

चर्खी की चोटी पर फल धरा है। तोता आया, पावदान पर पांव रख कर फल पर चोंच मारी। पावदान गया खिसक। चोंच फल तक नहीं पहुंची। वह परों को फड़ फड़ाता है। पावदान के पहियों पर अदल बदल कर पॉव जमाता है और सब उसी का खेल देखते है। बन्दर ने बेर के घडे मे मुट्ठी डाल कर पंजे में बेर भर लिये। घडे का मुँह तँग है। न वह मुट्ठी खोलता है, न बन्धन से छूटता है। ऋषि, मुनि, देवी, देवता सब के सब स्वार्थ वस हो कर इस प्रपंच में फँसे हैं। न स्वार्थ सिद्ध होता है न परमार्थ ! यह सब के सब इसी झूटे खेल के खिलाड़ी बने हुये हैं।

फँस गया जो फँस गया फांसी गले मे पड़ गई।
सूखी हड्डी को चबाया वह गले में अड़ गई ॥
स्वाद हड्डी का जिन्होंने पाया उनसे पूछिये।
जब नहीं निकली गले से हड्डी अड़ कर सड़ गई ॥
मर मिटे, की औषधी उससे न निकला कोई काम।
देह मिट्टी में मिली और मट्टी में गहरी गड़ गई ॥
रोने वाले रोते हैं और हँसने वाले हँसते हैं।
बुद्धि कैसी मोह और माया में आकर लड़ गई ॥
क्या था और क्या होगया परिणाम इसका क्या हुआ।
सिर कटा चोटी कटी चोटी गई और जड़ गई ॥

राम ने यह दशा देखी। सुग्रीव को बुला कर कहा–"जल्दी करो, मरी हुई लाश का हटाओ, और झटपट इसे जला कर बाली का अन्त्येष्टि कर्म करो,, और उसने ऐसा ही किया।

दो दिन का व्यवहार है, झूठा जगत असार।
झूटे सब पितु मातु हैं कुल कुटम्ब परिवार ॥
निकलो प्राण जो देह से, कैसा किसका प्यार।
एक घड़ी भी नहीं रखा घर से दिया निकार ॥
मा रोई रोये सगे रोई तन की नार।
रो २ कर सब हटगये ऐसा है समार ॥

जब दस दिन बीते, महाप्रभु ने सुग्रीव को बुलाया–"मैं चौदह वर्ष तक बस्ती में नहीं जासकता। पिता की आज्ञा ऐसी ही है। तुम लक्ष्मण को लेजाओ। वह मेरी ओर से तुम्हारा राज तिलक करेंगे, और अँगद को युवराज की पदवी देंगे।"

सुग्रीव ने राम का उपकार माना–सिर झुका कर प्रणाम किया, धूम धाम से लक्ष्मण ने उस को सिंघासन पर बिठाया। नगर मे धूम धाम मची और सुग्रीव के नाम की बधाई बजी। नगर में उस की दुहाई फिरी। सब लोग चिल्ला २ कर कहते फिरे–"महाराज सुग्रीव की जय ! हमारा राजा सदा चिरंजीव रहे !! लेकिन किस की जय और किसकी पराजय ! कौन यहाँ चिरंजीव रहा है। हम तो यहाँ पर खुली आँखो से देख रहे हैं। एक बकरे का सिर कटा। वह मैं २ करता हुआ बलिदान की वेदी पर चढ़ाया गया। उस के पीछे दूसरा आया वह भी मैं मैं करता हुआ मिमियाता रहा। इसकी भी गर्दन मारी गई। रेवड़ के बकरे मरने के लिये व्याध के यहाँ जारहे हैं। राह मे मैं मैं करते हुये बकरियो पर चढ़ते रहते है। उनको सुध नही है कि वह मरने जारहे हैं। यही दशा मनुष्य मात्र की है। ये भी काल के बलिदान हैं। इनके सिर पर काल मँडलाता रहता है। इनकी चोटी इसके हाथ मे है और उसकी तलवार इनकी गर्दन पर है।

मैं मैं करते दिन गया, बुझी न मैं की प्यास।
आस २ नर बन्ध रहा, अन्त में चला निराश ॥१॥
आग लपेटी रुई में, सुलग रही दिन रात।
भड़क उठी क्षण एक में, काल की ऐसी घात ॥२॥
रानी राजा राव रँक, मै मैं के हैं रूप।
मैं करते मिमया गये, सब प्रजा सब भूप ॥३॥
काल व्याध के हाथ में, सब के सिर के केस।
क्या जाने मारे कहाँ, क्या घर क्या परदेश ॥४॥
मास जला चमड़ा जला, हड्डी हो गई राख।
जर जर कर माटी मिली क्या जीवन की साख ॥५॥
ऐसी दशा विचार कर, भज गुरु को दिन रात।
बनेगा दस दो तीन में ज्यों तारे परभात ॥६॥
मर मर कर मर जाओगे, जीना मरन समान।
मरने से पहिले मरो, लेकर गुरु का ज्ञान ॥७॥

सुग्रीव की दोहाई फिरी इनके नाम की बधाई बजी। राम ने अपना बचन सच्चा दिखाया। उसे बाली की जगह राजा बना दिया, और लक्ष्मण सब कर करा कर नगर से [illegible] । देवताओं ने कुटी बनाई, चौमासा बिताने का प्रबन्ध किया और बन में रहने लगे।

———:———

द्वितीय भाग

पहिला समुल्लास

वर्षा ऋतु

नई नवेली सजी सजाई सुन्दर दुल्हिन के समान सुहाना बन! दानियों के हृदय के सदृश खिला हुआ मैदान! चारों ओर से बिना किसी रोक टोक के वायु के ठण्डे झोंके बहते थे। घास की चादर पृथ्वी पर बिछ रही थी। धान के खेत पानी से भरे हुये जब हवा के चलने से लहलहाते थे, दृष्टि के सामने हरे रँग के समुद्र के लहराने और उमँड़ने का दृश्य आजाता था। देवता जानते थे राम चौमासे भर किष्किन्धा के जँगल मे रहेंगे। यह वही जगह है जहाँ आज कल मैसूर का राज है। बंगलौर के पानी और वायु का क्या कहना! यहाँ सर्व ऋतु एक समान होती हैं। न बहुत गर्मी न बहुत ठँडक! पृथ्वी उपजाऊ है। नाज अधिकता से उत्पन्न होता है। लोग कहते हैं काश्मीर बहुत सुन्दर जगह और पृथ्वी पर स्वर्ग भूमि है। इन लोगो ने दक्षिण देश के इस प्रान्त को नही देखा। काश्मीर मे बर्फ पाला बहुत पड़ता है। कोई घर से बाहर नहीं निकलता। यहाँ की दशा विचित्र है। सब दिन एक समान रहते हैं।

देवताओं ने समझकर एक ऊँचे पहाड़ी टीले पर दो घास के अच्छे झोपड़े बना दिये थे, उनके चारों ओर रँग २ की फुलवाड़ी लगा दी थी। हरी तरकारियो की क्यारियों ने चौरस पृथ्वीपर उन की शोभा बढ़ा रक्खी थी। जगह २ पर फूल फल के छोटे २ पौधे दक्षिणी जँगलियो के समान खड़े हुये चौकीदार और पहरे वाले दिखाई देते थे। उस टीले के इर्द गिर्द थोड़ी २ जगह की दूरी पर कमल फूल के तालाब रमणीक बन रहे थे और राम उनके जीते जान और प्राण हो गये थे।

जहाँ राम का स्थान हो उस जगह का क्या कहना है! सुन्दरता को सुन्दरता भागई थी और सुन्दरता छाई हुई थी।

प्रात: काल उठकर नित्य नियम के पीछे लक्ष्मण पहाड़ो से जड़ी बूटी खोद कर लाते, आग मे पकाते और कमल के पत्तो पर सजा कर दो पहर पहिले राम के सामने लाकर भेट रखते। यही उनका अहार था। कभी २ बन के फूल फल पत्ते भी ला कर दे देते थे। सांय काल दोनों भाई सुथरे चट्टानो पर बैठे हुये पुराणो की कथाओं पर बात चीत करते हुये बिचारते रहते थे। देवता भी समय २ पर उनके समीप आकर दर्शन का लाभ उठाया करते थे।

एक दिन तीसरे पहर के पश्चात दोनों अपने २ झोपड़े से बाहर आकर चट्टानों पर विराजमान हुये। राम कीदृष्टि वर्षाऋतु की फबन पर गई। लक्ष्मण से कहने लगे-"यह कैसा सुहावना समय है। जिस वस्तु पर दृष्टि पड़ती है। वही हृदय और आंख को अपनी ओर आकर्षित कर देती हैं।"

लक्ष्मण ने कहा-"यह आपके चरणो का प्रताप है। जहां आपका चरण पड़ता है वहां ही सुन्दरता बरस जाती है।"—

जहाँ राम रहते है, सुन्दर है रमना।
है सम्भव वहाँ जड सृष्टी की जमना ॥ १
इधर बादलों की घटा छारही है।
उधर भूमि फूलों को बरसा रही है ॥ २
नहीं काली २ घटाये नभ पर छाई।
तुम्हारी ही छाया गगन जा समाई ॥ ३

उसे । का ध्यान आया।
वही रँग हमने हृदय में बसाया ॥ ४
वही रँग पानी में पानी की धारा।
है यह साँवले रँग ही का सहारा ॥ ५
यहाँ जो है साँवले रँग का है।
प्रभाव सब आपके रँग का है ॥ ६
हरे पत्तों में साँवला रँग आया।
इसे साँवले रँग की कहिये छाया ॥ ७
तुम्हारा ही है ध्यान सबको यहाँ पर।
वही रंग नीचे वही रंग ऊपर ॥ ८
फबन साँवले रंग की सबको भाई।
बजी नीचे ऊपर इसी की बधाई ॥ ९
हैं सब भक्ति में आपके जो रमाये।
इसी से मुझे आज लगते हैं प्यारे ॥ १०
वही रंग है और वही ढंग सब में।
वही साथ है और वही संग सब में ॥ ११

राम लक्ष्मण की बातों को सुन कर मुस्कराये- "आज तो तुम कवियों के समान छन्द-प्रबन्ध की तुक मिला ने लगे, कहीं कवि तो नहीं बन गये।"

लक्ष्मण मन में लज्जित हुये। उन्होने अपना हार्दिक भाव प्रगट किया था। राम ने दया का हाथ उनके सिर पर रक्खा और वह लज्जा जाती रही।

दूसरा समुल्लास

वर्षा ऋतु (लगातार)

राम ने कहा—"सचमुच यहां की वर्षा ऋतु बहुत सुहावनी है। इसमे सन्देह नहीं हैं कि यह बात हमारे "आर्यवर्त" और अयोध्या मे नहीं है।"

"काली काली घटाये पृथ्वी पर झुकी हुई वर्षा कर रही हैं। और गरज रही है। काली २ घटायें मस्त और मतवाले हाथियो के समान आकाश मंडल में झूम रही हैं।"

"वह देखो—मोर पंख फैला कर कैसे नाच रहे हैं। यही दशा ईश्वर के प्रेमियो को भी हो जाती है जब उसकी भक्ति का रत्न इन के हाथ में लग जाता है।"

"यह सब सच है। बादलो की गरज का शब्द सुन कर मेरा कलेजा डर से दहल जाता है। न जाने सीता की क्या दशा होगी।"

"बिजली का कौंधा इधर आया उधर गया। कपटी और छली प्राणियों के प्रेम की भी ऐसी ही चाल होती है। उसमे नाम के लिये भी स्थिरताई नहीं रहती।"

"बादल गर्ज रहे हैं बिजली चमक रही है।
रह रह के वह गगन में पल पल दमक रही है ॥
फल फूल और पत्तों से भर गई हैं डाली।
देखो लचक लचक कर कैसी लचक रही है ॥
फूलों की बास फैली बन होगया सुगंधित।
चम्पा हिना चमेली जूही महक रही है ॥"

"बर्षते हुये बादल पृथ्वी पर झुक २ कर छिड़काव कर रहे हैं जैसे विद्या बुद्धी को पाकर पंडित जन नम्रता से झुकते हैं।"

'पहाड़ इन्द्र वज्र की चोट और बड़ी २ बूंदो की की मार को ऐसे सह रहे हैं जैसे संत खलों और दुष्टों के बचन की मार को सहा करते है।"

"जिधर दृष्टि जाती है मनोहर दृश्य दिखाई देता है। थोड़ा ही पानी बरसा, नालो तालों और जोहड़ों का पानी बह निकला। थोड़ा धन पाकर छोटे पात्र वाले धनी इसी प्रकार इतरा जाते हैं।"

"आकाश का शुद्ध पवित्र जल पृथ्वी पर गिरते ही उसके मैल से मैला और गन्दा होगया। ऐसे ही जीव माया के लपेट झपेट में आकर अपनी शुद्धताई खो बैठता है और कुछ का कुछ हो जाता है।"

"तालाबो मे पानी चारों ओर से सिमट २ कर चला आ रहा है इसी प्रकार अच्छे प्राणी अच्छी संगत में आकर अच्छे २ गुणो को प्राप्त कर के उन से भर जाते हैं।"

"कमल के पत्तों पर पानी की बूंद उज्वल मोतियों के समान चमक रही हैं और बादल के पानी से

यह पत्ते नहीं भीगते, ऐसे ही जीवन-मुक्त दशा में रहने वाले ज्ञानी मोह माया की सामिग्री रखते हुये भी उस से अलग थलग रहते है।"

"देखते २ बल्लियों पानी बरसा। सब खेत और जँगल के वृक्ष उस में डूब गये, लेकिन कमल की नली ऊपर की ऊपर तैरती दिखाई दे रही है। हजारों गज पानी बरसै, वह कमल को नहीं डुबा सकता। भक्तों की भक्ति की भी यही दशा होती है। इन का प्रेम बढ़ता ही चला जाता है घटने पर नहीं आता।"

"टूटे बढ़े छिन एक में सो तो प्रेम न होय।
अघट-प्रेम हृदय बसे प्रेम कहावे सोय॥"

"पानी बरसा। बाढ़ आई। गाँव के गाँव बह गये। पहाड़, टीले, बन सब डूब गये। लेकिन समुन्दर जैसे का तैसा ही है न बढ़ा न घटा, न इतराया न उकताया। ईश्वर के भक्तों का हृदय ऐसा ही गहरा होता है। वह भरे का भरा रहता है। भरो तो भरता नहीं, घटाओ तो घटता नहीं।"

"वह देखो—पनडुब्बी—जल पक्षी बार २ पानीमें गोते खाती और ऊपर आती है। उसके पँख नाम के लिये भी नहीं भीगते, योंही सन्त जन भवसागर में रहते हुये तैरते और तैराते हैं और इस के माया का जल उन्हे न तर करता है न डुबा सकता है।"

"नदी और नालो का पानी समुन्दर की ओर बहता हुआ चला जारहा है। उसे भी स्थिरता वहां आती है। भक्त जनों का उमड़ता हुआ हृदय भी ब्रह्म के अथाह सागर के ध्यान मे गिरता पड़ता चला जारहा है और उस में सच्ची शान्ति पाता है।"

"ऐ लक्ष्मण! पस वर्षात् का ऋतु दर्शकों के हृदय के उभारने की विचित्र सामिग्री अपने साथ रखता है और नये २ विचार जनक और विवेक उत्तेजक दृश्य दिखा २ कर नये २ उपदेश देता रहता है।"

"वेद की पोथी है जग, इसको पढै ज्ञानी कोई।
योग की युक्ति को देखै, सोच कर ध्यानी कोई॥
जल बढ़ा डूबे सभी, पर्वत पहाड़ और बस्तियाँ।
डूबते हैं ऐसे ही भव, निधि में अज्ञानी कोई॥
आज है बरसी [illegible] प्रकाशी उदयाचल से।
शिक्षा ले वर्षा से आकर मानी अभिमानी कोई॥
मर रहे हैं मरने वाले जल की वृष्टि से यहाँ।
पानी सर पर आगया है देखै अनुमानी कोई॥
लाखों बातें सीख लो संसार के व्योपार में।
क्या चितायेगी अधिक इस वर्षा से योगी कोई॥
वृक्ष डूबे डूबे वन, तरते हैं तिनके घास के।
तारने तरने का ले यह भेद निर्वाणी कोई॥
वेद है यह जग की पोथी पोथी है ज्ञानेश्वरी।
भेद ले इसग्रन्थ को पढ़ पढ़ के मन मानी कोई॥

"मेंढकों की बड़बड़ाहट और तड़तड़ाहट में वेद-पाठी विद्यार्थियों के कंठाग्र करने का शब्द गूंज रहा है।"

"पानी बरसा सड़कें बिगड़ी। पगडंडियों के आकार मिटे। रास्ते की लकीरों को घास फूंस की अधिकता ने छुपा दिया। ऐसे ही जब संसार में पाखंड वाद की वृद्धि होती है, सद् मार्ग सद् पंथ और सद् धर्म गुप्त और लोप हो जाते हैं। रास्ता नहीं मिलता। कोई चले तो कैसे चले और किस पर चले।"

"पानी पाकर पृथ्वी में दबे हुये बीज अंखुआये। नई नई कोपलें फूटीं. गाछ बढ़े और बढ़ चले। देखने में बहुत शोभायमान लगते है। ऐ लक्ष्मण! यों ही जब कोई पुरुष सन्त जनों की संगत में जाता है उनके प्रभाव शाली बचनों का पानी पाकर इसके दबे हुये आत्मिक संस्कार और अधिकार जाग उठते हैं और वह देखते देखते कुछ का कुछ बन जाता है। इसका हृदय निखार पर आता है। जीवन का परिवर्तन हो जाता है। साधक का साधन साधना का फल लाता है और वह साधक सिद्ध हो जाता है।"

"वर्षा आई। जवासा, आक आदि के पत्ते गल गये। ढूंढो और वह नहीं मिलेंगे। ऐसे ही जब सुराज्य का समय आता है, विद्या, बुद्ध, कला कौशल, ज्ञान ध्यान, न्याय, धर्म की वृद्धि होती है। मूर्खता का नाश हो जाता है और प्रजा सुखी हो रहती है।"

"पानी , , ॰ हुई। पानी बढ़ा, धूल और राख का न कहीं नाम है न निशान हैं। लाख ढूंढ़ो वह न मिलेगी। ऐसे ही जब किसी में क्रोध का अंग बढ़ जाता है तो धर्म उससे कोसों दूर भाग निकलता है। क्रोध-आया और धर्म गया। न्याय जाता रहा, पक्षपात ने डेरा डाला। अब सार तत्वों को बूझे तो कौन बूझे।"

"क्रोध आया धर्म की हानी हुई।
पक्ष आया हानि मनमानी हुई॥
दीनता भागी हृदय छाया घमँड।
पक्ष छाया होगया वह अति प्रचँड॥
दान का कोसों पता मिलता नहीं।
कृपणता का भाव अब हिलता नहीं॥"

"आकाश मंडल स्थिर हुआ। बादलों का जमघट नहीं रहा, चांद की चांदनी चटकी और वह कैसी शीतल और आनन्द दायक लगती है, जैसे परोपकारी का धन जहाँ२ जाता है अपने चारों तरफ सुख और शान्ति को बखेरता रहता है।"

"जब घटा टोप अँधेरा छा जता है, इधर उधर छोटे२ दुर्गन्धि फैलाने वाले जुगुनू अपनी चमक दमक को लीला दिखाने फिरते हैं; वैसे ही जब धर्म गुप्त हो जाताहैं वाचक ज्ञानी पाखंडी संसार में बढ़ जाते हैं। करना धरना कुछ नहीं—"अहम् ब्रह्म" "अहं ईश्वरम्" "अहं शिवम्" का पाठ सुनते सुनाते लूट मार मचाते हुये घूमते फिरते हैं। इनके यहां भक्ति मिथ्या, प्रेम मिथ्या और जगत् मिथ्या माने जाते हैं। जब सब मिथ्या ही मिथ्या है तो धर्म मिथ्या, कर्म मिथ्या, मर्म मिथ्या होगये। करना धरना क्या रहा! हां! एक बात यहां नहीं है और वह खीर पूरी है। इन्हें खिलाते पिलाते रहो।"

"वर्षा हुई। खेत बिगड़े। क्यारियां फूट२ कर बह निकलीं। यह झूटी सभ्यता के समान है। परतंत्रता से चिढ़ और स्वतंत्रता का अभिमान आ गया। स्त्रियां थोड़ा बहुत पढ़ लिख गईं। अब पति पति नहीं, और पत्नि पत्नि नहीं। पति क्या हुआ? पशु। रात दिन बैल के समान कमाई करे। घास फूस रूखा सूखा खाये। सब पत्नि की भेट हो। वह संवार सिंगार में लगी रहे। पति बोला नहीं कि यह उसकी गर्दन पर सवार हुई नहीं, पशु तो पशु! उसे तो बोलने का क्या अधिकार है। और पत्नि क्या हुई? घर की मालिक। वह जो कहे वही हो। "पति बेदामों का नौकर! रात दिन पत्नि की कटी, जली, बुरी भली सुनता रहे। सिर हिलाया और उसकी मृत्यु आगई।"

"ऐ लक्ष्मण! तुम ऋष्यमूक पर्वत से होकर आये हो। चुपकी साध कर बैठा रहना पति का काम हो जाता है। बेचारा क्या करे! इतना तो समझ गया कि एक चुप सौ बला को टालती है। स्त्रियों की यह घृणित स्वतंत्रता गृहस्थियों के सुखों का नाश कर देती है!"

"वर्षा की ऋतु में स्याने किसान अपने बोये जोते हुये खेतों की नराई करते और घास फूस काँटे कटीले निकाल२ कर फेंक देते हैं क्यों कि वह नाज के पौधों की वृद्ध में हानि कारक होते हैं। यों ही ऐ लक्ष्मण! सतसँगत करने वाला सतसङ्गी भी एक प्रकार का किसान ही है। खेत उसका हृदय है। गुरु का सँस्कार बीज है। बचनों के श्रवण में खेतों का जोतना है। खेत जोता गया, इसमें बीज पड़ गया, अँखुये आने लगे। ये अँखुये विचार विवेक हैं। अब सतसङ्गी इनकी सहायता लेकर काम क्रोध लोभ मोह अहँकार के काँटे कटीले और घास फूस बाहर निकाल२ कर फेंकता रहता है। भक्ति के सँस्कार पौधे बन कर बढ़ते हैं। इसमें साधना के फूल लगते हैं जो देखने में दृष्टि प्रिय और रँग बिरँगे होते हैं और फिर इन में सिद्ध के फल आने लगतेहैं"

सतसँगत मुद मङ्गल मूला।
सोई फल सिद्धि सब साधन फूला॥

"वर्षा ऋतु के अन्त में चकोर आदि पक्षी दूसरे देशों को चले जाते हैं। कलयुग के आते ही धर्म की यही दशा होती है।"

"लाख पानी बरसे। ऊसर में घास तक नहीं उगती जैसे हरि के भक्तों के हृदय में काम का अँकुर नहीं जमता।"

"अच्छी उपजाऊ पृथ्वी हरियाली से भरजाती है जैसे स्वराज से उजड़ा हुआ देश बस्ती के रूप में विद्यमान होजाता है"

"चौमासा आया। रात के समय फिर मुसाफ़िर राह नहीं चलते। कहीं न कहीं ठहर जाते हैं। वैसे ही ज्ञान की प्राप्ति होने से मन और इन्द्रियाँ भी चलायमान नहीं होती इनकी रोक थाम आप ही हो जाती है।"

"कभी २ वर्षांत में जब प्रचँड वायु बहती है, बादलों का समूह छिन्न भिन्न होजाता है। यह वैसे ही है जैसे किसी कँपूत के उत्पन्न होते ही घराने बिगड़ जाते हैं। और उनकी धन सामिग्री का पता तक नहीं रहता।"

"बरसात में कभी गर्मी है कभी सर्दी है कभी अन्धेरा है कभी उजाला है सुसंग और कुसँग के मिलने से इसी प्रका[illegible] [illegible]कर विचरते हैं। उपलब्धि होती रहती है। [illegible] [illegible]नी भरा रहता है

"ऐ लक्ष्मण! विचार कर[illegible] [illegible]न मे रहती हैं। प्रकार इस ऋतु से ज्ञान प्राप्त करना [illegible]ो हरी की

आँख वाला जब मिले, दर्पण दिखाना चाहिये।
सत्व अधिकारी को भक्ति, का बताना चाहिये॥
जब नहीं अधिकार निष्फल, फिर तो सब उपदेश है।
इन से गुरु के भेद को निश दिन छिपाना चाहिये॥
पंथ में आकर जो पंथाई बने, पथ पर चलो।
जो हैं भूले रास्ता, उनको जताना चाहिये॥
क्या सुना कर हम करें श्रुति, स्मृति का रहस्य।
सुनने वाला जब न हो, किसको सुनाना चाहिये॥
धर्म में है अर्थ और इस, धर्म में है काम मोक्ष।
धर्म का इच्छुक मिले, उसको चिताना चाहिये॥

तीसरा समुल्लास

शरद ऋतु

भारत वर्ष में छः ऋतु होती हैं – बसंत, ग्रीष्म, वर्षा, शरद, शिशिर, हेम।

वर्ष में बारह महीने होते हैं और प्रत्येक ऋतु दो २ महीने रहती है। चैत वैसाख बसंत ऋतु है। यह ऋतु सब से अच्छा समझा जाता है। न बहुत गर्म न बहुत ठंडा। जेठ असाढ़ ग्रीष्म ऋतु के महीने हैं जिनमें गर्मी पड़ती है सावन भादों वर्षा ऋतु कहलाते हैं जिनमें पानी बरसता है। क्वार कार्तिक शरद ऋतु कहलाते हैं जिनमें बहुत ठंडक है न गर्मी है अगहन पूष शिशिर ऋतु हैं इनमें विशेष ठंडक पड़ती है। माघ फागुन हेम ऋतु है जिनमें [illegible] कम होजाती है। राम लक्ष्मण चौमासे के [illegible] [illegible]में पहुंचे थे। असाढ़ सावन भादों [illegible] में हैं।

[illegible] महीने गये, शरद ऋतु आया। [illegible]ने दो महीने झोंपड़े में रह कर [illegible] दिनचर्य्या साधारण थी और यह दोनों एकान्त सेवन में रहे। लोगों से मिलने मिलाने का अवसर कम था। देवता लोग निसन्देह उनके पास रहते थे।

जब कभी आकाश मंडल निर्मल होता तो यह कुटि के बाहर आकर कथा पुराण की बातें करते नहीं तो इसके भीतर रहते।

वर्षा ऋतु के अन्त होने पर एक दिन दोनों भाई फिर पथरीले चट्टान पर बैठे हुये इर्द गिर्द के दृश्य को देख रहे थे।

राम ने कहा—"वर्षा ऋतु गया। शरद ऋतु आगया। वर्षा के बुढ़ापे में शरद ऋतु उत्पन्न होता है। वह गया यह आता है प्रकृति में आने जाने का तार यों ही बँधा रहता है।"

लक्ष्मण—"और यह प्रबन्ध जोड़े के साथ रहता है।"

राम—"होना भी ऐसा ही चाहिये। यह जगत है क्या? यह पुरुष और प्रकृति का विलास स्थल है। यहाँ तुम को कोई पदार्थ ऐसा न मिलेगा जो जोड़ा रहित हो। शरीर के अंग चोटी से लेकर ऐड़ी तक दो २ हैं—दो खोपड़ी, दो माथे, दो कनपुटी, दो भौंयें,

...ा, दो हाथ, दो पाँव ...कोई भी तो अकेला नहीं है। सब "पानी ... और जोड़े २ हैं।"

"और यह जोड़ा बीच से जुड़ा हुआ ... जहाँ एक ही अंग का अनुमान होता है, वहाँ यह जोड़ा बीच से जोड़ दिया गया है। जैसे हमारी जिह्वा-यह अकेली नही दो हैं, बीच से जुड़ी हुई। आँख नाक आदि अलग २ है।"

राम-"यह जगत ही द्वन्द प्रबन्ध हैं। दो तत्व न होते तो रचना असंभव होती।"

लक्ष्मण-"आप तो अद्वतीय है आप का जैसा दूसरा कोई नहीं है। और न कोई आप जैसा है।"

राम-"और तुम आप क्या हो! जगत मे जाकर ढूंढो तो सही। तुम जैसा कोई और भी लक्ष्मण है या नहीं है। तुम को अपना दूसरा या अपने जैसा कहीं कोई न मिलेगा। यह भी प्रबन्ध है। एक वृक्ष के दो पत्ते, एक शाखा के दो फल, एक फूल की दो पॅखड़ियाँ, एक पॅखड़ी के दो अंगो को कहीं भी एक समान न पाओगे। कोई भी वस्तु ले लो। पानी की दो बूंदे, मिट्टी के दो ढेले, तुम को इस जगत मे एक जैसे न मिलेंगे।"

लक्ष्मण-"इसका कारण?"

राम-"इसका कारण यह है कि तत्व एक है और उसी को सब मे दोहराया गया है। मुर्गी की वही एक टाँग! इसी दृष्टि से कहा गया है, 'एको ब्रह्म द्वतीयो नास्ति।"

लक्ष्मण-"प्रभो! अभी २ आप ने कहा है कि यहाँ सब का जोड़ा है और इस समय कह रहे हैं कि यहाँ जो है वह अकेला है।"

राम-"वह और दृष्टि से है यह और दृष्टि से है।"

लक्ष्मण-"वह क्या दृष्टि है?"

राम-"जोड़ा कहते हैं, सामने वाले को और जिसका सामना किया जाये वह आमने या आमना कहलाता है। आमने सामने का शब्द इसी अपेक्षा से है और इसी आमने सामने का नाम जोड़ा है। जैसे बिम्ब और प्रतिबिम्ब, दर्पण और दर्पण की छाया। यह जोड़ा है, और यह जोड़े साथ रहते हैं। जोड़ा न होता तो रचना न होती। इन दोनों बातों मे केवल दृष्टि, दृष्टि का भेद है और दृष्टि ही से सृष्टि है।"

लक्ष्मण-"बात मेरी समझ में आगई। इसका रहस्य, सत, असत्, पुरुष प्रधान- बिम्ब प्रतिबिम्ब आदि परिभाषाओं में छिपा हुआ है।"

चौथा समुल्लास

शरद ऋतु लगातार

राम-"युवा और बुढ़ापा सबके लिये है जो युवा ...आ है वह कभी न कभी समय पाकर बुड्ढा हो ...ायगा। दिन रात जवान बूढ़े होते है। पक्ष और ...ास भी इसी नियम के आधीन, कल्प कल्पान्तर ...ग युगान्तर सब इसीके आधीन रक्खे गये हैं। ...ह प्रवाह यो ही चला करता है। यह काल के चक्र ...भी परे रहता है।"

वर्षा गई। शरद आया। काँस के स्वेत फूलों की ...ई २ ढूँढ़ियाँ वर्षा की दाढ़ी बन कर उसकी अन्तिम ...वस्था का दृश्य दिखला रही हैं। बुढ़ापे मे बूढ़ो की उजली दाढ़ी हिला करती है। हवा के झोंके पाकर कांस के फूल भी वैसे ही हिल रहे हैं।

आकास मे अगस्त्य तारा उदय हो आया। नदी नाले लहरीले ताल जितने पानी से भरे हुये थे सूखने लगे। जब किसी के मन में संतोष आ जाता है तो लोभ सूख जाता है।

वर्षा ऋतु मे पानी गदला और मटमैला था। अब वह थिरा कर शुद्ध और निर्मल हो गया है। लोभ मोह का गन्दापन इसी समान सन्तों के हृदय से शान्त होते ही दूर हो जाता है और इस मे गंभीरता आजाती है।

वर्षा का पानी यकबारगी नहीं सूखता। वह भी कुछ समय लेता है। यह रिस २ कर या तो पृथ्वी में समा जाता है या आकाश मंडल से मिल रहता है। यों ही ज्ञानियों के हृदय की ममता जल्द दूर नहीं होती। उन्हे भी उसके लिये साधन और अभ्यास करना पड़ता है।

शरद ऋतु के आते ही खंडरिच पक्षी आ गये। यह वर्षा ऋतु में भागे २ फिरते थे। अच्छा समय पाया। आ गये। मनुष्य अच्छे कर्म करता है उसे सुकृति और यश भी समय पाकर मिलते हैं।

धूल मिट्टी और गर्द दब गये। पृथ्वी निर्मल और सुथरी प्रतीत होने लगी। इसी प्रकार जो राजा नीति और बुद्धिमानी से राज़ काज का प्रबन्ध करता है, उस देश के उत्पात दब जाते हैं।

पानी कम हो गया। छोटे २ तालाबों की मछलियाँ बलड़ा २ कर तड़प रही हैं। यही दुशा उस अज्ञानी गृहस्थी की भी होती है जिसकी आमदनी कम हो गई और निर्धन बन गया।

आस गले की फाँस है, जैसी आसा वैसी वासा, आशा वाला पुरुष निराशा, जब आशा की जड़ कट जाती है भक्तों के हृदय वैसे ही निर्मल हो जाते हैं, जैसे इस समय बादलों से खाली आकाश निर्मल दिखाई दे रहा है।

आस २ जग बंध रहा, आस २ लिपटाय।
गुरु आसा पूरी करें, सकल आस मिट जाय ॥१॥
आसा दुख का मूल है, मन को करे मलीन।
आसा तृष्णावन्त जो, सदा हृदय का दीन ॥२॥
चाह मिटी चिन्ता गई, दुविधा भागी दूर।
अब उसको क्या चाहिये, हो रहा चित भरपूर ॥३॥

कहीं २ कभी २ थोड़ी २ वर्षा से सर्दी हो जाती है यह दशा उन प्रेमियों की है जिनको मेरी कुछ २ भक्ति मिल गई है।

वर्षा ऋतु के समाप्त होते ही राजा, व्यौपारी, भिकारी नगर से निकल कर अहेर, बंज और भीख के व्यौहार मे लगते हैं। हरी के भक्तों को जब भक्ति का धन मिल जाता है वह भी इसी प्रकार चारो आश्रम ब्रह्मचर्य्य गृहस्थ, वानप्रस्थ और सन्यास को छोड़ २ कर एक भक्ति के [illegible] विचरते हैं।

जहां गहरा और अथाह पानी भरा रहता है वहां मछलियाँ सुखी रहती और सुख मे रहती हैं। इनकी दशा उन भक्तों के समान है जो हरी की शरण में आकर माया की नाना प्रकार की उपाधियों से विमुक्त हो गये।

एक भक्ति की शरण में, मिटा उपाधी दोष।
अब किस की आसा करूँ, किसके ऊपर रोष ॥
काम क्रोध मद लोभ के, छूटे सकल विकार।
चरण कमल हरि की शरण, होगया बेड़ा पार ॥

अहा! देखो कुटी के इर्द गिर्द के तालाब, खिले हुये कमल के फूलो से भरे हुये कैसे शोभायमान हो रहे हैं! यही दशा निर्गुण ब्रह्म की हो जाती है जब वह सगुण रूप में प्रगट हो जाता है।

कारण बीज से वृक्ष हो, फूला फला सुहान।
अब देखो स्थूल में, कारण शोभामान ॥
सुषुप्ति दशा से क्या बने, समझ न आवे ज्ञान।
जागृत में उसकी दशा, परखे पुरुष सुजान ॥

पक्षी चहचहा रहे हैं। पपीहा पी पी कर रहा है। भौरे गुंजार रहे हैं। कोयल की कू कू की कूक से पहाड़ ऊसर बन गूँज उठे हैं। चकोर को वैसा ही दुख हो रहा है जैसे बुरे लोग औरों के धन सम्पत्ति को देख कर योंही दुखी होते हैं।

अहा! यह ऋतु कैसी सुहावनी है! न इसमें बहुत सर्दी है न गर्मी है। गर्मी और सर्दी दोनों एक समान हो गये हैं। इसने तो संत के दर्शन का प्रभाव दिखा दिया। संतों के मिलाप से पातक और तीन ताप भाग जाते हैं इस शरद ऋतु में गर्मी सर्दी समान हो जाती है।

सुख सन्तों के दर्श में, और कहीं सुख कहां।
जिसे हो सुख की चाहना, जाय वो सन्त जहां ॥
सुख देवें दुख को हरें, मेटें सकल उपाध।
ऐसे हरि जन कब मिलें, परम सनेही साध ॥

रात के समय चकोर चन्द्रमा को एक टक हो कर निरखता रहता है। ध्यानी भक्त उसी प्रकार इष्ट के स्वरूप में मन बुद्धि चित्त और अहंकार को

एकाग्र किये और टकटकी लगा रखता है।

ध्यान है मन की धारणा, कर लिया मन को साध।
चित्त लगा गुरु चरण में, सुरत हुई विस्माध॥

मच्छर और पिस्सू इस ऋतु में उसी प्रकार नाश हो जाते हैं जैसे विघ्न, हरि जन और भक्तों के द्रोही देखते २ लोप हो रहते हैं।

वृक्ष लह लहा उठे हैं। घास की हरियाली पृथ्वी पर आप ही आप दौड़ रही है यों ही जब सौभाग्य के उदय होने से गुरू की प्राप्ती हो जाती है तो सब संयम नियम आप ही आप बिना किसी परिश्रम और जतन के इकट्ठे हो जाते हैं।"

गुरु मिले सबकुछ मिला, अब कुछ रही न आस।
मनसा वाचा कर्मणा, सेवक स्वामी पास॥
गुरु मिले शीतल हुआ, मिटी मोह तन ताप।
दुख क्लेश व्यापे नहीं, अब गुरु आये पास॥

पाँचवाँ समुल्लास

राम की बेचैनी और किष्किन्धा में बेकली

राम बोले-"ऐ लक्ष्मण! वर्षांत गई, शरद ऋतु आया। अब तक सीता की सुध नहीं मिली। कौन जाने वह मर गई या जीती है। सुध मिल जाय और इतना पता लग जाय कि वह अब तक जीती है, तो मैं उसके लिये काल से लड़ झगड़ कर उसे फेर ला सकता हूँ। वह जीती हो तो तुम जाओ और खोज लगा कर ले आओ।"

लक्ष्मण-"जो आज्ञा।"

राम—"सुग्रीव ने मुझे भुला दिया। राज पाट धन सम्पत्ति, स्त्री, प्रजा उसे सब सहज मे मिल गये। यह नहीं समझता कि जिस एक बाण से मैंने बाली को मारा है उसी से उसे भी मार सकता हूँ।"

लक्ष्मण ने देखा कि राम सीता के वियोग मे बेचैन और सुग्रीव के कर्तव्य से क्रुद्ध हो रहे हैं, यह क्रोधातुर होकर उठे। हाथ में धनुष बाण।

राम ने कहा-"तुम जाओ। सुग्रीव फिर भी मित्र है उन्हें भय देकर मेरे पास लाओ, तब उनको समझा दूँ।" लक्ष्मण ने अकेले हाथ में धनुष बाण लिये हुये किष्किन्धा नगर की ओर पांव बढ़ाया।

नगरवासियों ने दौड़ कर सुग्रीव को सूचित किया कि लक्ष्मण आरहे हैं। यह पहिले ही से विकल थे। दो ही चार दिन हुये होंगे कि हनूमान ने सुग्रीव को चिताया था-" तुम भूल गये। राम के उपकार को नहीं माना! राग रँग में मस्त पड़े हो। कहाँ क्या कह आये थे. कहाँ क्या कर बैठे! सीता की खोज की चिन्ता चित से चली गई" सुग्रीव को चेत आया और उसी समय बन्दरों को उत्तर, दक्षिण पूरब, पच्छिम भेजा कि सीता को खोजलायें।

यह प्रबन्ध हो ही रहा था कि लक्ष्मण किष्किंधा में आये। लक्ष्मण क्रोध में थे। वहाँ पहुंच कर बंदरों से कहा-"तुम कृतघ्न हो। मैं अभी तुम्हारे नगर को जला कर धूल मिट्टी किये देता हूँ।"

सब के सब डरे हुये थे। किसी को साहस नहीं हुआ कि उन के पास आये। बाली के लड़के अँगद ने यह दशा देखी। आया और लक्ष्मण के पावों पर अपना सर रख दिया। लक्ष्मण ने कहा-"अभय रहो"। सुग्रीव असमँजस मे था। हनूमान से कहा-"तुम तारा को साथ लेजाओ, समझाओ, बुझाओ, लक्ष्मण की क्रोधाग्नि को ठंडा करो।"

यह दोनों आये, दण्ड प्रणाम किया और विनती करके राज महल मे लाये। सुग्रीव ने स्वागत किया। चरणों में झुका। लक्ष्मण ने उनको छाती से लगाया।

सुग्रीव बोले-"प्रभो! मैं बन्दर का बन्दर हूं। प्राकृतिक प्रबन्ध ने मुझे बन्दर का रूप दिया। बँदर चँचल होता है। वह विषयासक्त रहता है। स्वार्थी होता है। मैं आपको भूल गया। इसमें आश्चर्य्य की कौनसी बात है। जो जैसा है वैसा ही तो करेगा! हाँ! आप अपने सेवकों को भूल जायें तब निःसंदेह सन्देह होता है।"

जो मैं भूला भूल से, भूल है मेरा स्वभाव।
तुम मुझे अचरज महा, खोया अपना प्रभाव॥
तुम मे गुन मैं औगुनी, अधम विषय लवलीन।
मेरा इसमें दोष क्या, मैं नहीं चतुर प्रवीण॥
बन्दर चंचल बुद्धिगति, उछल कूद से काम।
तुम नर नारायण दोऊ, अविचय और अकाम॥
तुम नर बानर मैं बना, नर, बानर में भेद।
बानर-नर के है सदृश, ... रों भेद॥
दया, क्षमा, करुणायतन, यह है आपका रूप।
मैं प्रजा हूं आपका, आप हमारे भूप॥

लक्ष्मण सुग्रीव के रहस्य मय वाणी को सुनकर हँस पड़े। सुग्रीव का अभय दान देकर साथ लिया और वहाँ आये जहाँ राम कुटी के एकान्त में बैठे हुये, इनकी प्रतीक्षा कर रहे थे।

तृतीय भाग

पहला समुल्लास

सीता की खोज का प्रबन्ध

सुग्रीव व्याकुल होकर चरणों में पड़ा—"नाथ! मैं बानर हूं। नर नहीं हूं। केवल नर के सदृश कहा जाता हूं। पशु का विकार, नर का आकार! द्वन्द स्वभाव वाला! मोह माया में फँस कर विकारी पशु बना। नर के आकार का ध्यान भूला! आकार निर्बल और विकार प्रबल है। मेरा क्या दोष है! दोष होगा तो आपकी माया का होगा। बन्दर को माया नचाती रहती है। यह क्या करे। नाचता रहता है। हाँ! आपकी दया हो तब तो इस माया जाल से छूटना संभव है। नहीं तो यह बँधे का बँधा बन्धनासक्त है। आप का बंदर बँधा हुआ दरबार में उपस्थित है। जो आज्ञा इसे होगी, सर से और आँख से उसे पूरी करेगा।"

इस नर और बानर की रहस्य मय वाणी सुन कर राम मुस्कराये। सुग्रीव भय वस कांप रहा था। "सुनो सखा! तुम मेरे मित्र हो। काँप रहे हो। इसी कपकपी और काँपने के स्वभाव से वानरो का नाम 'कपि' पड़ गया। अब कांपने का काम नहीं रहा। बानर हो तो मुझ जैसे नर के बल का सहारा लो, और बलराम होजाओ।"

सुग्रीव—"भगवन्! आप को मैं नर नहीं कहता आप नारायण हैं। यहाँ केवल एक नर है और वह लक्ष्मण है। नर कहते हैं नरों (मनुष्य) के समुदाय को, और अयन कहते हैं घर को, जो नरों के समुदाय का घर हो, वह नारायण है। जैसे समुद्र में अनगनित बूंदे रहती हैं, वैसे ही आप में यह सारे नर बसते हैं और सब कपि (कांपने वाले बन्दर) केवल बानर हैं जिनका आकार मात्र नर का है। एक नर (लक्ष्मण) किष्किन्धा गया और सारे बानरों को बांध लाया। नर ही बानरों को बांध कर नारायण के चरणों में लाकर झुका देता है।"

राम हँसे—"सुग्रीव! तुम मुझे नारायण कहते हुये नरो का घर बताते हो। मैं तुम्हें बानर कह कर क्यों न नारायण कहूँ। तुम भी तो बानरों के समूह के घर हो। तुम्हारे साथ अनगनित बानर (नर सदृश या नर के आकार वाले) हैं। अब ये बातें ज्ञानियों और ध्यानियों को लिये छोड़ो। मुझे केवल सीता को पुनर्प्राप्ति का ध्यान है। यह काम केवल बानर ही कर सक्ते हैं। यह औरों के बूते का नहीं है। मैंने इसे अच्छे प्रकार समझ बूझ लिया। तुम भी अब अपने स्वरुप का विचार करके उसमें स्थित होजाओ और चित्त की शक्तियां एकाग्र करके सीता की खोज में लगो। इसमें मेरा काम और तुम्हारी भलाई है।"

सुग्रीव—"एवमस्तु।"

बानर कटक (बन्दरों की पलटन)

सुग्रीव उठे—किलकिलाये घोर शब्द हुआ, और शब्द की पुनरावृत्ति चौफेर सब जगह गूंज उठी। इसे सुनते ही लाखों बन्दर झाड़ियों, बनों, पहाड़ों, बस्तियों और ऊजड़ों से निकल कर कूदते फाँदते हुये आये और राम के इर्द गिर्द आकर खड़े होगये। इस पल्टन में केवल बन्दर ही नहीं थे बल्कि रीछ भी थे रीछ और बन्दरों की क्या उपेक्षा है। इसे रामायण का रहस्य समझो और वह धीरे-धीरे इसे खोलती चलेगी।

राम और सुग्रीव दोनों बन्दरों की सैना को देख कर प्रसन्न हुये।

बन्दर और रीछ पहिले तो दोनों आकर खड़े हुये पीछे अपनी प्रकृति अनुसार हिलने डोलने चलने फिरने और उछलने कूदने लगे।

> कोई कूदता था कोई फाँदता था।
> उछल कर कोई फिरता और नाचता था॥
> उछल कूद में फाँदने में थे योधा।
> स्वभाविक था गुन, मन को साध न सोधा॥

राम ने फिर वहाँ विचित्र माया की। पहिले तो सुग्रीव ने सब को चुप कराया। फिर राम ने सब पर दृष्टि डाली, सब से कुशल पूछी और इन सब के सब को विश्वाश हो गया कि राम सब से मिले और सब पर दयालु थे।

जब यह हो चुका, सुग्रीव ने अपनी द्वन्द सेना चंचल (बंदर) और मूढ़ (रीछ) को यह आज्ञा सुनाई—"तुम सब के सब चारो दिशाओ मे जाओ, पूछो, गछो, सीता का पता लगाओ कि वह कहां है? कौन लेगया है? और किस जगह ले जाकर छुपा रक्खा है। तुम आने मे देरी न लगाना। एक पक्ष में लौट कर आजाना। नहीं आये तो फिर तुम्हारी कुशल नहीं है।"

बन्दर और रीछ सब तितर बितर हो गये। कोई पूर्व को गया। कोई पश्चिम उत्तर और दक्षिण को, और कोई २ समूह दिशाओं के कोनों की ओर पधारा।

इनके चले जाने पर अन्त में सुग्रीव ने अंगद हनूमान, नल नील और जामवन्त को बुलाकर कहा—"यह काम साधारण रीछ और बन्दरों का नहीं है। इसके लिये बड़ी सावधानी समझ, बूझ और सहन शक्ति की आवश्यकता है। तुम चारों के चार धीर गंभीर और शूर वीर हो। लड़ भिड़ भी सकते हो और समय २ के धर्म को भी जानते पहिचानते हो। अपने साथ जितनी सेना चाहो ले जाओ। मन बचन कर्म से इस काम को करो। सरदी के समय सूरज को पीठ दिखाकर धूप का सेवन किया जाता है। और आग को दृष्टि के सामने रखकर सेका जाता है। स्वामी की सेवा के लिये सब का परत्याग हो। परलोक सेवन के निमित्त माया का त्याग किया जाता है। फिर शोक मोह और भ्रम का भय जाता रहता है। शरीर धारण करने का फल यही है कि राम की सेवकाई की जाय। इस से बढ़ कर और कोई भी बात नहीं है। तुम भगवान हो। तुम्हें यह सेवा किसी मुख्य अभिप्राय से सौंपी जारही है। तुम केवल दक्षिण की दिशा में जाओ और उसी दिशा में तुमको सीता का पता लगेगा, क्योंकि जहां तक मैंने देखा है आकाशी बिमान इसी दिशा की ओर उड़ता हुआ गया है।"

ये राम और सुग्रीव के चरणों में झुक २ कर विदा होकर चले गये। सब से अन्त में हनूमान ने आकर मस्तक झुकाया। राम ने पास बुलाकर कहा—"तुम सबसे पहिले मुझ से मिले थे और अन्त तक तुम्हें साथ देना होगा। जाओ यह मुद्रा (अंगूठी) ले जाओ। सीता से मिलो, समाचार लो, समझाओ, बुझाओ, धीरज दो और मेरा वृतान्त सुनाओ।" हनूमान भी प्रणाम कर चल खड़े हुये।

राम सब कुछ जानते हुये नर लीला कर रहे थे और जब तुम इस महारामायण को आद्योपान्त समझ कर पढ़ लोगे उसका सब रहस्य और गुप्त भेद तुम्हारी समझ में भी आजावेगा।

व्यवहार का पालन करना नीति है। राम, नाम के बनकर हमको तुमको और सारे नर-जगत को खेल दिखाने चले थे कि मनुष्य को किस प्रकार गृहस्थ आश्रम का व्यवहार करते हुए धर्म पालन करना चाहिए। वह मर्यादा पुरुषोत्तम थे। उनका खेल केवल गृहस्थ आश्रम का खेल था। वह जानते थे कि सीता को रावण लेगया है, लेकिन एक बन्दर को भी वह भेद नहीं बताया क्यों? क्योंकि शबरी रूपी भक्ति के संपूर्ण अंग से मिलने के पश्चात् उनको ऋष्यमूक की यात्रा करनी पड़ी थी। यहाँ वह यात्रा करे जो पहिले गूंगा बहिरा बन जाये।

आँख कान मुख मूँद कर, चल सतगुरु के पन्थ।
क्यों पढ़ कर पच पच मरे, लाखों पोथी ग्रन्थ ॥१॥
ग्रन्थों से ग्रन्थी बँधे, ग्रन्थि का करें विचार।
आग लगी तन मन फुंका, भागे तजन असार ॥२॥
नर बानर को बाँध ले, ऋष्यमूक गिरि आय।
समझे मूझे आप ही, साधन सहज उपाय ॥३॥
मन चंचल बानर बना, खेले खेल अपार।
इसके सशोधन बिना, मिले न गुरु गुण सार ॥४॥
अंगद नल और नील, हनूमान सुग्रीव।
बानर पाँच सुशील, इनको अपने साथ ले ॥५॥
रामायण पढ़ कर समझ, राम रहस्य चरित्र।
इस चरित्र में है भरा, ज्ञान विवेक विचित्र ॥६॥
बन साधन साधो नहीं, अनुभव केहि विधि होय।
पढ़ा लिखा सोचा बहुत, पंडित हुआ न कोय ॥७॥

—:—

चतुर्थ भाग

पहला समुल्लास

सीता की खोज

कोई कहीं गया। कोई कहीं गया। अङ्गद का दल दक्षिण की ओर चला। बन, पर्वत, ऊसर, ग्राम, बस्ती और उजाड़ छान डाले। जो कोई मिला, उससे पूछ डाला। पता नहीं लगा। रास्ते में कहीं कहीं निश्चर (निश या रात की चर्या करने वाले) मिल जाते थे। बन्दर तो दिनचर (दिन की चर्या करने वाले) हैं। यह उनसे बहुत घबराते थे। नोच खसोट का बर्ताव उनके साथ करते थे और उन्हे मार भी डालते थे।

सब कुछ किया। सीता का पता नहीं लगा। किसी ने नहीं बताया वह क्या हुई, कहाँ गई, कौन लेगया, और किसके पास है।

बन में कहीं ऋषि मुनि तपस्वी भी मिल जाते थे। यह उनके पास जाकर घेर घार करते। पूछा पेखी से काम लेते। इनमें से सीता का नाम भी तो किसी ने नहीं सुना था, देखना तो अलग रहा। अनोखा नाम! निराला चरित्र!! नाम भी कैसा? खेत में हल जोतने की लकीर! किसी किसी को इन बन्दरों की सरलता पर हँसी आजाती थी। वह इनका भयंकर रूप देखकर दौड़ जाते थे। अपनी हँसी को रोक रखते थे, उनका उत्तर केवल 'नहीं' होता था।

न हमने आँख से देखा न कानों ही से सुना।
यह सीता क्या है नहीं हमको इसका कुछ भी पता ॥१॥
लकीर खेत की है, खेत ही में वह होगी।
बताये कैसे कोई ज्ञानी ध्यानी योगी ॥२॥
यहाँ नहीं है कहाँ है, नहीं है हमको पता।
जो जानते तो तुम्हें, देते उसका भेद बता ॥३॥

उदासी छागई। निराश हुए। साहस को धक्का लगा। करते भी तो क्या करते! न लौट कर जा सकते थे, न वहां रह सकते थे। इनकी दशा का अनुमान कौन कर सकता था।

जाके पैर न फटी बिवाई। वह क्या जाने पीर पराई ॥

फिर भी खोज मे लगे ही रहे

चलते-चलते एक ऐसे घने वन मे पहुंचे, जहां पशु पक्षी, जीव-जन्तु नही दिखाई दिये। मनुष्य का तो भी नही था। सारा जगत मनुष्य मात्र के आधार पर रहता है। जहाँ मनुष्य है वहां सब कुछ है। जहाँ मनुष्य नही, वहां कुछ भी नही रहता। सोचने लगे यह निर्जन बन क्यों ऐसा उजाड़ है। भूक प्यास से दुखी हुए। फल पत्ते तक दिखाई नही दिये। पानी का कहीं नाम भी नही था। गला सूख गया। मुंह मे छाले आगये। कांप उठे और जबान मुंह से बाहर आगई। निश्चय हुआ कि मृत्यु यहां ले आई है। बन्दर इस जगह आकर जीते नही रह सकते।

हनूमान ने उनकी दशा देखी। तरस आया। एक ऊँची पहाड़ी की चोटी पर चढ़ गये। इधर ..., उधर देखा। न कोई बस्ती दिखाई दी, न पानी ... में आया। फिर भी अपनी आंखो की वृत्ति ... दूर दूर भजा। कई कोस पर बगुले, राजहंस, ...ए और अनेक प्रकार के पक्षी उड़ रहे थे। ढारस बँधी—अनुमान हुआ वहाँ पानी अवश्य होगा।

पहाड़ी से नीचे उतर कर बन्दरो की सेना को साथ लिया। गिरते पड़ते किसी प्रकार उस स्थान पर पहुंचे। उस जगह एक गुफा बनी हुई थी, जो तंग और अँधेरी थी। वहां देवी का एक छोटा विचित्र मन्दिर देखने में आया। इसके इर्द गिर्द चौफेर पानी से भरे हुए तालाब हवा के झोकों से लहरा रहे थे, और इनमें कमल के फूल बहुतायत से खिले हुए थे।

मंदिर मे गये। एक तपस्विनी सुन्दरी बैठी हुई थी। उसे नमस्कार किया। अपना वृत्तान्त आदि से लेकर अन्त तक सुना दिया।

वह बोली, "पहिले तुम जाकर फल, फल, पत्ते जो हाथ लगे खाओ, पानी पीओ। फिर मेरे पास आओ तुम्हारे चित्त भूक-प्यास से ठिकाने नही हैं।"

ये गये। खा पीकर सन्तुष्ट हुए। उस देवी को आकर नमस्कार किया। उसने उन्हे आसन देकर बैठाया—"सुनो बन्दरो! दृष्टि सृष्टि है और सृष्टि दृष्टि है, साक्षी रूप मे दृष्टि सृष्टि का व्यवहार हो तो सुगमता, सरलता और सहजता होती है, और जहां अहंकार के वश मे आकर प्राणी परिश्रम के साथ प्रयत्न करता है, वहां कठिनाई होती है।"

साखी आँखी ज्ञान की, समझो अपने मन।
बिन साखी नहीं जग छूटे, करलो लाख जतन ॥
साखी रूप में देखियो, इस जग का व्यवहार।
आँख खुले पर फिर नही दुखदाई संसार ॥

तुम मेरे पास आगये, अच्छा किया। तुमको सीता का पता मिल जायगा। घबराओ नहीं। सीता का पता तो मिला हुआ है। तुम्हारी चंचलता ने परदा बन कर उसे ढक रक्खा है।

मन चंचल को थिर करो, देखो विमल बहार।
मध्य सशुम्ना तिल बसे, तिल में जोति अपार ॥
तिल में जोति अपार है, जोति में जोति की खानि।
जोति के अन्तर्गत रहे, गुरुगम गुरु का ज्ञान ॥
दौड़त धौड़त दौड़िया, जहाँ लग मन की दौड़।
दौड़ थके मन थिर भया, वस्तु ठौर की ठौर ॥

मैं रमा शक्ति हूँ। मेरा सहारा लिये बिना न राम की समझ आती है, न सीता को कोई देख सकता है। मैं आप राम के पास जारही हूं, तुम अपनी आखो को बन्द करलो। सिंध के तट पर पल मारने में पहुंच जाओगे, वहाँ सीता की लकीर की वृति का दर्शन होगा।" बन्दरों ने आँख बन्द करली।

जब आँख खोली तो न मन्दिर है न गुफा है, न रमा देवी है, न कमल के तालाब हैं, और वह के सब समुद्र के तट पर खड़े हुए हैं। समुद्र लहरे ले रहा हैं।

जो कि देखा स्वप्न था जो कुछ सुना था स्वप्नवत।
क्या कहे कोई उसे है चकित मन वाणी की गत ॥

दूसरा समुल्लास

संपाती

समुद्र का तट ! सुनसान दृश्य ! वायु वह रही है ! पानी झकोले ले रहा है ! पत्ती मँड़ला रहे हैं ! पखेरू उड़ रहे हैं ।

शब्द की भनक कानों में पड़ी—"वर्षों से भूखा हूं । अहार नहीं मिला । निराहार जीवन व्यतीत हो रहा है । आज मेरे भाग का तारा उदय हो आया । विधाता ने आप ही आप बहुत आहार भेज दिया । वर्षों की भूख की कसर आज निकलेगी । पेट भर कर खाऊँगा । तृप्ति होगी । शान्ति आयगी ।

शब्द के सुनते ही यह सब के सब डर गये— "यह क्या है ! कौन बोल रहा है ।"

बन्दरों में खलबली पड़ गई । सब कहने लगे । पक्ष की समाप्ति का दिन निकट आगया । अब तक सीता की सुध नहीं मिली । क्या करें, न यहाँ रह सकते हैं न घर जा सकते हैं ।

कैसी दुविधा में पड़े हम, कैसी दुचिताई है आज ।
क्या करें कैसी करें, अब तक हुआ न पूरा काज ॥

युवराज अंगद की आँखों मे पानी भर आया— "मेरी तो मृत्यु आगई । यहाँ सीता का पता नहीं लगा । वहाँ लौटने पर सुग्रीव मुझे जीता न छोड़ेगा । अब तक तो वह मेरा जीवन समाप्त कर चुके होते । राम न आगये होते तो मैं जीता न बचता ।"

राजकुमार की करुणा जनक दशा देखकर सारे बन्दर रो पड़े । दुःख की अवस्था में सुने हुए भयानक शब्द का स्मरण भूल गये ।

जामवन्त ने समझाया—"युवराज ! तुम दुखी क्यों होते हो ! तुम्हारी आँखो पर परदा पड़ा हुआ है । तुम राम को नर समझ बैठे हो, यह बड़ी भूल है । राम आये, तुमको सीता की खोज का काम दिया । यह तुम्हारी वीरता और बल-बुद्धि की दृढ़ता की परीक्षा का समय है । तुम घबराते क्यों हो । राम नरलीला कर रहे हैं । उनका काम तो हुआ हुआ है । वह किसी के अधीन नहीं है । हाँ, व्यवहार में नट-क्रिया का खेल दिखा रहे हैं । खेल खेल में खेल को देखो । बालक हो, बालपन का खेल खेलो, जहाँ राम हैं, राम का सहारा है वहाँ मृत्यु कैसी !

राम ही में ज्ञान है और राम में अनुमान है,
राम ही में देह वाणी बुद्धि का प्रमाण है ॥
राम को तुम नर न जानो राम नारायन है मित्र,
राम ही में है भलाई राम में कल्याण है ।
राम की सेवा करो भक्त के साजो दल को आज,
राम जीवन है हमारा राम सच्चा प्राण है ।
राम निर्गुण और सगुण हैं ब्रह्म इन में गुण कहाँ,
यह सगुण का रूप प्रगट रूप यह भगवान हैं ।
अंग दो अंगद बनो, राम जब हैं अंग संग,
राम का भक्तों के मन में भक्ति का अभिमान है ।

कुछ तो ढारस बँधी, लेकिन ढारस तो ढारस ही होती है । जब तक राम की सची दया न हो, यह ढारस भी दृढ़ नहीं होती ।

फिर भयानक शब्द की ध्वनि कान में पड़ी— "आया हुआ अहार अब जाता कहाँ है ! वह तो मेरे भोग ही के लिये आया है !"

हड्डी पसली तक चबाकर इनकी मैं खा जाऊंगा,
पेट मेरा अब भरेगा शान्ति को तब पाऊंगा ॥
की विधाता ने दया आया निकट मेरा अहार,
नाज पानी मिल गया है भूख को बिसराऊंगा ।
मांस खाऊंगा, पीऊँगा रक्त छोड़ूगा न मैं,
ये कहाँ जाते हैं, इनको मैं पकड़ कर लाऊँगा ॥
गिद्ध हूँ जाती है दृष्टि, मेरी लाखों कोस तक,
यह है अब पंजों में मेरे खाऊँगा हां खाऊँगा ।
भय नहीं चिंता नहीं दुविधा नहीं मन में रही,
खाना पीना हाथ आया तृप्त अब हो जाऊँगा ॥

बन्दर डरे । गिद्ध अपने गढ्ढे से निकला, वह पहाड़ के आकार का था । रुण्ड, मुण्ड ! पंख और पर से रहित ! वन्दरों की दृष्टि इस पर पड़ी । इससे

कौन बच सकता है ! यह सबको झपट कर मुँह में रख लेगा ! इसकी दृष्टि में बिजली की आकर्षण शक्ति होती है। बड़े बड़े अजगर इसका शब्द सुनकर प्राणहत हो जाते हैं और उन्हें नोंच नोंच कर खाजाता है।"

जामवन्त ने कहा—"भय न करो जटायु भी गिद्ध था, जिसने राम के काज में अपना प्राण त्याग दिया। कौन जाने यह भी उसी प्रकार का हो। जैसे वह पर्वताकार था वैसे ही यह भी है।"

गिद्ध ने जटायु का नाम सुना, पहाड़ के समान हिलते डोलते इनके पास आया यह अपनी उछल कूद-भूल गये। भागते भी तो कहाँ भाग कर जा सकते हैं। कहते हैं कि अजगर की आँखों में प्रबल आकर्षण शक्ति होती है। वह उड़ते हुए पक्षी को आकाश में देखकर दृष्टि की धार से खींच कर मुँह में रख लेता है। बड़े बड़े पशुओं को खींच खींचकर खा जाता है। इस गिद्ध गरुड़ के सामने इसकी भी नहीं चलती। वह चुपचाप अटौल बन जाता है, और यह उसे खा जाता है।

वह उनके पास आया। "तुम जटायु को कैसे जानते हो ! वह कैसे मरा ! डरो नहीं। अब मैं तुम्हें नहीं खाऊँगा। अभय होकर मुझे जटायु का वृत्तान्त सुनाओ।

जामवन्त सब सैना में स्याना था। सीता-हरण और राक्षस के हाथ से जटायु वध और राम के क्रिया-कर्म की कथा कह सुनाई।

इस गृद्ध ने कहा—"मैं जटायु का सगा भाई हूँ। धन्य था उसका जीवन जो राम के काज आया। तुम ठहरो ! समुद्र के किनारे नारियल के वृक्ष बहुत हैं। तोड़ो, खाओ, पेट भरो। मैं समुद्र में स्नान करके और जटायु के नाम पर तिलांजली देकर अभी आता हूं। तुम में से दो चार बन्दर मुझे यहां ले चलें। तब तुम को सीता का पता दूंगा और अपनी कहानी सुनाऊँगा।"

यह कह कर वह तो नहाने धोने वहाँ चला गया और यह अभय होकर खाने-पीने लगे।

तीसरा समुल्लास

सम्पाति की कथा

थोड़ी देर पीछे सम्पाती आया। सबने उसे नमस्कार किया। इसने भी नमस्कार किया, पास आकर बैठ गया।

सम्पाती ने कहा

> हाँ बन्दरो ! इस गिद्ध की तुम सब कथा सुनो।
> जो कुछ मुझ पै बीती वह सारी कथा सुनो॥

मैं सम्पाती (संस्कृत 'सम' पहिले और पा= गिरना, उतरना) गरुड़ (गरुत=पंख, और डी= उड़ना) का पुत्र हूँ। जटायु (जटा=समूह=इकट्ठा किया हुआ, और 'यू' आयु) उड़न देवता का पुत्र था। उसकी आयु बहुत थी। गिद्ध अधिक दिनों तक जीते हैं। हम दोनों मित्र थे। भैयापन का नाता था। एक दूसरे को भाई भाई कहते थे। हमने गायत्री मन्त्र को सुन रक्खा था—"ओ३म् भू भुवः स्वः तत् सवितुर वरेण्यम्" इसका अर्थ यह है भूलोक, भुवलोक और स्वर्गलोक तक के विचार को छोड़ कर ओ३म् का जाप करते हुए तत् (उस) सवितर (सूरज), वरेण्यम् (ध्यान योग्य) के पास जाओ, और वहाँ पहुंचकर उसके सन्निकट पहुंचकर भर्गो (प्रभाव) देवस्य (उस देवता) का (धी महि) धारण करो। धियो योनः प्रचोदयात्—वह तुम्हारी बुद्धियों का प्रेरक हो जाय।

सम्पूर्ण मन्त्र यह है—ओं भूर्भुवः स्वः तत् सवितर वरेण्यम् भर्गो देवस्य धी महि धियो योनः प्रचोदयात्।"

और साधारण बोली में उसका उलथा यह है—"ओ३म् को सुमरते हुये भूलोक, भुवलोक और सुरलोक तक की भावनाओं को भुला कर उस ध्यान योग्य सूरज के पास जाओ। उसके प्रभाव को धारण करो। वह तुम्हारी बुद्धियो का प्रेरक हो जायगा।

"हम दोनों ने इस मन्त्र को सुनलिया। उसका आशय भी जान लिया, गुरु नहीं मिला। न गुरु करने का विचार हुआ। धोका खा गये और अपने बल से इसी सूरज की ओर उड़े। यह नहीं समझा कि वह सूरज और है और हमारे घट मे रहता है। गुरु के बिना यह रहस्य समझ में नहीं आता।"

तरुण अवस्था थी, बल का अभिमान था। उड़े उड़ चले। जटायु सूरज के तेज को सहार न सका तो वह नीचे उतर आया। मुझ मे अधिक घमण्ड था, चला ही गया। सूरज की गर्मी से मेरे पंख झुलस कर जल गये और मैं रुण्ड मुण्ड होकर इस पृथ्वी पर गिर पड़ा। मेरे जले हुए पंख फिर नहीं जमे। जटायु तो दण्डक बन के समीप गिरा और मैं यहाँ समुद्र के तट पर।"

"यहाँ चन्द्र नामी एक मुनि रहते थे। मेरी दशा देखी, दया आई। कहने लगे- जो होना था वह हो चुका। अब चुप-चाप यहाँ बैठा रह। त्रेतायुग में राम ब्रह्म का अवतार धारण करेंगे, सीता हरी जायगी। राम की सेना वानर और रीछों के रूप में उसे खोजते हुए यहाँ आयगी। तू उनका दर्शन पायेगा और कुछ दिनों पीछे तेरे पंख फिर जम आयेंगे तब से मैं यहाँ ही पड़ा हूँ और तुम्हारी बाट देख रहा हूं। तुम धन्य हो जो राम के दूत बन गये और उनकी सेवा कर रहे हो और मैं भी धन्य हूँ जो कि तुम्हारा दर्शन मुझे मिल गया।" सम्पाती यह कहानी सुना कर चुप होगया।"

जामवन्त ने कहा—"अब हमको सीता का पता दीजिए।"

सम्पाती बोला—"दृष्टि साधन करने से मैं दृष्टि शक्ति तो बहुत बढ़ गई है, लेकिन मैं चल फिर नही सकता। दूर दर्शक अवश्य हूं, दूरगामी नहीं हूं। जब से मैंने दृष्टि का साधन सूरज आदर्श को सामने रखकर किया यह शक्ति घट गई। बिना गुरु की सहायता के संस्कार लिये हुए हानि होती है।

"लंका त्रिकूट (तीन शिखर वाले) पर्वत पर बसा हुआ है। वही रावण की राजधानी है और उसके राज काज का ऐसा प्रबन्ध है कि वह बेखटके वहाँ रहता है।"

"इसी लंका में अशोक (शोक रहित) वाटिका है। सीता को लेजाकर रावण ने उसी बगीचे में रक्खा है।"

"क्या कहूं शरीर बूढ़ा होगया, नहीं तो तुम्हारी कुछ सहायता करता। देखता हूँ। जा नहीं सकता, जो सौ योजन समुद्र में जा सकता है और उसे लाँघ सकता है, वह लंका में जाकर सीता की सुधि ले आ सकता है। जिसके नाम के प्रताप से भक्त भवसागर को पार कर लेते हैं, उनके लिये यह लंका का सागर कितनी बड़ी बात है। धीरज रक्खो, और काम में लगो और तुम्हारा काम पूरा होकर रहेगा।" यह कह कर सम्पाती गिद्ध वृक्ष के खोखले में चला गया जो उसका निवास स्थान था।

चौथा समुल्लास

बल पराक्रम विचार

समुद्र का तट और रीछ वानरों की सेना लहरें उठती ऊपर जाती हैं नीचे आती हैं और फिर समुद्र की गहराई में चली जाती हैं। पानी बढ़ा। बढ़ता हुआ पृथ्वी में दूर तक आया और उसकी सामिग्री को वहा कर लेगया और अपने में मिला लिया। रात और दिन समुद्र का खेल इसी प्रकार

होता रहता है। इस समुद्र मे ब्रह्म सृष्टि का दृश्य पल २ और क्षण क्षण आँखो के सामने आता रहता है। सृष्टि ब्रह्म से होती, ब्रह्म में ठहरती और ब्रह्म मे लय हो रहती है। ब्रह्म न घटता है, न बढ़ता है। जैसे का तैसा बना रहता है। न उस में से कुछ निकलता है, न उसमें कुछ मिलाया जाता है। भरा-पूरा रहता है।

सम्पाती की बात सुन कर रीछ और वन्दर विचार करने लगे। सीता का पूरा २ पता तो लग गया। रावण उसे लेगया है और अशोक वाटिका में ले जाकर उसे रख छोड़ा है। सम्पाती की दृष्टि में तो आगई। हम ने सुन लिया। सुनना ही सब कुछ नहीं है। जब तक अपनी आँखों से न देख लो तब तक उसका विश्वास करना बहुत बड़ी भूल है।

पोथियों में ढूंढते हैं लोग ईश्वर भेद को।
भेद तो पाते नहीं पाते हैं जग के खेद को॥
सुन लिया सुनने से ईश्वर ज्ञान रहता है कहाँ।
पढ़ लिया देखा नहीं पढ़ कर समझता है कहाँ॥
जब नहीं देखा तो इसका नाम लेना व्यर्थ है।
है निरर्थक काम इसका तुम कहो क्या अर्थ है॥
बे मिले बे देखे क्या कहते हो वाचक ज्ञान को।
हम नहीं सुनते तुम्हारी युक्ति और अनुमान को॥

जामवन्त ने कहा-'मैं क्या कहूँ। शरीर बूढ़ा और निर्वल हो गया है, नहीं तो इस समुद्र का लाँघ जाना कितनी वड़ी बात थी। जब श्री विक्रम बावन महाराज का अवतार हुआ था, मैं उस समय युवा अवस्था में था। इधर वावन ने अपने डील को बढ़ा कर तीन पग से सारे ब्रह्माण्ड को नाप लिया और मैंने एक ही क्षण मे सात बार उनकी परिक्रमा की।"

अंगद बोले-"भाई! जाने को तो मैं पार जा सकता हूं लेकिन लौटने मे मुझे सन्देह है।"

जामवन्त ने अंगद की पीठ ठोकी-"तुम सव कुछ कर सकते हो। तुम्हारे सुयोग्य होने में कोई सन्देह नहीं है। यह काम किसी और के लिये है।

"जिसका काम उसी साजै। और करे तो डंडा बाजै।"

फिर जामवन्त ने हनूमान की ओर दृष्टि की "तुम आँख कान और मुंह बंद किये हुए क्यों बैठे हो! तुम सब से पहिले राम से मिले। मध्य में भी तुम को काम करना पड़ेगा और अंत तक तुम राम के साथी और सहायक बने रहोगे। तुम्हारा जन्म इसी लिये हुआ है। तुम पवन के पुत्र, चलने में आँधी हो। अभी यहाँ हो, अभी क्षण मात्र में वहाँ पहुंचे। तुम्हारे अकेले के लिये कोई काम न कठिन है, न दुर्लभ है। तुम जो चाहो कर सकते हो। अब काम का इससे अच्छा अवसर कब आवेगा।"

जामवन्त की बातें बड़ी प्रभावशाली थीं, सुनते ही हनूमान पर्वताकार होगये। आँख, माथा और सिर तेज से भभक उठे। सुमेरु पर्वत के समान उन का शरीर स्वर्ण वर्ण का होगया और वह पर्वतों के राजा प्रतीत होने लगे। तीस बार सिंह नाद करते हुए गर्ज उठे—"इस समुद्र को मैं सोख सकता हूं। मेरे सामने क्या है! चल कर रावण को अभी मारता हूं, और उसके सहायको को देखते २ मिट्टी में मिला देता हूं। त्रिकूट पहाड़ को अपने भुजा बल पर उठाये हुए यहाँ ला सकता हूँ। मुझ में ऐसा बल पराक्रम है। लेकिन ऐ जामवन्त! तुम केवल इतनी शिक्षा और दो कि इस समय मुझे क्या करना उचित है?"

जामवन्त ने कहा-"इस समय तुम लंका जाकर सीता को अपनी आँखों देख आओ, और राम को वहाँ का वृत्तान्त आकर सुनाओ। राम आप तुम हम सब को साथ लेकर लंका चलेंगे, रावण के साथ युद्ध होगा। राम की कीर्ति संसार मे फैलेगी। राम का अवतार इसी लीला के निमित्त हुआ है। यों तो उन्हें सामर्थ्य है कि अपने किसी छोटे से छोटे सेवक से बड़े काम ले सकते हैं।"

"उठो, जाओ, समुद्र को लाँघो, लंका जाओ, सीता को देख कर पक्ष के पहिले राम के पास चल कर वहाँ का समाचार सुनाओ।"

इस खंड के सम्पूर्ण आशय की संक्षिप्तव्याख्या

रामायण का यह किष्किन्धा काण्ड है। हमने इसका नाम मन साधन खण्ड रक्खा है। क्यो? क्योंकि इसमें मन के साधन की विधि को अलकारो की परिभाषाओं को चित्रो के रूप मे दिखाया गया है। ऋष्यमूक पर्वत- चुपचाप साधन में रह कर सब से अलग अलग रहना। बानर या बन्दर -मन का चंचल रूप। बानरी सेंना -मन की चँचल वृत्तियाँ। मुख्य चॅचल वृत्ति-सुग्रीव, अंगद, हनूमान नल, नील। हनूमान-मान का हनन करने वाला। बालि- स्थूल कामवृत्ति, जिसका मार देना आवश्यक है। सुग्रीव-(सुखण्ड)-काम का सूक्ष्म अंग, जो सुवचनी और सुकथना होता है। अंगद-(अंग देनेवाला)- क्रोध वृत्ति, जो सुरक्षक! और स्वरक्षक होती है। नल- (बाँधने वाला) -लोभ। नील (रॅगने वाला) -मोह।

जामवन्त- जाम्बूत (जाम्ब-जामुन-वत्-रँग) -जामुन का रंग वाला- यह तमोगुणी मन का रूप है जो बड़ा समझदार, बूढ़ा युक्ति का सुझाने वाला है। तारा- (तार-आँख की पुतली) सुग्रीव की स्त्री।

——:——

जटायु और सम्पाती की व्याख्या पहिले आचुकी है।

साधन अवस्था मे साधक का मुख्य सेवक चंचल मन ही होता है। यह मित्र बना लिया गया तो काम जल्द हो जाता है। यह शत्रु रहा तो फिर काम नहीं होता। इस के पॉच अंग होते हैं:—काम- मीठे वचन बोलने वाला सुग्रीव, क्रोध-समय पर अपना अमल दिखाने वाला-अङ्गद, लोभ-बाँधने वाला-नल, जिसने राम का पुल बाँधा था। मोह— रंग देने वाला-नील, जिसने पुल के पत्थरों को मसाला दे दे कर दृढ़ किया था। अहंकार— मान का हनन करने वाला-हनूमान। इनके अलङ्कृत चरित्रों का आगे के खंड में वर्णन आयेगा।

——:——

मन के तीन रूप होते हैं-अज्ञानीचंचल, और मूढ़। इन्हीं को सतोगुणी, रजोगुणी और तमोगुणी भी कहते हैं और त्रिमूर्त्ति की दृष्टि से यह वैष्णवी, ब्रह्मावी, और शैवी नाम पाते हैं। इसी अज्ञानी, सतोगुणी और वैष्णवी मन को राक्षस कहते हैं। संस्कृत 'रक्ष' (रक्षा) जो अपनी ही रक्षा का सबसे विशेष ध्यान रक्खे वह राक्षस है। इन तीनों हीको मिला कर जो एक करे वह साधक (साधन करने वाला) है। इस राक्षसी मन का अंगद विभीषण है संस्कृत वि (बहुत) और 'भी' (डरना, डर दिलाना) इस का विशेष डर है। इस अज्ञानी मन का वर्णन आगे के काण्ड में आयेगा।

इन तीनों का अंग एक साथ गुथा हुआ होता है उसका चित्र यों समझो :—

१. अज्ञानी वैष्णवी और सतोगुणी मन	इसका अलंकृत रूप विभीषण
२. रजोगुणी चंचल ब्रह्मावी मन	इसका अलंकित रूप बंदर
३. मूढ़ तमोगुणी और शैवी मन	इसका अलंकृत रूप जामवन्त
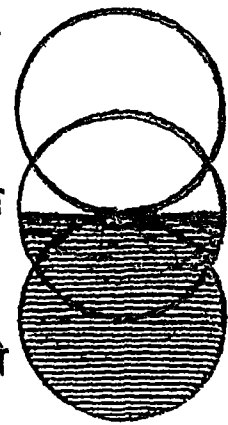
अज्ञानी, वैष्णवी और सतोगुणी मन उज्ज्वल होता है इसलिए उसका रंग श्वेत दिखाया गया है।

मूढ़ तमोगुणी और शैवी मन काला होता है इसलिए इसका रंग काला दिखाया गया है।

रजोगुणी चंचल और ब्रह्माबी मन में स्वेत और काला दोनों रंग हैं और दुरंगी के कारण वह दो रूपा, दुविधा, दुचिताई बाला और चंचल होता है।

सतोगुण और तमोगुण दोनों अपने अपने रंग रखते हैं, रजोगुण म दोनो के अंग होते हैं।

——:——

रजोगुणी सुमित्रा के दो पुत्र लक्ष्मण और शत्रुहन

मन की व्याख्याओं को पढ़ने वाले ध्यान देकर पढ़े। तब अच्छे प्रकार महारामायणम् का आशय समझ में आता जायेगा यह व्याख्या बहुत विवेक-जनक प्रतीत होगी।

रामायण की कथा इसी ढंग पर आरम्भ हुई है। सतोगुणी कौशिल्या के एक पुत्र राम
तमोगुणी कैकई के एक पुत्र भरत
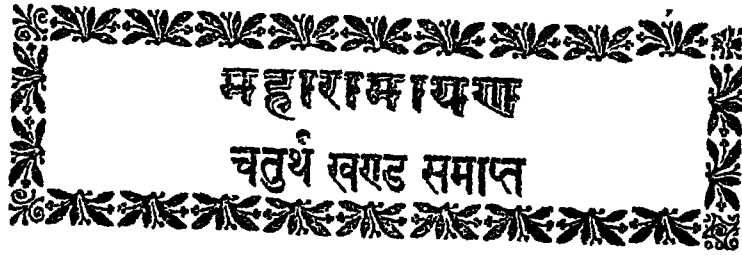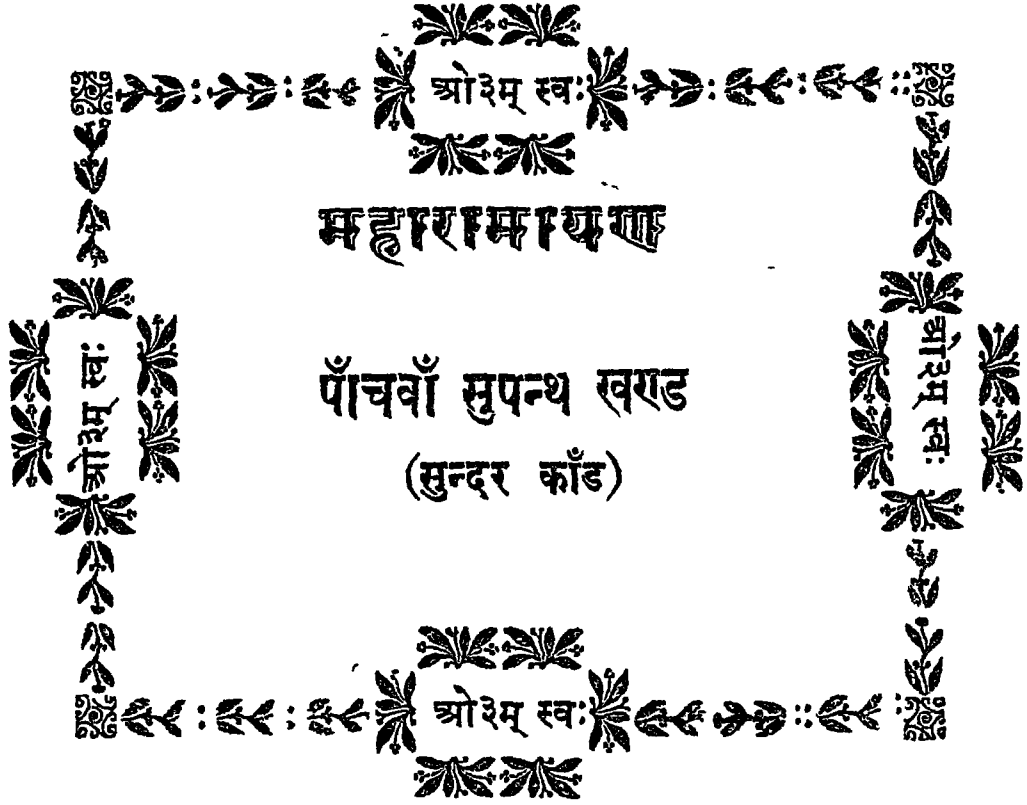
प्रथम भाग

पहिला समुल्लास

हनूमान का लँका जाना

मन मे प्रबल इच्छा हो, सतसंग मिल जाय, कृपालु गुरू हाथ आ जाय, रास्ते का पता लग जाय, फिर साहस सयुंक्त अधिकारी आप ही आप पंथ पर लग जाता है। समुन्दर आये, वह लांघ जायगा। पहाड़ बीच मे खड़ा हो जाय, वह ढा देगा और अपना रास्ता निकाल लेगा।

हनूमान सुसेवक थे। राम की सेवा का इष्ट धारण कर रक्खा था। जामवन्त जैसा साहस दिलाने वाला समझदार गुरू मिल गया। उसने चेतावनी दी। अहंकार रहित हनूमान के अन्तर में उत्साह उत्पन्न हुआ।

कैसे संभव है हमारी कामना पूरी न हो,
हो प्रबल इच्छा तो कैसे लालसा पूरी न हो
मर मिटेंगे धुन में अपने तन की मन की सुधि को त्याग,
इष्ट का अभिमान! क्यों कर लालसा पूरी न हो।
कर लिया विश्वास आशा पक्की चित्त में आगई,
कौन कहता है हमारी वासना पूरी न हो।

हनूमान ने अपने साथियों से कहा—"मैं जाता हूं बहुत जल्द सीता की सुध लेकर फिरूँगा। सिर पर जो सुख दुख पड़े सहो। यहां कन्द मूल फल बहुत है। मेरे आये बिना तुम यहां से हटना नहीं।"

यह कह कर सबको नमस्कार किया और राम का ध्यान मन में रख कर आगे की ओर पग बढ़ाया। एक पहाड़ी की चोटी पर चढ़ गये। वह मैनाक पर्वत से मिली हुई थी। चले तो आँधी के समान! सन सनाकर उड़े, जैसे राम और लक्ष्मण के बाण उड़ते हैं। देवताओं ने देखा कि हनूमान लंका को जा रहे हैं। सुरसा (सुर-देवता सा-माया)

से कहा—"जा परीक्षा कर। यह यों ही जा रहे हैं या इनमे कुछ बल पराक्रम भी है।" वह आई। "ठहर कहां जाता है। मैं तुझे खाऊँगी। बहुत दिनों से भूखी हूं।"

हनूमान ने नमस्कार किया। "ठहर। मैं राम का काम कर आऊँ। राम का समाचार उन्हे सुना दूं। फिर तेरे पास आजाऊँगा। मुझे खा लेना, और अपना पेट भर लेना। सौगन्द खाता हूं कि लौट कर तुझ से मिलूंगा।"

सुरसा—"मैं तेरे झांसे मे आने वाली नहीं हूं।" हनूमान—"तो फिर मै भी तेरी बात का मानने वाला नहीं हू।"

उसने अपना मुंह बढ़ाया। यह 'महिमा' सिद्धि का सहारा लेकर बड़े डील डौल वाले होगये। वह छोटी होकर इन्हे डसने चली। यह पत्थर जैसे भारी और बड़े हो गये। यह 'गिरिमा" साधन का प्रताप था। उसका डंस इनके वज्र शरीर में न गड़ सका। वह फिर बहुत बड़ी बन कर इन्हे चबाने चली। राम ने इन्हे 'अणिमा' मुद्रा सिखा कर सीता के पास भेजा था और कहा था—'इस मुद्रा को देखकर सीता समझ जायगी कि मेरे तुम दूत हो।" वह छोटे बन गये। उस के शरीर में आये और फुदक कर नाक या कान की राह से बाहर निकल कर लंका का रास्ता लेने लगे।

सुरसा को आश्चर्य हुआ। तू परीक्षा मे पूरा उतरा जो परीक्षित (परीक्षा-उत्तीर्ण) नहीं होता वह काम का शिष्य नहीं होता। तू सयाना है, समझदार है। जा, निर्भयता से राम का काम कर।

तुम को विश्वास नहीं आयेगा कि मनुष्य भी पक्षियों के समान आकाश-मंडल मे उड़ सकता है। उसे अपनी मानसिक वृति को सूक्ष्म बना लेना है। मनुष्य के तीन शरीर हैं:—कारण, सूक्ष्म, और स्थूल। स्थूल-तामसी, आलसी और मूढ़ है, सूक्ष्म-चंचल, राजसी, और कूद फॉद करने वाला है। कारण आधार मात्र है। जो मनुष्य जिस शरीर में अधिक रहता है उसका व्यौहार भी उसी के अनुसार होता है। इसमे कोई आश्चर्य करने की बात नहीं है। 'हाँ' अभी इसके समझने का समय इस कलयुग में नहीं आरहा है। वह आयेगा और मनुष्य पक्षियों के समान उड़ता फिरता दिखाई देगा। अभी वह यह काम युक्ति, बुद्धि और कला कौशलता से ले रहा है। जहाँ उसने चित्त शक्ति का प्रभाव समझ लिया फिर उसके मन का बल बढ़ जायेगा।

है कठिन चलना जब हो स्थूल तुम।
सूक्ष्म होकर बनते हलके फूल तुम ॥
और जब कारण से तुम को काम है।
अपने घट में आप ही विश्राम है ॥
स्वप्न में तुम चाहो जो वैसा करो।
जिस जगह जाना हो घूमो और फिरो ॥
मन तुम्हारा सूक्ष्मता की देह है।
इसमें पर्वत बन पहाड़ और गेह है ॥
यह है पतला दुबला और मोटा है यह।
यह है साधारण कभी छोटा है यह ॥
यह है भारी इसमें गिरिमा शक्ति है।
यह बड़ा है इसमें महिमा शक्ति है ॥
इसमें अणिमा छोटे होने का है भाव।
सूझते हैं इसको लाखों पेच दाव ॥
योग की हैं जितनी सिद्धि शक्तियाँ।
अपने मन की समझो तुम नौ निद्धियाँ ॥
चित की वृत्ती का किया तुमने निरोध।
त्याग करके लोभ मोह और काम क्रोध ॥
तुम में आजायेंगी सारी शक्तियां।
सूझने में आयेंगी सब युक्तियां ॥

हनूमान उड़े। समुद्र मे राक्षसी माया (साइंस) कला कौशल के कल लगे हुये थे। उड़ते हुये पक्षी का प्रतिबिम्ब इस पर पड़ा। उस कल मे क्षोभ आया और उसने अपनी आकर्षण शक्ति से नीचे खींच कर वहीं उसे पानी मे डुबा दिया।

हम में से लोग अभी इन बातों की समझ नहीं रखते। माया कोई जादू मंत्र टोना नहीं है। माया नाम साइंस का और यह साइंस बाहर मुखी पदार्थों

का समझना बूझना उन्हें अपने वशीभूत करके काम में लाने की विद्या है। अज्ञानी हिन्दुओं! तुम महा पाखंडी होकर भूल भ्रम में पड़े हुये हो। ऋषियों के सिद्धान्त का कोप खो बैठे। अपनी समझ बूझ पर मिट्टी डाल ली। नहीं तो जो कुछ प्राचीन ऋषि तुम्हें देगये हैं सभ्य जगत अब तक इसके समझने के योग्य भी नहीं बना है। केवल एक रामायण को सचेत होकर पढ़ो। बहुत सी बातें तुम्हारी समझ में आप आने लगेंगी। यह तुम्हारा बहुमूल्य ग्रन्थ है। ग्रन्थ क्या है! सारी सिद्धि शक्ति, मुक्ति, भक्ति और बुद्धि का भँडार है। रामा रामा भजो रामा ही रामायण नहीं है। यह प्रकृति की विद्याओं का भँडार है। अधिकार सँस्कार खो गया। अलँकारों की समझ बूझ जाती रही। न कोई समझाता है, न कोई समझता है।

अपाहज बने आलसी हो गये तुम।
कहां जाग है कैसे अब सो गये तुम॥
नहीं आपा है आपे से खो गये तुम।
सभी खो गया और जन्म को रोगये तुम॥
भंवर में पड़ी आके नैया तुम्हारी।
मरो डूबो बुद्धि मती बिगड़ी सारी॥
नहीं जानते माया को, क्या है माया।
समझते नहीं धूप क्या, क्या है छाया॥
समझ में नहीं अब तलक तुमको आया।
दिया सब को खो सोचो क्या तुमने पाया॥
न जाना है क्या राम क्या लक्ष्मण है।
न समझा भरत क्या है क्या शत्रुहन है॥
किया राम का हाय अपमान तुमने।
लिया उससे भ्रम और अज्ञान तुमने॥
नहीं पाया प्रमोघ अनुमान तुमने।
किया कब कभी इनका सन्मान तुमने॥

अपाहज हुये आलसी बन के सोये।
खुली आँख और जन्म को अपने रोये॥

हनूमान ने देखा कि समुद्र के मायावी कल में क्षोभ है, अणिमा वृत्ति का साधन किया। मच्छर के रूप को धारण किया और फन फनाते हुऐ उस कल के आकर्षण को अपने ऊपर नहीं आने दिया, उड़े और तट के समीप जा पहुंचे।

तट पर बहुत बड़ी कल हिलने डोलने और खाने वाली थी। इस में बहुत बड़ी शक्ति थी। हनूमान ने गरिमा और महिमा का रूप धारण कर लिया, और अपनी युक्ति से तोड़ फोड़ कर और उछले किनारे लगे

लँका में बड़ी चौकसी थी। पहरे वाले बड़े सचेत रहते थे। इन कीदृष्टि से बच कर निकलना फिर भी कठिन था। फिर अणिमा वृत्ति का साधन किया राम नेउन्हें इस मुद्रा को सिखा रखा था। छोटे बने। सब की आँख बचा कर निकल भागे। इन्हों ने सब को देखा। इन्हें किसी ने भी नहीं देखा।

स्वप्न की लीला को अपने लो परख।
तुम कभी छोटे बड़े हो लो निरख॥
स्वप्न में जो चाहो बन जाओ अभी।
चलते फिरते ठहरो उड़ जाओ अभी॥
स्वप्न में यह यह देह सूक्ष्म जान लो।
देह यह मन है इसे पहिचान लो॥
मन में बैठो मन में पैठो मन को जान।
मन ही में है सब तुम्हारे ज्ञान ध्यान॥
खोज कर कहता हूँ कह देता हूँ बात।
मन ही में है दाव पेच और मन में घात॥
बैठो मन के घाट पर मन बस करो।
मन को साधो और न अब टस मस करो॥
मन तुम्हारे हाथ में आयेगा जब।
सूझ युक्ति से सुझायेगा यह सब॥

———:———

दूसरा समुल्लास

लंका का नगर

आगये, समुद्र को पार कर लिया। यह तो हुआ। अब क्या करें। वहाँ कौन था, जो इन्हे बता देता। राज काज का सारा प्रबन्ध मायावी (साइंटिफिक) था। जगह जगह पृथ्वी को खोखली करके रावण के कर्मचारियों ने भीतर कोट बना रक्खे थे। ऐसे कोट समुद्र में भी थे। ऊपर ऊपर पानी और पानी के नीचे राक्षसों (अपनी ही रक्षा करने वाले निश्चर) की पलटन की पलटन रहती हुई दूरबीन लिए हुए देखा करती थीं कि कहीं कोई अन्य देशी शत्रु या गुप्त दूत तो नहीं आरहा है। जल थल दोनो जगहों में यह प्रबन्ध था।

इधर देखा, उधर देखा, कोई बात समझ मे नहीं आई। सामने एक पहाड़ी दिखाई दी। इसकी चोटी पर चढ़ गये। दृष्टि साधन की जोति मुद्रा में निपुण थे उस पर आये, लंका दिखाई दी।

यह लंका सोने की थी। सोने का नाम स्वर्ण है यह दूर से जगमगा रही थी। ऊँचे ऊँचे खम्भों पर सोने के कलश चढे हुए थे। लोगों के घर दस दस .चा. पचास, अस्सी अस्सी मंजिलों के बने हुए थे। इन सबकी भीतो (दीवारो) पर सोने का रँग फिरा हुआ था। यह सूरज की धूप मे चमक रही थी। देखने वालों की दृष्टि उस पर नहीं ठहर सकती थी। चका चौंध होती थी।

लम्बी चौड़ी सड़कें बनी हुई थीं। जगह जगह पर पानी की नदी चल रही थीं। वाटिकाओ (बागो) की गिनती कौन कर सकता है। इनके वृक्ष फल फूल और पत्तों से लदे हुए लहलहा रहे थे। अगरसुथरा!

कूड़े करकट का कहीं नाम तक नहीं। एक तिनका भी कहीं नहीं दिखाई देता था। रथ, बहती और नाना प्रकार के वाहन दौड़ रहे थे। गलियों २ में ऊँचे ऊँचे शिवाले, देवाले, मठ, देवीआले उसकी शोभा को चार चाँद लगा रहे थे।

नगर क्या था वह स्वर्ग भूमी बना था।
रतन पन्नों और हीरों से वह जड़ा था॥
कहीं टूटा फूटा कोई घर न देखा।
सुखी सब थे कोई भिकारी न भूका॥

न निरधन न निर्बल न रोगी था कोई।
न बे काम था और न सोगी था कोई॥
चकित देख कर होगये, उसको हनुमत।
यह सोचा चलो देखो बस्ती की सदगत॥

लँका एक पहाड़ी पर बसी हुई थी, जिसका न म त्रिकूट था और कोई कोई प्राणी उसे त्रिकुटी नगर भी कहते थे। इस पहाड़ी पर तीन चोटियाँ, वैष्णवो के तिलक के आकार की थीं। उन पर रावण ने अपूर्व बुद्धिमता से इसे बसाया था। बुद्धि काम नहीं करती थी।

गढ़ त्रिकूट पर लँका बसे, निडर निशँक रावण तहां रहे।
अद्भुत छबि को बरणे पारो, चित्रकार ने नगर सवाँरा॥
चित्र, विचित्र नगर की शोभा, देख पवन सुत का मन लोभा,
स्वप्न समान सूक्ष्म यह देशा, निश्चर बसें धार बहु भेशा॥
सुन्दर नर नारी जहाँ डोलें, हँस मुख मीठी वाणी बोलें।

यह पहाड़ी से नीचे उतरे, छोटा भेष धारण किया, नगर के फाटक पर पहुंचे। उस पर लंकनी नामक एक राक्षसी का पहरा था। रावण की राजनीति के अनुसार स्त्री और पुरुष सब से काम लिया जाता था। सब रात दिन काम करते रहते थे। वह किसी एक को भी बिना काम और उद्यम नहीं रहने देता था। यही कारण था कि उसकी प्रजा सब की सब बली और पराक्रमी थी।

लंकनी हनूमान पर झपटी—"चोर! तू यहाँ कैसे आया। नहीं जानता! मैं नगर की रखवाली कर रही हूँ। तू सब की आँखों में धूल डाल आया। मेरे हाथ से बच कर न जाने पावेगा। मैं तुझे

खाजाऊँगी। लंका का चोर मेरा अहार है।" हनूमान को उस समय और कुछ न सूझी, घूँसा तान कर उसकी पीठ पर मारा, वह बिकल होगई। कहने लगी—"मैं समझ गई, देवताओं ने मुझे कह रक्खा था कि जब किसी बानर का घूँसा खाकर तू विकल हो जायगी तो समझ लेना कि लंका के बिगड़ने का समय आगया। दैव इच्छा प्रबल है। जा,तू अपना काम कर। मैं तुझे नहीं रोक सकती। तुझे देख लिया। तू राम का दूत है। तेरे दर्शन मात्र से मेरा उद्धार होगया। जन्म लेने का फल मुझे मिल गया।

तेरी सँगत एक क्षण की जप ले तप से बढ़ के है।
जा कहीं, तुझको न डर है और किसी का है न भय॥
स्वर्ग में, अपवर्ग में वह सुख कभी मिलता नहीं।
जो है सुख सतसंग में उसकी है क्या उपमा कहीं॥

"ऐ हनूमान! तेरे लिये मित्र, शत्रु सब समान हैं, विष खाइगा और वही अमृत होजायगा। जिस पर तू दृष्टि डालेगा, वह तेरे लिये लाभदायक हो जायगा। यह सब महिमा राम की है जिन्होने ब्रह्म का अवतार धारण किया है। जिस पर उनकी कृपा है, उसको कौन हानि पहुंचा सकता है!"

अणिमा मुद्रा ने फिर काम दिया, छोटा रूप बना कर यह नगर मे आये घरों घरो मे गये, दिन का समय था, लेकिन सब अभी तक सोये पड़े थे। सभ्य देशी अब भी बहुधा दिन को सोते और रात को काम करते हैं। यही कारण है कि वह निश्चर (रात की चर्य्या करने वाले) कहलाते है। उन में दिनचर (दिन की चर्य्या करने वाले) कम होते है। यह उसी भेष मे रावण के महल मे गया। वह मांस मदिरा पान करके पांव पसार कर सोरहा था। और भी सब नीद मे थे। रखवाली करने वालों ने इनको नही देखा और देखा भी होगा तो किसी ने ध्यान तक नहीं दिया।

लघु बनने में सुगमता, लघिमा, अणिमा हैं एक।
महिमा गरिमा कठिन गति, सूझे नहीं विवेक॥
दीन दुखी लौ लीन पर, प्रभु की दया अपार।
अभिमान को दुख 'महा, प्रभु हैं गर्भ अहार॥
लेने को सत नाम है, देने को अनदान।
तरने को है दीनता, बूड़न को अभिमान॥

किस से पूछे गछें! कोई नहीं मिला। राम की आकर्षण शक्ति की दया ने इनको खींच कर एक महल के समीप पहुंचा दिया। पाँव आप ही आप उधर पड़ने लगे। यह नई बात नहीं है। ऐसा होता है, और मनुष्य अँजान बना हुआ अपने मन्तव्य की ओर आप खिचा हुआ चला जाता है। तुम कुछ न करो। चित्त की वृत्तियों की रोक थाम में लगो। आप ही सब कुछ होने लगेगा और तुम को आश्चर्य न होगा।

तीसरा समुल्लास

हनूमान विभीषण

यह घर जिसकी ओर उनका पाँव आप ही आप पड़ रहा था, विभीषण का महल था। यह देखते भालते हुये उस मे पहुंचे। और तो सब अभी नींद में थे, विभीषण जाग रहा था। इन्हें देख कर आश्चर्य हुआ, अपने आपको उस पर प्रगट किया और अभय होकर उसके पास गये।

हनूमान—"भाई! निश्चरों के बीच में तुम दिनचर कैसे हो?"

विभीषण—"तुम कौन हो, कहाँ से आये हो? अन्य देशी हो, यहाँ के रहने वाले नहीं हो।"

हनूमान-"प्रश्न पर प्रश्न! मेरे प्रश्न का उत्तर तो दिया नहीं आप ही प्रश्न कर बैठे। सुनो, राम ने ब्रह्म का अवतार धारण किया है, मैं उनका दूत हूं। दिनचरों की भलाई और निश्चरों की बुराई के निमित्त आया हूं। तुम निश्चरों मे दिनचर प्रतीत हुये इसलिये तुम्हारे पास आगया, नहीं तो और और जगह चला जाता।"

रवि कुल रवि का वंस है, दिनकर उनको जान।
निशिकुल निशि का अंश है, निश्चर को पहिचान॥
तत सवितु वरेण्यम्, यह गायत्री मंत्र।
जो रहस्य को प्राप्त हो, उसे दिखाऊं तंत्र॥
ओरेम् कहा भू भुवः तजा, तज दिया स्वः का ध्यान।
वह सवितुर का भक्त है, उसका है कल्यान॥
रघु रवि-कुल के वंश में, राम लिया अवतार।
जो कोई दिनचर बने, गायत्री अधिकार॥
कर 'भर्गो देवस्य धी, धारे रवि का ध्यान।
राम भक्त उसको समझ, वह पावे निर्वाण॥
'यो न धियो दयात प्रचो, का सूझे उपकार।
दिनचर निः संदेह तू, महिमा अगम अपार॥

(नोट) गायत्री मंत्र सम्पूर्ण:—ओरेम् भूर, भवः, तत सवितुर्व रेण्यिम भर्गो देवस्य धीमहि योना प्रचो दयात"

—:o:—

विभीषण उठा, हनूमान से मिला। इन्होंने छाती से लगा लिया। विभीषण बोला-"मैं विभीषण रावण का छोटा भाई हूँ। डरा, सहमा रहता हूं। इस डरके कारण मेरा नाम ही विभीषण होगया। ('वि'-बड़ा 'भी' डर-भय) जैसे बत्तीस दांतो के बीच में जिभ्या (जबान) रहती है, वैसे ही मैं यहाँ लंका मे रहता हूं। राम ने बड़ी दया की तुम को यहाँ भेजा। बिना हरी की कृपा के संतों का दर्शन नहीं होता। तुम ने सच कहा-निश्चरों में दिनचर कम होते हैं। मैं आज कृत्य २ होगया। तुम्हारे दर्शन-मात्र के संग से मुझे विवेक आगया। सतसंग की महिमा गुप्त नहीं है लेकिन राम की कृपा के बिना उसकी उपलब्धि भी महा कठिन है। तुम्हारा नाम क्या है?"

हनूमान-'मुझे सब हनूमान कहते हैं। मैं जाति का बानर हूँ। सवेरे कोई मेरा मुंह देख ले या मेरा नाम ले ले तो दिन भर उसे अहार नहीं मिलता। राम ने दया की, मुझे अपना सबसे छोटा सेवक बनाया। वह कृपालु दयालु है, सर्व समर्थ हैं, जो चाहे कर सकते हैं।"

जो चाहें तो पर्वत को राई करें।
जो राई हो पर्वत बनाकर रहें॥
उन्हीं की है लीला उन्ही की दया,
उन्हीं की कृपा सेयह सब कुछ हुआ॥
हनुमान को अपना सेवक किया,
उसे बुद्धि बल और साहस दिया॥
यहाँ आया लंका में होकर निडर,
मिला तुमको दिनचर समझ बूझ कर॥
जो दिनचर हो सवितुर का ध्यान हो,
इसी में भलाई हो अब कल्यान हो॥

विभीषण-"तुमको मैं अपने घर मे ठहरा तो सकता हूं लेकिन रावण के गुप्त दूत घर २ मे रहते हैं। मैं डरा हुआ हूँ, रोकने और ठहरने का साहस नहीं कर सकता, खाओ, पीओ, थोड़ी देर बैठकर यहाँ से रस्ता लो। और जो सेवा कहो और मुझ से बन सके तो मैं त्रुटि न करूँगा।"

हनूमान-'मैं तुम्हारी दशा को समझता हूँ। यहाँ रह नहीं सकता न खाना पीना चाहता हूं। हाँ, तुम मेरी कुछ सहायता कर सकते हो तो वह केवल इतनी ही है कि रावण ने सीता को लेजा कर कहाँ रक्खा है, मैं उससे मिलना चाहता हूँ।"

विभीषण ने कानो पर हाथ धरा.—

नहीं जीव जन्तु वहां जावेंगे।
जो जावेंगे तत्क्षण वह फल पावेंगे॥
बड़ी चौकसी है, बड़ा है प्रबन्ध।
किसी की नहीं उस जगह होती सन्ध॥

"हाँ! इतना पता देता हूं, सीता अशोक वाटिकामें रहती है.जैसे तुम यहाँ तक आगये, अपनी ही युक्ति शक्ति और बल बुद्धि से वहाँ जा सकते हो। अशोक वाटिका नगर के दक्षिण में है। वह

वह बहुत दूर नहीं है। मैं तुमको पग २ का पता दिये देता हूं, छुप छुपा कर वहाँ जाओ उससे मिलो और अपना काम करो।"

विभीषण ने सारा चिट्ठा खोल कर सुना दिया, घर के भेदी से क्या बात छुपी रहती है। कहावत है "घर का भेदी लंका ढावे" और विभीषण पहला निशाचरी दिनचर था जिसने हनूमान को लंका का कच्चा चिट्ठा सुनाया, गुप्त भांडे को फोड़ फोड़ कर दिखा दिया और हनुमान उससे विदा होकर अशोक वाटिका की तरफ चले।

—:—

चौथा समुल्लास

हनूमान अशोक वाटिका

अन्य देशों में उसी देश का भेष धारण करलो तब तो कुशल है, नही तो पूछा पेखी होने लगती है, आपत्ति सिर पर आजाती है और काम में बाधा होती है। हनूमान ने फिर छोटा भेष बनाया। उछलते फांदते हुये वहाँ पहुंचे जहाँ अशोक की वाटिका थी। अशोक के सिवा वहाँ और कोई वृक्ष भी नहीं था। उसमें पत्ते ही पत्ते रहते हैं न फल न फूल। हां! छाया निसन्देह घनी रहती है और ठंडक का लाभ होता है।

यह उछल कर उस पेड़ पर चढ़ गये, जिसके नीचे सीता बैठी हुई थी। साधारण वृत्ति! क्रोध न मोह! तपस्या की मूर्ति! हृदय मे नाम का ध्यान!

वही उसका साथी वही संग था,
वही रूप मन में वही रंग था।

हनूमान ने मन ही मन मे नमस्कार किया और चुप चाप पत्तो की ओट मे बैठकर सोचने लगे। देखें सीता के साथ यहां क्या वर्ताव होता है। इतने मे यहां रावण आया, सीता ने उसी समय अपना मुंह उसकी ओर से फेर लिया!

रावण ने कहा—"अब तक तुझे मेरे बल और पराक्रम का ध्यान आया या नहीं? या वही दशा है।"

सीता बोली—"चल परे हट! तेरे बल और पराक्रम का तो उसी समय पता लग गया था जब अकेले वन से तू मुझे हर लाया था। गीदड़ के समान गया, चोरों की और सिंह की स्त्री को उठा लाया। बल होता तो राम के साथ युद्ध करता पापी! तुझ में न लाज है न मर्यादा है, और मुझे अपने बल और पराक्रम की भय दिलाता है।"

रावण—"तू मेरा कहना मान जा, मै तुझे लंका की रानी बनाऊँगा।

सीता—"कुछ दिनो मे यह तेरी सोने की लंका मिट्टी होजायगी और जब राम लक्ष्मण के सनसनाते हुये वाण चलेंगे, तुझे कोई शरण तक न देगा, छुपता फिरेगा और वह वाण तेरे कलेजे को चीरते हुये तेरा लहू पीयेगे और तू कुत्ते की मृत्यु मरेगा।

रावण हँसा—"तपस्वी और रावण का सामना करें! न आँखो देखा, न कानो सुना।"

सीता "देखा न हो, कानो से तो सुन रक्खा है। तेरी नककटी और कन कटी बहन सूर्पणखाँ खर-दूषण और त्रिशरा तेरे भाइयो को बुला लाई और वह एक एक करके मर मिटे। अब तेरी बारी है और तू बच नहीं सकता, मेरा समाचार मिला नहीं कि राम यहाँ आपहुंचेंगे और तुझे इस पाप कर्म का दण्ड दिये बिना न रहेगें।"

रावण—"एक तो दुबले पतले मनुष्य! दूसरे तेरे वियोग मे दुखी, तीसरे मेरे भुज बल दंड का भय चौथे न उनका कोई साथी न सहाई! मुझे देख! मेरी लंका को देख! मेरी सामिग्री और सेना को देख! वह दो लड़के मेरे साथ क्या लड़ सकते हैं।"

सीता—"मैं ऐसे घोर पापी का मुंह देखना नहीं चाहती। तुझ में इतनी सामर्थ्य थी तो गीदड़ क्यों

बना? सामना करता। एक अबला स्त्री के सामने अपने बल पौरुष का प्रलाप करता है। तुझे लाज नहीं आती। शूरवीर और योद्धा बना हुआ है।"

रावण—

बात को मान जा बातें न बना बात को सुन।
तुझ को क्या होगया जो राम की लक्ष्मण की धुन॥

सीता—

हैं रत्न राम और वह रत्नों में बहु मूल रतन।
उन के जैसा कहा, जग में है कहाँ नर भूषन॥
लक्ष्मण राम के भाई हैं, सहाई सेवक।
चल परे हट नहीं भाती तेरी मुझ को बक २॥

रावण—"एक बार मुझको देख, मै इसी को तेरी कृपा समझूँगा।"

सीता—"जिसने सूरज का दर्शन कर लिया है। वह जुगनू को क्या देखे। जिसकी दृष्टि में हाथी आगया है, वह ताल की मेढकी पर क्या आँख डाले। सिंह का साथी गीदड़ को देख कर अपना अपमान क्यों करे।"

रावण—"सीता! तूने तपस्वियों के ध्यान मे मेरा सम्मान नहीं किया, मै देखूगा कब तक तू हट पर तुली हुई है, एक महीना तक मै चुप रहूंगा। यदि तूने मेरी बात नही सुनी, तो अपनी तलवार से तेरा सर काट दूँगा।"

सीता—"बस, इसी को तू ने अपनी वीरता की सीमा समझ रक्खी है। तू ने क्या समझ रक्खा है। मेरा प्राण तो अब भी वहाँ है, जहाँ राम के चरण कमल हैं। यहाँ यह अधम शरीर पड़ा है, यह आप मरा हुआ है। उठाओ तलवार, मैं कब इस अपवित्र भूमि मे रहना चाहती हूँ।"

रावण ने फिर बहुत कुछ समझाया, उसे रानी बनाने की लालच दी वह उसकी फुसलाहट और गीदड़ भभकी के भरें अरें मे कब आने लगी थी, अन्त मे सीता ने कहा—

राम तन में मेरे बसते हैं, बसे हैं मन मे,
चाहे मै घर में रहूँ चाहे रहूँ मै बनमे।
दूर हो दूर आखों से परे जा मेरे,
हट परे, पापी अभी एक ही पल छण में॥

वह खिसियाना और लज्जित होकर वहाँ से चला गया।

त्रिजटा—"(तीन जटाओं वाली) एक राक्षसी सीता की सेवा मे रहती थी, उसे इसके साथ प्रेम था सीता को देख कर वह पास आ बैठी, कहने लगी—"देवी! धैर्य्य धरो! इस पापी रावण के सिर पर पाप गूंज रहा है, मृत्यु मँडला रहा है। राम अवश्य आते ही होंगे और आकर बदला लेगे।"

सीता बोली "न जाने वह दिन कब आयेगा।"

त्रिजटा—"मैं ने कल रात स्वप्न देखा, एक बन्दर लंका मे आया, उसने नगर को जला कर भस्म कर दिया। वह जाकर रामको लाया। राम ने रावण को मारा और तुझे अपने देश को ले गये।"

सीता—"अब यह वियोग का दुख नही सहा जाता तू मेरे साथ हित रखती है, तो चिता बना कर मुझे उस पर बिठा दे और आग लगा दे। मैं जल कर राख हो जाऊँ, अब जीना नही चाहती।"

त्रिजटा—"यह मुझ से नही होगा। मैं तुझे उस समय तक अपनी आँख की पुतली बना रक्खूंगी जब तक राम आयेगे।"

सीता—"अच्छा! अब चलीजा मुझे एकान्त मिले। वह चली गई, सीता अकेली रह गई।"

सीता ने आकाश की ओर आँख उठाकर कहा "चाँद! तू आग का अंगारा बन कर नीचे उतर आ और सीता को जलादे।" चाँद कब अंगारा होकर नीचे उतरने लगा था। सीता ने तारों से कहा—"तुम हवन-कुण्ड की दहकती हुई वेदी के समान जगमगा रहे हो, ऊपर से मुझ पर आग वर्षा दो, मै जल भुन कर भस्म हो जाऊं।" तारे कब उसकी सुनने वाले थे। वह बहुत व्याकुल होगई, जिस वृक्ष के नीचे बैठी हुई थी। उससे बोली—"अशोक! वृक्ष की डालियों की रगड़ से आग उत्पन्न होजाती है। इस समय ऐसा ही हो, तेरे पत्तों से

आग की चिनगारियाँ झड़ कर मुझे जिला दें और मैं अशोक हो जाऊँ।"

यह शब्द सीता के मुँह से निकले ही थे कि पत्तों में छुपे बैठे हुये हनूमान ने राम की चमकती हुई अँगूठी नीचे गिरादी, वह जगमगाती हुई सीता के समीप आकर गिरी, इसने उसे आग की चिनगारी समझी, झपट कर उठाई वह अँगूठी निकली, चाँदनी खिली हुई थी, ध्यान से देखा, वह राम की अँगूठी निकली, और उस पर राम का नाम खुदा हुआ था।

"हाय! यह कहाँ से आगई, क्या किसी राक्षस ने राम को मार कर इसे छीन लिया और मुझे दुखी करने के लिये इसे यहां फेंक दिया।"

"नहीं, नहीं ऐसा हो नहीं सकता। राम अजर अमर अविनाशी हैं उन्हें कोई नहीं मार सक्ता।"

"फिर यह अंगूठी क्यों और कैसे यहाँ आई क्या इसमें कोई राक्षसी लीला गुप्त है, यह रहस्य मेरी समझ से बाहर है।" "ऐ राम के प्यारे हाथ की प्यारी अंगूठी तू मुझे बहुत प्यारी है, क्या तू उड़ कर मुझे राम के आने का संदेशा सुनाने आई है? राम कहां हैं! कैसे हैं! क्या कर रहे हैं! अपनी सीता की सुध कैसे भूल गये हैं।"

यों विचार करती सीता रो पड़ी!

बतादो राम आकर इस घड़ी किस जगह और कहाँ तुम हो
मुझे पास अपने लेजाओ, वहां बसते जहां तुम हो
दुखी हूँ जी विकल है चित मेरा घेरा है चिंता ने,
सुध आके लेते लेचलो मुझको जहां तुम हो
कहा करते हैं व्यापक राम हैं संसार में निश दिन
कहुं मैं कैसे बिन देखे यहां तुम हो वहाँ तुम हो

रोती थी और गाती थी। वह बावली बन गई थी, हनूमान उसके दुख को न सह सके. वृक्ष की शाखा पर बैठे हुये राम रटन की धुन गा उठे।

राम चैतन्य मूर्ति हैं सब के नायक राम हैं।
जग के माता और पिता हैं जग के सहायक राम हैं ॥१॥
राम में विश्राम पद है राम ही में शान्ति।
राम में है ज्ञान मुक्ति राम में निर्भ्रान्ति ॥२॥
राम व्यापक जगत में है बोलो मुख से राम राम।
राम को भूलो नहीं है राम ही में सुख का धाम ॥३॥
राम का लो आसरा और राम का हो मन में ध्यान।
राम हैं सूत्रात्मा और राम ही हैं सब के प्राण ॥४॥
राम कहलो राम भजलो, राम को जप राम राम।
राम हैं भक्ति भजन और राम हैं जप राम राम ॥५॥

"कहाँ से यह शब्द आ रहा है!" इधर देखा उधर देखा कोई दिखाई नहीं दिया।

तब सीता ने कहा "ऐ इस प्यारे राम नाम के सुनाने वाले तू आकाश से यह चित लुभाने वाली आकाश वाणी सुना रहा है। प्रगट क्यों नहीं होता, मै राम के सुपुत्र भक्त का दर्शन करूँ, मेरे कलेजा को ठंडक हो छाती शीतल हो और मेरी जलती और तपती हुई आंखो को पानी के छींटों से तरी पहुंचे।"

और हनूमान उसी समय छोटे बंदर के रूप में, लह से नीचे गिर पड़े।

पाँचवा समुल्लास

हनूमान सीता

छोटा बन्दर, काला मुँह! चमकती हुई और पलक भांजती हुई पलकें! टेढ़ी दुम! सीता डरी सहमी, मुँह फेर लिया—अरे यह कौन है! कहां से आगया, यह कैसे आकाश से गिरा! किसने इसे मेरे पास भेजा"

हनूमान ने कहा—"माई! मैं बानर हूं—राम का दूत! बन से आया, राम ने तेरे पास भेजा। जान पहिचान कराने के निमित्त अंगूठी दी कि तुझे मेरा विश्वास हो"

सीता ने इनकी तरफ मुँह किया, ध्यान से बन्दर का रूप देखा, या तो वह वियोग में तड़फ रही थी या इन्हें देखकर मुस्कराई, नर या वानर की मित्रता कैसे हुई!

हनूमान वानर भी नर के आकार के हैं, वानर कहते हैं उसे जो नर के समान हो, सारे पशु पक्षियों की उपेक्षा बानर नरों से मिलते जुलते हैं।

सीता--वानर के पूंछ होती है, नर के पूंछ कहाँ होती है? हनूमान-पहिले होती थी, अब नहीं होती है, यह पूंछ ही तो बावन भगवान का तीसरा पांव है जो उनकी पींठ की रीढ़, मेरु दण्ड की हड्डी के नीचे मूलाधार से निकला हुआ था, इसी से उन्होंने वलि की प्रार्थना पर अन्तरिक्ष की माप की थी।

सीता फिर यह पूंछ कहां चली गई?

हनूमान-कटते कटते कट गई, मनुष्य इससे घृणा करने लगा, वह दूर होती गई, उसका आकार अब भी मेरु दण्ड के सिर पर दिखाई देता है, मनुष्य की इच्छा मे बड़ी प्रबलता है जो चाहता है वही हो जाता है, मनुष्य दाढ़ी बनवाने लगा है कुछ दिनो पीछे यह भी इसके मुह पर न रहेंगे।

सीता-वन्दर! तू तो बड़ा पंडित और बड़ा ज्ञानी है।

हनूमान-राम की कृपा से सब कुछ होता है, यह आश्चर्य जनक बात नहीं है।

राम चाहें तिनके को ब्रह्मा करें
राम चाहें प्रजा को राजा करें।
राम में सिद्धि है निद्धि शक्ति है
राम ही से योग साधन मुक्ति है।
राम दाता हैं, विधाता जानकी,
राम सबके पिता माता जानकी।
राम की बातें निराली हैं सभी,
मैंने उनको देखी भाली हैं सभी।
मैं न ज्ञानी हूँ न मैं अवधूत हूँ,
राम का सेवक हूँ और निज दूत हूँ।

सीता—यह सब सच है, मित्रता कैसे हुई?

हनूमान ने सारा वृतांत सुनाया "सुग्रीव से मिल कर एक वाण से राम ने वाली को मारा उसके लाखों सेवक वन और पर्वत में तेरी खोज कर रहे हैं मैं इधर आया, तेरा दर्शन पाया, अब राम को जा कर तेरा समाचार सुनाऊँगा।"

सीता का हृदय भर आया, आँखों से आँसू निकल पड़े—

राम ने मुझको विसारा हाय हाय,
मैंने उनका क्या बिगाड़ा हाय हाय
उनका था मुझको सहारा हाय हाय,
मुझको दुख था गति ने मारा हाय हाय
रात दिन कहती हूं मन से हाय राम,
कष्ट दुख सहती हूँ मन से हाय राम।

हनूमान-माई राम को तुम्हारे विरह का वियोग तुम से कहीं दूना है, वह तो बावले से बन गये हैं, दोनो भाई जीते जागते कुशलपूर्वक हैं, तुम चिन्ता न करो, मेरे लौटने की देर है, जहाँ मैं गया, राम वन्दरों की सेना लेकर लंका पर चढ़ आयेंगे और रावण को मार कर तुझे लेजायेंगे और जगत में उनकी यश और करनी का गीत गाया जावेगा।"

सीता को ढारस बंधी फिर भी कह उठी, "वन्दरों की सेना मे तुम्हारे जैसे ही जैसे हैं कि कोई बली भी है।

हनूमान ने अपने मन को एकाग्रः कर के महिमा और गरिमा का भाव भर लिया और देखते देखते वह पर्वताकार हो गये—"क्या कहूँ राम की आज्ञा नहीं है, नहीं तो मैं अकेला रावण को मार कर तुझे समुद्र के पार लेजाता। कुछ दिनों के लिये धीरज धरो, अब राम के आने में देर न लगेगी।" यह कह कर हनूमान फिर छोटे वन्दर बन गये।

सीता प्रसन्न होगई "राम तुम पर दया करें, अपनी अटल भक्ति दें! तुम अजर अमर अविनाशी बनो।"

हनूमान बोले "आज मेरा जन्म सुफल होगया, अंजनी (आकाश जिसने पुत्र नहीं जना, क्वारी) का कोख आज पवित्र होगया। भाई! कई दिन हो गये, मैं ने कुछ खाया पिया नहीं, भूका प्यासा हूँ।"

सीता-"मेरे पास क्या है. जो तुम्हें दूं, इस अशोक वाटिका मे फल फूल तक नहीं हैं वह कारागार है। रावण ने ऐसा प्रबन्ध कर रक्खा है कि इसमे फलने वाले वृक्ष न लगाये जाये और वन्धियों (कैदियों) को फल फूल खाने तक का अवसर न

मिले। हाँ, इसके आस पास उसकी अनेक वाटिकायें हैं जिनकी रखवाली राक्षस के माली बड़ी चौकसी करते हैं, हो सके तो इन में जाकर अपना पेट भरो।"

हनूमान-"इनका मुझे किंचित भय नहीं है, तेरी आज्ञा चाहता हूँ।"

सीता-"जाओ, राम का वल हृदय में रख कर अपना काम करो।"

हनूमान ने नमस्कार किया और कूदते फाँदते वहाँ से चल खड़े हुये।

छटा समुल्लास

राज वाटिका में उत्पात

हनूमान रावण के राज वाटिका में आये, कुछ फल खाया कुछ तोड़ गिराया। कच्चे पक्के फलों का कई जगहो मे ढेर लग गया पेड़ भी उखेड़ कर बखेर दिये। डालियाँ और टहनियाँ पत्ते फूल तोड़ २ कर इनके टीले बना दिये।

रखवाली करने वाले माली दौड़े, धनुप बाण गुलेल ढेल बाँस से काम लेने लगे। यह कब इनकी मानते थे। न किसी का बाण लगा न ढेला लगा। यह शाखो पर शाखा तोड़ २ कर इनको मारते और इन पर डालियाँ फेंकते। एक अकेला बन्दर और इतने रखवाले! कोई सुनेगा तो क्या कहेगा! यह लज्जित हो २ कर उन्हें मारने लगे। यह भी उन पर डालियाँ तोड़ २ कर फेंकते गये, कितने माली कुचल कर मरे कितने घायल होकर भागे। रावण के पास आये-"महाराज! एक विचित्र बन्दर अशोक-वाटिका के पास वाले राज बाग मे आगया है उसने उसका नाश लगा दिया। पेड़ उखाड़ डाले डालियाँ तोड़ी। मालियों ने गुलेल आदि से काम लिया, किसी की कुछ नहीं चली बहुत माली पेड़ों से दब कर और कुचल कर मर गये।

रावण ने अपने बेटे अक्षय कुमार (अक्षय-जिसे कोई न जीत सके) उसको भेजा, देखो तो सही! यह कैसा बन्दर है जिसने मालियों का नाक में दम कर दिया, देशी है या अन्य देशी है"

राजकुमार आया-"धनुष बाण को सँभाला भी नही था कि अँजनी का पुत्र गरजा, तड़प कर इसके सिर पर आगया, नोंचा, खसोटा, काटा, घायल किया, और लातों से मार २ कर उसका कचूमर निकाल दिया और उस अक्षय कुमार का दुः—(मृत्यु) आगया उसके कई साथियों को भी हनूमान ने मल दल कर रोंद डाला और वह मिट्टी में मिल गये।

रावण को समाचार भेजा गया वह सुन कर अपने सुयोग्य और सब से बलवान् पुत्र मेघनाद (बादल के समान गर्जने वाले) को इस के दण्ड देने के निमित्त भेजा। यह लँका मे सब से बड़ा तान्त्रिक (मन्त्र जानने वाला) मंत्रिक (मंत्र साधन करने-वाला) और मायावी (साईंस जानने वाला) था।

इसे देख कर हनूमान फिर गरजे, एक पूरा वृक्ष उखाड़ कर उस पर आक्रमण किया, कई राक्षस उससे दब कर मरे। मेघनाद सँभला रहा, हनूमान उस पर झपटे। नख दाँत और हाथ पाँव से उसे बेबस कर दिया और ऐसा घूंसा लगाया कि वह पृथ्वी पर गिरा, मूर्छा आगई। यह दँदनाते और कूदते फाँदते हुये फिर वृक्ष पर चढ़ गये।

मेघनाद सचेत हुआ। बहुत कर बल छल किया। हनूमान अँजनी (आकाश) पुत्र थे। मारुति कहलाते थे। आकाश तत्व क्या होता है, इसकी समझ अब तक किसी को नहीं आई, यह सारे बलो शक्तियों का भँडारा है, यह उससे बचते ही रहे, अन्त में उसने ब्रह्म बाण हाथ में लिया और ओ३म् भूर्भुवः स्वः के गायत्री मन्त्र पढ़ कर उस पर चलाया, हनूमान ने सोचा-"राम का अवतार मर्यादा के स्थापन करने के लिये हुआ है। मैं ब्रह्म बाण का अपमान करता हूँ तो मर्यादा भंग होती है" बाण के लगते ही वह पृथ्वी पर गिरे। मेघनाद

ने उन्हें नाग फॉस से बॉध लिया। यह जान बूझ कर बॅध गये। लड़ने नहीं आये थे, सीता की सुध लेने आये थे। यह लड़ाई इनकी लीला मात्र थी और इसमें इन्होंने अपने काम निकालने की युक्ति देखी।

बॅधे, बॅध गये, राक्षस सुखी हुये, भीड़ लग गई कौतुक देखने के लिये नगर का नगर टूट पड़ा।

संसार विचित्र स्थान है, कोई नई बात होने दो, लाखों मनुष्य एकत्रित होजाते हैं और इनको फॉस में फॉसे हुये निश्चर रावण की सभा में लाये।

सातवाँ समुल्लास

हनूमान-रावण

सभा लगी हुई थी। सब मन्त्री, दीवान, सेनापति, कोषाध्यक्ष और राज कर्मचारी अपने २ पद के अनुसार बैठे थे, सब चुप चाप! सुई पृथ्वी पर गिरे और इसका भी शब्द सुनाई दे जाऐ! ऐसी दशा थी।

रावण का दरबार इन्द्र के दरबार से कम न रहा होगा। संसार भर मे उसके नाम की बधाई बजती थी और उसका नाम ही सुनकर सब अपने कानों पर हाथ धर लेते थे।

हनूमान अभय थे-"इनको देख कर पहिले रावण मुस्कराया फिर अक्षयकुमार की मृत्यु का स्मरण हुआ, क्रोध आगया।

रावण बोला-"तू कौन है!

हनूमान-"बन्दर हूॅ।"

रावण-"मेरे बल और पराक्रम को नही जानता।"

हनूमान-"बहुत जानता हूं।"

रावण-"किस के बल से तू लंका आया और राज वाटिका को हानि पहुंचाया।"

हनूमान-"मुझ मे तुझ में और सब में उसी का बल है जो बल पति कहलाता है। जिसकी आज्ञा से माया ब्रह्माण्ड को रचती है जिसकी प्रेरणा से ब्रह्मा जगत को उत्पन्न करता, विष्णु पालता और शिव संघारता है जो अखिल ब्रह्माण्ड में व्यापक है जिसने शिव का धनुष तोड़ा और खर दूषण और त्रिशिरा को अपने बाण के घाट लगाया। मैं ने उसी का बल लेकर लॅका मे प्रवेश किया। यह तेरा बल नहीं है, उसी का बल है जिसके प्रताप से तू ने चराचर जगत को जीत कर अपने वशीभूत कर रक्खा है।"

रावण चुप रहा

हनूमान फिर बोले-'और मैं तो पहिले ही से तेरे बल और पराक्रम से सचेत हूं। तू ने सहस्रबाहू और बाली के साथ युद्ध किया था उसका यश और उसकी कीर्ति सारे संसार मे फैली हुई है।

रावण ने पते २ की बातें सुन कर हनूमान को हंसी में उड़ाना चाहा प्रसंग को पलट दिया, तू ने मेरी वाटिका को क्यो उजाड़ा, उसने तुझ को क्या हानि पहुंचाई थी?

हनूमान-"मैं भूका था, भूक लग आई थी। फल तोड़ा, खाया, कुछ मेरे पेट में गये, कुछ पृथ्वी पर गिरे। डालियों पर चारोंओर हाथ पड़े वह बोझिल होकर गिरे और यो मैं बन्दर हूॅ तोड़ फोड़ करना मेरा स्वभाव है। तेरे मालियो ने मुझे मारा। मैं ने भी उनको मार दिया। इस संसार में कौन ऐसा है जो सुरक्षा नहीं करता और यह भी सब प्राणियों का गुण है, इस पर तेरे पुत्र ने मुझे बाँध लिया और यहॉ सभा मे घसीट लाया।

रावण-"तू बंध गया, बंधुआ होगया!"

हनूमान-"मुझे ऐसे बंधने बंधाने की लाज नहीं है, अपने स्वामी के कार्य्य के निमित्त सेवक क्या नहीं करता! मैं यहॉ काम करने आया, बॅध गया, तो बॅध गया इस से क्या हुआ!"

हनूमान-"तुझे सिखाने पढ़ाने और उपदेश देने अया हूं, जिसके भय से संसार भय भीत रहता है उससे तूने वैर ठान रखा है, यह अनुचित

कर्तव्य है सीता, सीता को लोटा दे। राम की शरण में आजा वह शरणागत की रक्षा करते हैं, शरण मे आये हुये प्राणियों को दण्ड नहीं देते।"

रावण—और भी कुछ कहना है कि बस।

हनूमान—जो कुछ मुझे कहना था कह चुका।

हाथ वह अच्छे! रहें जो पुन्य में और दान में,
मन वह अच्छा है जो हो हरी के भजन और ध्यान में।
आँख वह अच्छी है जिसमें प्रेम की दृष्टि है,
मुंह वह अच्छा, सद वचन और मीठी बातें नित कहे।
पांव वह अच्छे चलें जो पंथ के उपकार में,
कान वह अच्छे जो हरी के कीर्तन की धुन सुने।
जो नही हिंसक वह धर्मात्मा का रूप है,
जो प्रजा पालक हो भला जगत में वह भूप है।
राम वन में थे, हरी-सीता को यह अनुचित किया,
कर्म यह दुष्कर्म अपयश इसको करके क्यों लिया।
दूत हूं मैं राम का तुझको जताने आया हूं,
धर्म का रस्ता है अच्छा यह बताने आया हूं।
जानकी दे राम को फिर कर भय चिंता नहीं,
चित्त है निरमल जिसका इसमें दुर्मति दुविधा नहीं।
तुम ऋषि संतान विद्वान और कुलमान हो,
काम ऐसे करना जिसमें सद गति कल्यान हो।

रावण—वाह वाह! यह बन्दर क्या है! यह बड़ा विवेकी और ज्ञानी ऋषि है। यह तो लंका में मेरा गुरु बनने आया है। दुष्ट! राज सभा में आकर मुझे ऐसी बातें सुनाने का साहस कैसे हुआ! निःसंदेह तुझे तेरी मृत्यु यहाँ ले आई है। क्या यहाँ कोई ऐसा निश्चर नहीं है जो इसी समय इसको मार कर खा जाये! छोटा मुँह बड़ी बात!

राक्षस उठे, तलवार और बरछा, और फरसा उठाया। हनूमान बँधे और जकड़े हुये खड़े थे, मुस्कराते और हँसते रहे, अभय थे, मन में किसी प्रकार की शँका नहीं थी। सम्भव था कि राक्षस इन पर हाथ उठाते, विभीषण रावण का छोटा भाई उस समय सभा में आगया। हाथ और दृष्टि के संकेत से इन्हे उस दुष्कर्तव्य से रोक लिया।

—:—

आठवाँ समुल्लास

हनूमान और लंकादहन

विभीषण ने आकर रावण को नमस्कार किया। आज्ञा लेकर अपनी जगह पर बैठा, रावण ने कहा—"यह बन्दर यहां आया है, कहता है मैं राम का दूत हूं इसने राज वाटिका को उजाड़ दिया और कई निशाचर इसके हाथ से मरे। तुम्हारा भतीजा अक्षयकुमार भी इसी के हाथ से मारा गया। मैं चाहता हूं इसे मृत्यु दंड दिया जावे, तुम क्या कहते हो?"

विभीषण ने उत्तर दिया—"जो आपने आज्ञा की है उसके विरुद्ध कोई क्या कह सकता है, हाँ यह दूत है, दूत के रूप में आया है, दूत का मार डालना राजनीति के विपरीत है। आप इसे और दण्ड जो चाहें दे। नीति विरुद्ध कोई काम न हो।"

रावण ने कहा—"बहुत अच्छी बात है, बन्दर को अँग भंग करके यहाँ से जाने दो।"

सभा में मंत्र देने वाले बहुत होते है किसी ने कुछ कहा किसी ने कुछ कहा एक निशाचर बोला—"इसकी पूंछ मे आग लगादो पुंछ कटा होकर जाय" मंत्र सब को भाया। उनकी पूंछ में बहुत कपड़े लत्ते लपेटे गये और तेल दिया गया। ये मुस्करा रहे थे। और मन ही मन में कह रहे थे, यह सरस्वती देवी की दया है जो इनके मन की प्रेरणा कर रही है।"

पूंछ को लम्बी चौड़ी बनाया गया, उसे बाँस की खमाची से जोड़ २ कर कई हाथ लम्बा किया गया और कपड़ों की मोटी तह जमा कर मन माना तेल दिया गया। इस कौतिक को देखने के लिये सारा नगर ठठका ठठ उमँड़ आया। सब हँसते मुस्कराते और खिल्ली उड़ाते थे।

जब यह सब हो चुका पूंछ में आग लगादी गई

और हनूमान को छोड़ दिया गया। आग बढ़ी। यह उड़े, ऊँचे २ मन्दिर और घरो पर चढ़ गये। सब को आग लगादी। सब के सब जल उठे। उसी समय प्रचंड वायु बहने लगी। आग फैली, सारा नगर जलने लगा। यह इधर से उधर और उधर से इधर चक्कर लगाते हुये सारे घरो को जलाते फिरे। विभीषण ने इनको पहिले ही से रावण के हथियार घर, वायु घर, बिजली घर, भाप घर, बारूद घर, गॅधक घर आदि का पता दे रक्खा था। यह सब के सब लॅका के बचाव की सामिग्री थे। सब को आग दी, बारूद उड़ी, गोले फूटे, विजली भड़की, पानी वहा, वायु चली, जितने कला कौशल के कार्य्यालय थे, जलने लगे। सब जगहों से, तड़ाके और गर्ज के शब्द आने लगे और गूॅजने लगे। नगर का नगर देखते देखते भस्मी भूत होगया और जो लोग कौतुक देखने और खिल्ली उड़ाने आये थे रोने पीटने सिर धुनने और पछताने लगे।

कोई कहता था यह बन्दर नहीं था, देवता था, लॅका को जलाने आया था। कोई कहता था यह रावण के पाप कर्म का फल है जो बन्दर के रूप मे अब पकने और उसे दण्ड देने आया है। लोग कहने लगे जबसे यह सीता लॅका मे आई है तब ही से लॅका पर आपत्ति आने लगी है। रावण की बुद्धि भ्रष्ट होगई। यह सीता गुप्त दूतिनी है। धीरे २ राक्षसी स्त्रीयों से लॅका का भेद लिया। बन्दर उस से अशोक वाटिका मे मिला और उसी स्थान से यह उत्पात आरंभ हुआ। बन्दर भेदी होगया।

लाखो मुॅह लाखो बाते। यह कुशल था कि विभीषण का नाम किसी ने भी नहीं लिया था उस का महल नगर से कुछ दूरी पर था। वह तो बच गया। हनूमान उस पर नहीं कूदे और सब नगर का नगर स्मशान भूमि बन गया

रावण चकित। दीवान मन्त्री भौचक! यह क्या होगया, हॅसी २ मे बन्दर ने यह क्या खेल कर दिया अब कहॉ रहेगे! सोने की लंका तो मिट्टी में मिल गई। अब फूस के झोपड़ो में रहना होगा!

नगर का नगर व्याकुल होगया। संसार में नाना प्रकार की आपत्तियॉ आती हैं। पानी की बाढ़ गॉव के गॉव बहा लेजाती है। रोग आता है। महामारी आती है लेकिन जब आग लगती है तो वह घास के एक तिनके को भी जलाये बिना नहीं छोड़ती।

निशाचरो ने भाग २ कर अपनी जाने बचाईं। बनिये, महाजन, सौदा बेचने वाले सब के घर दुकान जल गये। नगर मे जो भगदर मची वह उजड़ गया। जिसकी जहॉ सींग समाए उसी ओर भाग चला। जंगलों मे जब कभी आग लगती है तो यही दशा हो जाती है। सिंह, चीते, रीछ, भेड़िये, गीदड़, हिरन-पाढ़े, बारहसिंहा आदि भाग निकलते हैं।

हनूमान जब लंका को जला चुके, उछल कूद कर के समुद्र मे जा गिरे पूंछ की आग बुझ गई। अधजले कपड़े लत्तो को उधेड़ कर फेक दिया और न्हा धोकर फिर अशोक वाटिका मे आरहे। सब अपने दुखो मे दुखी होरहे थे। किसी ने उन्हें नहीं देखा न छेड़ छाड़ की।

नवाँ समुल्लास

हनूमान और चूणामणि

आग लगी, लंका जल गई, राक्षसनियॉ सीता को छोड़ कर अपने सम्बन्धो के खोज मे लगीं। सीता सुन चुकी थी कि हनूमान ने लंका दहन कर दिया है। त्रिजटा के स्वप्न का एक अंग पूरा हुआ।

हनूमान सीता के पास पहुंचे, वह अकेली बैठी हुई थी। इन्होंने कहा—"राम ने मुझे अपनी मुद्रा दी थी जिस से तुमको मेरे राम दूत होने का विश्वास होगया। माई! तू भी कोई ऐसा चिह्न दे, जिससे राम को पता लगे कि मैं लंका में आकर तुझ से मिल चुका हूँ।"

स्त्री का हृदय बहुत कोमल होता है। सीता चित्त मे तो सुखी हुई कि हनूमान लौट कर राम को साथ लायेगे, लेकिन स्त्री थी, ऑखे डबडबा आईं।

सीता बोली—"पुत्र! तुम मिले, तुम्हें देखकर छाती को ठंडक मिली। अब तुम भी जा रहे हो। जाओ, मेरी दशा और कथा राम को सुनाओ। तुम आप अपने कानों से सुन चुके हो कि एक महीना का जीवन मुझे दिया गया है। राम आगये तो मैं बच जाऊँगी, नहीं तो ये राक्षस मेरे लहू का प्यासा है। मुझे मार कर खा जायगा। राम से कहना—"तुम्हारी सीता के सिर पर दुख का पहाड़ आकर गिरा है वह उससे दबी पड़ी है।

दिन गया रोते झींकते रात गई तड़फाय।
सुध नहीं ली तुमने मेरी, हिया जिया उकलाय ॥१॥
जल बिन मछली क्यों जिये, जल जब गया सुखाय।
तड़प तड़प तड़पे सदा, कोई नहीं सहाय ॥२॥
राम २ हा रमापति, कहाँ छुपे हो राम।
जब नहीं देखूँ आँख से, क्यों पाऊँ विश्राम ॥३॥
नैन हमारे बावले, ढूँढे राम का रूप।
राम मिले संकट कटे, सूझे अगम अनूप ॥४॥
जिभ्या में छाले पड़े, राम पुकार पुकार।
अँखियां दाऊ पथरा गईं, पँथ निहार निहार ॥५॥

लक्ष्मण से कहना—"पुत्र तुम्हारा कहना नहीं माना, स्त्री की आँख दूर दर्शक नहीं होती, मेरा अपराध क्षमा करो, मैं ने अपनी करनी का फल पाया।"

"दोनों भाइयों को मेरा नमस्कार! जाओ और उन्हे जल्द अपने साथ लाओ, तब तो सीता का जीवन होगा, नहीं तो वह मरने पर उधार खाये बैठी है।"

राम तुम कहाँ हो, राम मिलो अब आय।
सीता तड़पी राम बिन, राम न हुये सहाय ॥
राम बिना जीना नहीं, राम बिना नहीं सुख।
स्वर्ग नर्क के तुल्य है, राम बिना है दुख ॥

मुंह बंद होगया, रोते रोते हिचकियाँ आने लगीं।

हनूमानः—

धीरज धरे तो उतरे पार नहीं, तो डूबा सकल संसार।

सीता—"अच्छा जाते हो तो जाओ, आँधी के समान जाओ, बोडर के समान जल्द आओ।"

हनूमान कोई चिन्ह (निशानी) प्रदान हो।

सीता—"हाँ मैं भूल गई, मेरा चित्त ठिकाने नहीं है, मुझे तन मन की भी सुध नही।"

और सीता ने चूड़ामणि उतार कर दिया—"इसे ले जाओ, राम को विश्वाश होगा कि तुम मेरे पास आये थे, और यदि रास्ते में तुम मेरा समाचार लेना चाहो तो इसे देख लिया करो। यह मेरी अवस्था का वृतान्त तुमको भी दिखाता रहेगा।"

हृदय भीतर आरसी, मुँह देखा नहीं जाय।
दृष्टि रूप हर तब पड़े, दुविधा जाय पराय ॥

हनूमान ने नमस्कार किया। सीता ने आशीर्वाद दिया।

—:—

दसवाँ समुल्लास

चूणामणि

हनूमान ने सीतासे चूणामणि लिया। यह क्या है? न कोई अधिकारी मिलता है न प्रश्न करता है। न कोई उत्तर दिया जाता है और साथ ही उत्तर दाता भी नहीं है। उत्तर प्रश्न से उत्पन्न होता है।

राम ने हनूमान को मुद्रा (मुद्रिका) दी थी। वह क्या थी? ज्योतिर्मुद्रा। सीता ने चूणामणि दिया, वह क्या था? चोटी का साधन। चूड़ा (चोटी-संस्कृत चूल—उठाना) और मणि (रतन हीरा) चोटी का हीरा शिखा साधन है, कपाल क्रिया है मुद्राओं का साधन सूत्रों (इड़ा), पिंगला और सुशुम्ना) नाड़ियों में किया जाता है। आज कल के नाम के हिन्दू शिखा सूत्र तक का भेद तो जानते नहीं वह मुद्रा और चूणामणि को क्या समझेंगे—

जब कोई जानने वाला ही नहीं तो यह रहस्य जनावे किसको और जाने कौन।

जब धन का गाहक मिले, तब धन लाख विकाय।
जब धन का गाहक नहीं, कौडी बदले जाय ॥१॥
हीरा परखे जौहरी, शब्द को परखे साध।
जो कोई परखे साध को, ताका मता अगाध ॥२॥
नाम रत्न धन मुक्त में, गाँठ खुली मन माँहि।
सेंत मेंत ही देत हो, गाहक कोई नाँहि ॥३॥
गाहक नहीं तो किसे दूं, लेने वाला कौन।
रामायण की कथा को, हो रहा कह के मौन ॥४॥
शब्द २ का भेद है, बाच लच का ठौर।
कथता वक्त। बहुत हैं, मथ काढ़ें सो और ॥५॥

सुन्दर काण्ड सुपॅथ खॅड है, पॅथ में चले सो पंथाई। हनूमान चले। मुद्रासे पंथको आरम्भ किया और चूणामणि को प्राप्त किया। मुद्रा राम ने दिया और चूणामणि सीता ने दिया। पूरा पंथ मिल गया और वह दिव्य द्रष्टि वाले निर अहंकारी देवता तो पहिले ही से थे अब जो कुछ कसर रह गई थी राम और सीता ने उसे पूरी करदी।

नोट:—यह रहस्य ग्रन्थ बद्ध या पुस्तक बद्ध नहीं है और न हो सक्ता है जो अधिकारी हो मुझ से आकर मिले मैं बता दूंगा।

—शिवव्रतलाल

ग्यारहवां समुल्लास

हनुमान विभीषण (फिर)

हनुमान सीता से मिलकर विभीषण के घर गये—मिलना आवश्यक था। न मिलते तो काम अधूरे का अधूरा रह गया होता।

अभी लंका जल रही थी। लोग भाग रहे थे। जान सबको प्यारी होती है। शम शान भूमि मे कोई अबघड़ अवधूत या अघोरी ही रहता होगा। यह उछले, कूदे, फुदके, फाँदे! संसार को न बनते देर न विगड़ते! क्या था क्या होगया। इन्द्रजाल की माया! अभी है अभी नहीं है! या तो वह सोने की सुहावनी बस्ती थी या अब जल कर राख हो रही थी!

दो दिन का व्यौहार है, दो दिन का व्योपार।
दो दिन का अधिकार सब, है मिथ्या संसार॥

रास्ते में किसी से मुठभेड़ नहीं हुई, न किसी ने रोक टोक की। रोकता कौन! इधर लंका जल रही थी, उधर उसके रहने वाले चिंता की आग में जल रहे थे। इन पर किसी की दृष्टि तक न पड़ी।

विभीषण अभी दरबार से आया था—मिला—प्रणाम किया। आसन देकर विठाया।

विभीषण ने कहा "नगर तो भषमी भूत होगया"।

हनुमान—"यह तुम्हारा ही पुण्य प्रताप था, न तुम भेद देते न उसकी यह दशा होती।"

घर का भेदी लंका ढावे, सोने का घर धूर मिलावे।

सब कुछ जल गया, एक भी न बचा। विजली घर, वरुण (पानी) शाला, वायूआले, कला कौशल का स्थान! बारूद जला, गोले जले, भाप जली, हथियार, तोप, तलवार, शंघनी एक भी तो नहीं बचा। अब सिंह नाद कहाँ से ब्रह्म धनुष और ब्रह्म सर लायेगा! फिर दूसरी बार सामग्री बनाने और इकट्ठा करने में बहुत देर लगेगी। अब राम को जाकर मैं लाऊँगा और लंका सहज मे पराजय होगी। तुमने मेरी बड़ी सहायता की।"

विभीषण—"मैं बड़ा दुखी हूँ।"

हनूमान—"क्यो"?

विभीषण—"नहीं राम मिले न जगत मिला,
न इधर का हुआ न उधर का हुआ।
नहीं भक्ति न मुक्ति न नाम लिया,
न इधर का हुआ न उधर का हुअ.॥"

हनूमान—"घबराये क्यो जाते हो सब कुछ

मिलेगा। राम की भक्ति करो राम ने पूरण ब्रह्म का अवतार धारण कर रखा है।"

विभीपण-"राम का दर्शन होगा तब भी बात थी।"

हनूमान-"अभी समय नहीं आया, मिलोगे अवश्य मिलोगे। राम तो आप ही आप अब लंका में पधारेंगे।"

विभीषण-"मैं मन का चंचल हूँ। भक्ति क्या कर सकूंगा!"

हनूमान-"तुम चंचल नहीं हो अज्ञानी हो।"

विभीषण-"अज्ञानी?"

हनूमान—"हाँ, अज्ञानी, और इसी लिये राक्षस हो।"

विभीपण-"मैं तुम्हारी बातों को नहीं समझता हूँ।"

हनूमान-"इसी के समझाने के लिये तो इस समय मैं तुम्हारे पास आया हूं। सुनो विभीषण, इस मन की तीन वृतियां होती हैं या यों समझो इसके तीन रूप होते हैं, अज्ञानी, मूढ़ और चंचल।

अज्ञानी ऊंचा, चंचल विचला और मूढ़ निचला होता है। राम बड़े दयालु कृपालु और करुणालु हैं जो उन की शरण में आते हैं सब को तार देते है और उनके चरण कमल की छांह में सद्गति, शांति और निर भ्रांति मिलती है। तुम अपने आप को तरा हुआ समझो, तुम्हारे तरने में कोई संदेह नहीं है।"

विभीपण-"राक्षसी योनि बुरी है। राक्षसों का तरना कठिन है।"

हनूमान-"राम के यहाँ यह पूछ गाछ नहीं है।

जो शरण में आगया वह तर गया।
नीची योनि में था वह ऊपर गया॥
राक्षस को तरने का अधिकार है।
राम की करुणा से बेड़ा पार है॥
राम को प्यारे हैं उनके भक्त जन।
शुद्ध और निर्मल हुआ है जिनका मन॥
राक्षस से है नहीं घिरणा उन्हें।
राम पूरण ब्रह्म के अवतार हैं॥
राक्षस का पद है ऊंचा और बड़ा।
भक्त है वह फिर न अधगति में पड़ा॥"

विभीपण—"तुम राक्षस की बड़ी महिमा गा रहे हो।"

हनूमान—"फिर झूँठ क्या कह रहा हूं।"

विभीषण—"कोई बात है जिसे मैं नहीं समझता, समझाओ तो मैं समझूं।"

हनूमान-"मैंने समझाने को तो तुम्हें समझा दिया तुमने विचार नहीं किया। अब फिर समझाता हूं। जिस के मन की वृति जैसी होती है उसी की मुख्यता के अनुसार उसका नाम और रूप होता है। अज्ञानी सात्वकी और सतोगुणी होता है, वह राक्षस है। चंचल दुचिता और दुविधा वाला रजोगुणी होता है वह "मुझ" जैसा बंदर, और मूढ़ आलसी और तमोगुणी होता है वह रीछ है।

सतोगुणी राक्षस वैशनवी मन वाला है, रजोगुणी बंदर ब्रह्मवी मन वाला है और तमोगुणी रीछ शैवी मन वाला है। मेरी बातों का विचार करके तुम आप निर्णय करो कि मैं सच कहता हूं या झूँठ कहता हूँ।"

विभीपण—"अज्ञानी तो मूर्ख होता है।"

हनूमान—"कभी नहीं, अज्ञानी का पद सबसे ऊंचा है। वह पूरा राक्षस है। उसकी उपेक्षा रीछ और बंदर नीचे हैं। तुमने अभी तक राक्षस और अज्ञानी शब्दों का अर्थ नहीं समझा। यह कारण है कि दुविधा में पड़ गये हो। सुनो! अज्ञानी वह है जिसे ज्ञान नहीं है। अज्ञानी पंडित शास्त्रज्ञ, वेदज्ञ, कला कौशल, नीतिवान विवेकी सब कुछ है। यह सारी विद्याओं में प्रवीण है। भेद यह है कि उसे आत्मा का ज्ञान नहीं है। आत्मा के ज्ञान न होने के कारण वह अज्ञानी कहलाता है वह मूढ़ नहीं है।

और ऐसा क्यों है? क्योंकि वह राक्षस है, जो केवल अपनी ही रक्षा का ध्यान रखे और दूसरों की रक्षा के विचार से शून्य हो, उसे मैं राक्षस कहता हूं। राक्षस, सुरक्षक, सुभक्षक, स्वार्थी, स्वकर्मी, स्वधर्मी है। औरों की भलाई का उसे किंचित ध्यान नहीं रहता, जैसे लंका निवासी रावण की दशा है।

यह अपने लिये सब कुछ करता है, अन्य मनुष्यों या अन्य जातियों से वैर रखता है। यह कारण है कि वह राक्षस है।

मरना भला है उसको जो अपने लिये जिये।
जीता है वह जो मर चुका संसार के लिये॥

ए विभीषण! इसी सुरक्षा के भाव से तुम राक्षस हो और आत्मा का ज्ञान न रखने से अज्ञानी हो।

राम ने बन्दर और रीछ दोनों की सैना इकट्ठी करली। मैं लंका में आया कि राक्षसों को भी अपने साथ मिला लूं। तुम मिल गये। तुम्हारे मिलने से राम का बड़ा काम हुआ। अब तुमको राम की शरण में आना चाहिये। उनकी भक्ति करने से अज्ञान दूर होगा। ज्ञानी बनोगे और चाहे राक्षस बने रहो दूसरों की भलाई के निमित्त भी कुछ करना पड़ेगा "निष्कामकर्मः परोकर्म."।

विभीषण ने हनूमान से दीक्षित होने की इच्छा की और उन्होंने राम के नाम पर उसे दीक्षा दी और विदा होकर समुद्र पार जाने के निमित्त उत्तर की ओर चले। तट पर पहुंचकर ऐसे घनघोर शब्द के साथ विजली की कड़क के समान किलकारी मारी कि बहुत सी गर्भवती राक्षसियो के गर्भ गिर गये होंगे।

द्वितीय भाग

पहिला समुल्लास

हनूमान लंका से लौटे।

जैसे चढ़े थे वैसे ही उतरे भी! चढ़ना कठिन उतरना सरल! त्रिकूट की चोटी से छलांग मारी और समुद्र की इस पार आ पहुंचे। तुम कहोगे यह असम्भव है। मैं कहता हूं यह सम्भव से सम्भवतर है। बात समझ में न आवे तब निसन्देह कठिन है। जब समझ में आगई, फिर साधारण!

तुम प्रति दिन अपने घट में सुशुप्ति के स्थान में जाते हो कि नहीं? जागृत से कूदे और गहरी नींद के मंडल में जा पहुंचे। कैसे गये कैसे आये? बताओ तो सही! गये तो थे और आये भी हो, लेकिन जाने आने की समझ तुम में नहीं है। सहज है। प्रति दिन का खेल है। बता नहीं सकते। यही बात त्रिकुटी की लंका की भी है।

राम ने ज्योतिर्मुद्रा दिया।
हनूमान ने उसको लिया॥
ज्योति ज्योति में किया प्रवेश।
सहजे आये लंका देश॥
जगमग जगमग लंक की चोटी।
बड़ी कहो वह नहीं है छोटी॥

मेघनाद गरजा और तड़पा।
सँमुख आकर इनको हड़पा॥
सीता मिली सुशुम्ना नाड़ी।
पहुँच गये यह सभा अगाड़ी॥
रावण मिला विभीषण मिला।
कपि ने राम काज को किया॥
चूणामणि सीता से पाया।
कूद फाँद सिंध तट आया॥

जाने में कठिनाई थी, आने मे कुछ नहीं. केवल एक बार इस तत्व को समझ लो, फिर सुख से आओ, जाओ। तुम पोथी ग्रन्थ की रामायण को पढ़ते हो, घट की रामायण नहीं पढ़ी।

समझो भी तो कैसे समझो।
बूझो भी तो कैसे बूझो॥
पढ़ना लिखना सरल है भाई।
गगन चढ़ो परखो कठिनाई॥
तुम कहते हो पुस्तक देखी।
मैं कहता हूँ आँखों देखी॥
देखभाल की बात है न्यारी।
मिले कोई उत्तम अधिकारी॥

तब मैं इनका भेद बताऊं ।
उलट फेर कर लंका लाऊँ ॥
उलटा नाम का अजपा जाप ।
जपे तो भागें घट का पाप ॥
वाल्मिकि वन ब्रह्म सिधारे ।
ब्रह्म लोक में वासा पावे ॥
ब्रह्म को जान ब्रह्म बन जावे ।
तब कुछ भेद ब्रह्म का पावे ॥
मैं तोय पूँछूँ पंडित बात ।
रामायण खंड पढ़े हैं सात ॥
सात खंड का भेद है क्या २ ।
तूमें सुना क्या २ है पढ़ा ॥
नहीं रीछ नहीं बन्दर भाई ।
नहीं विभीषण की गति पाई ॥
तू तो पड़ा भ्रम के कूप ।
देखा नहीं राम का रूप ॥
बिन देखे नहीं बात बनाना ।
बिन देखे क्या कथा सुनाना ॥

[हनु]मान तट पर आगये, रीछ वन्दरों ने, देखा [स]ुखी हुये । वह गये थे अकेले ! आये भी अकेले ! और उनके सुख का भाग इन सबको मिला । कैसे मिला, जैसे गहरी नींद का जाने वाला जब जाग कर जागृत मँडल में आता है उसके आने से देह और देह की इन्द्रियाँ सब की सब सुखी हो जाती हैं और सब में अपूर्व बल और शक्ति आ जाती है । कहीं यह झूँठ है कि सच है । वही बात तो थी, दूसरी क्या थी ।

कप २ काँपने वाले कपि (बंदर, रीछ) प्रसन्न हो गये । कपियों (बन्दरों) की कप कपी गई । वाह वाह । हनूमान आये । राम का काम कर आये । जीवन मिला, सुग्रीव के हाथ मारे जाने का भय जाता रहा क्योंकि हनूमान विभीषण भय मे रहने वाले का रूप देख आये थे ।

हनूमान ने साधारण समाचार सुनाया, शेष राम के लिये रख छोड़ा । यह असाधारण भेद के अनुरागी अधिकारी नहीं थे ।

अधिकारी जब मिले सियाना ।
उसको तत्व सार बतलाना ॥
नहीं तो मौन धार कर रहना ।
नहीं कुछ कथना नहीं कुछ कहना ॥

—:—

दूसरा समुल्लास

किष्किन्धा की वाटिका

बन्दर तो बन्दर ही होते हैं, चंचल, तोड़ फोड़, मरोड़ करने वाले जल्दी २ लोटे । किष्किन्धा (मैसूर) में पहुंचे । सुग्रीव की राजवाटिका में प्रवेश किया । लगे वृक्षों के फल फूल पत्ते तोड़ कर खाने ।

कोई उछला, कोई कूदा, हिलाई वृक्ष की डाली ।
हुये भय भीत इनको देखकर उस बाग के माली ॥
जब आये रोकने, घूँसों से मारा इनको कपियों ने ।
कहाँ उन्मत्त वानर बात को उनके लगे सुनने ॥
हँसी व दिल्लगी थी, खिल खिलाते दौड़ते थे वह ।
झुका कर डालियों को फल को उनके तोड़ते थे वह ॥
जो आया सामने, मारा उसे, वह तो लगा रोने ।
लगे ये बीज उद्धम का वहाँ उस बाग में बोने ॥

माली दौड़े "महाराज ! राजकुमार अँगद ने राज वाटिका का नाश करवा दिया । समझाया, बुझाया, मनाया, मनवाया, डराया, धमकाया, हमारी एक न सुनी और उनके साथ के सभी वानर वाटिकाओं को उजाड़ रहे हैं । हम पर मार पड़ी । भाग आये, नहीं तो जान की कुशल नहीं थी ।"

सुग्रीव सुनकर सुखी हुये—"यह सब सीता की खोज कर लाये, मगन हो रहे हैं, नहीं तो किसी में सामर्थ्य थी ऐसा निडर होकर मेरे बाग को उजाड़ता ।"

वह आप मधुवन में आये, देखा इन के रूप में असाधारण चमक दमक थी ।

आँख निरख कर निरख ले माथा ।
सब का जीत रहे उन साथा ॥
यह चिन्ह देख करे पहिचान ।
जिसको है सत मत का ज्ञान ॥

सब उनके पाँव पर पड़े । बूढ़े जामवन्त ने कहा—"प्रभु ! हनूमान राम का काम कर आवे। सीता की खोज लगा ली । उसे रावण लेगया । अशोक वाटिका में रख छोड़ा है ।"

सुग्रीव बन्दरों और रीछों को साथ लिये हुये राम की कुटी में पहुंचे । दोनों भाइयों को नमस्कार किया ।

तीसरा समुल्लास

राम को सीता का समाचार मिलना

जानने को तो राम सब कुछ जानते थे । फिर भी कुशल पूछी । उत्तर दिया गया ।

कुशल आप के पद कमल में है स्वामी ।
नमामि नमामि नमामि नमामि ॥
जहाँ पद कमल, मुक्ति का पद वहाँ है ।
कमल पद छुटे उन्नति फिर कहाँ है ॥
हनूमान ने खोज सीता का पाया ।
हना मान रावण का निर्बल बनाया ॥

राम ने हनूमान को पास बुलाया, पूछा सीता कैसे हैं ?

यह पाँव पर पड़े—उत्तर दिया:—

नहीं जागती है न सोती है सीता ।
सदा आँसू से मुंह को धोती है सीता ॥
पड़ी दुख के सागर में वह डूबती है ।
कोई दुर्दशा उसकी कैसे सुनावे ॥
प्राणों के प्राण आप हैं प्राण उसके ।
वह है देह और आप हैं जान उसके ॥
न खाना न पीना, न दाना न पानी ।
है दुःख ऐसा कैसे कहे हाय वाणी ॥
तपे ताप अग्नि में आठों पहर वह ।
मिली धूप छाया न बाहर न घर है ॥
डरी सहमी भय भीत रहती है सीता ।
न कुछ बोलती है न कहती है सीता ॥
सताता है रावण उसे आप आकर ।
दशा मैं ने देखी सभी आप जाकर ॥
कहूं क्या ! नहीं कहने की शक्ति पाई ।
न कहने की बुद्धि मुझमें और न युक्ति आई ॥
दिया मैं ने ढाढ़स कहा उससे "माता ।"
धरो धैर्य, हैं राम आनंद दाता ॥
दिया उत्तर उसने "उन्हें जाके जाओ ।
सन्देशा मेरा राम को कह सुनाओ ॥
जो इक मास में राम लँका में आयें ।
मरी सीता को अपने पल में जलावें ॥"
न आये तो सीता मरी की मरी है ।
विरह-अग्नि में वह जरी और बरी है ॥
सदा राम का ध्यान करती है मन में ।
वह है सांस में और नहीं रहती तन में ॥
न सुध बुध है तनकी न सुध बुध है मनकी ।
न सुध बुध है घरकी न सुध बुध है बन की ॥
तपस्वी बनी तप से जीती है सीता ।
न खाती है कुछ और न पीती है सीता ॥

हनूमान ने चूणामणि सामने रख दिया । राम ने उठाकर अपनी छाती से लगा लिया । नर थे नारायण की गति छोड़ कर नर बने थे, रो पड़े । आँसू पोंछे । हनूमान से पूछा—"तुम ने वहाँ लँका में जाकर क्या २ काम किये ?"

हनूमान ने एक एक करके सारी कथा सुनायी ।

राम—"तुम ने प्रशंसनीय काम किया, इस पत्थर को उठाना तुम्हारा ही काम था ।"

हनूमान—"आप जिसे चाहो, बड़ा बनाओ, जिसे चाहो छोटा बनाओ । मैं क्या और ! मेरी शक्ति क्या ! आप के प्रताप ने काम किया । मुझे कुछ सुयश मिलना था, मिल गया ।"

हनूमान क्या ? वह तो बन्दर का बन्दर।
वह है बून्द और आप इसके समुन्दर ॥
है बून्दों के पीछे समुन्दर की शक्ति।
वहीं उसका बल है वही बल की मुक्ति ॥
समुन्दर न हो बूँद का क्या पता है।
न वह वृक्ष डाली न पत्ता लता है ॥
किया काम सब आप ने आप अपना।
दिखाया विचित्र और अद्भुत यह सपना ॥
"यह है खेल, सब को खिलाती है माया।
है वह आपके रूप की काली माया ॥

राम—"अक्षयकुमार को मारा, अच्छा किया! लँका जलाई, बहुत अच्छा किया! सीता का समाचार लाये यह सब से अच्छा किया! इन सब से और अच्छा काम क्या हुआ!"

हनूमान—"रावण का भाई विभीषण आप का सेवक बना।"

राम ने हनूमान की ओर दृष्टि की "यह बहुत बड़ा काम हुआ। इसके बिना कुछ नहीं हो सकता था। वृक्ष की जड़ वृक्ष की डाली के बेंट ही से कटती है। यह विभीषण कहाँ है!"

हनूमान—"लंका में है, चरण कमल मे आने को इच्छुक है।"

राम—"आता है तो आने दो। अब जल्दी लंका पर चढ़ाई करने का यत्न करो।"

चौथा समुल्लास

राम की सेना

आज्ञा पाते ही सुग्रीव ने बन्दरों और रीछों की सेना इकट्ठी की। यह टिड्डी दल के समान कुटी के गिर्दागिर्द झुण्ड बाँध बाँध कर खड़े हो गये। राम ने देखा। लक्ष्मण ने देखा सुग्रीव ने सब का नाम बता २ कर दिखाया।

किसी ने किसी राजा के साथ ऐसी विचित्र सेना कहाँ देखी थी। न किसी ने आज तक आँखों देखा न किसी ने आज तक कानो सुना।

राम ने सुग्रीव को सुना कर हनूमान से कहा—"इस सेना मे केवल दो अंग हैं एक अंग की कसर है।"

सुग्रीव ने यह रहस्य वाणी नहीं समझी। हनूमान समझ गये। "प्रभो! इस का प्रबन्ध हो चुका है, त्रुटि भी आप ही आप पूरी होगी, समय आगया है। आप की कृपा से सब कुछ हो जायगा।"

राम—"सेना सूनी प्रतीत होती है। एक अंग भंग है और कुछ नहीं। वह पूरा हो जाय तो फिर विजय पाने में कोई शंका न रहे।"

हनूमान—"ऐसा ही होगा।"

सुग्रीव—"प्रभो! मैंने इस त्रुटि का आशय नहीं समझा। आज्ञा कीजिये, प्रबन्ध कर दिया जायगा।"

राम—'तुम इसे अभी नहीं समझे न समझ सकते हो। हनूमान ने समझ लिया है, वह समझा देंगे। चलो अब लॅका चलो, समुद्र को किसी प्रकार पार करो, रावण को मारो, और सीता को लाओ।"

सुग्रीव—"जो आज्ञा!"

पाँचवां समुल्लास

समुद्र का तट

राम लक्ष्मण सीता को साथ लिये हुये समुद्र के किनारे पहुंचे। टीलों पर डेरा डाल दिया गया। फूंस के झोपड़े बहुतायत से उसी दिन बन गये।

समुद्र झकोले ले रहा था। लहरें आकाश मँडल की ओर उठीं। पृथ्वी का जल गगन मंडल को तर करना चाहता था। रात आई, लहरें उठीं,

गगन-मंडल से बातें करने लगीं। वह अपने तारों की सहस्रों आँखों से पृथ्वी का साहस देखने लगा। ज्वार भाटों के खचा खच मुट भेड़ की लीला देखने योग्य थी। राम देखने लगे। लक्ष्मण की दृष्टि उस पर गई। नाटक का परदा उठा। अन्न जल करने के पश्चात् वह सब के सब इसे देखने लगे। चाँद निकल आया! रात्रि सुहावनी बन गई। शरद ऋतु के शुद्ध और निर्मल आकाश मंडल का क्या कहना है! वह भक्तों के महान हृदयों के समान विमल हो रहा था। राम ने सुग्रीव से कहा—"समुन्दर को कैसे पार किया जावे?"

सुग्रीव बोले—"इससे रास्ता माँगिये आप को अवश्य रास्ता दे देगा।"

लक्ष्मण को सुग्रीव की बात बुरी लगी—"माँगना कैसा! माँग जांच से भी आज तक किसी का काम चला है। माँगने वाले मुर्दा हैं, उनमें सामर्थ्य नहीं, बल नहीं, तेज और पराक्रम नहीं। माँगो, देखूंगा कि यह तुम्हारी विनती सुनता है कि नहीं।"

क्या माँगता है, माँगने वाला नहीं सुखी।
मंगता है भिकारी भिक्षु है संसार में दुखी॥
बल है तो बल से काम कर और बल को साध ले।
धर्म अर्थ काम मोक्ष के धन को अगाध ले॥
जो माँगता है काम को पूरा करेगा क्या।
भव सिन्धु पार जायगा इससे तरेगा क्या॥
मैं बाण से सुखाऊंगा सागर के नीर को।
फूकूँगा और लूंगा निज बल से नीर को॥
आये हैं युद्ध करने भिकारी बने हुये।
करतब दिखाने आए मदारी बने हुए॥

लोगों ने फिर सम्मति दी। यहाँ का राजा समुद्र है। नीति कहती है जिस राज में कोई जाय उस के नियम का पालन करे।

राम समुन्दर के तट पर आये। वन्दरों ने बहुत विनती और प्रार्थना की। उसे कौन सुनता था। लहरें उठीं। वन्दरों पर झपटीं। सब को तर बतर कर दिया। राम के पाँव तक भी पानी पहुंचा। लक्ष्मण यह कर्तव्य देख २ कर मुस्कराते रहे।

लक्ष्मण ने इन्हें कहा—'देखा, भिकारियों के साथ यही वर्ताव किया जाता है, जो तुम्हारे साथ किया गया।"

आलसी देव मनाते हैं भिकारी बनकर।
पित्रों के चरणों में गिरते हैं वह सर को धरकर॥
स्तुति गा के वह मंदिर में सुन ने आये।
देव को उल्लू समझ कर मनाने आये॥
पित्र और देव किसी के नहीं रक्षक होते।
स्वार्थी यह कभी बिच्छू कभी तक्षक होते॥
मूढ़ता छोड़ दो बल बुद्धि से कुछ काम करो।
काम करते हुये संसार में तुम नाम करो॥

राम को भी क्रोध आया। लक्ष्मण से बोले "लाओ अपना बाण! और सुखा दो इस घमंडी सागर को अभी!"

लक्ष्मण प्रसन्न हुये। धनुष बाण लेकर वीररस के रूप बन कर खड़े हुये।

समुन्दर डरा, लहरें उठीं, हाथ में मोतियों का थाल लिये हुये सामने आया। चरणों मे गिरा भेंट धरी और विनती की:——

मैं हूँ सेवक आपका और आप हैं स्वामी मेरे।
आप की महिमा अधिक है आप हैं सबके परे॥
क्रोध क्यों है, क्यों दया का त्याग आपने कर दिया।
दास के हृदय को क्यों दुख शोक देकर भर दिया॥
सिंध में महिमा तुम्हारी है मेरी महिमा है क्या।
आपकी है गरिमा, लघिमा, अनिमा और मेरा है क्या॥
काम ऐसा कीजिये जिसमें मेरा सन्मान हो।
मान मर्दन जब हुआ सागर का क्या फिर मान हो॥

राम को दया आई। जगत उनके आधार पर है। उनका है। समुद्र सूखा तो किस का समुद्र सूखा पूछा—"क्या करना चाहिये?"

समुद्र ने कहा—"आप की सेना में दो बन्दर हैं, नल नील। दोनों शिल्प विद्या में प्रवीण हैं। यहाँ से लेकर लँका तक सेत बाँधे, पानी पर पत्थर तिरायें, आप के सहकारी कर्मचारी उस पर होते हुये साधारण रीति से समुद्र पार कर जायें। इस से आपका नाम रहेगा और मेरा सन्मान होगा।"

राम-"सामग्री कहां से आयगी और कौन लायेगा।"

समुद्र-"दो नील बन्दर रीछ आपके पास हैं। एक एक पत्थर लायेंगे तो यहाँ से वहाँ तक लम्बा चौड़ा पुल बन जायेगा। हनूमान पर्वत उठायें। अंगद देख भाल करें, सुग्रीव का प्रबन्ध रहे, नल पत्थर जमायें, नील सिमन्ट लगायें, बन्दर पत्थर गढ़ें। यहाँ की पृथ्वी में बहुत लस है। पत्थर जम कर बैठा तो फिर उखड़ने पर न आयेगा। मैं अपनी लहरों की रोक थाम कर रखूंगा। पुल को हानि न पहुंचने दूंगा।"

राम-"मन्त्र तो अच्छा है।"

और सब ने एक मुंह होकर कहा"हाँ अच्छा है।"

समुद्र नमस्कार करके पानी की लहरों पर चढ़ कर चला गया और पुल का प्रबन्ध हुआ। वेन्ध्याचल पर्वत को किसी समय में अगस्त्य नामक ऋषि इन्जीनियर ने तोड़ फोड़ कर चौरस बना दिया था जिस में हर जगह मनुष्यों की बस्तियाँ बन गई थीं। बन्दर उठे, पहाड़ों के पहाड़ उखेड़ लाये और पुल बनाने लगे।

—:—

नोट:-तुम पूछोगे समुद्र जड़ है या चेतन! मैं कहूंगा जड़ और चेतन दोनों है, और दोनों के एकत्रित होने से जो शक्ति सब को बाँध रखती है वह समुद्र है। तुम भी जड़ और चेतन दोनों हो तुम मे अगणित जीव जन्तु बसते हैं, तुम इनके आधार हो। इस प्रकार इस संसार का सब जगह प्रबन्ध है।

तुम पूछोगे-"क्या समुद्र बोलता है?" मैं कहूंगा यह बुलाने से बोलता है, जैसे ब्रह्म में सब कुछ हैं और तुम उसे मना कर सिद्ध कर लेते हो वैसे ही तुम में युक्ति के आजाने से सब सहायक और उपायक हो जाते हैं।"

—:—

छटा समुल्लास

लंका में खलबली

रावण के दूत सारे संसार में बिखरे हुये थे जो उसे पल २ का समाचार पहुंचाते थे। उसने सुना कि, तपस्वी बालक सिन्ध के तट पर बन्दर और रीछ की सेना लेकर चढ़ आये। समुद्र से विनती करते हुये रास्ता मांग रहे हैं। वह सुन कर बहुत हँसा। फिर समाचार मिला, कि पुल बन रहा है। वह मुस्कराया। इन के कर्तव्य को बचों का खेल समझा।

रात को महल में सोने गया। मन्दोदरी इसकी पटरानी थी, कहने लगी- 'पति! तुम ने यह अच्छा नहीं किया। सीता को जब से लाये हो लंका उजड़ रही है। इसे फेर दो। इसी में भलाई है।"

रावण-"स्त्रियों में डाह बहुत होती है, वह महा सुन्दरी है उसे देख कर तू कुढ़ती है।"

मन्दोदरी—वह महा पतिव्रता देवी है। वह तो तुम्हें फूटी आँख से भी नहीं देखती। जाते हो, कटी जली गाली गलौज सुन कर आते हो। वह तुम से बात तक तो करना नहीं चाहती। तुम्हारा रूप देखकर घृणा करती है।

रावण—यह स्त्रियों के चोचले हैं। आज नहीं तो कल राह पर आजायगी। तुझे क्या पड़ी है।

मन्दोदरी—सोने की लंका जल गई और पूछते हो कि तुझे क्या पड़ी है।

रावण-जली हुई लंका फिर बस गई। पहिले से भी अच्छी बन गई। लंका के कारीगरों ने अपनी मायावी (साइंटिफिक) रचना से उसे बहुत सुन्दर बना दिया। सड़ी गली सामिग्री जल गई तो अच्छा हुआ। मेघनाद नगर को बसा रहा है। सुन्दर बना रहा है। जाकर देख, आँखें खुल जायेंगी।

मन्दोदरी-वह आज बसती है। कल फिर उजड़ेगी। राम का साधारण बन्दर आकर उजाड़ गया। अब तो पलटन की पलटनें आ रहीं हैं।

रावण—उनकी मृत्यु लिये हुये आरही है।

राक्षस भूके हैं, उनके मांस हड्डियों तक को चबा जायेंगे। इनका आहार आरहा है। चिंता किस बात की है।

मन्दोदरी—मैंने सुना है कि राम ब्रह्म के अवतार हैं। वह जगत पति हैं। उनका सामना कोई नहीं कर सकता।

रावण—तूने सुना है। देखा नहीं है। वह नर बालक हैं। केवल दो पुरुष हैं–राम और लक्ष्मण! दुबले पतले! मेरे भय से भयभीत! वह मुझ से क्या लड़ेंगे!

मन्दोदरी—मै यह सब नहीं जानती। सीता को लौटाओ। जब तुम वीर थे तो उसे स्वयम्बर में क्यों नहीं जीता! वहां तो राम ही की विजय हुई। सीता को दें दो राम से मित्रताई करो। इसमें तुम्हारा कल्याण है। सुनती हूँ कि राम अपने शरणागत की रक्षा करते हैं। वह तुम्हारा अपराध क्षमा कर देंगे।

रावण—स्त्री का स्वभाव कोमल है। तू यों ही डर रही है। मैंने अपने भुज बल से संसार को विजय कर लिया। यह दो लड़के क्या कर सकते हैं।

मन्दोदरी—काल समीप आगया। बुद्धि भ्रष्ट हुई। उचित, अनुचित, की समझ जाती रही।

काल आया बुद्धि सब जाती रही।
मृत्यु आके मंडलाती रही॥
बात तक सुनते नहीं मानोगे क्या।
मित्र शत्रु अपने पहिचानोगे क्या॥

यह कह कर वह रोने लगी। इसकी रात यों ही गई। नींद नहीं आई। प्रातःकाल उठकर सभा में आया। या तो दिन चढ़े तक सोता रहता था या आज से निशाचरी स्वभाव को धक्का लगा।

मन्त्री दीवान को बुला भेजा। वह आये। पूछा "राम लक्ष्मण सागर तट पर आये, तुम क्या कहते हो?"

सब ने इक मुंह होकर कहा–"आते हैं तो, आने दीजिये, क्या चिंता है! राक्षस उन्हें खायेंगे रक्षा और सुरक्षा होगी! घर आये हुए अहार को फेरना अच्छा नहीं है।"

आता हो तो उसको आने दीजिये।
जाता हो तो उसको जाने दीजिये॥
मच्छर और सिंह की लड़ाई।
मच्छर की है इसमें क्या भलाई॥
बन्दर निश्चर का झगड़ा क्या।
मुट्ठी में वायु बांधना क्या॥
जुगनू कहाँ और कहाँ है भानु।
तिनका कहाँ और कहाँ है कृपानु॥
रावण और राम जब लड़ेंगे।
फिर जायेंगे राम पिष मरेंगे॥

विभीषण बोले–"नाथ! जिस सभा में मन्त्री, वेद और गुरु भय वश होकर हां से हां मिलाते हैं और सोच समझ कर न्याय की बात नहीं कहते हैं वहां से भलाई कूच कर जाती है।"

"आग, पानी, ऋण, शत्रु और पाप को कभी छोटा न समझना चाहिये। यह देखते २ बढ़ जाते हैं।"

"राम ब्रह्म अवतार हैं। उनका सामना काल भी नहीं कर सकता। दूसरा क्या करेगा!"

"सीता को लौटा कर क्षमा मांगिये। उनकी शरण लीजिये। वह आप पर दया करेंगे और फिर आपको संसार भर में किसी शत्रु का खटका न रहेगा।"

रावण पहिले ही जला भुना था। मन्दोदरी ने रात को उससे बहुत बुरा भला कहा था। वहां महल मे तो वह सँभला रहा। यह क्रोध को बस मे न रख सका। उछल कर एक लात विभीषण को मारी। असभ्य! अयोग्य! मुंह सँभाल कर बात नहीं करता। मेरे पक्ष को निर्बल और शत्रु पक्ष को बल कर रहा है। मेरे टुकड़ों से पला और मेरा ही अपमान कर रहा है। जा दूर हो! राम ऐसे योद्धा और वीर हैं तो तू उनकी शरण में जा! चल जा! अपना मुंह मुझे न दिखा!

विभीषण ने रावण को अन्तिम नमस्कार किया और अपने सहाई सेवकों को साथ लिये हुये, आकाश मार्ग से होता हुआ समुन्दर के उस पार निकल आया। उस समय आकाश मार्ग से चलने की रीति थी।

मालियावन्त रावण का स्याना मंत्री था। उसने हाथ बांधकर कहा, "प्रभो! आप हमारे राजा, मैं आपकी प्रजा हूं। आपके कल्याण में हमारा कल्याण है। आपकी हानि मे हमारी हानि है। दीन बन्धो! विभीपण का प्रस्ताव अनुचित नहीं था। उसने अनुचित वात नहीं कही थी। आज पुलस्त्य मुनि ने अपने शिष्य द्वारा विभीपण को कहला भेजा था, "रावण को समझाओ, सीता को देदो, राम के साथ वैर करना अच्छा नहीं है।"

"देखिये घर मे अभी से फूट पड़ गई। सुमति से धन, सम्पत्ति की वृद्धि होती है। कुमति से यह घट जाते हैं। नीति के विरुद्ध कोई काम अच्छा नही समझा जाता। हम सब की भलाई मैत्री करने में है।"

मालियावन्त अभी और कुछ कहने ही को था कि रावण क्रोधातुर होगया। "क्या कोई नहीं है जो इस दुष्ट को अभी मेरे सामने से दूर कर दे।" राक्षस दौड़े। मालियावन्त प्रणाम करके घर पर चला आया।

—:—

सातवां समुल्लास

तट पर राक्षसों का आगमन

समुन्द्र का किनारा राक्षसों से भरा था। उनमें रावण के दूत थे। बन्दर अभय थे। इन्हे पकड़ा, नोंचा, खसोटा, बाँधा, और इनके नाक कान काटने के पीछे पड़े। इन्होंने राम लक्ष्मण की सौगन्द दी—"हमको न मारो, न सताओ, न हमें कुरूप बनाओ, हम राम के शरणागत हैं।"

लक्ष्मण ने सुना—"दया आई, छुड़वा दिया।"

इसके पश्चात् विभीपण का दल पहुंचा। बन्दर उतावले होते हैं। इनके भी पीछे दौड़े। विभीषण का नाम सुनकर चुप हो रहे।

राम ने इनके आने का समाचार पाया, सभा की, रीछ और बन्दर मंत्री बैठे, बात चीत होने लगी। किसी ने कहा हमारे बीच मे शत्रु दल के किसी पुरुष का आना ठीक नही है। इसको ताड़ना करके लौटा दिया जाय। किसी ने कुछ और किसी ने कुछ सम्मति दी। राम ने सावधान होकर [illegible] सुनलीं और सबके अन्त में कहा, "पहिले [illegible] न लेना चाहिये कि विभीपण क्यो आये हैं वह रावणके भाई मन्त्री और राजकुमार हैं। जाओ, उन्हे यथोचित सम्मान से लाओ।"

वह आये। साष्टांग दण्ड प्रणाम किया। राम तपस्वी और वन वासी थे। रेत की भूमि, कुशासन, विभी पण ठाट बाटके साथ थे। राम उठे। उन्हे छाती से लगाया। लक्ष्मण का वर्ताव भी उनके साथ वैसा ही हुआ।

राम ने अपने आसन पर उन्हे आसन दिया। कुशल पूछी। विभीषण बोले, "कुशल तो केवल आपके चरणों मे है। जब दुख दाई संसार महा उत्पात मचा लेताहै और मनुष्य सब प्रकार से दुखी होजाता है तब उसे आपकी भक्ति की सूझती है और यह केवल आपकी शरण लेकर भक्त हो जाता है। मैं राक्षस हूं। काम क्रोध लोभ मोह का सताया हुआ! मुझ में कुशल कहाँ! मेरा इन चरणो के समीप आना ही मेरी दशा का वृतान्त है। मैं शरणागत होने आया हूं।"

राम—"कुछ तो कहो लंका की क्या दशा है।"

विभीपण—"रावण की बुद्धि भ्रष्ट होगई। मैंने समझाया सीता को लौटा दो। राम की शरण लो। इस अपराध मे उसने मेरे लात मारी। भरी सभा से निकल जाने और आपके समीप जाकर रहने की आज्ञा सुनाई। मैं घर भी नहीं गया। आकाश मार्ग से चरणों में चला आया।"

राम ने उस समय समुद्र से पानी मँगाया और विभीपण को राज तिलक देकर कहा—"भाई! आज से तुम लंका के राजा हो। रावण मरेगा। जल्द मारा

जायगा। इसका काल आ गया और लक्ष्मण उसकी जगह तुमको सिंहासन पर बिठायेंगे।"

"रघुकुल की यह रीति है जो शरण में आजाते हैं उनकी तन मन धन से रक्षा की जाती है। शरणागत को मारने काल भी आ जाय रघुवंशी इसके लिये अपनी जान तक लड़ा देगा। हमारे वंश का दूसरा नियम है कि वचन को नहीं पलटते। तुम मेरे पास आगये अच्छा, किया। अब अभय रहो। भय आसक्त होने से तुम विभीषण कहलाते थे। अब तुम्हारी दशा कुछ और रहेगी। मैं तुम्हारा नाम बदल सकता था। उसकी आवश्यकता नहीं है और तुम्हारे भय के अंगको भी बुरा नहीं कहता। जिसकी प्रकृति में सतोगुण प्रदान होता है उनकी ऐसी ही गति रहती है। देवता इसी गुण की अधिकता से डरने वाले प्रसिद्ध हैं। अभय या तो मूढ़ होता है या ज्ञानी होता है। तुम ज्ञानी नहीं हो अज्ञानी हो। अब मेरी संगत और शरण में आने से तुमको ज्ञान की प्राप्ति होगी।"

विभीषण के राजतिलक के पश्चात् सुग्रीव आदि ने जब विभीषण के साथ राम का यह बर्ताव देखा, उनके आशय और मनतव्य को समझ गये। बन्दरों की चंचल वृति की रोक थाम की और यह सब राम की शरण में आते गये और राम ने राक्षसी दल का सेनापति विभीषण को बनाया।

फिर क्या था। धीरे २ लंका के कई राक्षस आये। हनूमान बहुत चौकन्ने रहते थे कि कहीं रावण के गुप्त दूत दल में सम्मिलित न होने पायें। विभीषण से पूछ कर तब उन्हें रहने की आज्ञा मिलती थी।

आठवाँ समुल्लास

राम की सैना की पूर्ति

पुल बँध रहा था, बन्दर और रीछ काम से लगे हुए थे। राम ने विभीषण हनुमान और सुग्रीव और जामवन्त को बुलाया। वह आये। लक्ष्मण पास बैठे हुए थे।

राम ने कहा, "मित्र सुग्रीव! किषकिंधा में सैना के इकट्ठा होने के समय मैंने कहा था अभी तक केवल दो अंग एकत्रित हुए हैं। एक अंग की कसर रह गई है। तुमको सुनकर आश्चर्य हुआ था। मैंने कहा था कि किसी समय यह रहस्य समझा दूंगा। वह समय आज आगया। तुम्हारी सैना का तीसरा अंग आकर जुड़ गया। अब वह त्रुटि जाती रही और सैना सर्व अंग से आज पूरी है और तुमको अवश्य रावण पर विजय प्राप्त होगी और वह पराजय होगा।"

सुग्रीव ने चकित होकर मुह खोला, "मैंने अब तक भी इसे नहीं समझा।"

राम बोले—"विभीषण आगये। उनके आने से कसर की पूर्ति हुई है और तुम्हारी सैना अब पूरी २ त्रगुणात्मक है।"

कसर जो थी वह आज जाती रही।
नहीं तो यह चिंता सताती रही॥
अभय होके अब काम अपनो करो।
न सोचो न दुविधा से जी में डरो॥

सुग्रीव—"मैं बन्दर हूं समझ बूझसे रहित! और भी समझाइये।"

राम—"मनुष्य शरीर में मन के तीन अंग होते हैं सतोगुणी, रजोगुणी, तमोगुणी। इन्हीं को वैश्नवी, ब्रह्मावी, और शैवी भी कहते हैं और ज्ञानी इनको अज्ञानी, चंचल और मूढ़ का नाम देते हैं। बात एक है, मनतव्य एक है। केवल शब्द प्रयोगका भेद है।"

"मन के तीन अंगों का स्वरूप यह है:—अज्ञानी वृति राक्षस है जो सुरक्षा, स्वार्थ, सुमान की भूखी रहती है इसी से इसका नाम राक्षस है और वह विभीषण भय आसक्त है।"

"चंचल वृति बन्दर है, जो संकल्प विकल्प उठाती रहती और उसी में कूदती फांदती और उछलती है। इसका नाम इसी दृष्टि से बन्दर रखा गया और वह तुम लोग हो।"

"मूढ़ वृति रीछ है। 'ऋच' संस्कृत मे चलने को कहते हैं। यह चुपचाप बिना कहे सुने काम में लगी रहती है। इसका नाम रीछ इसी अनुमान से रखा गया और वह बूढ़ा वीर जामवंत है।"

"जब तक यह तीनों इकट्ठे न हो जांय और इन तीनों की नियमानुसार रोक थाम न करली जाय, तब तक किसी प्रकार की सिद्धि शक्ति, विजय और कीर्ति नहीं मिलती। अब तीनों अंग पूरे होगये, त्रुटि जाती रही और मेरी चिंता दूर होगई।"

"इधर राक्षस हैं उधर वीर बन्दर।
मिले रीछ बलवान दोनों के अन्दर॥
यह तीनों बली साहसी और योधा।
सधे साधे और तीनों ही को जो सोधा॥
करेंगे वह काम अपना निष्काम होकर।
थकेंगे न उकतायेंगे जाग सोकर॥
नहीं सामना इनका कोई करेगा।
जो लड़ने को आयेगा आकर मरेगा॥"

सुग्रीव–"यह तो मैंने समझ लिया। आपने भली-भांति मुझे समझा दिया। अब संशय नहीं है। सावधान होगया। प्रभो! अब यह बताइये कि इस शरीर में इन तीनों वृतियों के स्थान कहां २ हैं और यह कैसे २ और किस २ विधि से काम करते हैं।"

राम ने कहा–"मैं रेत पर चित्र खींचता हूं उसे देखो तो यह रहस्य भी तुम्हारी समझ में आजायगा।"

और राम ने पृथ्वी पर अपनी उंगलियों से रेखा खींच कर मनुष्य का अर्ध चित्र बनाया।

राम बोले इस चित्र में तीन जगह तीन बिंदियां दी हुई हैं। पहिली (१) भ्रूमध्य-दोनो भौंओ के बीच आंजना चक्र में–यहां मन की अज्ञानी, सतोगुणी ऊंची और राक्षसी वृति रहती है। इस के काम का मंडल सर्व शरीर मे है। दूसरी (२) दोनों छातियों के बीच हृदय चक्र या अनाहत मे है यहां मन की चंचल रजोगुणी बिचली और बानरी वृति रहती है। इसके काम का मंडल यो तो चोटी से एड़ी तक है फिर भी उसे बड़ा नहीं कहते। तीसरे (३) नाभि चक्र या मनीपुर मे मूढ़ वृति रहती है जो तमोगुणी
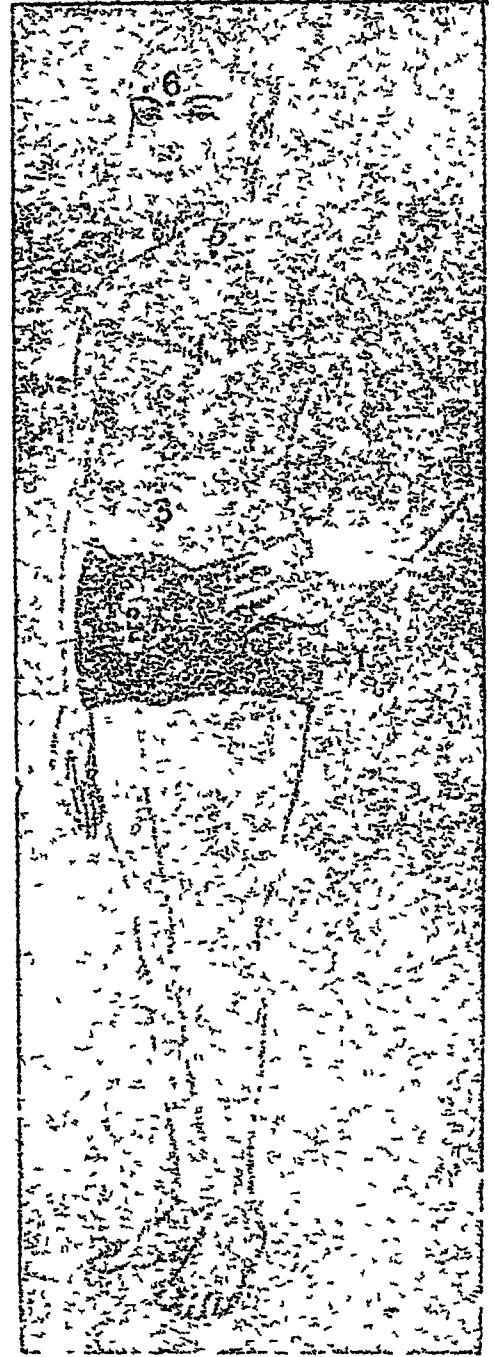
तमाकार निचली और रीछ है। इसके काम का मंडल बहुत बड़ा है।

"ए सुग्रीव! यह इन मानसिक वृतियों के रहने के स्थान हैं। यह तीनो मिली जुली रहती हैं। इनके कामों पर ध्यान देने से इनका पता लगता है।"

सुग्रीव ने पूछा–"इनके काम क्या है?"

राम ने उत्तर दिया–"मन की निचली वृति जानती बूझती सोचती समझती है और अपने भाव को प्रगट करती रहती है। जैसे तुम खाना खा रहे हो, दांत से काटते जिह्वा से चुबलाते रस लेते और

ग्रास बना २ कर गले के नीचे उतारते जाते हो और साथ ही कहते जाते हो कि खाना लोना है या अलोना इत्यादि।

खा पीकर यह खाना नाभि चक्र को सौंप दिया गया यहां मन की मूढ़ वृति काम करती है। यह न स्वाद लेतीहै, न बोलती है। केवल अपना काम करती रहती है। पकाया। रस,रक्त चर्बी,वीर्य ओजस आदि बनाया और एड़ी से चोटी तक सब को आहार पहुंचा दिया। इसका मंडल शरीर की दृष्टि से सर्व व्यापक है।

अज्ञानी वृति जोत्राकार है। यह किसी २ मे जब फुरती है तो उस मनुष्य मे बल बुद्धि आजाती है। इस से जो प्रश्न करो सच्चे २ उत्तर दे देती है। यह तुम्हारे प्रश्नो के उत्तर यथाशक्ति दिये गये, लेकिन जब यह पूछोगे कि मेरा रूप क्या है या आत्मा ईश्वर ब्रह्म क्या है। कहां रहता है, तब चुप हो जायगी। इसका ज्ञान उसे नहीं है इसलिये अज्ञानी कहलाती है। खाती पीती, अपनी रक्षा भी करती है। और नहीं भी करती है। इसका भी मंडल बहुत फैला हुआ है। जब यह किसी २ में फुरती है तो अनाड़ी कहते हैं भूत प्रेत की छाया है और समझदार जान जाते हैं कि इस में अज्ञानी वृति की फुरना हुई है। यह इन तीनों के तीन काम के मंडल हैं!"

सुग्रीव–"तब तो यह तीनों निष्फल हुए।"

राम–"क्यों?"

सुग्रीव–'ज्ञान इन तीनों में से किसी को भी नहीं हुआ।"

राम–"यह सच है, ज्ञान अनुभव से होता है जब मन की यह तीनों वृतियां एकाग्र हो जाती हैं और गुरु मिल जाता है, तब ज्ञान की प्राप्ति होती है और वह अनुभव सम्पन्नता है। साधन सम्पन्नता पहिले होती है।

नवाँ समुल्लास

बन्दर वृत्ति चंचल वृति की मुख्यता और उत्तमता

सुग्रीव ने राम की बातों को बड़े ध्यान से सुना। अन्त में कहने लगा, 'हम आपके सेवक और सच्चे भक्त हैं। अब तक समझते थे कि हमसे अधिक आपकी भक्ति किसी में नहीं है। अब आज वार्ता से जान पड़ा कि चंचल की उपेक्षा अज्ञानी में विशेष भक्ति है और उसका पद बड़ा है।"

राम बोले–"तुमने समझने में भूल की। इन तीनो में मुख्यता चंचल वृत्ति हो की है। यह न हो तो फिर कोई काम ही नहीं हो सकता। यह मुक्ति को पाकर अज्ञानी और मूढ़ वृत्तियो दोनों को अपने वशीभूत करके ऊपर से नीचे और नीचे से ऊपर तक का पता लाती है और वह उसकी सहायक हो जाती है।"

सुग्रीव–"प्रभो! अभी आपने कहा कि इसके काम का मंडलछोटा है और यह विचला है और अब कहते हैं कि यह ऊपर नीचे हर जगह में जा सकता है।"

राम–"हां! लेकिन यह बात उस समय के लिये थी जब तक इसने दोनों वृतियों को अपना साथी नहीं बनाया था और न उस की एकाग्रता थी। एकाग्रता में तीनों मिल जुल कर एक हो रहते हैं और उनको अलग कर दिखाना कठिन हो जाता है।"

सुग्रीव–"इसका उदाहरण?"

राम सोते समय अपनी मूढ वृत्तिको कहो कि ठीक बारह बजे रात को जगा देना और वह जगा देगी। जब इस प्रकार यह वशीभूत होगई तो यह आप चंचल वृत्ति को चेतावनी दे दे कर अज्ञानी वृत्ति के वश में लाने का उपाय बता देगी। पहिले ऐसा साधन

होगा। फिर जब तीनों मिल कर एकाग्र होगये तो रमने वाले राम की सैना पूरी होगई और त्रकुटि (लंका) पर चढ़ाई करने की सूझी। यह बातों का द्रष्टांत था। अब साधन कर्म क्रिया और व्यवहार का द्रष्टांत सुनो :-

हनूमान, बन्दर और मन की एक चंचल वृत्ति है उसने जामवन्त की मूढ़ वृत्ति को साथ लिया। सीता की खोज में निकले, सब व्याकुल हुए। जामवन्त ने हनूमान को चेतावनी दी। "यह काम तुम ही को सौंपा गया है।" हनुमान में उमंग उत्पन्न हुई। समुद्र को लांघा अज्ञान व्रति विभीषण को साथ लिया। अब तीनो एकाग्र हैं और यह मिल जुल कर अपना काम करेंगी।"

सुग्रीव—"अच्छा समझा! अच्छा समझाया। समझाने की विधि अच्छी है। अब यह बताइये कि क्या यह वृतियां एक २ हैं या इनमें अनेकता भी है?"

राम—"मूढ़ वृति एकांगी होती है। वह अपने काम से सम्बन्ध रखती है। अज्ञान वृति रक्षा का काम करती है। इसी से राक्षस कहलाती है। यह भी एकांगी है। अब रहगई चंचल वृति! वह पांच अंग वाली होती है और उनके नाम अहंकार, काम क्रोध और लोभ, मोह हैं।"

सुग्रीव "द्रष्टांत से समझाइये।"

राम—"हँसे"

अपनी बातें पूछते हो रूप अपना जानकर।
मानते मनवाते हो कहलाते भी हो मानकर॥
तुम में जो मद है इसी का नाम हनुमन्त जान लो।
तुम में जो है ध्यान सुग्रीव इसको अब पहचान लो॥
अंक देने वाला अंगिद क्रोध ही का अंग है।
काम का साथी बना और काम के वह संग है॥
लोभ नल है जो इकट्ठा करता है सामग्री।
मोह है यह नील बंधन में पड़ा है हर घड़ी॥

ऐ सुग्रीव! अलंकृत बन्दर रूपी चंचल वृति के यह पाँच अंग हैं।

हनुमान—अहंकार
सुग्रीव—काम
अंगद—क्रोध
नल—लोभ और
नील—मोह

इतना समझा कर राम चुप होगये।

सुग्रीव ने फिर पूछा—"जो कुछ आपने कहा वह सब सच है, लेकिन यहाँ राक्षस दल भी है और रीछ दल भी है। क्या राक्षस और रीछ दल के वीर लड़ाके अज्ञानी और मूढ वृतियों की अनेक वृतियाँ नहीं कहीं जा सकती हैं?"

राम—"कहने को जो चाहो कहो लेकिन यह दोनों एक अंगी ही हैं। सबका अंग मिल मिलाकर एक ही होता है। पाँच अंगी केवल चंचल वृति ही है।"

मुझे देखो मेरी माता सतोगुणी कौशल्या। मैं राम उसका एक पुत्र हूं। मेरी दूसरी सौतेली माता तमोगुणी कैकई। भरत उसके एक ही पुत्र हैं। मेरी तीसरी सोतेली माता रजोगुणी सुमित्रा इसके दो पुत्र लक्ष्मण और शत्रुहन हैं।"

"बन्दर रजोगुणी हैं। उनमें पाँच मुख्य वृतियाँ हैं और भी हो सकती हैं। मुख्यता केवल पाँच को हैं। रीछ तमोगुणी, उसमें केवल एक वृति है। राक्षस सतोगुणी, उसमें भी एक ही वृति है।

काम का सारा भाग चंचल वृति पर है और यही कारण है कि मैंने तुम्हारे साथ मित्रताई का नाता जोड़ा। तुम न मिलते तो न रीछ मेरे साथी होते न राक्षस। जो कुछ हुआ, होगा या हो रहा है, वह सब इसी चंचल वृति (बन्दर) का खेल होगा। और इसकी मुख्यता और उत्तमता है और मुझे तुम बन्दर सब से प्यारे हो।"

सुग्रीव बहुत प्रसन्न हुए और हनुमान के साथ राम के चरणों में गिरे।

धन्य लीला आपकी है धन्य अद्भुत खेल है।
धन्य है यह मित्रता और धन्य ही यह मेल है॥

अब एक प्रश्न और रह गया।

राम—"उसे भी कह डालो।"

सुग्रीव—"हम सब आपके भक्त हैं। अब ऐसी शिक्षा दीजिये कि हम किस तरह आपकी सेवा करें कि हमारी भक्ति जल्द फलदायक हो।"

राम—'वह युक्ति हनुमान के नाम में पहिले ही से है। उन्होंने अपने मान का हनन कर दिया। तुम्हारा मान अपमान मेरे लिये हो। तुम्हारा क्रोध मेरे नाम पर हो। तुम्हारा लोभ और मोह भी मेरे नाम पर मेरे ही लिये हो। यह केवल वृति का उलट फेर है यही भक्ति है और ऐसी भक्ति मुझे प्यारी लगती है।"

दसवाँ समुल्लास

निर्गुण और सगुण ब्रह्म

राम समुद्र के तट पर था तो कुशासन पर बैठते थे या रेती से दूर हरी हरी घास पर आसन आरूढ होकर बात चीत किया करते थे। जो जो लोग लंका से दुखी होकर राम की शरण में आये थे बहुत सुखी थे। न वहां कहीं बस्ती थी न ग्राम और नग्र थे। खाने पीने की सामग्री का भी कहीं ठिकाना नहीं था। नारियल के पेड़ बहुत उगे थे। रीछ, बन्दर और राक्षस इनके फल तोड़ लाते इन्हीं का पानी पीते और इनकी गी खाते रहते थे। यह सब का साधारण आहार था। राम के लिये कन्द मूल आता था। लक्ष्मण उसे आग मे पकाते और राम के सामने ले जाकर रख देते। इस पर भी वह सब के सब बहुत सुखी थे और संसार के संकट क्लेश को भूल गये थे।

सायंकाल विभीषण पाँव दबाने गये। राम प्रसन्न थे। अवसर पाकर पूछा"प्रभो! सगुण और निरगुण ब्रह्म में क्या भेद है?"

राम ने उत्तर दिया—"जो भेद समुद्र और नदी के जल मे है वही निरगुण और सगुण ब्रह्म मे है! जल तो जल ही है, अभेद है। लेकिन नदी का जल मीठा है और समुद्र का जल खारा प्रतीत होता है। इसमें रस नहीं है उसमें रस है। जिसमें रस गुण है वह सगुण है और जिसमें रस का गुण नहीं है वह निरगुण है।"

विभीषण—"भक्ति किसकी की जाय?"

राम—"भक्ति शब्द संस्कृत धातु 'भज' (सेवा) करने से निकला है। साधारण शब्द सेवा स्पर्श, रूप, रस गन्ध की है। वाणी सुनो। अंग को हाथ लगाओ रूप का दर्शन करो, चरणामृत का रस लो, चढ़ाये हुए फूलों को सूँघो। ऐसी भक्ति तुम आप समझ सक्ते हो सगुण की हो सकती है या निरगुण की? निरगुण ब्रह्म सामान्य है, सगुण ब्रह्म विशेष है। ब्रह्म तो दोनों ही हैं लेकिन ब्रह्म न किसी का सहायक है न विरोधी है। भक्ति या सेवा किसी अभिप्राय और मन्तव्य को लेकर की जाती है और जब उसमें विरोध नहीं और न वह सहायता करता है तो उसकी भक्ति कैसे करोगे और क्यों करोगे! भक्ति की सम्भावना तो देह धारी में है और सगुण ब्रह्म देह धारी को कहते हैं। भक्ति तो जब होगी देह धारी की होगी। सामान्य भक्ति असम्भव और विशेष की सम्भव है।"

विभीषण—"निष्काम भक्ति की महिमा सब लोग गाते हैं।"

राम—"निष्काम भक्ति की जड़ में सकाम भक्ति रहती है। तुम लंका में थे। बुरी संगत थी। दुखी थे। न के अच्छा संगत बुरी! तुम लंका से भाग कर मेरे पास आये। इसमें कामना थी या अकामना? तुम आगये। मेरे साथ तुम्हारा प्रेम बढ़ गया। पहिले तुम अपने लिये जीते थे। दुखी थे। अब मेरे लिए जीते हो, सुखी हो। पहिले सकाम भक्ति थी। अब वही निष्काम हो गई। इन दोनों में यह भेद है। सकाम भक्ति पहिले और निष्काम भक्ति पीछे!"

विभीषण—"सामान्य से सहायता क्यों नहीं मिलती! मिलनी चाहिये।"

राम-"जब सामन्य को विशेष बनालोगे तब सहायता सम्भव है। आग सर्व व्यापक है।

पत्थर में है पानी में है वायू में भरी है ॥
लकड़ी में है और नाज के भीतर यह धरी है ॥
चकमाक से प्रगट करो और आग जलाओ।
जो चाहो फिर इस आग में रख के पकाओ ॥
सामान्य है यदि आग विरोधी न किसी की।
जब रूप विशेष उसमें तो फिर युक्तिभी निकली ॥

इसी प्रकार किसी सामान्य रूप की भक्ति नहीं होगी। भक्ति जब होगी किसी विशेष रूप वाले ही की होगी। तुम मेरे भक्त हो। मेने सुख रूप धारण कर रखा है जैसे दीपक प्रकाशवान् होकर अपने प्रकाश का मंडल बनाता है और जो प्राणी उस मंडल में आता है उसे प्रकाश का लाभ प्राप्त होता वैसे ही तुम मेरे मंडल में आकर सुख, ज्ञान, बुद्धि और विवेक का ज्ञान उठा रहे हो। सामान्य ब्रह्म तुम्हारे प्रश्नों का उत्तर कभी न देगा -यत्न कर देखो। सामान्य होने से वह तुम्हारी द्रष्टि मे तो आवेगा नहीं। तुम कैसे उससे पूछोगे और वह कैसे तुम्हे समझावेगा। निरगुण ब्रह्म की भक्ति केवल बात ही बात है और यह उन प्राणियों का कथन मात्र है जिनको कभी भक्ति तक की हवा नही लगी।"

विभीषण-"सगुण उपासना से निर्गुण की उपासना की सम्भावना है या नही।"

राम- 'उपासना कहतेहैं पास बैठने को संस्कृत उप (समीप) और आसन बैठक। तुम देह धारी के पास बैठते हो या अदेह के? अदेह की उपासना असम्भव है। उपासना जब होगी देहधारी ही की होगी। पानी सामने भरा पड़ा है उसे पीओ। कुआ खोदने का श्रम क्यों उठाया जाय। तुम्हारे प्रश्न के एक अंग का तो यह उत्तर हुआ।

दूसरे अंग का उत्तर यह है कि जब सगुण ब्रह्म की उपासना करली गई, तो स्थूल भक्ति, शब्द स्पर्श, रूप, रस गध की, चली जाती है। तब चित्त, मन, बुद्धि और अहँकार मे भक्ति का रूप बदलने लगता है और विवेक शक्ति जाग उठती है। उसके जागने से अनुभव बढ़ता है और साधक अनुभव में लीन हो रहता है।

साधन के बिना अनुभव नही उभरता। अनुभव के बिना ज्ञान नही होता। ज्ञान के बिना रूप की समझ नही आती जब तक रूप का परिचय नहीं तब तक मुक्ति नहीं होती।

उपासना सगुण की की जाती है। इसलिये सब को त्याग कर तुम केवल मेरी भक्ति में लगो। मैं ही तुम्हारा कार्य, धर्म, जप, तप और ज्ञान वैराग्य हूं, और जो कुछ होगा वह इसी से होगा।"

विभीषण की शंकाओं की निवृति होगई। वह चरणों में गिरा। राम उसी घास के आसन पर सो गये। लक्ष्मण पहरा देने लगे और विभीषण अपने स्थान पर चले गये।

ग्यारहवां समुल्लास

रावण के दूत

रावण ने गुप्त दूतों का ऐसा प्रबन्ध किया कि उसे पल क्षण का समाचार मिलने लगा। जब रामचन्द्र समुद्र के तट पर आकर ठहरे यह भी उनकी सैना के कोतुक देखने के लिये आने जाने लगे। अब राक्षस दल बहुत हो गया था। और सब के रहने की जगह अलग २ थी।

विभीषण के जाने के पीछे जो दूत रावण के पास समाचार पहुंचाने गये, रावण ने उनसे पूछा "ठीक २ बताओ तपस्विओं की क्या दशा है। भय न करो।"

दूतों ने कहा-"न जाने कहाँ से इतने बन्दर और रीछ राम के पास आये हैं। बनों में कहीं इतने नही देखे जाते और इनके डील डौल इतने भारी हैं कि हमने पहले कभी नहीं देखे थे। सैना

क्या है, टिड्डी दल है। बन्दर महा उत्पाती हैं। सुग्रीव और लक्ष्मण का प्रबन्ध न होता तो हमारे लिये जान बचाकर आना कठिन था। राम बड़े दयालु और कृपालु हैं, शरण में आता है उसे अभय कर देते हैं। और वह निहाल हो जाता है।"

रावण ने पूछा–"क्या बन्दर राक्षसों से बलवान हैं ?"

दूतों ने उत्तर दिया–"राक्षस उनको जीत न सकेंगे! आप की प्रजा उनकी सैना से आधी भी नही है।यह लंका में आकर समायेंगे कहाँ! जिस बन्दर ने लंका को भस्म कर दिया वह सब मे छोटा है। अंगद, सुग्रीव, नल, नील और जामवन्तादि पहाड़ के समान भारी और गम्भीर है। इन सब में हथियारों से भी अधिक बल है। कहने वाले कहते थे कि अठारह पद्म बन्दर इकठे किये गये हैं। हम सब लोग फंस गये थे बन्दर नहीं आने देते थे।इतने में लक्ष्मण आगये, हमको असमर्थ देख कर छुड़वा दिया। आपके नाम एक पत्र भी दिया है।"

रावण ने पत्र मांगा। दूतो ने उसे दिया। लिखा हुआ था :–"राम का सामना संसार में कोई नहीं कर सकता। युद्ध के लिये तत्पर हो जा केवल शरण में आने से तू बच सकता है!'

शुकनाथ रावण का दरबारी था। यह स्याना और स्वभाव का अच्छा था। अगस्त्य ऋषि के श्राप से राक्षस होगया था, कहने लगा। "सीता देदो। मैत्री करलो। इसमें भलाई है।"

रावण ने कहा—"तपस्वी बालक के अहंकार की बातों मे आगया तेरा जी चाहे तो तू भी राम के पास चला जा, यहां क्यों पड़ा है।"

वह उठा नमस्कार करके लंका से चला आया। राम का अनुगामी हो गया।

रावण दूतो की बातों पर विचार करके मेघनाथ को आज्ञा दी सेना इकट्ठी रहे। कोई भय नहीं है। इन बन्दरो को राक्षस दिनो मे खा जायेंगे।"

महारामायणम्

पांचवां खण्ड समाप्त

सेतबन्द रामेश्वर मन्दिर
पुल
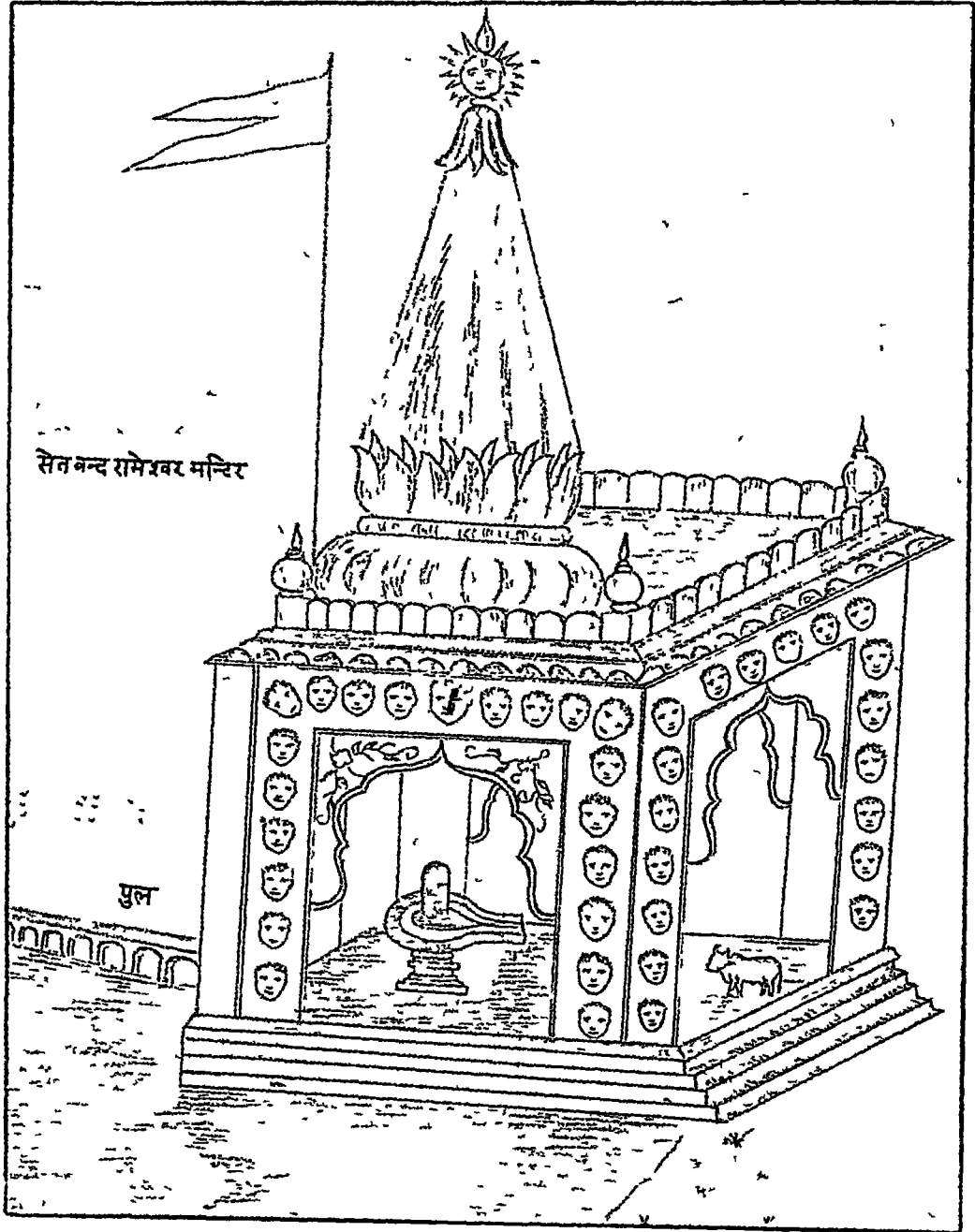
महारामायण

छटा सिद्धि खण्ड

(लंका या युद्ध काण्ड)

———:o:———

प्रथम भाग

पहिला समुल्लास

मार्ग और सुमार्ग

व्यवहार हो या परमार्थ, योग हो या ज्ञान, भक्ति हो या सिद्धि, सबके सब नियमबद्ध हैं। जब तक नियम के बन्धन की सहायता नहीं ली जाती, तब तक न मुक्ति मिलती है, और न उसका आनन्द आता है।

पतंग उड़ती है डोरी के सहारे! डोरी काट दो और उड़ना बन्द!

मुक्ति उसके लिये है जिसको बन्धन है और बन्धन से दुखी है। जिसे बन्धन नहीं है उसके लिये मुक्ति का शब्द निरर्थक है। योग की युक्ति चंचल वृति वालों के लिये है। जिसका मन निश्चल है, उसे योग क्यों सिखाया जाये और क्या लाभ होगा! सिद्धि का आदर्श अपूर्ण अँग वालों के लिये है। जो सम्पूर्ण है और जिसमें कोई त्रुटि नही है, वह सिद्धि लेकर क्या करेगा! उसकी पूर्णता आप सिद्धि है और सिद्धि से बढ़कर है! भक्ति वह करे जिसके मन के ठहरने का कोई आधार नहीं है, और जो निराधार बनने से घबरा रहा है। जो अपना आधार आप होगया है, उसे भक्ति की आवश्यकता कब है?

संसार के सारे पदार्थ अधिकारी के प्रति हैं। अधिकारी हो तो उन्हें प्राप्त करले। जिसे अधिकार ही नहीं है और जिसमें अधिकार का लेशमात्र संस्कार न दिखाई दे, वह पद और पदार्थ की ओर कब जाने लगा! और उसे उसका लालच क्यों दिया जाय!

रामायण इस विषय को बहुत विस्तार के साथ समझाती है। राम की समझ है तब तो रामा रामायण है, जब राम-शब्द, राम-तत्व, राम-गुण को समझ बूझ नहीं है, तो उसके लिये यह रामायण केवल कथायन है। इससे अधिक उसकी महिमा नहीं है और न हो सकती है।

यह संसार रमने का रमना (रमस्थल) है। जो इसमे रमण करने का अधिकारी, संस्कारी और इच्छुक है, वह रामायण को हाथ में ले, राम की भक्ति करे, राम चरित्र को समझे बूझे और अपना जीवन उसी प्रकार का बनाये। जिसन 'रम' धातु का अर्थ तक नही समझा, वह क्यों अपना समय गँवाये।

राम एक दशरथ घर आये।
दूजे राम बन खंड सिधाये ॥
तीजे राम जप तप बहु किया।
साधन योग मुक्ति चित दिया ॥
चौथे राम मन अपना सुधारा।
पंचम राम रावण को मारा ॥
छटे राम सीता घर लाये।
उजड़ी बस्ती आन बसाये ॥
सप्तम राम गुप्त हुये घट में।
जाय छुपे त्रिकुटी तिल पट में ॥
राम सात विधि रमण सिखावें।
अपने भक्त को आप चितावें ॥
एक अनेक राम की महिमा।
राम ही महिमा, लघिमा, गरिमा ॥

ये सात रामायण की भूमिकायें हैं। एक राम के अनेक अर्थ हैं। राम ही एक हैं और राम ही अनेक हैं। राम एक और अनेक होते हुए इस जगत में रम रहे हैं और अपने भक्तों की दृष्टि के रमता राम हो रहे हैं।

नाना भाँति राम अवतारा।
रामायण शत कोटि अपारा ॥

राम क्या अब नहीं हैं? वह अजर अमर अविनाशी हैं। इनके देखने दिखाने की दृष्टि चाहिये—

रमने वाले जग के रमता राम हैं।
राम अद्भुत रूप शोभा धाम हैं ॥
राम सन्तों के लिये विश्राम हैं।
काल और महाकाल आठों जाम हैं ॥
राम ही फूलों की क्यारी में खिले।
राम पत्तों २ में रमते मिले ॥
राम जड़ हैं राम पौधे राम फल।
राम जल, पावक, गगन, और राम थल ॥
राम मुझ में रहके करते हैं निवास।
राम घट २ में बसे हैं सांस साँस ॥
रम रहे हैं राम सीता को लिये।
राम मिलते रहते हैं चित को दिये ॥

तन को मन को चित को जो देता नहीं।
राम का सुख वह कभी लेता नहीं ॥
राम नर हैं राम नारायण बने।
राम ही राम रामायण बने ॥

इस रामायण की सात भूमिकाये राम की प्राप्ति के मार्ग कहलाती हैं। गुरु मिले, सत संग हो, चित्रकूट मन के चित्रों का विचार हो, एकान्त में वनवास हो, मन वस में आये, लंका पर चढ़ कर रज रावण को मार गिराये, फिर शान्ति और निर-भ्रान्ति के साथ जैसा चाहे रमता फिरे।

जल में रह कर [illegible] में खिलता है कमल।
वह नहीं जल में नहीं रहता वह थल ॥
हो गया तुम देख लो सूरज मुखी।
देखकर सूरज को होता है सुखी ॥
राम को कहते हैं रघुकुल का तिलक।
राम की सूरत में रहती है झलक ॥
राम की ज्योति में ज्योतिर्ज्ञानि है।
जायगा वह जिसको उनका ध्यान है ॥

मार्ग कई हैं। मीन मार्ग, मकतीर मार्ग, विहंग मार्ग, कपि मार्ग, राक्षस मार्ग, सेत मार्ग।

मीन मार्ग बहुत सूक्ष्म है। मकतीर मार्ग का प्रबन्ध सुगम नहीं है। विहंग। (पक्षी) मार्ग मे जटायु और सम्पाती के दो दृष्टान्त मिलते हैं। गुरू न मिलने से दोनों को सिद्धि की प्राप्ति नहीं हुई और तत् सवितुर्वरेण्यम्' (सूरज) हाथ नहीं आया। कपि मार्ग मे केवल हनुमान का एक ही उदाहरण है। दो नहीं है। जो मान का पूरा २ हनन करले, वह इस मार्ग में चले। दूसरे का पराक्रम नहीं है।

कंचन तजना सुगम है, सुगम त्रिया का नेह।
मान, बड़ाई, ईर्षा, दुर्लभ त्याग है येह ॥१॥
सबको तजा तो क्या हुआ, मान तजा नहिं जाय।
मान बड़े मुनि पड़ गले, मान सबन को खाय ।२।
मान, अपमान, समान हो, अपना नहिं [illegible]
ऐसे नर निःमान [illegible]

गुरु के सम्मुख आय कर, जो चाहे सन्मान।
तिन को जम न्यौता दिया, हो हमरे महिमान ॥४॥
हनुमान होना कठिन, मान हना नहिं जाय।
बिना मान के हनन के, मार्ग कोई न आय ॥५॥

देख लिया गया सब कठिन मार्ग हैं। सुगमता किसी में नहीं है। यह सोच समझ कर महा प्रभू राम ने सेतु का प्रबन्ध किया। सेतु के सहारे कीड़े मकोड़े चिंउटी चींटे सब समुद्र के पार सहज रीति से जा सकते हैं और भवसागर में डूबने से बच जाते हैं। इस मार्ग का नाम पपील मार्ग है। इसे पिपीलिका मार्ग भी कहते हैं।

जहां बुद्धि की गम नहीं, जहां न मन ठहराय।
सेत मार्ग से पिपीलिका, सुगम सुरत बन जाय ॥१॥
धीरे २ हे मना, धीरे सब कुछ होय।
धीरज धरे तो पार हो, नहिं डूबे सब कोय ॥२॥

यह मार्ग क्या है? सूक्ष्मता या सुषुम्ना मार्ग है और यह सेत मार्ग भी कहलाता है।

इधर सुग्रीव और लक्ष्मण राम की सेना को संवार के सिंगारते हैं। बन्दर, रीछ और राक्षसों के शब्द से समुद्र का तट गूँज रहा है और यह समुद्र की उठती हुई लहरों की ध्वनि को भी अपने किलकारियों के शब्द के भँवर में डुबा रहे हैं। दसों दिशाओं में मंगल ही मंगल हैं। यह जंगल में मंगल नहीं है। समुद्र के तट का मंगल है।

मँगलम् रामाय मूरति, मँगलम् रवि कुल ध्वजम्।
मँगलम् पुण्डरी काक्षी, मँगला ये रतनो रमा ॥
जहां राम रहते हैं, मँगल वहीं हैं।
सुख आनन्द का पूरा दंगल वहीं है ॥
किसी को न चिन्ता न दुविधा किसी में।
किसी को न दुख और न विपता किसी में ॥

और इधर हनूमान, अंगद, नल, नील सेतु बनाने मे उद्यत हैं। राम कहते हैं जल्दी करो और जल्दी हो रही है।

दूसरा समुल्लास

सेत बन्धु रामेश्वर

पहाड़ के पहाड़ उठे हुये चले आ रहे हैं। बन्दरों का टिड्डी दल, अन गणित संख्या में बड़े २ चट्टान ला रहे हैं। नल और नील के कारीगर उन्हें गढ़ते हैं, और ये दोनों इन्जीनियर इनको समुद्र पर तैरा रहे हैं। उस समय का दृश्य देखने योग्य रहा है। समुद्र पर पुल बाँधना महा कठिन काम है। जब से सृष्टि हुई उस समय से लेकर आज तक किसने समुद्र पर पुल बाँधा है! किसी ने भी नहीं! युग युगान्तर बीत गये। अनेक सभ्यताओं का दौर हुआ। वह आई। अपना चमत्कार दिखा गई। चार दिन की चाँदनी, फेर अंधेरा पाख, बन गई। और ऐसा पुल आज तक राम के अतिरिक्त किसने बाँधा, बँधाया? किसी ने भी नहीं।

राम का काम राम का है काम।
राम के काम में है राम का नाम ॥
राम के नाम काम की है गति।
वह सद्गति वही है शुद्ध मति ॥
राम रम रम के काम करते है।
रमने का काम राम करते हैं ॥
रमता जोगी ही राम को जाने।
राम को जाने जान कर माने ॥
राम रमते जो मन में आयेंगे।
घट का वह सेत घट दिखायेंगे ॥

पुल बनगया। विचित्र और दृढ़ था। देखने में बहुत सुन्दर था। राम ने देखा प्रसन्न हो गये-"इस

पुल के बनाने में देवताओं ने काम किया है। यह लॅङ्का की चढ़ाई का स्मारक (चिन्ह) रहेगा और लोगों को सेत (पिपीलिका) मार्ग की सुगमता की चेतावनी देता रहेगा। लेकिन एक न्यूनता है। मैं यहाँ एक शिव (कल्याण) का मन्दिर क्यों न बनादूं। वह स्मरणार्थ रहेगा और सेत के साथ २, मार्ग का स्मरण कराता रहेगा।"

हनूमान बोले—"इसमे बढ़ कर और क्या है।" राम ने कहा–'फिर इस का भी प्रबन्ध जल्द करो! मैं लिंग (स्मारक चिन्ह) स्थापन करके यहाँ उसकी प्रतिष्ठा करूँ। पर्वतों के ऋषियों, मुनियों, योगी, तपस्वियों को बुला भेजो। मुख्य २ देवताओं का आवाहन हो। सब आजायें। यज्ञ करें, वेद वाणी का पाठ हो, और सब को फल, फूल, जल, पत्ता, और कन्दमूल का प्रीति-भोज दिया जाय। सब मिल कर आशीर्वाद दें। मैं लँका पर चढाई ले जा रहा हूं। उसमे सिद्धि (क्रिया-करता) हो।"

बात मुँह से निकली और उसका प्रबन्ध हो गया। सामिग्री पास थी, नल नील काम करने वाले थे।

पल मारने की हुई जो देरी।
मन्दिर बना नाम गति है तेरी॥
ऊँचे पर्वत के रूप का था।
फाटक एक सामने खड़ा था॥

मन्दिर भी बन गया और राम ने एक अर्घ बनवा कर उसमें उस लिङ्ग को खड़ा करके, उस जगह बहुत उत्सव मनाया। तपस्वी थे। उनके पास देने को धन कहाँ होगा! हाँ! सुग्रीव आदि राजाओं या समुद्र के राजा ने इस का प्रबन्ध किया हो तो मैं नहीं जानता। सुख का धन महा धन है। राम ने वहाँ उस सुख के धन की वर्षा की और जितने चराचर जीव थे, सब यों ही ऐसे सुखी हो गये जैसे निर्धन को धन मिल गया।

जब यह उत्सव समाप्त होने पर आया, राम ने सब के सामने जो वचन कहे थे वह सुनने समझने योग्य हैं। तुम्हारा जी चाहे तुम भी मुझ से सुनकर कण्ठाग्र कर लो। न चाहो तो न करो—

राम बोले—"मित्रो! शिव नाम है कल्याण का। हम सब अपना कल्याण चाहते हैं। जो निज कल्याण का विरोधी है वह मेरा भी विरोधी है। क्योंकि मैं आप कल्याण का रूप हूं और शिवस्वरूप हूँ। जो काम करो कल्याणार्थ करो। कल्याण तुम्हारा आदर्श रहे। कल्याण का आदर्श जब तक दृष्टि के सामने न हो तब तक कोई कर्तव्य नहीं करना चाहिए और उसके करने से लाभ क्या है!

तुमने मैंने और सारे जीव जन्तुओं ने कल्याण ही के निमित्त शरीर धारण कर रक्खा है। यह सेतु क्यों बनाया गया? कल्याण के निमित्त! मैं लंका पर चढ़ाई क्यों कर रहा हूं? इसका मूल कारण कल्याण ही की इच्छा है।

इसी कल्याण को शिव कहते हैं और यह विश्वेश्वर है। जिसका स्मार्क लिङ्ग मैंने काशी से मंगा कर यहाँ स्थापन किया है, इसे देखकर सब में शिव की भक्ति आयेगी और सब अपना कल्याण चाहने लगेंगे।

इस कल्याण या शिवके दो अङ्ग होते हैं। एक का नाम लिंग, और दूसरे का नाम भग। लिंग कहते है चिन्ह को, निशान को। संस्कृत 'लृगि' (चलना)। यह धार है चाहे वह पुल्लिंग हो चाहे स्त्रीलिंग। जीवन की धार सब में है। भग शब्द संस्कृत धातु 'भज' (सेवा) से निकला है। जो सेवा करे वह भग है। इनमें से एक धार बनता है और दूसरा उसके रहने का आधार होता है। यह सारा जग लिंग और भग के आकारों का बना हुआ है। लिंग ज्योति है और भग अँधेरा है। ज्योति अंधेरे ही के बीच में रहती है। तुमको नेत्र मिले हैं तो तुम देखो कि तुम मे हर एक का शरीर छोटी २ कोठरियो से बना हुआ है। चोटी से लेकर एड़ी तक अनगणित कोठरियाँ हैं। वह नील, पद्म और संख की संख्या से भी अधिक हैं और इनमें से हर एक में जीवन धार लिंगाकार होकर आती और बसती हैं और यही प्रबन्ध जीव जन्तु, वृक्ष आदि सारे देह धारियों

में है। इसी दृष्टि से तुम्हारा शरीर भगाकार बना हुआ है। और उसमें आत्म शक्ति लिंगाकार होकर बसती और निवास करती है। इन दोनों की रक्षा कल्याण है।

यों तो सारा शरीर कोठरियों और लिंगों से भरा हुआ है, इनमें बारह मुख्य समझे जते है और योगी उन्हें द्वादश चक्र कहते हैं।

यह सब बारहों चक्र इस शरीर के शुषुम्ना नाड़ी में मेरुदंड हड्डी के सहारे पिरोये हुये हैं। यही चक्र भगाकार हैं। और इनमें जो चेतन्य ज्योति धार रूप में आती जाती रहती है वह लिंगाकार है। चक्र भिन्दी है और लिंग नादी (शब्द करने वाला) है। इस उपेक्षता से शिव या कल्याण के १२ रूप हैं। और वह द्वादश जोत्रि लिंग कहलाते हैं। जो लोग इनकी सेवा में रहते हैं वह कल्याण को प्राप्त होते हैं। यह मंदिर उसी कल्याण शिव का स्मार्क, स्मर्णार्थ इस जगह स्थापित रहेगा!"

—:o:—

तीसरा समुल्लास

द्वादश चक्र निरूपण

"ऐ लोगो! शिव में कल्याण है। और इस हमारे स्थूल शरीर में शान्ति और निभ्रान्ति शिव ग्रंथी ही स्थान है। यह इसकी चोटी है। यह शिव ग्रंथी क्या है? इसकी समझ खट चक्र निरूपण से कुछ कुछ आयेगी इसलिये मैं बहुत संक्षेप के साथ तुमको समझाने का प्रयत्न करता हूँ।

मनुष्यों और दूसरे जीव जन्तुओं के मी तीन शरीर होते हैं स्थूल, सूक्ष्म. और कारण।

स्थूल यह देह है जिसे तुम देखते हो और जिस में दस बहिर्मुखी इन्द्रियाँ हैं, पाँच कर्म की और पाँच ज्ञान की।

सूक्ष्म शरीर तुम्हारा मन है जिस में चार अन्तः करण, चित्त, मन बुद्धि और अहंकार अंतर्मुखी इन्द्रियां हैं।

कारण शरीर तुम्हारे दोनों देहों का बीज रूप लय स्थल है और यह दोनों देह समय २ पर उस से उत्पन्न होते और उसी में लय होते हैं।

इस स्थूल देह में खट चक्र हैं। उन के नाम और स्थान यह है:—

चक्रों के नाम	स्थान	तत्व	ग्रंथी
(१) मूलाधार	गुदा	मिट्टी	ब्रह्मग्रंथी
(२) स्वाधिष्ठानम्	इन्द्री	पानी	
(३) मनीपूरम्	नाभि	आग	विष्णु ग्रंथी
(४) अनाहत	हृदय	वायु	
(५) विशुद्धो	कंठ	आकाश	शिव ग्रंथी
(६) आजना	भ्रूमध्य तीसरा तिल	आत्मा	

यह स्थूल देह के खट चक्र हैं, स्थूल देह में इन के स्थान तुम जान गये। इस चित्र में इस को निरूपण देखो:— जैसे पिंड, (स्थूल देह) में यह तीन ग्रंथी हैं वैसे ही सूक्ष्म और कारण देह में भी तीन ही तीन ग्रंथी हैं। यह नौ हैं। हर ग्रंथी में दो २ चक्र हैं। षट चक्र स्थूल देह, सूक्ष्म देह और कारण देह में हैं। इस दृष्टि से वह १८ हो जाती हैं। विचार ग्रंथियों ही का किया जाता है।

(१) आजना चक्र

(२) विशुद्धी चक्र

(३) अनाहत चक्र

(४) मनीपूर चक्र

(५) स्वाधिष्ठान चक्र

(६) मूलाधार चक्र
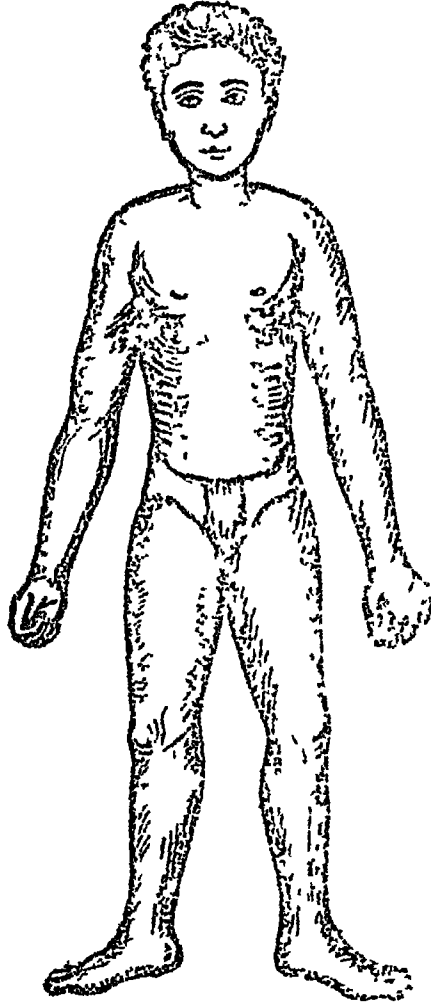
इस स्थूल देह में शिव ग्रंथी चोटी पर है जो विशुद्धी से चल कर आजना चक्र (भूमध्य) तक है। इसी आजना चक्र से शुषम्ना नाड़ी की चाल का मस्तिष्क मे पता लगता है। और शुषम्ना मार्ग कारास्ता यहां से निकलता है।

तीन चक्र मस्तिष्क में हैं:—(१) सहस्रार (२) त्रिकुटी या त्रिकूट और (३) शून्य भीशूक्ष्म देह में है

और इसी प्रकार तीन शेष चक्र (१) महा शून्य (२) भंवर गुफा और (३) सत्य लोक मस्तिष्क के मध्य से चल कर खोपड़ी के मध्य भाग में स्थान पाते हैं। यह कारण देह के चक्र हैं।

यह द्वादश चक्रों का विधान है।

राम ने इतना समझा कर अपनी सेनाको बताया कि किस अभिप्राय से सेतवन्ध रामेश्वर शिव की समुद्र के तट पर स्मर्णार्थ स्थापना की गई है।

यह योग का विषय था। किसी की समझ मे आया किसी की समझ में न आया। लेकिन प्रसन्न और सुखी सब हुए। और उत्सव के पश्चात जो अतिथि जन यज्ञ में आये हुए थे। राम को नमस्कार कर के अपने २ निवास स्थान को चले गए।

चौथा समुल्लास

सेत के पार - लंका में प्रवेश

मंदिर के समस्त उत्सव के पश्चात् राम की सेना पुल पर आई। "रामचन्द्र की जै २ की ध्वनि पुल, समुद्र और आकाश मंडल में गूंज उठे। पुल लम्बा चौड़ा, लम्बा तो कम से कम २६ या २७ या अधिक मीलों का रहा होगा। चौड़ा इतना था कि एकदर्जन मनुष्य सुगमता से साथ २ चल सकते थे। राम की सेना चतुरंग नहीं थी। सब की सब पैदल थी। घोड़े हाथी ऊंट कहाँ इकट्ठा किये जा सकते थे। यह बन्दर अपने डील डौल की उपेक्षता से पुल पर चलते समय सिंह और हाथी प्रतीत होते थे। आगे रीछ, बीच में बन्दर और इन के पीछे राक्षस थे। राम लक्ष्मण सवारी पर थे। और सवारी भी कैसी विचित्र! किसी ने कभी देखा न सुना। वह हनूमान का कंधा थी। एक तरफ राम बैठे थे। दूसरी तरफ लक्ष्मण थे। दोनों के धनुष वाण थे। और यह सब के बीचों बीच में थे।

समुद्र के जीवों ने इन के देखने के लिए पानी के अन्दर से अपना सिर ऊंचा किया। इन में से किसी २ का डील डौल इतना लम्बा चौड़ा था। कि वह पानी पर तैरते हुए लम्बे चौड़े जहाज प्रतीत होते थे। इन सब ने राम और राम की सेना को देखा और राम और राम की सेना ने उन को देखा दोनों आश्चर्य निमग्न हो गये। अब तक ऐसा परस्पर दृश्य आंखों के सामने न आया होगा। राम की अपार दृष्टि इन पर पड़ी। उस का क्या परिणाम हुआ होगा। केवल साधू और भक्त जन समझ सकते हैं। यह ऐसी बात है जो सर्व साधारण की समझ से बाहर है।

दृष्टि में सृष्टी है सृष्टी दृष्टि का परमान है।
साथ में दृष्टि के मन है मन में राम अनुमान है॥
दृष्टी की बिजली चमक उठती है दृष्टि में जो आ।
फिर यह बिजली अनुभव और सतज्ञान राम की खान है।
राम के दर्शन में है गुन लाभदायक गुन है यह।
गुन सगुन निर्गुन का यह दर्शन महा स्थान है॥
चित की वृति पाके दर्शन कुछ की कुछ बन जाती है।
और इसी वृति के द्वारा प्राणी का कल्याण है॥
जब पड़ी आदित्य की दृष्टि किसी परवत पर आ।
नीलम और पुखराज हीरों की तब खान है॥

हंसते, खेलते, उछलते कूदते हुये सेना चली। पुल के नीचे समुद्र अपनी लहरों की आँखों को उठा २ कर राम के रूप का दर्शन करता था। पुल इतना ऊँचा था कि लहरें सेनाको भगा नहीं सकीथी उन्हें राम का चरणोदक इस समय प्राप्त नहीं हुआ। वह तरसती ही रह गईं। हाँ! वह नीचे २ लहराता रहा और पुल के ऊपर राम की सैना दूसरा समुद्र बन कर लहराती हुई जा रही थी। नीचे समुद्र ऊपर समुद्र! नीचे निर्गुण ऊपर सगुण! इस दृश्य ने विचित्र रूप से निर्गुण और सगुण का चित्र खींच कर दिखा दिया।

है सगुण में गुण तो निर्गुण बन रहा है निर्गुणी।
ध्यान करते हैं सगुण का सब ऋषी ध्यानी मुनी॥
क्या है निर्गुण में धरा। गुण की सगुण में खान है।
है सगुण में भक्ती सेवा, ज्ञान और अनुमान है॥
ज्ञान निर्गुण में कहाँ, मन बाणी गा सकते नहीं।
बात क्या करते हो उसकी, सम्भवत् यह है कहीं!
ब्रह्म की किसको समझ है, सोचो अपने मनमें तुम।
राम की भक्ती करो, मन बुद्धि चित और तन में तुम॥
पहले संगत गुरू की हो, पीछे सत का ज्ञान हो।
ज्ञान और भक्ति मिले, तब जीव का कल्याण हो॥

बीच में ठहरने का कहीं ठिकाना नहीं था। नल नील ने ऐसा प्रबन्ध नहीं किया था। वह चले औ सुग्रीव ने उन्हे ललकारा।

हाँ शूरवीरो ! पग को बढ़ाये चले चलो ।
झिझको न ठिठको डग को बढ़ाये चले चलो ॥
हैं राम साथ में नहींभय न चिन्ता है ।
मन राम के चरणों में लगाये चले चलो ॥
जीतोगे अपने शत्रु को संदेह कुछ नहीं ।
लंका की ओर दृष्टि जमाये चले चलो ॥
क्या रूप है अनूप, स्पर्श पाके तर गये ।
यह रूह अपने चित में बसाये चले चलो ॥
थोड़ी ही देर पीछे पहुंच जाओगे अभी ।
रम करते और रमते रमाते चले चलो ॥

बंदरों का स्वभाव चंचल होता है । गरजे, तड़पे, उछले, कूदे और पुल पर से दोनों तरफ समुद्र की लहरों का तमाशा देखते हुए चल निकले। घंटों ही में पुल के पार पहुंच गये। लंका की भूमि में प्रवेश किया ।

जामवन्त और अंगद सुभीते की जगह खोजने लगे । एक रमणीक हरा भरा मैदान देखा। पृथ्वी चौरस थी। पास ही नदी बह रही थी । लम्बे चौड़े और ऊँचे घने वृक्ष भी बहुतायत से थे । राम और लक्ष्मण के लिये दो सुथरे झोंपड़े बनाये । बन्दरों ने वृक्षों की डालियों का बसेरा स्वीकार किया शीघ्र खोखलों में ठहरे और राक्षसों ने घास फूस की कुटिया लगा ली । सब इसी जगह ठहरे ।

राम ने आज्ञा दी– "अभय होकर बन के फल खाओ ।" यह बन में घुसे । राक्षसों का देश ! उन्हीं का सब जगह चौकी पहिरा ! बन्दर पिल पड़े । जो मिला उसकी दुर्गति की। नोचा खसोटा, मारा पीटा । जो उनके पास मिला, लूटा छीना । इनमें भगदड़ पड़ गई । सब सुन चुके थे कि एक बन्दर ने लंका को जलाकर मिट्टी में मिला दिया । पहिले ही से डरे सहमे थे । और जब इनकी भीड़ देखी, सामना कौन करता ! अपनी जान बचा २ कर भाग निकले और वह स्थान राक्षसों से खाली होगया ।

खाया, पीया । थके मांदे थे, जगह २ आग जलाई । चौकी पहिरे का काम संतरियों को सौंप कर सोरहे । थोड़े से बंदर आदि उस टीले पर राम लक्ष्मण के साथ ठहरे, जहाँ इनका झोंपड़ा था ।

पाचवाँ समुल्लास

गपशप

कुटी के बाहर घास फूंस बिछाकर राम लेट गये और हनूमान पांव दबाने लगे। शरद ऋतु का चन्द्रमा खिला हुआ था । दृष्टि आकाश पर थी।

राम ने पूछा–"यह जो चाँद के बीच में सांवला रंग दिखाई दे रहा है क्या है ?"

अंगद ने कहा–"यह पहाड़ों की झांई और परछांई है। चन्द्रलोक मे भी बस्ती है ।"

सुग्रीव–"नहीं २ यह आपकी सांवली मूर्ति का प्रतिबिम्ब है ।"

लक्ष्मण–"आप अपने सांवले रंग से इसमें व्यापक हो रहे हैं ।"

हनुमान–"यह चांद आपका भक्त है । आपके ध्यान में रहता है । यह सांवली मूर्ति के ध्यान का प्रभाव है जो दिखाई देरहा है ।"

राम मुस्कराये । जैसा जिसका विचार, उसका वैसा व्योहार ! भक्तों को अपने भगवंत के अतिरिक्त कुछ दिखाई नही देता । वह सब में अपने इष्ट को व्यापक समझते हैं । यह क्यों नहीं कहते कि चांद सीता के रूप को देखकर लज्जित हो रहा है । यह काले धब्बे हैं जो लज्जा के प्रभाव से इसमें दिखाई दे रहे हैं ।

यह सब चुप रह गये ।

राम ने कहा-"वह देखो, सामने एक ऊंचा टीला है, जो जग मगा रहा है और वहां से बादल की गर्जे की सी ध्वनि सुनाई दे रही है। और इसके मध्य में कोई बड़ी सी वस्तु चमक रही है। साथ ही एक बड़े प्रकाश का पदार्थ जगमगा रहा है जिसकी उपमा नहीं दी जा सकती।" और तो किसी ने उत्तर नहीं दिया। विभीषण बोले-"यह ऊंचा जिसे आप देख रहे हैं त्रिकूट पर्वत है। और जिस जगह जगमग २ प्रकाश हो रहा है उस पहाड़ की चोटो है। इस पहाड़ पर रावण ने बारह दरी बनवा रक्खी है जिसमें बारह दर हैं। वे सबके सब चारों तरफ से खुले हैं। वह बहुत लम्बी चौड़ी है और राक्षसों की बहुत बड़ी संख्या उसमें बैठ सकती है। कभी २ वहां दरबार भी लगा करता है। पूरब के दर से लगा हुआ सिंहासन बिछा है। और इस सिंहासन पर हीरों से जड़ी हुई छत्तरी खड़ी है। जो वस्तु बहुत चमक दमक दिखा रही है वहरा वण का मणि जटित मुकुट है। इसमे बहुमूल्य चमकदार रत्न लगे हैं। और जो छोटे आकार की रह रह कर ज्योति दमकती है वह मंदोदरी रानी का जुगनू (गहना) है। इस समय रावण सभा मे बैठा हुआ नाच रग देख रहा है। गाना बजाना हो रहा है। बादलों के गर्जने की ध्वनि 'ओ३म् २' करते हुये जो आप सुन रहे हैं वह पखावज के थाप की गूंज है।"

राम यह सुनकर मुस्कराये। धनुष से बाण को जोड़ा और उसे छोड़ दिया। बाण रावण के मस्तिष्क पर लगा। मुकट टुकड़े २ होकर सिंहासन के पीछे गिरा। और जो जगमगाहट दृष्टि में आरही थी वह देखते २ गुप्त होगई। और बाण लौट कर फिर राम के तर्कश में आ समाया। यहां बंदर राक्षस और रीछ देखकर चकित होगये और वहां रावण की सभा में अशान्ति फैल गई।

रावण ने उसी समय सुना था कि लंका में राम ने प्रवेश किया। इसे सोच हुआ। मन बहलाने के निमित्त नाच रंग करा रहा था था। सनसनाते और भिन भिनाते हुये राम बाण को सबने रावण मुकट पर लगने, मुकट के तोड़ने और उसके को देखा। वह अपने तेज मे चमक रहा था। उसे टूटते हुये भी देखा लेकिन यह किसी भी न सूझी कि उसे पकड़ ले। राक्षस कहने -"यह बड़ा कुसुगुन हुआ। अभी राम आये अभी रावण का मुकुट अक्समात् टूट फूट नीचे गिर पड़ा। यह बाण किसका था? कि चलाया? यह अवश्य काल का बाण था।"

वहाँ नाना प्रकार की गप शप होने लगीं।

यहाँ भी राम सेना ने विचित्र बाण विद्या चमत्कार देख कर आश्चर्य माना। अंगद लड़का था। इससे न रहा गया। पूछा-" यह कैसा बाण है?"

राम ने कहा- "इसे मन बाण कहते हैं। बा विद्या नाना प्रकार की है। परसराम, विश्वामि और अगस्त आदि ऋषी इसमें महा प्रवीण सम जाते हैं। मन सर, चित-सर, ब्रह्मसर, वरुण स शक्ति सर, इन्द्र सर इत्यादि कई प्रकार के बा चलते हैं। जो इनकी विधि को जानता है वह चला सक्ता है।"

अगद ने कहा-"इसकी विशेषता क्या है?"

राम बोले-"इसमें दुधारे का बल होता है। दो विधि होता है। संकल्प विकल्प दोनों इ रहते हैं। आर्कषण शक्ती मानसिक बल लिये हु बढ़ी रहती है। लड़के चर्खी का खेल खेलते हैं। व ऊपर भी जाती है नीचे भी जाती है। यह बात उ लड़के की रुचि पर है। उसी नियम के अनुकूल य मनसर चलता है। और अपना काम करके लौ आता है। यह सब बाणों मे छोटा बाण कहलात है। ब्रह्मसर आदि इससे अधिक तेजोमय औ बलवान होते हैं।"

फिर किसी ने बात चीत नहीं की। राम आप ही अपने श्री मुख स इसको समझाया "सिद्धि, शक्ति, निधि क्रिय कारता सब की स

ानसिक भाव के बल के आधीन हैं। यह सब के ग्र मन के खेल हैं। पहिले मन की विधिपूर्वक रोक ाम करनी चाहिये। इससें एकाग्रता का बल आ ाय। इस बल के प्राप्त करने में साधन और रभ्यास करना पड़ता है। ज्यों २ यह अधिक ढ़ती जाती है त्यों २ इसकी वृतियों में आकर्षण ाक्ति अधिक से अधिक होती जाती है। और यह ो चाहे कर सक्ती है और कर लेती हैं।"

अंगद-"क्या एक मनुष्य इस शक्ती से बहुतों र विजय पा सक्ता है?"

राम-"इस प्रश्न का उत्तर मैं क्या दूं। बड़ी वजय के लिये बड़ा बल और मनुष्य जाति के .काग्र वृति बल की आवश्यक्ता है। एक चने से ाड़ नहीं फट सक्ता। भाड़ का बड़ा मुखा मुख चनों से भरा हुआ हो और उसे आग दी जाय तो चनों की एकाग्रित फड़क से भाड़ का यकबार फूटना सम्भवावित है।"

अंगद - "आप एक है आप में बड़ा बल है।"

राम—"मैं अकेला नहीं हूँ। सारा विश्व मेरे साथ है। जब पृथ्वी मात्र की चित्तवृति एकाग्र हो कर एकत्रित हुई, और हाहाकार मचाती हुई विष्णु शक्ति को ऊंचे चढ़कर छू लिया, उसी की आकर्षण शक्ति के बल से विष्णु शक्ति का उतार होगया और वही अवतार कहलाता है। इसमे विश्व वृति के आकर्षण शक्ति का बल होता है।"

यों गपशप करते हुए राम को नींद आगई। सब सोने चले गये। हनूमान और लक्ष्मण पहरा देने लगे।

——:०:——

छटा समुल्लास

रावण और मन्दोदरी

राम बाण का कौतुक देखकर रावण के मन कल्प विकल्प की घुड़दौड़ होने लगी। वह हल में आया। मन्दोदरी पांव पर पड़ी। "नाथ! राम के साथ वैर न कीजिये। शत्रुता बराबर वालों के साथ की जाती है। उनकी शरण में जाइये। और मेरा सुहाग अचल बना रहे।"

रावण—"राम में इतनी शक्ति कहां है जो मेरा सामना कर सकें।"

मंदोदरी—"वह तो आगये। तुम्हारे सिर पर आकर पहुंच गये। समुद्र पर पुल बाँधकर आये। धूमधाम करते हुए आये। तुम में सामर्थ्य होती तो क्या तुम समुद्र पर पुल न बांध लेते!"

रावण—"समुद्र को मैंने लंका की खाई बना रक्खा है। नहीं तो मेरे लिये ऐसा पुल बांध लेना क्या कठिन काम था!"

मंदोदरी—"यह खाई काम नहीं आई। इससे रोक थाम नहीं हो सकी। बंदर और रीछ दनदनाते हुए लंका में पहुंच गये।"

रावण—"इनकी मृत्यु यहां ले आई। पुल इसका कारण बना। राक्षस उन्हें पकड़ २ कर खाजायेंगे।"

मंदोदरी—"समुद्र तट वासी राक्षसों में भगदड़ पड़ रही है। वह अपने घर छोड़ २ कर लंगर में आरहे हैं। खाने वाले होते तो बंदरों पर मुँह मारते। यहां तो उलटी बात हो रही है। बंदर उन्हें नोंच खसोट कर मार रहे हैं। राक्षस मांस भक्षक हैं। बंदर ऐसे नहीं हैं। कहीं वह ऐसे होते तो घर घर कर चबा जाते। तुम बहकी २ बातें न करो। मेरा कहना मान जाओ। राम मनुष्य नहीं हैं। वह ब्रह्म के अवतार हैं। उनके शत्रु की रक्षा ब्रह्मा विष्णु महेश तक नहीं कर सक्ते।"

रावण हँसा—"भोली भाली स्त्री! ब्रह्मा, बिष्णु, महेश के तो सारे अनुचर मेरे कारागार में हैं। वह क्या मेरी रक्षा करेंगे। समझ बूझ कर मुंह खोल! यों ही न बोल!"

मंदोदरी—"मुझ पर दया कीजिये। मैं आपकी अर्द्धांगिनी हूं। सब कुछ कर लिया। संसार की लीला देखली। सीता जी राम को दे दीजिये। प्रभू के चरणों की शरण मे चले जाइये। वह दयालु कृपालु हैं। तुम्हारा अपराध क्षमा कर देंगे। मेघनाद सपूत है। इन्द्रजीत तेजवान, बलवान और बुद्धिवान है। राज-काज उसे सौंप दीजिये। वह राजा हो जाय। आपका चौथा पन आगया। बन परस्ती का भेष धारण कीजिये और मुझे भी अपने साथ लेकर बन को चलिये। यह शास्त्रों की मर्यादा है।"

यह कहकर मंदोदरी रो पड़ी और रावण के पाँव पर गिरी। "यह मेरी विनती स्वीकार कीजिये।"

रावण ने मदोदरी को उठाकर अंग लगाया। "तू डरी क्यों है? सारी आयु मेरे साथ रही। क्या मेरे बल, पराक्रम, और प्रताप से परिचित नहीं है! देख! कौन ऐसा बली है जो मेरा लोहा नहीं मानता। संसार की सारी शक्तियां एक एक करके मेरे आधीन हो रही हैं जिसने सिर उठाया। मैंने उसे वहीं कुचल दिया। देव, दनुज, किन्नर, नाग और गंधर्व कौन हैं जो मेरे वशीभूत नहीं हैं। लंका सभ्य देश है। सारे जगत मे उसकी साख है। अयोध्या इसके सामने क्या है! और फिर अयोध्या के दुबले पतले दो लड़के! यह क्या मेरा सामना कर सकते हैं।"

मंदोदरी बोली—"राम को तुम राम समझो। नर न समझो। वह व्यापक महान शक्ति है जो सारे जगत में मंडलाकार होरही है। उसका 'सिर' दिव्यलोक में, 'पांव' पाताल में और 'धड़ अंतरिक्ष मे है। वन और बनस्पति 'रोंगटे' पहाड़ 'हड्डियाँ' और 'नसनाड़ी' नदियां हैं। सूरज और चांद दोनों उनकी आंखें हैं और देवी देवता उनकी शक्तियां हैं। तुमने मनुष्य का आकार देखकर उन्हें नर समझ लिया। ऐसा न होना चाहिये। यह अवतार हैं ब्रह्म की सामान्य शक्ति जब विशेष रूप धारण क लेती है, उसमें विशेषता आजाती है। देखने में हुआ तो क्या! वह सामान्यता से बदल कर वि बन गया है और आग की चिनगारी के समान जगत को जला सक्ता है।"

रावण हँसा—"यह तो मेरे ही गुणों को ग रही है। मेरा प्रताप अखिल ब्रह्माण्ड में छाया हु है। और ऐ सुन्दरी! आग की चिनगारी ज ब्रह्माण्ड को जला देगी तो यह ब्रह्म कहां औ किसमें रहेगा!"

मंदोदरी—"सृष्टि, स्थिति और लय ब्रह्म आधार पर हैं। ब्रह्म निराधार है। त्रि खेल अनादि अनन्त प्रवाह रूप से ब्रह्म में होता रहता है। वेद इस ब्रह्म के सांस हैं। उनके अंतरगत कारण, सूक्ष्म और स्थूल जगत बनता बिगड़ता रहता है। यह 'राम' उसी का निज सरूप और सत और सत्ता हैं।"

हुये मण्डलाकार मण्डल बने वह।
बने मंगलाकार मंगल हुए वह॥
उन्हीं में हैं ब्रह्मा उन्हीं में महेषा।
उन्ही में है विष्णू उन्हीं में है शेषा॥
जो संसार में निद्धियां सिद्धियाँ हैं।
वह सब राम के रूप की शक्तियां हैं॥
न धोके में आओ न भरमो न भूलो।
अविद्या के झोले में आकर न झूलो॥
नही नर हैं नर का धरा रूप अद्भुत।
जगत के बने राम जी भूप अद्भुत॥
खुली दृष्टि से इनका दर्शन करो तुम।
तन मन और धन को अर्पण करो तुम॥
उन्हीं की हो सेवा उन्हीं की हो भक्ती।
उन्हीं के सहारे हैं सब योग युक्ती॥

रावण—"राम यहाँ होते तो तेरी स्तुति कर हंस पड़ते। तू नर को नारायण बना रही यह महिमा तुझ में है। तू तो राम से कहीं होकर है।"

है। और जिसमें समता है वह बलवान, रक्षक, स्वआधार और स्वप्रतिष्ठित बना रहता है।

लोभ न हो तो संग्रह कौन करे। व्यय करने में नहीं है। संग्रह करने में है। लोभ अवश्य हो, नहीं तो उन्नति और वृद्धि कभी न होगी। विद्या, बुद्धि, सभ्यता, धन, साधन का लोभ समता के साथ होना जीवन का आवश्यक विषय है।

मोह संग्रह शक्ति का भाव है जिसमें और जिससे प्राणी को ममत्व होता है। यह ममत्व व्यौहारिक यत्न का प्रबन्धक है। ढुलकने वाले ढेले पर घास तक नहीं जमती। मनुष्य मोह के बस एक स्थानी होता है और अपना व्यौपार बढ़ा लेता है। यह भी समता के साथ हो।

अहंकार में सबकी जड़ है। यह अहं भाव ही संसार मात्र है। लोभ, मोह, काम, क्रोध का यही केन्द्र है। और इभी में सब पिरोये हुये रहते हैं। यही दृढ़ता है। यही दृढ़ाता रहता है। समता के साथ हो तब तो उन्नति के शिखर पर लेजाता है। असमता आई और यह नाश का कारण बन जाता है।

ऐ बेटे! काम, क्रोध, लोभ, मोह अहंकार की निंदा करने वाला आप अपना शत्रु है। लोग अन समझी से कहते हैं, "काम, क्रोध, लोभ, मोह, अहंकार को मार दो। जलादो। दग्ध करदो।" सोचो तो सही! यह न हो तो भक्ती, योग, साधन ज्ञान, ध्यान किस से और किसके बल से हों। इनके मारने और दग्ध करने का अर्थ यह है कि यह नियम में रहें। इनमें असमता न आने पावे। और तब यह दोनों व्यौहार और परमार्थ में उपयोगी और सहायक होते हैं।

तुम मेरे इस उपदेश के मूल आशय को समझ कर लंका जाओ। रावण से मिलो। उसे समझाओ बुझाओ। तुम स्याने हो। वीर धीर हो। जिससे मेरा काम बने वही तुम्हारा कर्तव्य है।"

अंगद ने सर झुकाया। 'मैं क्या और मेरा काम क्या। आप मुझे यश दे रहे हो। आप का काम तो पहले ही से हुआ हुआ है।'

दण्ड प्रणाम करके अंगद लंका को चले।

आठवां समुल्लास

अंगद-रावण

बंदर २ एक! अन्य देशी को स्वदेशी बहुत परिचय के पश्चात् पहिचानते हैं। अंगद चले। त्रिकूट गिर पर चढ़े। लंका की गलियों से निकले। जिसने देखा उसने यही समझा कि यह तो वही बंदर है जो लंका को जला गया था। अंगद हाथी के डील डौल के बंदर थे। झूमते जा रहे थे। जिससे रावण की सभा का पता पूछा, उसने नम्रता के साथ काँपते हुये बता दिया कांपना कपि का प्रभाव है। सुरक्षा में लगा रहना राक्षस का प्रभाव है। यहाँ राक्षस तो कांप उठे, आहत होते गये, और उनकी रक्षा और स्वरक्षा शक्ति अंगद में आती गई। यह स्मरण रहे कि अंगद बालि के लड़के थे। बालि में नेत्र की आकर्षण शक्ती इतनी बढ़ी हुई थी कि जो सामने आता था, उसका आधा बल इसमें चला आता था। यह व्योढ़े बल से उसे परास्त कर देता था। यही दशा अंगद की भी थी। जिसने इन्हें देखा या जिन को इन्होंने देखा उनका आधा बल इनमें आ गया। यह तो बली बन गये और वह निर्बल होगये।

यह रास्ते मे चले जा रहे थे। रावण का एक लड़का मिल गया। दोनों युवावस्था में थे। बातचीत

में राक्षस को क्रोध आगया ! मारने के लिये एक लात को ताना। अंगद में क्रोध नहीं था। राम के उपदेश को ग्रहण कर चुके थे। चित में समता थी। उसके बल को हर लिया और उसकी टांग पकड़ कर पृथ्वी पर पटका। वह मर गया। राक्षस डर गये। मुहों मुँह यह बात नगर में फैल गई कि जिस बंदर ने लंका जलाई थी, वह फिर आगया है। कौन जाने अब के क्या उत्पात मचाये ! सब जगह खलबली पड़ गई।

इनको राक्षसों ने रावण की सभा का पता दिया। वह तो उधर चले और इधर बहुत से राक्षसों ने रावण को जाकर सूचित किया कि राम का दूत आ रहा है और वह महा बलवान है।"

रावण हँसा-"बुला लाओ। देखूं तो सही वह कैसा है !" वह गये। उन्हें साथ लाये। अंगद ने दृष्टि डाली। वह काजल का काला पहाड़ बना हुआ बैठा था। उसकी भुजायें क्या थीं ? लम्बे लम्बे वृक्ष के आकार की थीं। सिर उस पर्वत का शिखर था। देह के रोंगटे लताओं के सदृश थे। आँख, नाक, कान, पहाड़ की कंदरायें थे।

वह सभा में अभय होकर गये। इन्हें देखते ही सारे सभासद नमस्कारार्थ उठकर खड़े हुये। रावण यह नहीं चाहता था कि कोई इनका सन्मान करे। उसे क्रोध आगया। यह सबको नमस्कार करके सभा में बैठ गये।

रावण-"अरे तू कौन है ?"

अंगद-"मैं राम का दूत हूं।"

रावण-"यहाँ क्यों आया ?"

अंगद-"तुम्हारे हित के लिये।"

रावण-"वह क्या ?'

अंगद-"तुम उत्तम कुल के हो। पुलिस्त्य ऋषि के नवास हो। लोकपाल और दिगपाल आदि सबको तुमने जीत लिया। संसार में तुम्हारी यश और कीर्त्ति फैलगई। यह तो अच्छा था, लेकिन तुमने यह बुरा किया कि जगत की माता सीता को हर लाये। राजमद बुरा होता है। अहँकार नाश का मूल कारण है। जो होना था वह हो चुका। तुमने महा अनुचित काम किया। अब मुँह में घास का तिनका दबाकर नारी और परिवार सहित राम के पास चलो। सीता को सबके आगे करो। त्राहिमान २ करते हुये उनके पांव पर गिरो। राम दया और क्षमा की मूर्ति हैं। तुम्हारा अपराध भूल जायेंगे ! तुमको अभय कर देंगे। तुम्हारा कल्याण होगा। मेरे आने का कारण यही है।"

रावण-"मुँह को सभाल कर बात कर। इतना असभ्य क्यों होता है ? मेरे तेज और बल को जानता हुआ तू मूढ़ बन रहा है। तेरे बाप का क्या नाम है ?"

अंगद 'मेरा नाम अंगद है और मैं बालि का लड़का हूं जिस के साथ तुम्हारी मुठभेड़ हो चुकी है।"

रावण पते की बात सुनकर खिसियाना हो गया। बात को पलट कर कहने लगा-"हाँ ! हाँ मैंने सुन रक्खा है। बाली एक बंदर था। तू उसके कुल में कुलघातक पुत्र उत्पन्न हुआ। तू जन्म लेते ही क्यों न मर गया ! कुल कलंक ! तपस्वियों के साथ मिलकर उनकी बड़ाई कर रहा है। बता, अब बालि कहां है ? है तो वह कुशल के साथ ?'

अंगद को हँसी आगई-'दस दिन पश्चात् तुम स्वयं जाकर बाली से मिलकर कुशल पूछ लेना ! बाली आप तुम को बता देंगे कि राम से बैर रखने का क्या फल होता है ? राम का भक्त होने से मैं तो कुलघातक बना और राम के विरोधी होकर तुम कुलघालक हुये ! राम का दूत और कुल का कलंक ! यह बात मैने तुम्हारे ही मुँह से सुनी है।'

रावण-"तू बड़ा मुँह पट है। मैं तेरी बात सुन सुन कर अपनी सहन शक्ति को उभार २ कर चुप हो रहा हूं। नीति कहती है कि दूत की बातों को सह लेना चाहिये।"

अंगद-'तुम्हारी नीति, धर्म, शीलस्वभाव सब इसी एक बात से प्रगट हैं कि दूसरे की स्त्री को चुरा लाये और सहन स्वभाव का पता इसी से

लगता है कि बहिन के नाक कान काट लिये गये और तुमने एक बात तक किसी को नहीं कही। और हम भी बड़े भाग्यवान हैं कि तुम जैसे पवित्र हृदय वाले का दर्शन पाया।"

रावण-"तू बहुत बातें बनाता है। क्या नहीं जानता कि सार देवता मेरे आधीन हैं। और इनमे से कोई सिर नही उठा सक्ता! और तेरी सेना मे वीर पुरुष कहाँ हैं जो मेरा सामना कर सक्ते हैं। हां! एक बंदर बल बुद्धिवाला है, जिसने लंका जला दी थी। उस अकेले से हो क्या सक्ता है! और वह कब मुझ से लड़ सक्ता है! जामवन्त बूढ़ा है। नल नील शिल्प विद्या प्रवीण हैं। मै नही समझता कोई भी बंदर ऐसा होगा जो मेरे साथ लड़ने का साहस करेगा!"

अंगद-"वाह २! जिस बंदर की तू इतनी बड़ाई करता है, वह सुग्रीव का सबसे छोटा सेवक है। हमने उसे सीता का समाचार लेने भेजा था। वह बहुत जल्द २ चलता है। यह उसमे गुण है। हममें उसे वीर कोई नही समझता। तुम उसको वीर कहते हो! वह सुग्रीव की आज्ञा के बिना लँका दहन कर गया। मन में लज्जित है। अब तक उनके सामने नही आया। हमारे यहाँ योद्धाओं की गिनती वीरों में नहीं है।"

"यह तुम सच कहते हो कि राम की सेना मे तुम्हारा सामना करने वाला कोई नहीं है। राम दल वीरों का समुदाय है। वह तुमको समझते क्या हैं! तुम्हारे साथ लड़ने में उनकी वीरता का अपमान होता है। लड़ाई भिड़ाई तो उसी के साथ अच्छी होती है जो बराबर का बलवान हो। सिंह कब गीदड़ से लड़ता है। हाथी ने खरहे का सामना कब किया है! तुम स कोई भी लड़ना न चाहेगा। हाँ! क्षत्री धर्म कठिन है। इस दृष्टि से राम सेना तुम्हारे संमुख आ जाय तो कोई आश्चर्य की बात नहीं है।

रावण—"क्यों न हो! तू सच्चा बन्दर है। अपने स्वामी के हितार्थ बन्दर नाचता, कूदता, साँग भरता है। तू भी अपने जातीय स्वभाव को प्रगट कर रहा है। यह बन्दर में बड़ा गुण है कि वह स्वामिभक्त होता है। मैं गुणग्राही हूं। तेरे इस गुण का परस्तिष्क होता हूँ।"

अंगद—"क्या कहना है तुम्हारी गुण ग्राहकता का! हनूमान ने मुझ से कहा था कि रावण बड़ा गुणग्राही है। नगर जला। भाई बेटे मारे गये। बहिन नकटी हो गई। फिर भी उसके सिरमे जूं तक नहीं रेंगी और न उसे क्रोध आया। इसी गुण को सुनकर मुझे तुम्हारे पास आने का साहस हुआ। जो हनूमान ने कहा था वह सब सचमुच मैंने अपनी आँखो से देखा। न तुम मे लाज है, न रोष है, न मान अपमान का विचार है। लज्जा होती तो और ही दशा होती।"

रावण—ऐसी ही बुद्धि थी तब तो तूने अपने बाप को मरवा कर खा डाला।"

अङ्गद—"बाप को खाया सो खाया। उसने तो अपनी करनी का फल पाया। सुरलोक को गया। मुझे संदेह नही रहा कि तुम्हारे खाने की बारी आरही है। मैं अभी तुम को खा गया होता, मगर मांसाहारी नही हूं और तुम्हारे जैसे अधम पापी के अपवित्र मांस को क्या मुँह लगाऊँ। कुत्ते, गिद्ध और गीदड़ों को तुम्हारा मांस खिलाया जायगा। पहिले तुम यह तो बताओ कि तुम कौन से रावण हो। मैंने कई रावणों का वृतान्त सुन रक्खा है। एक रावण बलि के जीतने को पाताल गया था। लड़कों ने उसे विचित्र जीव समझकर बाँध लिया और मारने कूटने लगे। बलि को दया आई छुड़ा दिया। वह भाग आया। फिर पाताल नहीं गया। दूसरा रावण सहस्रबाहु के साथ लड़ने गया। वहाँ भी वह रस्सियों से जकड़ा गया। पुलस्त्य ऋषि ने जाकर उसे छुड़ाया। तीसरे रावण को मेरे बाप बालि ने छः महीने तक अपनी बगल मे दबा रक्खा था बताओ तो सही! इनमें से तुम कौन रावण हो?"

रावण—"तूने अपमान युक्त वाणी कही है। मै वह रावण हूं जिसके घर का पानी वरुण भरता है।

इन्द्र दीपक जलाता है और सेवा में लगा रहता है, दिग्गज, दिगपाल पहरा देते हैं। जगत के राजे महाराजे मेरा नाम सुनकर कांपते हैं। मैने कई बार अपने सिर काट २ कर शिव को प्रसन्न किया। कैलाश पर्वत को अपने कंधे पर रखकर नाचता रहा। मैं जब पग रख कर चलता हूं, पृथ्वी डगमगाती है और इसकी दशा समुद्र की छोटी डेंगी के समान बन जाती है। मेरे तेज बल को कौन नही जानता। तू इस रावण को छोटा और मनुष्य को बड़ा बताता है। जान पड़ता है तू अज्ञानी और बावला है।"

अंगद—"अज्ञानी का लक्षण यह है कि वह आत्मा को नहीं जानता। राम जगत के आत्मा हैं। इनके बाण की महिमा अपार है। सहस्र बाहु की सहस्र बाहुओं को इनका एक बाण छेद सक्ता है। जिस परसराम ने अनेक बार पृथ्वी के राजाओं का नाश किया और जिसके सामने कोई योधा वीर नहीं आसक्ता था, राम ने उनके गर्व को तोड़ दिया। यह राम मनुष्य कैसे हो सक्ते हैं। गरुड़ पक्षी नहीं है। गंगा जल की नदी नहीं है। कल्प तरु वृक्ष नहीं है। काम की प्रवल धार धनुषबाण नहीं है। यह केवल अलंकृत भाषा है। वैकुंठ कोई लोक या स्थान या दिशा नही है। इसी प्रकार राम मनुष्य नहीं है। इसी को देख। उनका एक छोटा बंदर लंका मे आया और सारे नगर को जलाकर धूल और राख बना गया। तुम्हारे लड़कों तक को मार गया। उस समय तुम्हारी प्रभुताई कहां चली गई!

इस अपवाद को छोड़ राम को भजो। पृथ्वी, आकाश और अंतरिक्ष की कोई शक्ति राम के द्रोही की रक्षा नहीं कर सक्ती। तुम मेरे सामने घमंड की बातें कर रहे हो। जब राम के सनसनाते हुये बाण चलेंगे, गेंद क समान राक्षसों के सिर उछलते हुये बंदरों के पॉव से गिरेंगे। चील और गिद्ध आकाश में मंडराते हुये तुम्हारे हाथ पाँव को पंजों में दबाये हुये उड़ेंगे। गीदड़, भेड़िये, लोमड़ी तुम्हारी मुर्दा लाशों को काट २ कर खायगे। उस दिन का स्मरण करो। राम से बैर त्यागो। उनकी भक्ति में चित लगाओ। इसीमें तुम्हारा कल्याण होगा।"

रावण—"तू नर को नारायण मानकर उसकी इतनी प्रशंसा कर रहा है। मुझे नहीं देखता कि मैं क्या हूं। मेरा भाई कुंभकरण लाखों में एक वीर है। मेघनाद, मेरा बेटा, जगत मे अद्वितीय है। राम ने समुद्र पर पुल बॉधा और तुम जैसे डालियों पर उछलने कूदने वाले पशुओं को अपने जाल मे फंसा लिया। इसीको तू बड़ी प्रभुताई मान रहा है। मैंने मनुष्य, देवता, और चराचर संसार मे एक को भी नहीं छोड़ा, जो मेरे आधीन नहीं हुये। सबको मैंने लोहे के चने चबवा दिये। सब मेरे पराक्रम के समुद्र में डूब गये।"

बन्दरों को रीछों को आकर नचाया राम ने।
खेल बाज़ीगर का क्या अद्भुत दिखाया राम ने॥
नाचते हैं कूदते है फॉदते है हर घड़ी।
मृत्यु इनके शीश पर मडलाती हैं रद कर खड़ी॥
नाच बंदर का दिखाने तूभी अंगद आगया।
मुठी दो मुट्ठी चने बदले में इसके पागया॥

"यह मदारी का करतब है। ऑखें खोलकर देख। उधर दो दुबले पतले तपस्वी हैं, और इधर मेरे साथ लाखों करोड़ो योधा वीर संग्राम मे अपनी वीरता का दृश्य दिखाने को तत्पर हैं। कहॉ दो और कहां लाख! यह सुयोग्य होते तो घर से बाहर क्यो निकाले जाते। कोई न कोई इनमे दोष होगा तब तो वन और पर्वतों में मारे २ फिर रहे हैं। अच्छा है। यह लंका में आये। मैं भी इन बंदर रीछ नचाने वालो का कौतुक देखूंगा। इन में भुज बल होता तो तुझ जैसे दूत को मेरे पास क्यो भेजा होता। वह लड़ाके होने तो बेधड़क लंका पर चढ़ाई करते। क्या वह निर्बलता का लक्षण नहीं है! दूत भी मेरी सभा में भेजा तो किसको? बंदर को। उन्हें बंदर को भेजते हुये लाज भी नहीं आई।"

अंगद—"संसार मे केवल तुम ही एक लज्जावान रह गये हो! बार २ अपने मुंह से अपनी प्रशंसा कर रहे हो। तुम्हारे जैसा निर्लज्ज तो मेरी

समझ में कोई पशु पक्षी भी नहीं है। गीदड़ बनकर गये और पराई स्त्री को चुरा लाये। तुम में बल पराक्रम होता तो राम लक्ष्मण का सामना करते। चोर तो चोर ही होता है। इसमें लाज और वीरता का क्या काम! क्या करूँ राम की आज्ञा नहीं है नहीं तो तुम्हारा सिर तोड़ कर मरोड़ देता। सीता को ले जाता और तुम देखते कि बन्दर कैसा नाचता और नचाता है।"

रावण—"बस बस! अब बहुत बातें न बना। मैंने तेरी सुनली। अब बोलेगा तो तलवार के घाट उतार दिया जायगा।"

अंगद—'तुम गीदड़ हो। मुझे गीदड़ भव की दिखा रहे हो। मैं ऐसे निकम्मे, कामी, क्रोधी, रोगी निर्लज्ज के भय में नहीं आता।"

राम ने अंगद को क्रोध के रोक थाम का उपदेश दिया था। रावण ने राम की निंदा की। उसका सहन करना इनके लिये उस समय कठिन हो गया।

दोनों हाथ पृथ्वी पर पटक दिये। भूकम्प आ गया। पृथ्वी डग मगा उठी। राक्षस डरे कि कहीं उनपर छत न गिर पड़े। रावण भी सिंहासन से नीचे आगया। गिरा नहीं, सँभला रहा। लेकिन उसका मुकुट गिर पड़ा। अंगद ने उसे उठाया और अपनी सुरत की धार के सहारे राम की कुटी की तरफ फेंका। वह चमकता और सनसनाता हुआ आरहा था। बंदर डरे कि कहीं रावण ने उन पर बिजली का बज्र प्रहार तो करना नहीं चाहा। राम ने उन्हें ढाढस देकर समझाया।"यह बज्र नहीं है।" अंगद की भेजी हुई चमकीली वस्तु है। हनुमान लपके। उसे हाथ से पकड़ कर राम के चरणो पर डाल दिया। वह रावण का मुकट निकला। सबको संतोष हो गया और वह निडर होगये।

——:o:——

नवाँ समुल्लास

अंगद का पाँव रोपना

अंगद में क्रोध का वेग नहीं था। वह अपने आपे में थे। रावण को क्रोध आगया। राक्षसों को को आज्ञा दी—"दौड़ो बंदर और रीछों को पकड़ २ कर खाजाओ। तपस्वी बालकों को जीता पकड़ लाओ।" यह उठे और अंगद पर झपटने ही को थे। अंगद ने रावण से कहा—"त्रिया चोर, कामी, कुमार्गी! तुझे लज्जा नही है! लज्जा को धोकर पी गया। यह राक्षस क्या राम को पकड़ेंगे! तू नहीं देखता, मैं अकेला हूँ और तू स्वयँ मेरा सामना करने में असमर्थ है। और इन कायर निश्चरों की सहायता चाहता है! बाली के मारने वाले राम नर हैं! अँधे तेरे हिये की आँखें फूट गई हैं। तुझमे बल कहाँ रहा! तेरे मन के भीतर द्वेष ईर्षा की अग्नि प्रचण्ड है। मेरा लोहू जल रहा है। हड्डी सुलग रही है। चर्बी आहुति बनकर उस आग को भड़का रही है। तुझे सन्निपात चढ़ा हुआ है। तू क्या राम के साथ लड़ सक्ता है! जी में आता है कि अभी तेरे सिर की खोपड़ी को टुकड़े २ करके समुद्र में डुबो दूं। राम की आज्ञा नहीं है और तू राजा भी भी है। इसलिये इस समय जिन्दा छोड़ रहा हूं। राम के बैर का फल तू आगे चलकर देखेगा। मैं तेरी लँका को क्या समझता हूं! वह तो मेरे हाथ के लिये सड़े हुये गूलर के सदृश है। जब चाहूँ उसे मसल कर मिट्टी में मिला दूं। इस लँका मे तू वैसा ही बसा हुआ है जैसे गूलर मे मच्छड़ और पिस्सू बसते हैं। बंदर इस फल को बड़े चाव से खा जाते हैं। उसके जीवजन्तु मुँह के भीतर पिस पिसा कर रह जाते हैं। और वह बंदर का क्या कर सक्ते है।"

रावण हँसा—"बन्दरियों की संगत तुझे क्या मिली? तूने झूठ बोलने का अभ्यास कर लिया। गाल फुलाने और मुँह बनाने बंदर ही जानते हैं। यह औरों को नहीं आया। यह युक्ति तो बालि को भी न सूझी होगी।"

अंगद—"तू मुझे झूठा कहता है? जो जी में आये, कहले। मैं राम का सेवक हूं। उनकी आज्ञा के विरुद्ध कोई काम नहीं कर सकता, नहीं तो अभी तेरी जिह्वा पकड़ कर बाहर खींच लेता और झूठा कहने का स्वाद चखाता। अब भी मैं इतना तो कर सकता हूं कि तेरी सभा में मैं अपना पाँव रोपता हूँ। तुम में से एक बली निश्चर भी मेरे पाँव को उठादे तो मैं सीता को हार जाऊँगा और राम को लंका से लौटा ले जाऊँगा।" रावण—"और कुछ नहीं हो सकता तो इतना ही कर दिखाओ। तुम बड़े सच्चे वीर हो। सच्चाई दिखाने का अवसर मिल रहा है। देखूं तुममें कहां तक सच्चाई है। और मुझमें कहाँ तक झूठाई है।"

यह कहकर अंगद भरी सभा में खड़े होगये। और राम का बल लेकर पाँव को पृथ्वी पर जमाया। उनके शरीर का सारा बल पाँव में उतर आया। और अंगद ने अपने सर्वांग का बल पाँव को देदिया जैसे ब्रह्म का सारा बल उसके अवतार में उतर आता है। क्रोध इस प्रकार शरीर के सारे अंगों के बल को एक अंग में भर देता है।

मेघनाद रावण का पुत्र बड़ा योद्धा और सब से शूरवीर था। रावण की आँख देखकर उठा। सारा बल लगा दिया। हाथों से अङ्गद के पाँव उठाने लगा पाँव तो भूमि में जमाकर ऐसा बैठा था कि चिमट गया था। कितना बल लगाया, दाँतों तले पसीना आया, पाँव हिलता नहीं था। उसके हिलाने से हिल न सका जैसे कामी पुरुष के वचन को सुन कर किसी पतिव्रता स्त्री का मन चलायमान नहीं होता।

वह लज्जित हुआ और सिर नीचा करके सभा में बैठ गया। दूसरे वीर उठे। मल्ल युद्ध करने वाले आये। बल लगाया, दाव पेच खेला। उठाना तो एक तरफ रहा, सबके लिये उसका हिलाना महा कठिन होगया। और सब के सब श्रीहत, तेजहत, और बल हत होकर चुप चाप बैठ गये। फिर किसी को अंगद के पाँव उठाने का साहस नहीं हुआ।

अंगद ने कहा—"देख लिया मेरे बलको और जिसका जी चाहे आकर परीक्षा करलें।"

इस ललकारने पर फिर कोई राक्षस उनके समीप में नहीं आया। रावण खिसियाना होगया—"मैंने कैलाश पर्वत को सहज में अपने सर पर उठा लिया था इस बन्दर का पाँव पहाड़ तो नहीं है मैं उसे उठाये देता हूँ।"

यह कहकर रावण सिंघासन के नीचे उतरा, अंगद के पाँव की ओर झुका, पाँव को हाथ लगाने ही को था कि अंगद ने ललकारा—"रावण! तू बड़ा नीतिज्ञ कहलाता है। सेवक के पाँवों को क्या हाथ लगाता है। तू राजा है। चल राम चरण कमल में अपने सिर को झुका, उनका पाँव पकड़, मेरे चरण के छूने से तू उस भलाई की आशा रखता है। मैं तेरा निस्तार नहीं कर सकता। राम महा प्रभु हैं वह जो चाहें सो कर सकते हैं।

> राम के चरणों में गिर, अपराध कर देंगे क्षमा।
> राम करुणा सिन्धु हैं उनमें क्षमा और है दया॥
> दीन हितकारी हैं उपकारी हैं और करुणा अयन।
> शान्ति निभ्रान्ति सुख चैन आनन्द के सदन॥
> तू विरोधी होके उनका भ्रष्ट होगा रावण।
> बैर करके राम से तू नष्ट होगा रावण॥

रावण बुद्धिहीन, बलहीन, तेजहीन और श्रीहीन होगया। पाँव को हाथ लगाने से रुका। लज्जित होकर, सिर झुकाये हुये सिंहासन पर आ बैठा।

> देख रावन! तू महा निर्बुद्धि अज्ञानी बना।
> रामको नर जानकर अजान अभिमानी बना॥
> घास का तिनका उठाया वज्र सम वह होगया।
> भय जैनता को हुआ आपे से अपने खोगया॥
> इन्द्र के शिव विष्णु के ब्रह्मा के शरणागत गया।
> सपने की इसकी अनादर सबकी दृष्टी से गिरा॥

राम की जब ली सरन तब राम ने तारा उसे।
आंख छोड़ी एक उसकी ऐसा निस्तारा उसे॥
चल सरन में राम के श्रीराम करुणा धाम हैं।
राम ही हैं सद्गती कल्याण और विश्राम हैं॥

जहाँ तक सम्भव था मैंने तुझे समझा दिया। काल ने तेरी बुद्धि हरली। तू नहीं जाता न सही, मैं अब जाता हूँ। मेरा काम बस इतना ही था।

यह कह कर अंगद उठे। राम के समीप जाकर उनके पांवों पर पड़े।

रावण उस समय घबरा गया। उससे कुछ न होसका। सीधा वहाँ से उठकर महल में चला गया। और राक्षस अंगद के बल और पराक्रम को देख कर सहम गये।

—:o:—

दसवां समुल्लास

मन्दोदरी और रावण

रावण महल में आया। मन्दोदरी ने अंगद के आने का समाचार सुन लिया था।

उसने कहा:—"अब आपने देख लिया कि राम के साथियों में कितना बल है?"

रावण:—"देखा जायगा।"

मन्दोदरी:—"क्या आपकी आखें अब तक नहीं देख सकीं। कितनी बार देखा और अब भी कहते हो देखा जायगा।"

रावण:—"तू क्या जानती है, मैंने कितनी बार देखा है?"

मन्दोदरी:—"मैं सब कुछ जानती बूझती हूं। कभी मैं आँखसे देखती हूँ और कभी आपकी आँख से। जब रामका बल एक तिनके में आजाता है तो बड़े२ योधा उसका सामना नहीं कर सकते। कहिये! तो मैं गिना चलूं। कि आपने कितनी बार राम का बल देखा है।"

रावण:—"बहुत अच्छा ऐसा ही सही।"

मन्दोदरी.—पहली बार विश्वामित्र के यज्ञ मे ताड़का के वध, मारीच के परास्त करने में आपको अपना बल दिखाया। दूसरी बार जब आप सीय स्वयंवर में गये थे और राम ने शिव का धनुष तोड़ा परशुराम को नीचा दिखाया तब भी आपने उनका बल देखा। तीसरी बार राम ने आपकी बहिन सूर्पणखाँ की नाक काटी तब उनका बल आपने देखा। चौथी बार खरदूषण और तृसरा के वध में उनकी वीरता देखी। विराध, कुवन्ध आदिके सम्बन्ध

उनके बल के दृश्य कई बार देखने में आये होंगे, जिनका मैं यहाँ वर्णन नहीं करती। पाँचवीं बार उनका बल सूने बन में सीता के हरलाने में देखा। आप जानते थे कि राम लक्ष्मण का सामना आपसे नहीं हो सकता था। भेष बदल कर गये। उस अबला को धोका दिया। छटे बार आपने उनका बल लक्ष्मण की रेखा शक्ति मे देखा, जिसे आप लाँघ नहीं सकते थे। सातवीं बार जब मारीच राम बाण से मारा गया, आपने उनका बल देख लिया। आठवीं बार बालीवध के समाचार सुनने में उनका बल देखा जिसने छः महीने तक आपको अपने बग़ल में दबा रक्खा था। नवीं बार हनूमान ने आकर आपके अनुचरों का वध किया। अक्षय कुमार प्यारा बेटा था, उसे मार दिया। लंका को भस्म कर दिया और आपसे कुछ करते धरते नहीं बना। ग्यारहवीं बार हनूमान विभीषण आदि को अपना अनुयायी बना लिया। राम के पास चले गये। आपके बल के एक अंग को अंगभंग कर दिया। राम ने उसे राजतिलक कर दिया। इस

युक्ति से आपका राज उसी दिन छीना गया, जिस दिन वह उनका साथी बना। बन्दरों ने कितने राक्षसों को मारा ! आपने क्या कर लिया। तेरहवीं बार उन्होंने महासागर पर पुल बाँधा। आपने इस बल को भी देखा! चौदहवीं बार अंगद आया। रास्ते में आपके लड़के का वध किया। सभा में आकर आपके मुँह पर कटी जली और अपमान जनक बातें कहीं। आपसे इतना भी तो न होसका कि उसे दुर्वचन कहने से रोक सकते। पन्द्रहवीं बार आपने देखा कि नाच रंग के समय राम का फुफकारता हुआ बाण आया और आपके मुकुट को उड़ा लेगया। सोलहवीं बार अंगद ने अपना पाँव पृथ्वी पर रोक कर कहा—'मेरा पाँव पृथ्वी से हटादो, मैं सीता को हार गया और राम को लौटा ले जाऊँगा। क्या आप में से किसी में शक्ति थी कि उसका पाँव टाल सके। मेघनाद तक से कुछ न हो सका, सत्रहवीं बार...... ....।"

मंदोदरी अभी कुछ और कहने को थी कि रावण ने बीच में इसकी बात काटदी। "तू ने मेरे शत्रु के बल की बड़ी प्रशंसा की। वह कंगाल तपस्वी न होता तो तुझे बहुमूल्य रत्न दान में देता। क्या तू मेरा पराक्रम नहीं जानती कि मैंने क्या क्या किया है ?"

मंदोदरी—"मैं उसे भी जानती हूँ। जब तक राम के विरोधी नहीं थे। विश्व की सारी शक्तियों को जीतते और पराजय करते रहते थे। वह आपका बल नहीं था। राम का बल था। आपको केवल झूठा और मिथ्या अभिमान हो रहा है। राम ही का बल पाकर आपने सारा काम किया। अब वह बल आपके अज्ञान से धीरे २ छीना जा रहा है और आप निर्बल होते जा रहे हैं।"

राम ही का बल है व्यापक सब जगह संसार में।
उसको देखो जगत के व्यौहार और व्यौपार में॥
राम नारायण हैं, नर के रूप में प्रगट हुए।
वह यहां है वह वहां है, सृष्टि के विस्तार में॥
सिन्धु के जल में वही, पृथ्वी थल में हैं वही।
राम ही का बल छुपा है, जीव के उपकार में॥
राम के चरणों में जाओ, राम की भक्ति करो।
योग युक्ती सिद्धि शक्ती उनके है सत्कार में॥
आँख को खोलो बनो अन्धे, तजो मद मोह काम।
सद्गती को शान्ति लो राम के आधार में॥

रावण हँसा—"तू ने भी विभीषण का मार्ग धारण कर लिया। कहीं हनूमान तुझे भी तो नहीं बहका गये ?"

मँदोदरी—"जो कुछ तुमने किया बुरा किया। अब मेरा अपमान न करो मैं आपकी अर्द्धांगिनी हूँ। हाय पति! तुम्हारी नीति का ज्ञान किधर चला गया। तुम्हारी बुद्धि भ्रष्ट होगई। काल ने सुमति छीन ली। समय प्रतिकूल होगया।"

यह कहकर वह रोने लगी। रावण ने उसे सन्तोष जनक बातें तक नहीं कहीं। पौ फटते ही वह महल से निकल कर राज सभा में चला गया।

—:o:—

ग्यारहवाँ समुल्लास

राम की सभा

अंगद के लौटने पर राम की सभा बैठी। "क्या हुआ ? रावण ने क्या कहा ? और तुम्हारे जाने का परिणाम क्या हुआ ?"

अंगद ने रावण के चरण-कमल में शीश झुका-कर कहा—"प्रभो, आपकी माया महा प्रबल है। यह रावण तो क्या है। सारे का सारा ब्रह्माण्ड उसकी उँगलियों पर नाच रहा है। नचाने वाले आप और जीवजन्तु सब नाचने वाले हैं।"

गगन मध्य में हिंडोला गढ़ा है।
कोई क्या कहे वह गढ़ा या खड़ा है॥

न कोमल न मध्यम तीव्र और कड़ा है।
हिंडोले में यह विश्व जुड़ कर जड़ा है॥
जिन्हें देखिये चढ़ के वह झूलते हैं।
कभी सूखें मन के कभी फूलते हैं॥
हिंडोले की जड़ में अड़े जाके ब्रह्मा,
हिंडोले के धड़ में है विष्णु की महिमा॥
हिंडोले की चोटी पे शिव जाके झूमा,
हिंडोले के पत्तों में सब देवी देवा॥
यह सब झूलते-झूमते रात दिन हैं।
उसी में यह सब घूमते रात दिन हैं॥
धुरु का लड़का आदित्य अटका उसी में,
किसी को मिला पूरा भटका उसी में॥
किसी को धराधर के पटका उसी में,
सभी के हैं बन्धन का भटका उसी में॥
प्रबल माया ने आके सब को फंसाया।
फंसा जो कोई उसके फन्दे में आया॥
क्रोधी, विकारी, अहंकारी रावण।
नहीं सुनता वह बात होकर अपावन॥
उसे रात दिन है भ्रम के गुनावन।
न मानेगा है व्यर्थ सारा न सावन॥
अहंकार के मद में है क्रूर निश्चर।
उसे राह पर लाना है अति दुस्तर॥
नहीं राम को राम वह मानता है,
उन्हें नर समझता है पहचानता है।
जो वह जानता है वही जानता है,
भरी चोटी एड़ी में अज्ञानता है॥
महामाया लंका में मंडला रही है।
घटा टोप अविद्या यहाँ छा रही है॥

राम ने अंगद की सारी वार्ता सुनी। प्रसन्न होकर उनकी पीठ ठोकी। "तुमने अपना काम बस इतना ही तुम्हारा कर्त्तव्य था। समझाना किया बुझाना हो चुका। अब यह बताओ क्या करना चाहिये?"

हनूमान बोले—"लंका पर चढ़ाई हो।"

सुग्रीव ने कहा—"सब से पहिले बन्दर हल्ला करें। राक्षसों की साँस उनकी नाक में आजाये।"

जामवन्त—"रावण नियम के विरुद्ध काम कर रहा है। अंगद ने उसका जो मुकुट आपके पास फेंका था उसमें चार बहुमूल्य हीरे जड़े हुये हैं। वह साम, दाम, दंड, भेद हैं वह रावण से छिन कर आपके चरणों में आ पड़े। अब उसे चारों नीतियों से निर्बल कर के पराजय कीजिये। रावण आपका सामना न कर सकेगा। और सामने आता है तो मारा जायगा।"

राम ने कहा—"एवमस्तु! रावण बन्दरों को तुच्छ समझता है उनसे घृणा करता है। आज बन्दर ही जाकर उसके दाँत खट्टे करें। पीछे लक्ष्मण की बारी आयगी और वह नर के रूप में उसके छक्के छुड़ायेंगे।"

खिलाओ उसे बुद्धि के खेल जाकर।
न सहमो न ठिठको मेरे बल पाकर॥
करो ऊधम और रूँद दो उसकी नगरी।
मिले धूल मिट्टी में बल बुद्धि सगरी॥
अटा पर चढ़ो, बादलों की घटा बन।
लहू बरसे निश्चर का रिमझिम अपावन॥
इधर सर उधर उनके धड़ नाचते हों।
पशु पक्षी आकर उन्हें चाटते हों॥
उड़ें सर गगन में तुम्हारी हों गेंदें।
गिरें धड़ धड़ाकों से कपि बान बेधे॥
न बचने पाये कोई ऐसे लड़ो तुम।
बनो बिजली लंका में जाकर पड़ो तुम॥
जलाओ जलाकर उसे राख करदो।
निशाचर की मिट्टी में तुम साख करदो॥
न लंका रहे और न लंका के वासी।
रहे तो रहे उसमें छाई उदासी॥

तृतीय भाग

पहिला समुल्लास

युद्ध आरम्भ

आज्ञा पाने की देर थी। बन्दर और रीछ चढ़ दौड़े।

इधर दौड़े उधर कूदे, इधर फाँदे उधर उछले।
इधर दांते दिखाया और उधर जाकर वहीं मचले॥
किसी को काट खाया और किसी की नाक को नोचा।
किसी के कान कतरे और किसी का पकड़ा जा पहुंचा॥
किसी को पृथ्वी पर हाथ के बल से दिया झटका।
किसी की थाम कर गर्दन मरोड़ी भूमि पर पटका॥
जलाया घर किसी का और किसी की छत को जा टाया।
उखेड़े वृक्ष मारे मारकर मिट्टी में दबवाया॥
गरजते किलकिलाते धूम रह रह कर मचाते थे।
निराला नाच था बन्दर का निश्चर जो नचाते थे॥
मचा ऊधम हुई चिल यों प्रलय का काल का दिन था।
दुहाई लंकपति की दी सुना और इन्द्रजित धाया॥

हनूमान में क्रोध विशेष था। आव देखा न ताव? अंगद ने सुना कि वह अकेले गये हैं, सहायता के निमित्त वहाँ जा पहुंचे। दोनों ने मन्दिरों के कलश उखाड़ उखाड़ कर राक्षसों को मारना आरम्भ किया। जो जो उनके मुखिया थे, पकड़ पकड़ कर राम की तरफ फेंका। ये बेबस थे। सन सनाते हुये बाण के समान राम के चरणों में गिरे। और राम ने अपने धाम को भेज दिया।

जिसने देखा राम को मुक्ती मिली।
जिसने पद परसा उसे मुक्ती मिली॥
राम दाता राम दानी थे बड़े।
योग बल से राम ज्ञानी थे बड़े॥
हाथ से जिसको छुआ वह तर गया।
नीचे भूमि छोड़ कर ऊपर गया।
देह त्यागी जा बसा सुरधाम में।
सुख मिला आनन्द मिला विश्राम में॥
जो मरा वह राम का धामी बना।
कामना तजकर वह सत कामी बना।

दोनों ने रथ बहली और वाहनों की तोड़ मरोड़ की। पहिये उखड़े। धुरे हाथ में लिये। राक्षस बचाने आये। उन्हीं धुरों से उनपर बेभाव की मार पड़ी। हड्डी पसली टूटी। ऐसे चिल्लाये और प्राण त्याग दिये। दोनों ने उनके मुर्दों की लाशों को समुद्र में फेंका। मगरमच्छ, मगर, कछुऐ भूके थे। उन्हें नोच २ कर खागये।

रावण क्या जानता था कि आज ही नगर में यह उत्पात मचेगा। वह नर, बन्दर और रीछों को क्या समझता था। उसकी दृष्टि में यह निश्चरों का आहार थे। उनका मार लेना कितनी बड़ी बात थी। लेकिन राम की लीला प्रबल है। वह चाहें तो एक तिनके से विश्व का नाश करा सकते हैं। जिसे चाहें बल और सामर्थ दें। जिसे चाहें निर्बल और असमर्थ बनावें। यह जगत उनकी भ्रकुटी के अदल बदल से बनता और बिगड़ता रहता है। यह खेल और लीला मात्र है। जो इसे समझ गया वह निर्द्वन्द हो गया। जिसने नहीं समझा वह माया जाल की उलझन में फँसा रहा।

राम किसी के विरोधी और द्रोही नहीं हैं। जब प्राणी अपने अज्ञान और भ्रम में फँस जाता है उस समय राम की दया उसे छुड़ाने आती है। दुख और सुख जीवों के कर्मों का फल है। जो जैसा करता है वह वैसा फल पाता है। जो जैसा बोता है वैसा काटता है। जो जैसा सोचता है वैसा बन जाता है। यह सृष्टि कर्म का नियम है यह अनादि

काल से प्रवाह रूप में उमड़ता लहराता और मण्डलकार होता है। अन्त मे जब और कोई उपाय नहीं रहता तो राम ही सगुन रूप मे प्रगट होकर उनका निस्तार करते है। और खेल खेल मे उनको सुधार देते हैं।

राम की मार में है प्यार का गुन।
राम के युद्ध में है सुधार का गुन॥
मित्र और शत्रु के वह रक्षक हैं।
कभी भक्षक कभी वह तक्षक है॥
आये तारने लंका मे निश्चर।
कौन उनसे हुआ कोई बढ़कर॥
मौज है मौज में है मौज का गुन।
मौज में गुण सगुण है और निर्गुण॥
नाद और बन्द में है मौज की बात।
इसको समझे कोई मिटे उत्पात।

रात्रि आगई। बन्दर दिनचर हैं। रात में काम नहीं करते। रात में केवल निश्चर ही काम करते हैं। लड़ भिड़ और झगड़, बन्द करके वह राम के निकट गये। लड़ाई का समाचार पहुंचाया। चरण कमल मे शीश झुकाया। खाया पीया और सो रहे।

पहिले दिन की लड़ाई मे दिनचरों की कोई हानि नहीं हुई। हाँ निश्चरों में बड़ी खलबली पड़ गई। उनके कान खड़े हुऐ।

—:o:—

दूसरा समुल्लास

रावण की सभा

रावण ने रात्रिकाल में अपने मन्त्रीगणों को बुलाया। "आज के दिन दिनचरों ने निश्चरों की आधी सेना को मार गिराया। अब केवल आधी रह गई। कहो अब क्या करना चाहिये?"

माल्यवन्त उसका सबसे बूढ़ा, जानकार, समझ बूझ वाला मन्त्री था। उसने कहा—"अन्नदाता! मैं सच्ची न्याय और नीति की बात कहता हूं। मुझे लप्पो शप्पो करना नहीं आता और न मैं हाँ मे हाँ मिलाता हूं। मेरी समझ मे आप सीता को दे दीजिये। राम से क्षमा मॉगिये। वह दया सागर हैं। आपका अपराध भूल जायँगे। राम नर नही हैं नारायण हैं। सतयुग में हिरणाकुश और हिरण्यकश्यप को मारा। त्रेता में बावन के रूप में बलि को छला। परसराम के रूप में सहस्राबाहु का अन्त किया। इस समय वही नारायण के रूप में प्रगट हुऐ हैं। उनके साथ वैर भाव रखना उचित नहीं है।

रावण ने कहा—"तू समझ बूझ कर बात नहीं करता। न पेट मे आँत है, न मुँह में दाँत। पोपला बन्दर बन गया है, और बन्दरों का पक्ष ले रहा है। बुड्ढा है नहीं तो बिना मारे हुऐ न रहता। जा और जगह अपना मुँह काला कर। मुझे तेरे मन्त्र की आवश्यकता नहीं है।"

माल्यवन्त डरा—"यह कहीं मार न दे।" बूढ़े को जान बहुत प्यारी होती है। वह उठ कर चला गया।

मेघनाद बोला—"कुछ भय नहीं, चिंता नहीं। आज रात्रि का समय है। कल के दिन देखियेगा मैं क्या करता हूं। बन्दरों ने आज नगर में बहुत उत्पात मचाया। मैं गया और सायंकाल होते ही वह भाग गये। दिनचर रात के समय निशाचरों का सामना नहीं करते। किसी प्रकार रात्रि का अन्त हो। प्रातःकाल मैं उनमें से एक २ को अस्त्र शस्त्र के घाट उतार दूँगा।"

रावण की ढाढस बँधी रात सोच विचार में कटी। और सूरज के निकलते ही मेघनाद हथियारों से सजा बजाया संग्राम भूमि मे आया।

—:o:—

दूसरे दिन का युद्ध लक्ष्मण के शक्ती बाण का लगना।

सवेरा हुआ। बन्दरों को कहाँ चैन! उठते ही लंका पर चढ़ दौड़े। पहाड़, टीले, चट्टान जो जिसके हाथ लगा उठा लाये और लगे नगर के गली कूँचों पर फेंकने, जिस पर चट्टान गिरे पिस कर मर गया। जिस पर टीले पड़े कुचल गये और जहाँ पहाड़ का प्रहार हुआ वहाँ की दुर्गति का क्या कहना।

दब कर मरे हजारों सहस्रों कुचल गये। कितनों के प्राण चोट को सहकर निकल गये।

गलियाँ उजड़ गईं तो मुहल्ले उजड़ गये।
गाछ और वृक्ष कितने गिरे जड़ से उखड़ गये॥
आपत्ति और विपत का महा सामना हुआ।
रीछ और बन्दरों का कठिन सामना हुआ॥

मेघनाद सचमुच महा योद्धा बलवान था। वह संग्राम में आकर ललकारने लगा। "राम लक्ष्मण तपस्वी राजकुमार कहाँ हैं। अंगद और सुग्रीव किधर गये। नल नील को क्या होगया, जो सामने नहीं आते। जामवन्त और हनूमान आज मेरे सन्मुख आयें और मैं उन्हें युद्ध का कौतुक दिखाऊँ।"

ललकारते हुये वह बाण चलाने लगा। बाण बरसने लगे। सावन भादों की झड़ी लग गई। बंदर और रीछ बहुतायत से मरे। उनमें भगदड़ पड़ गई। इधर भागे उधर भागे। मेघनाद इनके पीछे पड़े। यह धड़ाधड़ गिरने और मरने लगे। छटी का दूध याद आ गया। लड़ाई भिड़ाई का ध्यान जाता रहा। जान के लाले पड़ गये।

हनूमान ने यह दशा देखी। क्रुद्ध हुए। हाथों से पहाड़ उठाया वह आकाश में जाकर अन्तरध्यान हो गया। रथ चूर २ होगया और सारथी घोड़ों के समेत दबकर कुचल गये। फिर मेघनाद हनूमान के सामने नहीं आया। वह जानता था कि यह बजरंग बली है। और वहाँ जा पहुंचा जहाँ राम और लक्ष्मण थे। वहाँ पहुंचकर इसने अस्त्रों और शस्त्रों की बरसा करने लगा। राम ने एक बाण मारा और उसने सबको मार गिराया।

मेघनाद खिसियाना हो गया और फिर उसने माया की लड़ाई आरम्भ की।

आकाश में अंगारे बरसने लगे। पृथ्वी पर पानी के स्रोत बन गये। और उनसे पानी की धारें बाढ के रूप में बह निकलीं। आया था अकेले। और अपने मानसिक बल शक्ति से अनेक पिशाच (पिश=माँस और आस=खाने वाला) और पिशाचिनियाँ प्रगट करलीं जो भयानक और घन-घोर शब्द करने लगे। माँस के लोथड़े लहू के जमे हुऐ थैले, हड्डी, चमड़े, बाल झुण्ड के झुण्ड गिरने लगे। मार, मार धाड़, धाड़ की ध्वनि कानों में आने लगी। फिर आकाश से धूल और मिट्टी चूरण के रूप में बरसी। ऐसा अँधेरा छा गया कि हाथ को हाथ नही सूझता था। रीछ और बन्दर डरे। वह समझने लगे प्रलय आ गया और उस से बचना कठिन है। राम इस निशाचरी माया (मानसिक साइंस) की रचना को देख कर मुसकराते रहे।

जिसकी माया ही प्रेरिक विष्णु शिव और महेश की,
मेघनाद आया उसीसे करने कैसी दिल्लगी।
पानी बरसाया कभी, आँधी विकट आई कभी।
तारे चमके और गगन में चांदनी छाई कभी॥

बंदरों और रीछों को भयातुर देख कर राम ने केवल मन बाण मारा। और राक्षसी लीला का कौतुक एक पल मे लोप होगया। मेघनाद को यह तो निश्चय होगया कि राम मानसिक बल बुद्धि में प्रवीण हैं। और फिर स्थूल संग्राम के लिये वह उन्हें ललकारने लगा। अंगदादि बानरों ने आज्ञा मांगी। और लक्ष्मण अपनी सेना के साथ रणभूमि में आये।

रावण को उसके गुप्त दूतों ने समाचार पहुंचाया कि लछमण लड़ने के लिये आ रहे हैं। इसने मेघनाद की सहायता के लिये अनगिनत शूरवीर और योद्धा भेजे।

दो सेना एक दूसरे के सामने आईं। उधर राक्षस थे इधर रीछ और वानर! दो बराबर दल मिले। राक्षसों के हाथों में कटार, बर्छे, बल्लम, बाण, गदा, तलवार, छुरे सब कुछ थे। इनके हथियार केवल दाँत और नख थे। उधर रावण का बल था। इधर राम की दया दृष्टि थी। दोनों भिड़ गये। मार धाड होने लगी। उधर से हथियार बरसते थे इधर से पत्थर और चट्टान फेंके जाते थे। राक्षस जब तक अपने हथियार सँभालते बन्दर उछल कर उनके सिर पर आ जाते। आँख नाक निकाल लेते। और सिर पर घूंसे मार कर उन्हें अचेत कर देते थे। लड़ाई हुई। गगन मण्डल में अँधेरा छा गया वीर हृदय खोल कर लड़े। किसी को किसी का भय नहीं था। आकाश के देवता कभी दुखी होते थे कभी सुखी। और लड़ने वालों की दृष्टि से दूर रह कर यह लीला देख रहे थे। इस लड़ाई के मूल कारण वही थे। चट्टे बट्टे लड़ाते रहना यह देवताओं ही का कर्तव है।

बहुत देर तक लड़ाई रही। लछमण ने देखा मेघनाद ऊधम ढा रहा है। बाण प्रहार करने लगे। वह घायल हो गया। समझा, "ऐसा न हो उनके बाणों से मैं काम आजाऊँ।" और कुछ न सूझी, शक्ती बाण चला दिया। वह लछमण के कलेजे में आकर लगा। और वह अचेत होकर पृथ्वी पर पछाड़ के समान गिरे। मेघनाद अब अभय होकर वहाँ पहुंचा जहाँ जहाँ वे पड़े हुए थे। चाहा कि उठा कर लंका ले जाये। बहुत बल किया, जोर मारा। वह उसके उठाये न उठ सके।

सन्ध्या का समय आ गया। लड़ाई बन्द करके अपने स्थानों को गये। राम ने बन्दरों से पूछा, "लछमण कहाँ हैं?" किसी ने कुछ उत्तर नहीं दिया। हनूमान दौड़े। उन्हें उठा लाये। देखा, लछमण अचेत हैं। गहरी चोट लगी है। दुखी हुए। शरीर पर हाथ फेरा उन्हें चेत नहीं आया।

चौथा समुल्लास

हनूमान का संजीवनी लाने जाना और अहिरावण को मारना

लछमण अचेत पड़े हैं। इर्द गिर्द बन्दर और रीछ खड़े हैं। राम अनजान बनकर पूछते हैं, "क्या किया जाय कि लछमण सचेत हो जाँय?'

जामवन्त ने कहा। लंका में एक वैद्य रहता उसका नाम सुखेन है। वह आवे तो औषधि लावे।

हनूमान सुनते ही उठे। लंका गये और सुखेन को उसके घर के सहित उठा लाये।

(तुम को सुनकर आश्चर्य होगा कि यह कैसे सम्भव है कि मनुष्य घर समेत उठ कर चला आये यह सम्भूत किया है। मन स्वप्नावस्था में नित्य ऐसी क्रिया करता है और आकाश मण्डल के रहने वाले प्रेत भी ऐसी लीला नित्य करते हैं। हाँ! जिसने नहीं देखा उसके लिए असम्भव है।)

सुखेन, ने कहा "इसकी औषधि संजीवनी बूटी है। रात ही रात वह आगई तो बच जायेंगे नहीं तो शक्तिबाण घातक हो जायगा।"

राम ने पूछा—"यह कहाँ मिलेगी?"

सुखेन ने उत्तर दिया—"इसका जन्मस्थान तो धौलागिरि पर्वत है।" वैद्यों के यहाँ रहती है। इस समय मेरे पास नहीं है। इसके पत्ते चमकते रहते हैं।

हनूमान ने सुना 'बोले, "तुम यहाँ ही रहो मैं अभी लाता हूं उसे खोज लाऊँगा।"

वह उठे। आँधी के समान उड़े। यह जा, वह जा, नौ दो ग्यारह हुए।

रावण को समाचार मिला। उसने अपने सम्बन्धी अहिरावण को बुलाया। "जाओ! हनूमान संजीवनी बूटी लेने जारहे हैं, उन्हें छलो। और धौलागिर की सारी बूटियों को चमकदार बनादो। हनुमान यह औषधि न ला सके।" अहिरावण जानता था कि "राम ब्रह्म के अवतार हैं।" समझाया, बुझाया, राम की भक्ति करने का उपदेश भी सुनाया। रावण ने कहा, "जा अपना काम कर नहीं तो अभी मार कर कचूमर निकाल दूंगा।"

यह डरा। जान तो गया कि मृत्यु निकट आ गई है। राम के दूत के हाथ से मरना अच्छा है। और रास्ता में यह साधू का भेष बनाकर एक कुटी में बैठ गया।

हनूमान दिन भर लड़ते भिड़ते रहे। थके मांदे थे, दिन डूबते ही उत्तराखंड को चले। प्यास ने सताया। साधू की कुटी देखी। पानी मांगा। उसने कमन्डल आगे धर दिया हनूमान ने कहा—"इतने जल से काम न चलेगा।" वह बोला—"ताल भरा है। पानी पीकर यहाँ बैठो। उपदेश सुनो तुमको शान्ति मिले।"

यह गये। पानी पीने के निमित्त ताल के भीतर पाँव डाला। एक मगरी बैठी थी। मुँह से पाँव पकड़ लिया। हनूमान ने उसकी पीठ पर एक घूंसा तान कर मारा। वह अप्सरा होकर आकाश को उड़ी और चलते २ इन्हें कह गई— मैं अप्सरा हूं। इन्द्र ने एक तपस्वी के छलने को भेजा। मैं आई। तपस्वी ने श्राप दिया मैं मगरी बन गई।" वह दयालु था। यह भी कहा —"राम का दूत इधर से आवेगा। उसके पाँव छूने के प्रभाव से तू फिर अप्सरा होजायगी। मैं तो जाती हूं। यह साधू नहीं है। अहिरावण है। तुम्हारे रास्ते रोकने के उपाय में है।"

यह कह कर वह तो उड़गई। यह पानी पीकर अहिरावण के समीप गये। "साधूजी! उपदेश पीछे सुनाइयेगा। गुरू दक्षिण पहिले ले लीजिये।" यह कह कर एक लात मारी। वह मरते समय अपने रूप में प्रकट हो कर राम २ कहते हुये प्राण त्याग कर गया।

——:o:——

पाँचवाँ समुल्लास

भरत की बल परीक्षा।

हनुमान फिर आँधी के समान उडे। धौला गिरि पर पहुंचे। यहाँ राक्षसों ने बूटियों के पत्तों को चमकदार बना रक्खा था। यह देख कर घबराये। सारे पर्वत को उठा लिया। और उडते हुऐ अयोध्या के ऊपर आये। भरत के देखने का ध्यान आया पहाड़ को सिर पर लिये हुए गरजे, तड़पे और किलकारी भरी। भरत की दृष्टि पड़ी। सोचा, "हो न हो यह रात की चर्य्या करने वाला निशिचर है। रावण राम की लड़ाई हो रही है। पहाड़ ले जाकर उन पर गिरायेगा। और उनको हानि पहुंचेगी।"

सोचते ही एक सींक का बाण चलाया। जो इनके पाँव में लगा। यह गिरे और गिरते समय तीन बार राम राम राम कहा। राम! तुम्हारी सेवा के निमित्त इधर आया। बाण लगा। घायल हुआ।

नहीं सेवा करी नहीं भक्ती बनी,
न इधर का रहा न उधर का रहा।

नहीं योग बना नहीं युक्ती बनी,
न इधर का रहा न उधर का रहा ॥

राम राम का शब्द सुनना था कि भरत के औसान उड़ गये। "हाय विधाता! मैंने क्या पाप किया था! मेरे कारण राम वन को सिधारे मुझ से कुछ न बन सका। आज मैंने राम भक्त को भी मार दिया।" यह कह कर रोते हुए हनूमान के पास पहुंचे। वह जान बूझ कर अचेत हो रहे थे। भरत ने कहा, "तू राम का भक्त है तो मेरी वाणी के प्रताप से उठ बैठ। तूने आज मुझे दारुण दुख दिया।"

यह उठ बैठे। भरत ने पूछा, "तू कौन है?"

यह बोले "राम का सेवक हनूमान हूँ।" लंका में ठनी है। राम रावण लड़ रहे हैं। लक्ष्मण को मेघनाथ ने शक्ति बाण मारा। वह अचेत पड़े हैं। सुखेन वैद्य ने उनके लिये संजीवन बूटी का सेवन बताया। मैं औषधि को नहीं जानता। पहाड़ ले जा रहा था। वैद्य पहिचान लेता। थोड़ी रात्रि रह गई है। मैं प्रातः काल से पहिले न पहुंचा तो लक्ष्मण का बचना कठिन है। तुमने मुझे मार दिया। अब करूँ तो क्या करूँ।"

भरत ने हनूमान के शरीर पर दया का हाथ फेरा। वह भले चंगे हो गये। एक बाण उठाया। "इस पर बैठ जा। मैं पल के पल में तुझे अभी लंका पहुंचाए देता हूँ।"

हनुमान ने कहा–"बस बस! मैं अब आपकी दया से अच्छा होगया। जल्द पहुंच जाऊंगा। आप चिन्ता न कीजिये। राम नित प्रति दिन आपका स्मरण करते थे और आपके बल पराक्रम की सराहना करते थे। मेरे मन में दर्शन की अभिलाषा हुई। राम जिसके बल बुद्धि की इतनी प्रशंसा करते हैं उन्हें चलकर देखना भी चाहिये। यह इच्छा मुझे यहाँ लाई। अब मैं अधिक नही ठहर सकता।"

यह कहकर हनुमान तो पहाड़ सिर पर उठाये हुये उड़ चले और भरत मन में सोचने लगे।

राम स्वामी हैं मेरे और राम का मैं दास हूँ।
राम मेरे मन में हैं मैं मन से उनके पास हूँ॥
राम वन में राम मन में राम मेरे सांस में।
राम का सुमरन भजन विश्वास में और श्वास में॥
राम मेरे राम का मैं राम मुझ में रम गये।
राम जब मेरे हुये सारे नियम संयम गये॥
मन वचन और कर्म से सेवक हूँ अपने राम का।
दास सच्चा बन गया मैं राम शोभा धाम का॥
ज्ञान मेरा राम है अनुमान मेरा राम है।
लोभ मेरा राम है अभिमान मेरा राम है॥

——:o:——

छटा समुल्लास

राम का विलाप

"आधी रात बीत गई। अभी तक हनुमान नहीं आये। क्या हुआ? क्या करने लगे? हनुमान तो देर लगाने वाले थे। कहीं रस्ता में राक्षस तो नहीं मिले। उनसे झगड़ा तो नहीं ठन गया।"

राम इस सोच में पड़ गये। लक्ष्मण को उठाकर बार बार छाती से लगाया। प्यारे लक्ष्मण उठो! अपने राम के विलाप को देखो। आज तुम्हारा वह अद्वितीय प्रेम कहाँ चला गया! मेरे लिये बाप छोड़ा, माँ छोड़ी, घर छोड़ा, बार छोड़ा। क्या आज मेरे लिये अपने प्राण को भी छोड़ोगे!"

सीता गई थी तो गई। मुझे इसकी भी इतनी चिन्ता नहीं है जितनी आज तुम्हारी चिन्ता सता रही है। सब मिल जाने हैं तुम्हारे जैसे भाई का मिलना असम्भव और महा कठिन है।

"कौन जानता था कि यों तुम्हारा विछोह हो जायगा नहीं तो वाप का वचन भी मै न मानता।"

"आज मेरे जीवन का आधार मुझ से अलग हुआ जा रहा है। मै विना पानी की मछली, बे फन का नाग हो रहा हूं। तुम नहीं रहे तो संसार मे मेरा जीना किस काम! प्यारे! उठो। तुम्हारा राम बहुत दुखी है।"

"अब क्या मुँह लेकर लंका को जाऊगा। लोग कहेंगे कि स्त्री के मोह में पड़ भाई का गला कटवा दिया।"

"सुमित्रा को क्या कहूंगा कि जिसने तुझ को सौंपा था। कौशल्या को क्या उत्तर दूंगा कि जब वह पूछेगी-"लक्ष्मण क्या हुऐ!"

"अपयश और अपकीर्ति का सहन मेरे लिये कठिन नहीं है। मैं सब कुछ कर सकता हूँ। तुम्हारे बिना मेरा जीना असम्भव है।"

"प्यारे लक्ष्मण! उठ बैठो राम को ढाढ़स दो। शान्ति तुम्हारे रूप में है। मैं तुमको देखकर जीता था।"

इस प्रकार विलाप करते हुए राम दहाड़ें मार मार कर रोने लगे। रीछ और बन्दरों ने उनकी दशा देखी। सेना में कुहराम मच गया।

राम में हर्ष और शोक कैसा! यह नर लीला थी, जिसका सॉग उन्होंने भरा था।

जब वह बहुत व्याकुल हो रहे थे उसी समय हनुमान पहाड़ उठाये सिर पर वहाँ आ पहुंचे। राम की जान में जान आगई। हनुमान को छाती से लगाया। सुखेण वैद्य ने दवा लगाई पिलाई। लक्ष्मण ने आँख खोल दीं। राम ने उन्हें गोदी से चिपटा लिया। सिर और माथा चूमा। बार बार बलायें ली।

हनुमान सुखेन वैद्य को उसके घर सहित लंका में पहुंचा आये और राम अपनी सेना के साथ लक्ष्मण के जी उठने पर सुखी हुए।

सातवाँ समुल्लास

रावण और कुम्भकरण

राम तो कुछ करने धरने वाले नहीं हैं वह तो आधार और सहारा मात्र है। करने धरने वाले लक्ष्मण ही हैं। इनके शक्तीबाण लगने के समाचार को पाकर रावण मन में मगन था। लक्ष्मण की मृत्यु लड़ाई का अन्त हो जायगी। वह जानता बूझता सब था। राम और लक्ष्मण के रूप को समझता था। इसका हट समझ बूझ के साथ था। वह राम के साथ अपनी शत्रुता की सीमा पर पहुंचाना चाहता था। शत्रुता भी एक प्रकार की भक्ति होती है। अन्त में सब मिल मिला कर एक हो जाते हैं और शिव और विष्णु के भक्तों में कोई भेद नहीं था।

विष्णु सूक्ष्म हैं, शुद्ध, निर्मल, पवित्र, सुन्दर, मनोहर! यह उनके भक्तों का आदर्श है। शिव स्थूल हैं। तन पर राख भभूति मले, श्मशान भूमि में निवास! हड्डी चमड़े की जगहों में बास! डाकिनी, शाकिनी, योगिनी, भूत, पिशाच, बेताल का साथ! विष्णु के हथियार शंख, चक्र, गदा, पद्म हैं। शिव के हाथ में त्रिशूल और डमरू हैं उनके यहाँ सुन्दरताई है इनके यहाँ कुरूपता है। यह शिव के भक्तों का आदर्श है। और दोनों की भक्ति चिर सीमा पर पहुंच जाती है। वहाँ शुद्धि अशुद्धि, सुरूपता और कुरूपता का अभाव हो जाता है। यह परम पद है। यह कैवल्य अवस्था है।

रावण यह जानता था। उसने राम से जान बूझ कर बैर ठान रक्खा था। राम नर हैं तो उसके पराजय कर लेने मे यश कीर्ति है। राम नारायण हैं तो उनके हाथ से मारे जाने में सद्‌गति है। वह इसी भाव को लेकर लड़ रहा था। हम चाहे उसे भला कहें चाहे बुरा कहें। अपना अपना आदर्श और इष्ट

प्रथक प्रथक है। लेकिन उसके महान भाव और अभय पन को तो देखो जिसके तोड़ने के लिये ब्रह्माण्ड की महा शक्ती को राम के रूप में प्रगट होना पड़ा। यह उसकी बहुत बड़ी महिमा है।

लक्ष्मण के अच्छे होने का समाचार सुन कर रावण मन में दुखी हुआ और सहायता लेने के भाव से कुम्भकरण के यहाँ गया। यह रात दिन पड़ा सोता रहता था। माँस मदरा अधिकता के साथ मिली। खाया, पिया पाँव पसार कर सो रहा। यह गहरी बेहोशी की नींद में चूर था। रावण उसके समीप में गया। शरीर को हिला डाला। करवटें दीं। उलट फेर किया। बड़ी कठिनाई से वह जागा। आँख मलते हुये उठा। "क्यों जगाया। आँखें कड़वा रही हैं। उनमें किरकिरापन है!'

रावण बोला-'लंका की दशा बिगड़ गई। राक्षस कुल मारे गये। न जगाता तो क्या करता!"

कुम्भकरण-"क्यों क्या हो गया!"

रावण-'राम लक्ष्मण अयोध्या के राजकुमार बन में आये। बहन सूर्पणखा के कान नाक काटे। मुझे बुरा लगा। खरदूषण और त्रिशरा को भी मार दिया। मैं राम की स्त्री सीता को चुरा लाया। वह रीछ बन्दरों की सेना लेकर लंका में चढ़ आये। समुद्र पर पुल बाँधा। लड़ाई ठानी। राक्षसों को एक एक करके मार दिया। दुमति, सुररिपु, मनुष्य अहारी, अति काम, अकम्प आदि सब क सब मारे गये। अब मैं, मेघनाद और तुम तीन बच रहे हैं। मैं महा दुखी हूं। विभीषण उनसे जाकर मिल गया।"

कुम्भकरण क्रोधातुर हुआ। "तूने बुरा किया। सीता जगदम्बा, जगत माता और भक्त जननी है। राम जगत पिता, जगत पालक और जगत आधार हैं। यह क्या किया? तेरा यह काम अच्छा नहीं हुआ। सीता को दे दे। राम की शरण में जा। इसी में तेरे कुल का उद्धार, सुधार और बचाव है। इसके अतिरिक्त अब और कुछ नहीं हो सकता। राम प्रगट हुए। नर शरीर में उनका दर्शन कर। बैर भाव छोड़दे। कल्याण इसी में है।

रावण ने देखा कुम्भकरण विफरा जा रहा है। तीक्ष्ण मदिरा के सैकड़ों मटके और सहस्रों प्रकार के भुने और पके हुए माँस के अहार मँगवा कर सामने रख दिये। तामसी कुम्भकरण को और क्या चाहिये था! खाया, पिया। नशा चढ़ा। झूमा। और मतवाला हुआ। "कहाँ है राम! चल कर मुझे दिखादे। मैं उनका दर्शनो तो करलूं! फिर जो होना है वह हो रहेगा।"

अठवाँ समुल्लास

तीसरे दिन का संग्राम

हिलता डुलता हुआ काला पहाड़ राम की सेना की तरफ़ बढ़ा। कोलाहल मच गया। यह कौन आ रहा है! विभीषण ने राम से कहा—प्रभू! कुम्भकरण लड़ने आरहा है।"

राम बोले—"आने दो! तुम पहिले उससे जाकर मिलो। तुम्हारा बड़ा भाई है। और देखो वह क्या चाहता है!"

विभीषण चल खड़े हुए! काले पहाड़ के पास गये! "नाथ! रावण ने मुझे लातों से मारा। अपमान किया, लंका से निकाल दिया। जब किसी का सहारा न रहा, राम की शरण ली। उन्होंने मुझे अपना सेवक और शरणागत बना लिया।"

कुम्भकरण ने कहा 'तू ने बहुत अच्छा किया। रावण का तो काल आगया। वह कुल घातक है। तू निश्चिर-कुल भूषण है।"

राम की भक्ती हो जिसमें उसका जीवन धन्य है।
अरपे तन, मन, धन उन्हें ऐसा सुमरन धन्य है॥
राम जगत आधार हैं सृष्टि के माता और पिता।

घर जहाँ जाकर रहें वह भूमि और बल धन्य है ॥
काल वश निश्चर हुए हैं काल के आधीन सब।
रावल कुल में अकेला तू विभीषण धन्य है ॥
जा, मैं भी राम के दर्शन को चला हूं।

विभीषण राह से हट गया। झूमता हुआ काला पहाड़ बगुले के समान चला। रीछ और बन्दर उसे देखकर घबराये। पत्थर, चट्टान बरसाये। वृक्ष उखेड़ उखेड़ कर मारा। हनुमान, अंगद और सुग्रीव ने पहाड़ उठा उठाकर उस पर फेंके। वह जैसे का तैसा रहा। न शरीर मे चोट आई न घाव हुआ। और उसके हाथ मे कोई हथियार भी नही था। रीछ और बन्दर साहस करके कुछ उसके समीप आगये। उसने पकड़ पकड़ कर उन्हे अपने मुंह मे डालना शुरू किया। कितने उसके मुंह मे जाकर नाक और कान के छिद्रों से निकल पड़े और अपनी जान बचाकर भाग खड़े हुए। सिर क्या था ? बड़े बड़े जीते जागते और चलते फिरते पर्वत का शिखरथा। हाथ लम्बे लम्बे वृक्ष और तन के रोंगटे लताऐं थी। कान और नाक पहाड की कन्दराऐं थी।

उसे कौन रोक सकता था ! किस में ऐसा सामर्थ्य था ! रीछ और बन्दर उसके सामने मच्छर और पिस्सू थे। यह उसे काटने लगे। नोंचने खोंसने लगे! इससे उसका क्या बिगड़ता था ! पहाड़ तो पहाड़! पहाड़ों में कितने ही रीछ बन्दर छुपे पड़े रहते हैं। पहाड़ को इनसे क्या हानि पहुंचती है। हॉ इसके चलने से पृथ्वी कॉपने लगी। यह तो कॉपने वाले कपि पहिले ही से थे। यह उनका प्राकृतिक और स्वाभाविक गुण था। और भी कॉप गये। कपकपाती हुई पृथ्वी पर इनका पॉव न थमता था न रुकता था, न जमता था। भूकम्प जब आता है सबके पॉव डगमगाने लगते हैं। रीछ और बन्दर उठे और गिरे। सॅभले और पड़े। यह लुढ़कते हुए गैंद बन गये। ऐसे पहाड़ के साथ लड़े भिड़े कौन! अंगद, हनुमान, सुग्रीव, नल, नील सब ने पहाड़ ला लाकर उस पर बरसाये। एक तो यं ही इन सबके हाथ पॉव फल रहे थे, दूसरे बड़े पत्थर को छोटे पत्थर से क्या चोट लगती है। चट्टान बरसे, सिर से टकरा कर नीचे गिरे। इसके लिये यह फूलो की वर्षा के समान थे।

कितने रीछ बन्दर उसके पावो से रुंद गये, कितने कुचले, कितने दबे, कितने मरे, उनकी गिनती कौन गिना सकता है।

फिर भी हनुमान, सुग्रीव और अंगद ने पहाड़ ला लाकर उसकी राह में डाल दिये कि यह झूमता हुआ मतवाला उड़ककर गिरे और यह राम लछमण क समीप न जाने पावे। यह इसी प्रबन्ध में थे कि वह बाढ़ के समान आपहुंचा। इसके पाँव की ठोकर लगी। हनूमान इधर गिरे। सुग्रीव उधर पड़े। अंगद बड़े वीर थे। वह अन्टागफील हुए। सबको मूर्छा आई। तन मन की सुध जाती रही। कुशल इतना हुआ कि इसका पॉव इन पर नहीं पड़ा, नहीं तो यह भी कुचल जाते।

तमाकार था पर्वताकार निशचर।
कोई वीर उसके कहां था बराबर ॥
कोई सामना उसका करता नहीं था।
भगे ऐसे कोई कहीं था कहीं था ॥
किसी को बग़ल में लिया दाब उसने।
किसी को लिया दाँत से चाब उसने ॥
न मारा किसी को न घूंसा चलाया।
मरा सामने इसके जो आप आया ॥
न घायल और न मरता था मारे।
थके रीछ बन्दर निबलवन पुकारे ॥
करो अब दया राम! सब इससे हारे।
लडें इससे क्या रीछ बन्दर बिचारे ॥

राम ने देखा कि योद्धा कुम्भकरण के हाथ से उनकी सेना व्याकुल होगई। वह तो लीला कर रहे थे और लीला लीला मात्र में इनको दिखाना चाहते थे कि राम स्वयं अकेले जो चाहें कर सकते हैं। रीछ और बन्दर उन्हें क्या सहायता दे सकते हैं!

(तुम समझोगे, मैं इस लड़ाई के वर्णन करने में झूठ कह रहा हूँ। नहीं, मै जो कुछ कह रहा हूँ, सच सच कह रहा हूं। मैं तो लिखते समय कुम्भक

रण को देख रहा हूँ। राम राक्षस का बध इस समय भी मेरी आँखों के सामने हो रहा है। तुम केवल उसके रूप को समझ लो और मेरे साथ सहमत हो जाओगे।)

राम ने हँसकर धनुषबाण उठाया। एक सन-सनाता हुआ बाण धनुष से निकला, उसका एक हाथ कट कर नीचे गिरा। दूसरा बाण चला। इसके दूसरे हाथ को काट गिराया। दो पहाड़ गिरे। कितने रीछ और बन्दर इनके नीचे दबकर मरगये।

काले पहाड़ से गेरू की धार दो नदियां बह निकलीं। जो आस पास थे उनकी फुहार के पानी से तरबतर होगये। वह रुन्ड मुन्ड पहाड़ आगे की तरफ बढा। काजल में लाल गेरू की लकीरें बड़ी शोभायमान हो रही थीं। और इर्द गिर्द के बन्दर फूले हुए टेसू के छोटे छोटे गाछ के समान दिखाई देने लगे।

बही रक्त की धार पृथ्वी में पोटी।
इधर से फिरी और उधर जाके लौटी॥
फिसल कर गिरे रीछ बन्दर न सँभले।
कभी डूबे उभरे कभी उठ के मचले॥

यह हथ कटा योद्धा वीर आगे की तरफ बढा। कौन कह सकता था कि वह किस ध्वनि में था। इतना तो उसने रावण और विभीषण से निस्सन्देह कहा था कि, "मैं शरीरधारी नारायण का चलकर दर्शन करूंगा।" इसीसे तुमको जो कुछ समझना हो समझलो।

वह बढ़ा। इस बढती हुई बाढ़ का रोकने वाला कौन था! राम ने देखा। पहाड़ सन्मुख चला आ-रहा है। एक बाण और कस कर मारा। इसका सिर उछला। और उड़कर वहां गिरा जहां रावण बैठा हुआ था। और इसका धड़ अड़अड़धम करते हुए पृथ्वी पर आगहा। मरते समय राम की सेना का कुछ भाग उसके नीचे दबकर कुचला और मर गया। और बड़े अचम्भे की यह बात हुई कि जब सिर में बाण लगा उसके मुँह से चमकती हुई ज्वाला बिजली के आकार में निकली जिससे थोड़ी देर के लिये चौतरफा जगमगाहट होगई और वह सबके देखते देखते राम के मुँह में समा गई।

रमा राम में राम का अंश था वह।
अंश का अंश और बंश था वह॥
निशाचर की भक्ति की महिमा थी उसमें।
तमोगुण था और तमकी उपमा थी उसमें॥
मरा मरके और राम का धाम पाया।
मिली शान्ति और विश्राम पाया॥
यही फल है भक्ती का भक्ती से युक्ती।
और इस युक्तीसे मिलतीहै सबको मुक्ती॥

नवाँ समुल्लास

चौथे दिन की लड़ाई

रात्रि आई दिन का अन्त हुआ। रात्रि और दिन के मिलाप का नाम सन्ध्या है। इसके तीन रूप प्रत्यक्ष हैं। सन्धि, संध्या, संध्या निशि! जब दो अवस्थायें मिल कर एक हो जाती हैं तो उसे सन्धि कहते हैं। दो के मिलने का नाम संध्या है और दो में से कोई अंश मिला और कोई नहीं मिला उसे साधक और साधना करने वाले संध्यानिशि कहते हैं। यह बहिर्मुखी संध्यायें हैं। और यह दो प्रकार की होती हैं। सुरी और आसुरी। इन्हे तुम चाहो तो दिनचरी और निशिचरी भी कह सकते हो। अन्तरीय या अन्तर्मुखी सन्ध्या भी दो प्रकार की होती है। जागृत और स्वप्न का मिलाप पहिली, स्वप्न और सुषप्ति का मिलाप दूसरी।

सन्ध्या आई। दिनचर दल सुखी था। नभ मण्डल के देवता प्रसन्न थे कि बहुत बड़ा निशिचर मारा गया। निशिचर दल महादुखी था। वहाँ राम और लक्ष्मण सन्ध्या के नित्य कर्म मे संलग्न हुए। यहाँ जब कुम्भकरण का सिर कट कर रावण के

सन्मुख गिरा, लंका में कुहराम मच गया। रावण की आँखों से आँसू की धार बह निकली। स्त्रियाँ उसके वीरत्व भाव का स्मरण करते हुए रोने लगीं।

> चलते पृथ्वी काँपती–गगन मंडल थर्राय।
> सो योद्धा भू में पड़ा काल से कहा बसाय॥
> कुम्भकरण रण बांकुरा मरा काल के हाथ।
> गया अकेले स्वर्ग को किसी ने दिया न साथ॥
> मैं मैं करते मैं गया तू तू करते तू।
> मैं मैं, तू तू जगत है सोच समझ कुछ तू॥
> दो दिन का व्यवहार है क्षण भंगी संसार।
> देख दशा संसार की समझ समझ पग धार॥
> आये हैं सो जाँयेंगे, जाँयेंगे विश्वा बीस।
> चरण कमल में गुरु के अब धर अपना शीश॥

मेघनाथ आया। कहने लगा–"रोना पीटना व्यर्थ है। जो होना था हो चुका। संग्राम ठना है। इस कुहराम से लाभ नहीं हानि है। मैं कल चल कर राम लछमण से कुम्भकरण का बदला लूंगा। वह जाते कहाँ हैं। मुझ से बच कर नहीं जा सकते।"

रात भर नगर में कुहराम मचा था। स्त्रियों का रोना पीटना बन्द नहीं हुआ। लंका को अपनी सभ्यता पर बड़ा घमंड था। समझ बूझ में निशाचर इस भूमि लोक क्या सारे सूर्य मन्डल में बढ़े चढ़े थे। लेकिन इस स्वाभाविक रीत का निरोध न हो सका। मनुष्य का हृदय स्वभाव से कोमल है। कैसा ही कोई समझे बूझे, जाने, माने। समय पर जब वियोग हो जाता है मन नहीं मानता आँखों से आँसू निकल ही पड़ते हैं। बुझाने से दुख की आग और प्रचण्ड हो जाती है। ज्ञानी, अज्ञानी दोनों की दशा एक जैसी है। ज्ञानी हृदय से, और हृदय में रोता है। अज्ञानी आँख से और आँख में रोता है। वह समझ बूझ कर अन्त में चुप हो रहता है। यह रो धो कर फिर संसार के व्यवहार फाँस में फँस-कर चुपकी साध लेता है।

प्रातःकाल बन्दर और रीछ जागे। फिर लंका पर चढ़ दौड़े। हा हा कार मच गया। मेघनाद की आँख खुल गई। उठा और अस्त्र शस्त्र से सज कर घर से निकल कर इन्हें ललकारा। "आओ, आज मैं युद्ध का स्वाद चखाऊँगा। तुम भी क्या समझोगे किसी से पाला पड़ा था।"

मेघनाद राक्षसी विद्या, मायावी खेल और साइंस के करतबों में सबसे अधिक प्रवीण समझा जाता था। सारे तत्व, आकाश, अग्नि, वायु, जल, पृथ्वी इसके आधीन हो रहे थे। इसने शत्रुओं के जीतने को नाना प्रकार की नई नई कलाएँ बना रक्खीं थीं। जब चाहा भूमण्डल को अँधेरा कर दिया और अँधेरे को उजाला बना दिया। मायावी तेज को देखकर आँखें चौंधिया जाती थीं। देखने वालों के हाथ पावों की शक्ति चली जाती थी। और यह वज्र प्रहार करके जैसे चाहता था मार गिराता था। उस समय में कोई वीर ऐसा नहीं रहा था जो इसके साथ संग्राम में आकर सामना करता। रावण का प्रताप इसी के बल पौरुष विद्या बुद्धि से वृद्धि को प्राप्त हुआ था।

वह आया। आते ही सिंहनाद के समान गरजा। रीछ और बन्दरों के हृदय दहल गये। कलेजे कांप उठे। इनके देखते देखते वह आकाश में चढ़ गया। और ऊपर से परस, परघ, पखान बाण, कृपाण बरसने लगे। सावन भादों की लगातार झड़ी लग जाने से यह भागते भी तो यह कहाँ भागते। मार मार, धार धार, की धुन चारों तरफ़ से सुनाई देने लगी। मेघ शब्द हुआ, बिजली चमकी। आकाश से लूक टूटे और ऊपर से वज्र प्रहार होने लगा जाने के और भागने के रास्ते बन्द थे। सब के सब एक स्थान में बँध गये।

इस कौतुक को देखकर रीछ बन्दर अपनी अपनी लड़ाई के करतब भूल गये। यह किस पर पत्थर चलावें। वहाँ इनके अतिरिक्त कोई भी नहीं था मेघनाद के शस्त्र प्रहार ने इन सबको निर्बल और पराक्रम हीन बना दिया। और फिर मायावी (सायंटीफिक) नाग फाँस फेंककर एक एक को इससे फाँस लिया। अंगद, सुग्रीव, हनूमान फँसे लछमण और राम भी उससे न बच सके। साँपों की वर्षा इस अधिकता से हुई कि राम की सेना उनसे

बँध गई। सारे शरीर में सांप लिपट गये। यह छूटें भी तो कैसे छूटें। उस विद्या को नहीं जानते थे। यह नहीं कहा जा सकता कि राम में सामर्थ नहीं थी। वह नट क्रिया का खेल कर करा रहे थे। हाँ! और सब इससे अनभिज्ञ थे।

आप फँसे और सबको फँसाया।
बहु विचित्र है राम की माया॥
खेल खेल है खेल पसारा।
महा खेल माया विस्तारा॥
खेल संग राजन की रीती।
खेल से दुखी रंक विपरीती॥
दुख सुख दोनों खेल समान।
राम का खेल महा बलवान॥
मेघनाद को किया खिलाडी।
आप खेल में बने अनाडी॥

सब फंसे पड़े हैं। हिल डुल नही सकते।

द्वन्द की रचना द्वन्द से है। बन्धन की मुक्ति, वियोग की योग युक्ति, आग के साथ पानी, और ताप के साथ शान्ति! और दोनों की दोनों क्षण भंगी हैं। और यहभी माया ही के खेल के अंग हैं।

आकाशी बलवान ऊपर से पत्थर बरसा रहा है इसके भी रोकने का उपाय है। मेघनाद नभ मंडल में छुपा हुआ साँप बरसा रहा है। वह समझता है इस करतब से राम को जीत लेगा! मनुष्य मात्र अपनी ममता बुद्धि से ऐसा ही समझता है। यह नहीं जानता कि यह सब रामकी माया का खेल है।

खेल में है खेल जग इस खेल ही का खेल है।
खेल ही में छुट बिछुड़ना खेल ही में मेल है॥
खेल ब्रह्मा खेल विष्णु खेल शिव की मूर्ती।
खेल की त्रुटि है सबमें खेल ही की पूर्ती॥
खेलको जब खेल समझा फिर वह दुखदाई नहीं।
जब नहीं दुखदाई है तब खेल सुखदाई नही॥
खेलते हैं खेल देवी देवता निष्काम को।
इस लिये वह प्राप्त हैं निज शान्ती विश्राम को॥
नर फँसे ममता मे बुद्धि लोभ में अभिमान में।
पाते हैं दुख आपदा वह भ्रम से अज्ञान में॥

मेट दो अज्ञान दुख तब दुःख गया संकट घटे।
फिर न बढ़ती होती है कोई न घटती से घटे॥
खेल खेलो रात दिन हानी है क्या इस खेल से।
लेना दुनियां कुछ नहीं अनमेल से और मेल से॥

सब बँधे फँसे थे। संयोग से एक जॉबवन्त बच रहे थे। मेघनाद गगन मडल से नीचे उतरा। जाँबवन्त की दृष्टि पड़ी। ललकारा—"पापी खड़ा रह।" यह बोला—"बूढा समझ कर तुझे छोड़ रक्खा था।" रीछ ने भाला उठा कर इसकी छाती पर अपने पूरे बल से मार दिया। चोट आई। वह पृथ्वी पर गिरा। मूर्छा आगई। जामवन्त ने उसकी टाँगों को घुमा कर ऐसे जोर से फेंका कि वह अचेत होकर लंका में जाकर गिरा।

देवताओं ने राम की सेना की बे बसी देखी। यह तो घबराई हुई थी ही, वह भी घबरा गये। गरुड़ से कहा—"जाओ राम की सहायता करो वह संकट में पड़े हैं।" सर्प का शत्रु गरुड़ और सर्प विद्या की बैरिन गरुड़ विद्या! पक्षी राज गरुड़ पंख फैलाये हुए संग्राम भूमि मे आ गये। यातो सेना के देह में लिपटे हुए नाग फुसकारते हुए सब को डरा रहे थे, या गरुड़ के आते ही सब की नानी मर गई। फुसकारना भूल गये। सिर झुका दिया और गरुड़ ने एक एक करके सब को निगल लिया और सेना संकट से छूट गई।

ब्रह्मा की सृष्टि महा विचित्र है। विष्णु और शिव के करतब से यह विशेष आश्चर्य्यजनक है। वह बैठे बैठाये अपनी युक्ति लड़ाते रहते हैं। द्वन्द की लीला इनके यहाँ अधिकतर है। गरुड़ और मोर को देख कर नाग और सांप बेबस बन जाते हैं। भेड़िये को देख कर बन्दरों की घिग्घी बँध जाती है। बन्दर वृक्ष पर बैठे हैं। एक भेड़िया आया। उसके देखते ही यह विस्मित होकर नीचे उतर आये। हाथ से आंखों को मीच लिया। भेड़िया एक बन्दर को उठा कर ले गया। तब यह फिर सचेत होकर डाली डाली पर कूदने फाँदने लगे। मोर की बोली सुनते ही साँप बेवश हो जाते हैं। फन

को पंजे से दबा लिया। पूंछ की तरफ से निगलने लगा। कौन जाने इसके अन्दर क्या गलाने वाली शक्ति है। माँस गल कर मुँह में गया और उसने हड्डी की ठठरी अपने मुँह से खेंचकर बाहर फेंकी साँप की ठठरियाँ ऊसर और जंगलों में मोरों के मुँह से निकली हुई होती है। जब नाग फनी गाछ फूलता है और फल लाता है बन्दर उसे देखकर किलकारी मारते हैं। इनके शब्द के सुनते ही नाग फनी के फल फूल मुरझा कर लटक जाते हैं। और जब बन्दर पेट भर कर उन्हे खा कर चले जाते हैं तब यह फिर उठ खड़े होते हैं। ब्रह्मा के जगत में ऐसी विचित्र विचित्र लीलाऐं सब जगह देखी जाती हैं। शिव और विष्णु के जगत की यह दशा नहीं है और है तो हम उसे बहुत कम जानते हैं।

सेना सर्प फाँस से विमुक्त हो गई।

दसवाँ समुल्लास

मेघनाद का यज्ञ विध्वंस और बध

विभीषण राक्षसों की नस नस और नाड़ी नाड़ी को पहिचानते थे। इधर मेघनाद की मूर्छा गई। उधर यह राम के समीप आकर कहने लगे-"मेघनाद को उसके इष्ट देव ने एक वर दिया है। जब उस पर कोई संकट आये वह एक अमुक प्रकार के यज्ञ का अनुष्ठान करे। उसके सिद्ध हो जाने पर फिर ब्रह्मा विष्णु महेश में से किसी का दाव न चल सकेगा। महाराज! अब वह यज्ञशाला में गया है। यज्ञ सिद्ध करके बलवान बनेगा। फिर किसी का बल उस पर न चलेगा। आप रीछ और बन्दरों को इसी समय भेजिये वह उसका यज्ञ विध्वंस करदें।"

राम ने लक्ष्मण को आज्ञा दी-"तुम जाओ। और सेना को साथ लेजाओ। मेघनाथ मानसिक एकाग्रता का अनुष्ठान न करने पावे। अभी वह चंचल वृत्ति का है। ऐसे समय मे उसका मार लेना सुगम है। नहीं तो बड़ी कठिनाई होगी।"

लक्ष्मण रीछ बन्दरों को लिये हुए यज्ञ शाला में पहुंचे विभीषण रास्ता दिखाने वाले थे। वहां जाकर देखा कि मेघनाद सिद्ध आसन पर बैठा हुआ यज्ञ कर रहा था। रक्त और आहुति दे दे कर वेदी की अग्नि को प्रचण्ड कर रहा था। और इसमे भैंसों के माँस के लेथड़ों को छोड़ता जाता था यह क्या साधन था। अब उसे कोई नहीं जानता बाण विद्या का भी लोभ होगया। इसके भी जानने वाले नहीं रहे। यह कई प्रकार की थी। वर्षा बाण, शक्ति बाण, ब्रह्म बाण, अग्नि बाण, वरुण बाण। इन सबका ग्रन्थों में नाम ही नाम रह गया है। इनका सम्बन्ध मानसिक क्रिया से विशेष था।

बन्दरों ने उसे नोंचना खोंसना आरम्भ किया। काटा, मारा, चोट पहुंचाई। वह हिलता नहीं था। आसन आरूढ़ होकर बैठा था। ध्यान में संलग्न था। बन्दर इसकी पीठ पर चढ़े सिर के बाल पकड़ कर उखेड़ने और लात घूंसों से मारने लगे। अन्त में वह चंचल होगया। शान्ति गई। अशान्ति आगई। क्रोधान्ध हो गया। त्रिशूल हाथ मे लेकर उठा। बंदर भागे। आगे आगे यह! पीछे पीछे वह! बादल के समान गरजा मेघ का नाद किया। लक्ष्मण ताक में लगे थे। तीव्र और तीक्ष्ण बाण चला दिया। यह उसी समय अन्तर्ध्यान हो गया। कहाँ चला गया! किसी को पता न लगा। फिर आप ही आप प्रगट हो कर शस्त्र प्रहार करने लगा।

कभी था प्रगट कभी छुप गया वह।
कभी तरजा गर्जा कभी छुप हुआ वह॥
गगन से गिरे वज्र और चमकी बिजली।

कभी आगिरी और कभी आके बिचली ॥
कभी आग बरसी कभी वर्षा पानी ।
लड़ाई थी या मृत्यु की वह निशानी ॥
कभी बादलों से घिरा नभ का मंडल ।
कभी चमका सूरज पड़ी सब में हलचल ॥
कभी आंधी आई कभी पानी आया ।
कभी धूल उसने गगन से उड़ाया ॥
जड़ी बूटी विष का पड़ा आके चूरन ।
मरे रीछ बन्दर थके उनके तन मन ॥
कभी बाढ आई बही राम सेना ।
कहा लछमण 'आज तू ना कि मैं ना ॥'
अकेला था मन से निशाचर रवा वह ।
किया आक्रमण आय इनसे बचा वह ॥
दुखी हो गये रीछ व्याकुल ये बन्दर ।
लगे कहने बलवान योद्धा है निशिचर ॥
नहीं मरता मारे हुआ क्या अमर यह ।
निबल भी नहीं होता क्या है अजर यह ॥
कहा लक्ष्मण ने "न घबराओ भाई ।
अभी मारूँगा मृत्यु है इसकी आई ॥
खिलाया बहुत इसको खेला खिलाड़ी ।
नहीं बच के जाता है अब यह अनाड़ी ॥'

लछमण ने तान कर एक बाण मारा। उसकी छाती पर लगा। गहरी चोट आई। पृथ्वी पर गिरा। "राम राम" कह कर प्राण त्यागा। सारे वीर भाव को उस समय भुला दिया। और सीधा राम धाम को चला गया। अंगद ने इसकी वीरता देखी। कहने लगे "धन्य है! इसकी माता की कोख को! जिसने ऐसा योद्धा वीर उत्पन्न किया"!

न देखा सुना कोई भी वीर ऐसा ।
हाँ तेज वाला महा था यह योद्धा ॥
लड़ा राम से इसके साहस को परखो ।
न भय था न चिन्ता थी चित इसका निरखो ॥
किया काम अपना किया नाम अपना ।
दिखाया लिया देख इस जग का सपना
जननी जने तो वीर जन नहीं बांझ रह जाय ॥
मेघनाद जोधा प्रबल सोभा रण समुदाय ॥

यह लंका का रत्न था। रावण के राज कोष का यह बहुमूल्य हीरा था। नभ मंडल के देवता इसकी मृत्यु को देख कर महा सुखी हुऐ। इसी पराक्रमी ने इन सब को लंका के कारागार में बन्द कर रक्खा था। जिससे इसने कहा 'शान्त हो जा वह शान्त हो गया"। जिसे चाहा अशान्ति कर दिया। यह वेदों के मूल तत्व को समझता था और यह वाणी उसके कण्ठ में रहती थी।

शन्नो मित्रः शम वरोणय शन्नो भवति अर्य्यमाशा
शन्नो इन्द्र विरहस्पवियो शन्नो विष्णु रु रु क्रमः

आकाश से फूल बरसे। देव वाणी की ध्वनि प्रगट हुई। बाजे बजे। नभ मंडल से पखावज और मृदंग की ध्वनि ओ३म् ओ३म् ओंकार के रूप में सुनाई देने लगी।

जै लछमण जै राम कृपाला ।
देव दनुज के तुम प्रतिपाला ॥
धन्य विजय यह धन्य पराजय ।
जै, जै, जै, जै, जै, जै, जै, जै, !

उधर देवता स्तुति सुनाकर देव लोक को धाये। इधर लक्ष्मण मेघनाद को मार कर राम के पास आये। तन बदन पसीना पसीना हो रहा था। जैसे कमल की पंखड़ियों पर जल की बूंदें शोभा देती हैं या .... के विस्तर में किसी ने चमकदार मोती टाँग दिये हैं।

लछमण राम के पाँवों पर पड़े। महा प्रभू ने इनका माथा और सिर चूमा। कपड़े से पसीना पोंछा और छाती से लगाया।

तोड़ा मान अपमान गढ़, मारा शत्रु बली ।
शीश नवाया धनी को, पाई शक्ति सिद्ध नौ निद्ध ॥

——:o:——

ग्यारहवां समुल्लास

लंका की दशा

रावण ने सुना मेघनाद मारा गया। नभ मंडल के मेघ के नाद की धुनि चुप हो गई सिर पीट लिया। मूर्छित होकर पृथ्वी पर गिरा।

मन्दोदरी सिर और छाती कूटने लगी। आज उसका महा सपूत बेटा पृथ्वी की शैय्या पर सो गया। छाती की ठंडक जाती रही। कलेजा उछल उछल कर मुँह को आने लगा।

ममता मा की कठिन है समझे क्या जो क्रूर है।
घाव बेटे को लगे मां का कलेजा चूर है॥

रोने और आँसुओं से मुँह को धोने लगी।

सारे नगर में कुहराम मचगया। मेघनाद लंका की आँख और उसकी आँख की ज्योति था। ज्योति गई अँधेरा छा गया। आशा मिटी। निराश ने आकर कलेजा दबाया।

दिन प्रतिदिन का दुख! राक्षस कुल का नाश हो गया। बसी हुई लंका उजड़ गई। और उसका उजाड़ने वाला कौन था? रावण। रावण ने बसाया था और रावण ही ने उसे उजड़वा दिया। सब उसे बुरा भला कहने लगे।

रावण को चेत आया। सबको समझाने लगा। "यह रोना धोना कैसा! जो जीता है वह एक दिन मरेगा। जो मिला है समय पर बिछुड़ेगा।"

न कोई रहा है न कोई रहेगा।
हर एक अपने दुख सुख सहेगा॥
सदा कौन जग में रहा आके भाई।
यहाँ मृत्यु ऋषि और मुनी तक की आई॥
मरा इन्द्र जीत जन्म फल को पाकर।
वह था बीर योद्धा नहीं था वह कायर॥
सुयश कीर्त्ति का लिया भाग उसने।
ग्रहण किया और किया त्याग उसने॥

कुछ चिन्ता नहीं में कल स्वयं लड़ने जाऊंगा।

मन्दोदरी पावों पर पड़ी। "मरने वाले मर गये तुम जीते रहो। मेरा सुहाग बना रहे। तुमने अपनी आँखों देख लिया कि राम नर नहीं हैं नारायण हैं। केवल नर लीला कर रहे हैं। सीता को लौटा दो। अटल राज करो। मेघनाद का शक्तीवाण निष्फल गया। उसका यज्ञ सिद्ध नहीं हुआ। शारीरिक और मानसिक बल में से कोई काम नहीं आया। अब भी चेतो। राम की शरण में आजाओ।"

रावण बोला अब चेतावनी का समय नहीं रहा।"

दमामा बजा रण को छोड़ूँगा कैसे।
मुझे भय न चिन्ता रही है किसी से॥
नहीं मैं हूँ कायर नहीं डरने वाला।
सुगमता से मैं हूँ कहाँ मरने वाला॥
नहीं पीठ रण से फेरूँगा मैं।
मैं देखूँगा तपसी यह कैसे बली हैं॥
तू जा बैठ कायर की रानी नहीं है।
किसी की न चिन्ता न रख मन में कुछ भय॥

रावण साधारण निश्चर नहीं था। वेदों का टीकाकार पंडित! नीतिनिपुण! जीवन के कर्तव्य और मंतव्य का जानने वाला! उसने सेनापति को बुलाकर कहा—"सब राक्षस हथियारों से सजे रहेंगे। कल मैं स्वयं तपस्वी राजकुमारों का सामना करूँगा।"

—:o:—

बारहवाँ समुल्लास

पाँचवे दिन का घमासान

सबेरा हुआ। राक्षस दल इकट्ठा किया गया। लड़ाई के बाजे बजने लगे। लंका का झंडा ऊंचा किया गया। अस्त्र और शस्त्र चमकने लगे। रावण की सजी सजाई सैना सन्मुख आनकर खड़ी होगई।

उसने उससे कहा–"यह सिर देने का समय है। जो शीश कटाने का प्रेमी हो, वह तो मेरे साथ चले और जिसे शरीर प्यारा है वह घर मे रहे। जो वीर रस का प्याला पीना चाहे और वीर रस का कौतुक दिखाना चाहे तो उसे अच्छा अवसर मिला है। हाथ पाँव सिर, चील कौओं के समान गगन मंडल में उड़ेंगे। रक्त माँस और हड्डियों की पृथ्वी की धूल के साथ वर्षा होगी। यह समय जीवन में कभी कभी आता है नित नहीं आता है। जो वीर हो मेरे साथ चले जो कायर हो अपने घर चला जाय।"

नहीं काम कायर का सूरों के रण में।
अकेला भला लगता है सिंह वन में॥
जो रण में डटे घाव पर घाव खाये।
वही साथ में मेरे लड़ने को आये॥
दिखाये न जो पीठ बीरों के आगे।
करे खोलकर छाती बीरों के आगे
पड़े पग तो आगे पड़े रह के उसका।
गड़े पग-तो रण की विपति सह के उसका॥
जो तुम सिंह हो साथ में मेरे आओ।
जो गीदड़ बने जाओ घर लौट जाओ॥
नहीं वीर के तन पै है शीश उसका।
यथा वीर है हो कन्धे शीश उसका॥
सहो मार और घाव सन्मुख रहो तुम।
न पीछे फिरो और न बातें कहो तुम॥
लड़ूंगा करूंगा मरूंगा मै रण में।
भिड़ूंगा, पड़ूंगा, गिरूंगा मैं रण में॥
लिया बैर और बैर का ऋण भरूंगा।
चला मरने को भार सिर पर धरूँगा॥
किसी का भरोसा न है आस मुझको।
है अपने ही भुज बल का विश्वास मुझको॥

राक्षसों ने उत्तर दिया।

नहीं रण में हम पीठ दिखाने वाले।
सहेंगे गरध, बाण और बरछे, भाले॥
नहीं हम हैं कायर न डर है किसी का।
न भय है न चिन्ता हमें बेबसी का॥
पसीना गिरा भूमि में जय तुम्हारा।
समझो लहू फिर गिरेगा हमारा॥
न रोके रुकेंगे न मारे फिरेंगे।
सहस्र जान से अब हम लड़ेंगे॥
जीने की आसा न मरने का भय कुछ।
हमें लालसा युद्ध के करने की है कुछ॥
बली हैं छली, कर से, बल से लड़ेंगे।
कभी बल कभी चल के छल से लड़ेंगे॥
बने राक्षस अपनी रक्षा करेंगे।
जो सन्मुख हुआ उसकी रक्षा करेंगे॥

रावण बोला–'ऐसा साहस है तो फिर हमारे साथ चलो।

नगाड़ों पर चोब पड़ी। उनका शब्द आकाश में गूंज उठा और रावण ने सज धज के साथ रण भूमि की तरफ पग बढ़ाया। उसके साथ चतुरंगी सेना थी। भाँति भाँति के रथ और बाहन, भाँति भाँति के घोड़े उनमें जुते हुऐ!

चलते समय सामने से छींक हुई। सिर पर कौए चील मँडलाऐ। पशुओं के मुँह से उनका चारा गिरा। छिपकली तन पर आकर गिरी। नाना प्रकार के असगुन और कुसगुन हुए। रावण इनको देख कर हँसा।

सगुन हो कि असगुन नहीं मैं हूँ डरता।
नहीं काल और मृत्यु को देख फिरता॥
लड़ाई करूँगा, भिड़ाई करूँगा।
समर बीरों से हाथा पाई करूँगा॥
कोई हो समर में जो सन्मुख में आया।
दिखाढूँगा मैं युद्ध और रण की माया॥

पृथ्वी काँप उठी। धूल मिट्टी उड़ी। आकाश में छा गई। राक्षस सिंहों के समान दहाड़ते हुऐ चले।

आज तप बल युद्ध, बल का हो रहा है सामना।
पांव आगे को बढ़े उनका कठिन है थामना॥

बन्दरों ने रावण के रण भूमि में आने का समाचार पाया। इनको चैन कहाँ था! राम की दुहाई देते और राम लक्ष्मण की जय का शब्द करते हुऐ लहराते हुऐ समुद्र की सदृश्य आगे बढ़े। पहाड़, पत्थर, चट्टान उठा उठा कर मारने लगे। यही इनके हथियार थे।

राम आये। वह पैदल थे। रावण अपने रथ पर चढ़ा था। विभीषण को दुख हुआ। प्रेम और भक्ती का समुद्र उनके हृदय में उमड़ने लगा। कह उठे—"नाथ! आप पैदल हैं। रावण रथ पर सवार है। ऐसे बलवान वीर पर आप कैसे विजय पायेंगे? वह तो सिर से पाँव तक लोहे और चमड़े से कसा हुआ है। आप के पाँव में तो जूती तक नहीं हैं।"

राम हँसे—"जै विजय करने का रथ और ही होता है। रावण का रथ लकड़ी और लोहे के पुर्जों का बना हुआ है। मेरे रथ की तरफ तुम्हारी दृष्टि नहीं गई। सुनो! धीरज मेरे रथ का पहिया है। सत्य की ध्वजा उस पर फहरा रही है। बल, विवेक, शम, दम, परोपकार, दया, क्षमा, कृपा, समता और साहस के दस घोड़े इसमें जुते हुऐ हैं। वृति, धृति के चमड़ों के तस्मों से वह बँधा हुआ है। संतोष मेरा कृपाण है। शुद्ध पवित्र, निर्मल और निश्चल मन मेरा धनुष है। यम, नियम के संयम उसके बाण हैं। मेरा कवच अभेद वाद और विप्र (ब्रह्मवेता, गुरू की पूजा है। इससे बढ़कर और कौनसा रथ होगा। जिसके पास ऐसा रथ हो, उसे संसार में कौन पराजय कर सकता है! विजय ऐसे ही रथ से होती है।"

राम के बचन सुन कर विभीषण सुखी हो गये। और आनन्द में मगन होकर पावों पर गिरे।

युद्ध आरम्भ हुआ। इधर रावण था उधर अंगद और हनुमान थे। उधर से हथियारों की वर्षा थी। इधर से पत्थर, चट्टान और पहाड़ उठा उठा कर प्रहार किया जाता था।

क्या आश्चर्य जनक संग्राम था। आकाशी देवता विमानों पर चढ़े हुऐ देखते आये और सचमुच वह देखने ही के योग्य दृश्य था।

इधर रीछ बन्दर ने पत्थर से मारा।
उधर बाण हथियार का था सहारा॥
इधर नाचते थे कटे सिर किसी के।
बगुले बने उड़ते थे धड़ किसी के॥
किसी को न सुध तन बदन की रही थी।
रुकी युद्ध करतब में वीरों की वृत्ती॥
किसी ने किसी को धराधर के पटका।
किसी ने किसी को दिया कर से झटका॥
मरा कोई और मरते, मारा किसी को,
गिरा कोई और गिरते, मारा किसी को॥

बन्दरों का खेल विचित्र था। पहाड़ के पहाड़ उठा लाये। रथों पर पटक दिया। सब टूट टाट कर लकड़ियों के ढेर बन गये। हथियारों की मार से यह नहीं डरते थे।

उधर कूदे उधर उछले इधर दौड़े इधर आये।
कभी रथ पर चढ़े नोंचा खोंसा मारकर धाये॥
डराया और धमकाया दिखाया दांत आंखों को।
चले जब मारने निश्चर कहा इनको कि · · ·
जो आये बातों में पत्थर गिरा घायल हुए निश्चर।
किया यों बन्दरों ने तंग उनको रण में रह रह कर॥

निशाचर भी बड़े योद्धा थे। यह युद्ध कर्तव्य में प्रवीण थे। बन्दर फिर भी बन्दर ही थे। यह राम का प्रताप था जो इन्हें उनसे लड़वा रहा था। नहीं तो कहाँ वह कहाँ यह! दोनों दलों के लड़ाके मरे। बन्दर कम और निशिचर अधिक। रावण ने यह दशा देखी रथ से उतर पड़ा। बाण चलाना प्रारम्भ किया। उसके एक एक बाण से कई कई रीछ बन्दर मर मर कर पृथ्वी पर गिरने लगे। यह चिल्लाये, "रावण हमारा काल बन कर आया है।"

लक्ष्मण सामने आये। "रीछ और बन्दरों को क्या मारता है। वीर है तो मेरा सामना कर।"

यह हँसा—"तुम्ही को तो मैं देर से खोज रहा हूं। आओ! पुत्र के मारने का तुमसे बदला लूं।"

दोनों लड़े एक के बाणों को दूसरे के बाण रास्ते ही में काट गिराते थे। किसी का दाव नहीं चलता था। लड़ते लड़ते रावण शिथिल हो गया। उकता कर ब्रह्म सर का प्रहार किया। वह बाण लक्ष्मण की छाती में आकर लगा। यह अचेत होकर पृथ्वी पर गिरे। रावण आकर उठाने लगा। वह चाहता था कि लंका ले जाये। लक्ष्मण का शरीर उससे न उठ सका। हनूमान ने दशा देखी। दौड़ते हुए एक घूंसा तान कर रावण की पीठ पर मारा। वह मूर्छित हुआ फिर संभला। हनूमान के बल की

प्रशंसा करने लगा। यह बोले-"मेरे बल को धिक्कार है जो अब तक तू जीता बचा। दूसरा कोई होता तो उसकी हड्डी पसली चूर चूर हो जाती।"

रावण डरा कि कहीं फिर घूंसा न मारे। इन्हें छोड़कर और तरफ बाण वर्षा करने लगा। हनुमान लक्ष्मण को राम के पास उठा लाये। आपने दया की दृष्टि की। हाथ उनकी छाती पर रक्खा। वह भले चंगे हो गये। और ब्रह्मशर की शक्ति ब्रह्म लोक को चली गई। राम ने एक बाण मारा। रावण तो बच गया। उसका सारथी मर गया। दूसरे को रथ पर बैठा कर वह लंका चला गया।

——:०:——

तेरहवां समुल्लास

रावण का यज्ञ विध्वंस

सायंकाल को दोनों दल अपने अपने स्थान को चले गये।

विभीषण ने राम से कहा-'रावण गया है। वह घर में जाकर यज्ञ करेगा। और इसके सिद्ध होने से वह अजय हो जायगा। फिर किसी के मारे न मरेगा। रावण में केवल शारीरिक बल नहीं है किन्तु मानसिक बल भी अधिक है। और जब जब उसे कठिनाई होती है वह मानसिक साधन से सहायता लेता है। उस समय उसका तेज बहुत बढ़ जाता है। और फिर वह किसी को अपने सामने वीर नहीं गिनता। इसी यज्ञ बल के प्रताप से उसने सबको बिजय किया है। बन्दर और रीछों को भेजिये वह उसके यज्ञ को विध्वंस करदें।"

अंगद, हनुमान दिन की लड़ाई से थक गये थे। फिर भी राम की आज्ञा के सुनते ही उन्होंने निडर होकर रावण के महल मे जाकर प्रवेश किया। संतरी और पहरेदारों ने रोका। इनको मार गिराया। किवाड़े तोड़ी, खिड़कियाँ उखेड़ दीं, खम्भे उखेड़ दिये और उस जगह जा पहुंचे जहाँ वह विस्माधित होकर बैठ रहा था।

महल में तो इनके आने से हलचल मच ही गई थी। फिर भी सब चुपचाप थे। और रावण अपने ध्यान में था। उसे देखकर बन्दरों को क्रोध आगया। अंगद ने उसे कहा-"रण छोड़कर निर्लज्ज घर मे आकर छुपा और अब बगले के समान ध्यान लगा कर बैठा है। उठ! इस पाखंड को छोड़! लेकिन उठे कौन! वह तो चित्त की वृत्तियों के निरोध और एकाग्र करने में लगा था।"

अंगद ने लात मारी। इसने जगह नहीं छोड़ी और बन्दरों ने नोंचा खसोटा फिर भी रावण ने इनकी तरफ ध्यान नहीं दिया। उठाने लगे वह पहाड़ के समान जमकर बैठा हुआ था। किसी के उठाये नहीं उठा।

यह खिसिया गये। अन्त में जब और उपाय कुछ न सूझा तब बन्दरों ने मिल मिला कर स्त्रियों के केश पकड़ पकड़ कर घसीटने लगे। कुहराम मच गया। रोना पीटना होने लगा। जैसे कोई मनुष्य जीते जी अपनी नाक पर मक्खी नहीं बैठने देता वैसे ही वह अपने घरों की स्त्रियों के अपमान को सहन नही कर सका। रावण उठा। बन्दरों ने उसके यज्ञ को विध्वंस कर दिया। वेदी नष्ट भ्रष्ट करदी। सामिग्री तितर बितर होगई। इनके सन्मुख आया। इनका मन्तव्य तो उसके अनुष्ठान भंग करने का था। उसका नाश कर दिया। और वहाँ से चल खड़े हुए। इसने पीछा किया। बन्दर कूदे फाँदे, और वहाँ से चल दिये। यह घर को लौटा। और अब सम्पूर्ण अंगसे जीवन से निराश होगया।

——:०:——

छटे दिन की लड़ाई

प्रातःकाल फिर रावण अस्त्र शस्त्र से सजकर निकला। फिर असगुन होने लगे। और गिद्ध मंडराते हुए वीरों के सिर पर उड़ उड़ कर बैठने लगे। लोगों ने समझाया "युद्ध को रोक दो।" इस ने एक की भी न सुनी और सुनता कैसे! योद्धा वीर था। और वीरों में जगत-प्रसिद्ध था।

> चला वीर रण को फिरे कैसे पीछे,
>
> न रोका हुआ पहले अब भी नहीं है।
>
> मरे मारे मरने से है काम उसको,
>
> इसी मरने में जग में है नाम उसको।

आज्ञा दी "कुछ नहीं, डंके बजाओ।" युद्ध के बाजे बजने लगे। वह अपनी सेना को उसी अगले ठाट बाट से लाया। वह ताड़ वन के सामान खड़े हो गये।

आकाश में देवता अपने हृदय मंडलों में प्रार्थना करने लगे—'देव प्रिय! देव प्रतिपालक! देव सहायक प्रभु! आपने इस दुष्ट को बहुत खिलाया। खेल अपनी सीमा तक पहुंच गया। अब संतोष नहीं रहा। पृथ्वी दुख और क्लेश से भर गई है। इस रावण ने उसे बैर, द्रोह और पाप का मंडल बना दिया। किसी प्रकार अब जल्द इस अत्याचार का अन्त हो जाय, सहनशक्ति नहीं रही, त्राहिमाण! त्राहिमाण!! त्राहिमाण!!! सीता जो स्वयं प्रकृति का रूप, आपकी छाया और आप की माया है, अत्यन्त दुखी है। समय आ गया कि उसके दुखों की समाप्ति हो! दया हो! दया हो!! दया हो!!!

घट घट के प्रेरक और घट घट के व्यापक राम ने देवताओं की विनती सुनी, मुस्कराये, उठ बैठे, जटा जूट, को सँवारा, सिंगारा, कमरक, धनुष, बाण हाथ मे लिया, और वीर रस के स्वरूप बन गये, कमलाकार आँखों मे लाल रक्त के डोरे आ गये, देवताओं ने इस रूप को देखकर उसके प्रतिबिम्ब को अपने अन्तर में रख लिया।

> नमो सच्चिदानन्द अद्भुत अनूपम्।
>
> नमो विश्व हितकर नमो विश्व रूपम्॥
>
> नमो दिव्य शक्ति, नमो योग युक्ती।
>
> तुम्हारे ही चरणों में है भक्ति मुक्ती॥
>
> दया कीजिये यह दया का समय है।
>
> बहु बढ़ गया जग में द्रोह का भय है॥

इधर राक्षस भी ठठ कर सन्मुख आ गये। बन्दर और रीछ किलकारते हुए उनके सामना सामना करने के निमित्त प्रस्तुत हो गये। तलवारें चमकीं। बिजली गरजी। हथियारों के कड़क की ध्वनि प्रचंड हुई। आकाश में धूल उडने लगी। उसके प्रमाणुओं के बीच बीच में सेनाओं का बिम्ब प्रतिबिम्ब इन्द्र धनुष के समान जगमगाने लगा, बाण चले, वह आकाश मंडल की घटा बन गये। दोनों तरफ मार धार होने लगी। लड़ाके दौड़ते हैं, हथियारच लाते हैं। घायल हो होकर पृथ्वी पर गिरते हैं गिर गिर फिर सँभलते और उठते हैं। जो नहीं उठते दबकर कुचल जाते हैं। मैदान मुर्दों की लाशों से पटने लगा। लाल लहू की धार देखते देखते पृथ्वी पर पोट गई। और पानी की बाढ़ के समान इधर से उधर बहने और दौड़ने लगी। बीर सर का समुद्र उमड़ने लगा। उधर हाथ, पांव, सिर कट कट कर बाणों का पंख लगाये हुए उड़े। इधर उनके पकड़ने के ध्यान में नाना रूप के चील और गिद्ध उड़ उड़ कर अपने पंजो मे दबोचने लगे। पृथ्वी पर निशिचर और बन्दरों की लड़ाई थी। अन्तरिक्ष में पक्षियों की हाथा पाई हो रही थी। और ऊँचे स्वर्ग मे क्या हो रहा था? आकाशी विमानों पर चढ़े हुये देवता राम, रावण की लड़ाई का दृश्य देख रहे थे। संग्राम क्या था बीरता के नाटक का तमाशा था।

> गिरा एक पट तो फिर दूजा आया।
>
> लड़ाका गिरा उठ पड़ा चोट खाया॥
>
> लड़ाई की थे खेलते वीर होली।

इधर एक टोली उधर एक टोली ॥
धनुष को लिया कर में पिचकारी न्यारी।
बहा रक्त का रंग चहूँ ओर भारी ॥
धनुष से निकलते थे बाण उनके ऐसे।
चले धार पिचकारी की बहके उससे ॥
बदन पर पड़ा रक्त था और लहू था।
वही रंग के रूप का हू बहू था ॥
हुई लाल पृथ्वी हुऐ लाल प्रानी।
कुछ ऐसी ही होली थी दो दल ने ठानी ॥

लड़ने वाले मतवाले थे। होली में लोग भंग की गोली खाकर उन्मत्त हो जाते हैं। यहाँ पत्थरों के गोलों की चोट खा खाकर और बाणों की नोंकों से छिद छिद कर पागल हो रहे थे। लड़ाई की होली की धूम थी। होली के दिनों में लोग अनाप शनाप गाली गलौज बकते हैं। यहाँ योद्धा वीर एक दूसरे को दुर्वचन कह कह कर ललकारते थे।

राम के बाणों की तीक्ष्ण नोंकों की चोट खा खाकर निशाचर वैसे ही धड़ाधड़ भूमि में गिरने लगे, जैसे होली मनाने वाले भंग धतूरा खा खाकर मिट्टी में लोट रहे हैं।

थोड़ी ही देर में बली राक्षस सेना मृत्यु की शैय्या में अचेत और निर्जीव होकर सो रही। रावण अकेला रह गया। मन में सोचने लगा, "अब क्या करूं! स्थूल युद्ध लगभग समाप्त होगया। अब सूक्ष्म मानसिक माया के युद्ध की बारी आगई। राक्षसी माया (स्वरचा की मानसिक साइंस) से काम लेना चाहिये। जिसकी सहायता से एक एक प्राणी में सैकड़ों का बल आजाता है।

—:o:—

पन्द्रहवां समुल्लास

रावण का माया युद्ध (मानसिक साइंस की लड़ाई।)

इन्द्रने अपना रथ भेजा। मातली उसका रथमान होकर आया। राम मुस्कराये। रथ पर चढ़ बैठे। उधर भी रथ था इधर भी रथ था। राम दश रथ वाले के पुत्र थे और रावण में दस रथों के बल का मुख्य भाग था। वह स्थूल थे। वह सूक्ष्म रथ वाला था। इसी से वह दसमुख (दस मुँह वाला) कहलाता था।

स्थूल जब अचेत हो जाता है तब सूक्ष्म जागता है। जागृत के पीछे स्वप्नावस्था आती है। जागृत में स्थूल दस इन्द्रियाँ बहिर्मुखता से काम करती हैं। और स्वप्न में यह मन में लय होकर अन्तर्मुखता से काम लेती हैं। इन दसों इन्द्रियों की जड़ मन में रहती है और मन ही मुख्य खिलाड़ी बनकर इन्हें नचाता खिलाता रहता है।

सोने की लँका कहाँ है? वह भू, भुवः, स्वः, से ऊंचे महर लोक मे है। भू, भुवः, स्वः त्रिकुटी हैं। त्रिकुटी त्रिकूट पर्वत पर है। वह महत् तत्व है। चौथा पद यहाँ से आरम्भ होता है। और वह मस्तिष्क में सूक्ष्म देह के रूप में है। इसी को मन कहते हैं। इसी महत तत्व में सत, रज, तम की तीन कोट वाली शक्तियाँ रहती हैं।

शारीरिक बल काम में नहीं आसका। राम के बाणों ने उसे तोड़ दिया। रावण मानसिक बली भी था। और मन की माया का खेल जानता था। रथ पर बैठा हुआ राम रथ के सामने आकर ललकारा—"तपस्वी! अब आजा मेरे सामने। तूने जिन्हें मार गिराया है मैं उनकेसमान नहीं हूँ। संसार जानता है कि मैं रावण हूं। सारे देवी देवता (दिव्य शक्तियाँ) मेरे आधीन हैं। तुझे घमंड होगया है। खरदूषण, विराध को मार दिया। कुम्भकरण और मेघनाद को व्याध (कसाई) बनकर हन दिया। आजा! अब मुझ से भागकर कहाँ जाता है। आज ही तो

मैं इन सबका तुझसे बदला लूंगा। अब तू मेरे पाले पड़ा है। मैं मारे बिना तुझे न छोड़ूंगा।'

राम हँसे—"क्यों रावण! क्या वीर और योद्धा भी अपने मुँह अपनी बड़ाई करते हैं। अपने मुँह मियाँ मिट्ठू बनना असभ्य और अनुचित समझा जाता है। संसार में नाना प्रकार के वृक्ष होते हैं। कोई ठूंठ ही ठूंठ रहता है। किसी मे पत्ते ही पत्ते रहते हैं। कोई पत्ते और फूल देता है और किसी किसी से पत्ते फूल फल सब ही आते हैं। अच्छा वह है जिसमे सब होते हैं जैसे आम, कटहल ही में फूल नहीं फल आता है। फलने और फूलने वालों की बड़ाई है। अपने मुँह से अपनी बड़ाई न कर। ज्ञानी इसे बुरा कहते हैं।"

रावण हँसा—"अरे क्यों न हो! तपस्वी बनकर आया है। मुझे ज्ञान शिक्षा देना चाहता है! चल अब मेरा सामना कर।"

यह कह कर रावण ने तीर मारना आरम्भ किया। उसके बाण आकाश मण्डल में काली घटाओ के समान छा गये। सूरज की धूप छिप गई। अन्तरिक्ष मण्डल मे अँधेरा छा गया। राम ने एक अग्नि बाण छोड़ा। उसने सबको जलाकर भस्म कर दिया। न सौ सुनार की न एक लुहार की!

रावण ने शक्ती बाण मारा। यह उनके अग्नि बाण का सामना न कर सका। जिधर से आया था उधर ही को लौट गया।

फिर चक्रों और त्रिशूलो की वर्षा की। राम के एक ही बाण ने इन सबको आ गिराया।

रावण खिसियाना होगया। सात बाण कस कस कर इनके सार्थी को मारे। वह राम राम करते हुए भूमि मे गिर पड़ा। राम ने इस पर दया की दृष्टि डाली। वह उठ बैठा।

रावण बाण विद्या में महा प्रवीण था। अनेक प्रकार के बाण चलाते हुए राम पर सर किये। राम के एक बाण ने इनको पार लगा दिया।

फिर राम ने अपने बाण मारे। इसके रथ के घोड़े और इसका सार्थी मर गया। उसी समय इसने दूसरा रथ मंगाया। राम ठहर गये। रथ आया। यह उस पर चढ़ा, और फिर बाण मारने लगा। सब के सब निष्फल हुए।

तब रावण ने दश शूल (दस नोकों वाला) हथियार मारा जो उसका मूल शस्त्र था। राम के बाण ने उसे भी काट गिराया और साथ ही उसका शिर भी कटा। कहने वाले कहते हैं कि रावण के दस सिर और बीस भुजा थे। रहे होंगे। हमारे अनुमान की पहुंच वहाँ तक नहीं है। यदि दस सिर भी थे वह एक ही बाण से कटे और कमल के समान आकाश में मँडलाने लगे। सारा शरीर रक्त से लाल हो गया। फिर दूसरा बाण चला बीस भुजा भी कट कट कर गिरे। अब वह रुन्ड मुन्ड होगया। धड़ ही धड़ रह गया।

देखने वालों ने देखा, समझा। रावण मारा गया। यह भूल थी। नये सिर और नई भुजाएँ उसके धड़ में लग गईं। यह काटते थे वह कट कट कर गिर पड़ते थे। वह कटते और गिरते भी देखे गये। और पल मारते ही नये नये उनकी जगह आ गये। सिर और भुजाएँ आकाश मंडल मे उड़ने और फड़ फड़ाने लगे और नये नये उसी समय लगने लगे।

यह एक बाज़ीगर का तमाशा था। राम सच्चे बाजीगर थे। रावण झूठा बाजीगर था। जैसे राम तो सच्चे हैं और यह ससार झूठा है। झूठ सच के सहारे ही रहता है। बिना सत के असत रह कहाँ सकता है। सत आधार है और असत उतरी धार है। धार और आधार के समझ लेने से यह जगत साक्षी भास हो जाता है लेकिन साक्षी तो कोई कोई ज्ञानी ही होगा। सब के सब ज्ञानी नहीं होते।

साक्षी हों आँखों वाले देखें इस लीला को तब।
पल के पल में समझें इसको और समझें इसको अब॥
'स' सहित है, 'आक्ष' आँखें, 'ई' है अभिमानी बना।
भ्रम में अज्ञान में अनुमान में रह कर तना॥
जब तना तन बन गया तन में यह मन बस गया।
बस के तब अभिमान इसमें आप रिस कर रिस गया॥

साक्षी होना कठिन है राम की कृपा बिना।
गुरु की जब संगत मिले आजाये तब साक्षीपना॥
साक्षी संसार में रहता है-वह लम्पट नहीं।
है सुगम गुरु की दया से घाट यह औघट नहीं॥

रावण ने अनेक बार अपने शिर शिव भगवान् को काट काट कर चढ़ाये थे। वही अर्पण और समर्पण का संस्कार है जो राम के साथ खेल खेल-रहा है। तुम इसे नहीं समझते! नहीं समझते न सही! क्या कभी स्वप्न में तुमने अपने धड़ को सिर से कटा देखा है। वहाँ भी यह मन ही का खेल है। साधक की समझ में जल्द आता है। जो साधन सम्पन्न नहीं हैं वह अनुभव सम्पन्न कैसे होंगे।

सच्चे और झूठे बाजीगरों का सामना हुआ। दोनों दॉव पेच खेलते हैं। हारता एक भी नहीं। और आँखों वाले रणभूमि में खड़े हुए यह लीला देख रहे है!

——:o:——

सोलहवां समुल्लास

रावण का माया युद्ध (लगातार)

सिर और भुजा कटते हैं और जुड़ते हैं। काटने वाला काटता है। जोड़ने वाला नये नये सिर ला ला कर लगा देता है।

यह लाने वाला, लगाने वाला और जोड़ने वाला कौन है? रावण का मन। मन के अतिरिक्त यह और कुछ नहीं है।

सृष्टि में इस मन तत्व की बड़ी महिमा है। इसी के बल से और इसी के सहारे और इसीसे आकाश, वायु, अग्नि, जल और पृथ्वी उत्पन्न होते हैं। यही ब्रह्मॉड और पिन्ड की रचना करता है। अनाड़ी समझता है कि आकाश सर्व व्यापक है। इस अज्ञानी को कोई कैसे समझाये। आकाश महाभूतों के मन्डल में व्यापक है। इसी में वायु, तेज, जल और पृथ्वी रहते हैं। यहाँ तक तो सच है। और यह आकाश स्वयं कहाँ रहता है? यह आकाश मनमें बसता है। इसकी उत्पत्ति मन से है।

मनसे सब प्रगट हुए अरु जगत मन की कल्पना।
मनही मेंहै नभ पना, वायु पना और जल पना॥
मन में अग्नी मन में पृथ्वी बस रही है सर्वदा।
मन ही से आधार सब का यह है मन में सर्वदा॥
मन है पानी मन है वायु और यह मन आग है।
मनमें अमृत है बसा मन विषका काला नाग है॥
मन कभी ऊँचे चढ़ा और मन कभी नीचे पड़ा।
मन कभी उभरा कभी मिट्टी में आकर वह गड़ा॥
मन है चंचल मन है निश्चल योगियों से पूछलो।
चाहे इसके सिरको पकड़ो, चाहे इसकी पूँछलो॥
मन है दाता मन है दानी और मन कंजूस है।
मन कभी राजा बना और मनही मटिया फूस है॥
योग क्याहै, मनका करतब ज्ञान मन की जान है।
मनको समझेगा वही मनकी जिसे पहिचान है॥
दौड़ो, दौड़ो, दौड़ो, दौड़ो, दौड़कर जबथक गये।
मन जहाँ का था वहाँ अपनी दशा में मन रहे॥
मनकी वृत्तीको किया जब योगियों ने रोक थाम।
इसके साधन से मिला तब राम और सीता का धाम॥
मन हुआ चंचल फँसा तब आके माया जाल में।
कैसे छूटे वह है जकड़ा जगत के जंजाल में॥
गुरुकी संगत जब मिले तब हाथमें आये यह मन।
गुरु की करुणा और दया ही समझो तुम सच्चा जतन॥
मन्त्र मूलम वाक्य सतगुरु, मूल पूजा गुरु पदम।
मूल ध्यानम गुरू मूर्ती मोक्ष पद गुरु केवलम॥
जो नहीं मनको समझता सहज अज्ञानी है वह।
भ्रम में है वह अविद्या में है अभिमानी है वह॥

यह जगत क्या है? मनोराज है, कल्पित है मानसिक है! और यह सदा मन के संकल्प विकल्प में रहता है।

मन है कारण, सूक्ष्म है, और मन महा स्थूल है।
बीज मन है पात फल और मन ही धड़ और फूल है॥
मन नहीं समझा तो फिर रावण को क्या जानोगे तुम।
राम की महिमा को कैसे कह दो पहिचानोगे तुम॥

संसार तीन गुण वाला त्रिगुणात्मक है। गुणों का नाम सत, रज और तम। गुण किसी विशेषण को नहीं कहते हैं। लोग गुण की उलथा कोष करके मन्तव्य का नाश कर देते हैं, और बात समझ में नही आती है। समझमें आई हुई भी दूर भाग जाती है। मैं पहिली बार तुम्हें वह रहस्य समझाता हूँ जो इन शब्दों मे गुप्त है।

सत नाम है सत्ता का। सत होने को कहते हैं। जिसमे होने का गुण हो वही सत और सत्ता (संस्कृत अस—होना है) और तम् इसी सत की छाया है। सत प्रकाश है तो तम छाया मात्र है। कोई प्रकाश विना छाया के नहीं होता। दोनों साथ साथ रहते हैं और इन दोनों के बीच मे एक तीसरी दशा उत्पन्न होती रहती है जिसे रज कहते हैं। रज द्वन्द्वरूपा है। जिसमें सत और तम दोनोंका मेल रहता है, उनका रूप पहिले से बताते चले आरहे हैं। फिर नीचे के चित्र में देखलो.—
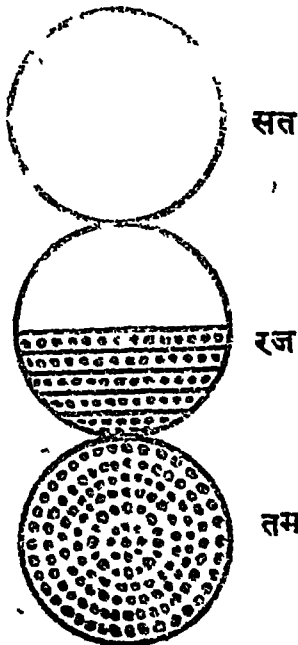
सत में 'होने" और "है पने" की संभावना रहती है। तम में "छाया पना" होता है, और रज में सत और तम दोनों प्रतिविम्बाकार होते हैं। और इसी निचले भाग मे संसार उत्पन्न हो हो कर लय होता रहता है। अहंकार, बुद्धि, मन, चित्त इसी मे हैं और यह जगत उन्ही का खेल है। यह रजो गुण मात्र है। अहंकार की दृढ़ता इसका रूप है।

यहाँ राम सत हैं और रावण रज है। इन दोनों के मुठ भेड़ का नाम रामायण अर्थात् राम रावण का युद्ध है। जिसके प्रधान कार्य्य कर्त्ता सत के सेवक रजोगुणी लक्ष्मण हैं। यह साथ न होते तो लड़ाई न होती।

इतना इशारा देकर हम अब आगे रूपक अलंकार कथा प्रसंग में जाते हैं:—

सिर कटता है और जुड़ता है। सिरों के समूह से नभ मंडल भर गया। रावण क्रोधातुर हो गया। देखते देखते वह अन्तर्धान हुआ। दृष्टि से ओझल! वह सबको देखता है उसे कोई नही देखता। यह भी अहंकारी मानसिक भाव के योग बल की युक्ती थी। और उसने बाण बरसाना आरम्भ किया। राम का रथ उसके बाणों से छुप गया। रीछ बन्दर और देवता यह दशा देखकर भयभीत हुऐ। उन्हें उस समय महा दुख हुआ।

देवताओं की विनती और प्रार्थना सुनकर राम को भी क्रोध आगया। एक मानसिक बाण कसकर मारा। अन्धेरा जाता रहा और रावण के कटे हुए सिर नभ मंडल में मँडलाते और ललकारते हुए दिखाई और सुनाई देने लगे।

कहाँ बीर अंगद कहाँ राम लक्ष्मण।
किधर नीलनल और किधर हैं विभीषण॥
इधर आयें आकर लड़े आज मुझसे।
मेरा छीन लें आके सब राज मुझसे॥
लड़ें खोलकर मन लड़ें मुझसे आकर।
बचेंगे कहाँ अपने मुँह को छिपा कर॥

राम ललकार के शब्दों को सुनकर मुस्कराते

राम के इधर उधर रक्षा प्रबन्ध में लग रहे थे। रावण ने इनकी तरफ़ शक्ति बाण फेंका। वह बिजली के समान गरजता तड़कता और चमकता, दमकता इन पर लपका। पैंतरा बदल कर यह राम के पीछे जा छपे। शक्ति बाण इनको आकर लगा। थोड़ी देर के लिये मूर्छित होगये। देवता इसीसे घबरा उठे।

विभीषण हाथ मे गदा लेकर रावण पर पिल पड़े। "दुष्ट! अब भी नहीं मानता। शिवजी के बार बार सिर काट काट कर चढ़ाने से तुझे यह शक्ति मिली कि एक कटता है दूसरा जुड़ता है। राम का विरोधी! अब तू काल से नहीं बचेगा।"

दोनों में गदा युद्ध होने लगा। या तो विभीषण रावण के नाम से डरता था या आज रावण से लड़ रहा है! यह राम के बलका सहारा है। रावण और बिभीषण! इन दोनों का सामना क्या! हनूमान पहाड़ उठाकर दौड़े। रथ और सारथी दोनों चकना चूर होगये। उसे भी चोट आई। नभ की तरफ़ उड़ा। वह आगे और हनूमान पीछे! इनको आते देखकर वह सम्मुख हुआ। इनकी पूंछ पकड़ कर घुमाया। पृथ्वी पर पटक दिया। यह फिर सँभल कर उसके सामने आये। काजल के पहाड़ और सुमेरु पर्वत का सामना हुआ।

गदा दोनों के पड़े एक दूसरे पर,
झड़ी बिजली टकरा के पल पल बराबर।
झड़ी बिजली की थी कि वह फुल झड़ी थी।
कड़कती हुई वज्र की वह कड़ी थी॥

हनूमान लड़ते लड़ते घबरा गये। राम को पुकारा:—

दया कीजिये काल का सामना है।
कठिन रोकना और कठिन थामना है॥
नहीं मेरे बल बूते का है यह निशिचर।
यह निशिचर बली और निर्बल हूं मै बन्दर॥

राम ने एक बाण मारा। वह मूर्छित हो कर गिरा। हनूमान उसके हाथ से बचे। वह फिर संभला। थोड़ी देर के लिये अन्तर्धान हो गया। सबने समझा वह भाग गया। रावण और युद्ध भूमि से भागे! यह असम्भव था। उसने प्रकट होकर पाखंड की नई रचना की। समरस्थल में एक के बदले अनगिनत रावण हो गये। जितने बन्दर उतने रावण! जितने रीछ उतने रावण। रावण आगे! रावण पीछे! रावण दाँये! रावण बायें! ऊपर नीचे सारा मैदान रावण से भर गया। "एको ऽहम बहु सामी." (मै एक से अनेक हो जाऊँ) इसने इस वेद मंत्र का सहारा लिया। रावण साधन संयुक्त तो था, अनुभव संयुक्त नहीं था। यह उसमे कसर रहगई थी। नहीं तो राम और रावण दोनों अभेद होगये होते। वह इसी त्रुटि को पूरी करने में लगा हुआ था। राम उसे खेल खिला रहे थे। और वह खेल खेल रहा था।

एक रावण ने संसार में हा हा कार मचा दिया था। अब यह करोड़ों रावण क्या जानें क्या क्या न उत्पात करें। सब के सब डर गये। रीछ बंदर डरे देवी देवता डरे। शंकर जी युद्ध देखने आ गये थे। वह खड़े हुए हंस रहे थे। रीछ और बन्दर भागें भी। तो कहाँ भागे! उनको भागने का रास्ता कहाँ था।

आगे रावण था दायें था रावण।
पीछे रावण था बायें था रावण॥
नीचे रावण तो रावण ऊपर था।
कंधों पर और उनके सर पर था॥
दृष्टि ठहरी तो देखा रावण को।
आंखें फिरीं तो निरखा रावण को॥

मरता क्या न करता! उसे उलट पुलट कर मारने लगे। वह तो सब के सब मन के चित्र थे। एक रावण अपनी चेत शक्ति और बुद्धि वृत्ति से अनेक रावण बन गया था। स्वप्न में तुम किसी को मारते हो। वह नहीं मरता। घूंसा तानते हो वह नहीं डरता। जागृत को स्वप्न और स्वप्न को जागृत बना लेना और जागृत में स्वप्न की मानसिक मूर्तियाँ बना कर दिखा देना किसी किसी सिद्ध योगी का करतब है। एक छाया पुरुष को जीवित कर लेना कठिन काम है। और यहाँ तो लाखों और करोड़ों छाया के रावण या मायावी रावण बन गये थे। यह मारते मारते थक गये।

मरे वह नहीं मारने से किसी के।
डरे सहमे रावण के रूप देखने से ॥
जमा और, जम कर वह ठहरा वहाँ पर।
न भागा न झिझका न ठिठका वहां पर॥

राम ने बन्दरों की बेचैनी देखी। हँसते हुए आकाश मन्डल में अपनी मानसिक शक्ति के बाणों की धार बहा दी। और सब के सब रावण यों लोप हो गये जैसे सूरज की किरणों के निकलने से बादल की काली काली घटायें देखते देखते छिन्न, भिन्न हो जाती हैं।

तुम पूछोगे क्या यह सम्भव है? हम कहते हैं कि मानसिक संभावना के जगत में हर प्रकार की मानसिक रचना की सम्भावना है। और समय आ रहा है। जब मनुष्य ऐसा कर दिखायेगा।

अब एक रावण रह गया जैसे प्रलय की अवस्था में एक ब्रह्म ही ब्रह्म रह जाता है। "एको ब्रह्म द्वितीयो नास्ती।" और वह भी गुप्त रहता है। देवता प्रसन्न हुए उनका भय जाता रहा।

लेकिन रावण गया कहाँ था! वह जहाँ का तहां ही था। केवल इनकी दृष्टि में अदृष्टि हो गया था।

हुआ गुप्त दृष्टी में इनकी न आया।
प्रगट हो गया अपनी छवि को दिखाया॥
कभी जागते हैं कभी सोते हैं सब।
कभी हँसते हैं और कभी रोते हैं सब॥
मिला मिट्टी में नाज फिर उग पड़ा वह।
उसे तुमने खाया गड़ा और सड़ा वह॥
न आना न जाना यह है मन की रचना।
कठिन है महा मन के कौतुक से बचना॥

फिर रावण संग्राम भूमि में आकर धर धमका। देवता अभी तक वहाँ खड़े हुए थे। इसने इनको देख कर कहा-'यह मेरे बँधुए अभी तक यहाँ ही हैं! यह समझते हैं मैं एक से अनेक हो गया। यहाँ न कोई एक है न अनेक है। जो है वह है।"

यह कह कर वह आकाश मंडल की तरफ़ उड़ा। देवताओं में भगदड़ पड़ गई। डरना तो इनकी प्रकृति का गुण है। देवता भागे। यह संग्राम के लिये आया। बाण चलाने लगा राम ने भी अपने बाणों से इसके सिर और भुजाओं का काटना आरम्भ *किया। वही अगली सी घटना होने लगी।*

राम की सहायता का बल पाकर अंगद, हनूमान, सुग्रीव आदि का मन बढ़ गया था। लगे उसे पकड़ पकड़ कर पृथ्वी पर पटकने! उसे क्या हानि पहुंची? कुछ भी नहीं। सिर कटते थे। नये नये आकर जुड़ जाते थे। हाथ कटते थे नये लग जाते थे। राम ने बाण बरसाये। बन्दरों और रीछों ने नोंचा खोंसा। पर्वत सिर पर गिराये। वह जैसे का तैसा था। फिर उसने भी धनुष बाण हाथ मे लिये। कस कस कर सबको मारने लगा। अंगद, हनुमान, सुग्रीव, नल, नील आदि सब के सब मूर्छित हो हो कर गिरे। जामवन्त ने यह दशा देखी। क्रुद्ध हुए, झपटे, उसे पाँव पकड़ कर उठा लिया और घुमाकर जो फेंका तो लंका में जाकर गिरा।

इधर इनकी मूरछा चली गई। शाम का बेला आ गया था। सूरज डूब चुका था। छटे दिन की लड़ाई समाप्त हुई और राम की सेना अपने स्थान को लौटी।

—:o:—

सत्तरहवाँ समुल्लास

सीता का विलाप

इधर लड़ाई ठनी है। उधर सीता अकेली अशोक बन में बैठी हुई राम के मिलाप के दिन गिन रही है।

सूरज डूबने के समय त्रिजटा उसके पास आई। नमस्कार करके बैठ गई। और युद्ध के समाचार सुनाने लगी।

वह बोली:-"राम के बाणों से, कुम्भकरण, मेघनाद, और सारे निश्चर मर मिटे। राक्षस कुल का नाश हो गया। रावण ही रावण रह गया। वह रावण के बाण और रीछ बन्दरों के पत्थरों की चोट से नहीं मरता। कभी एक से अनेक हो जाता है।

कभी एक का एक रह जाता है। सिर और भुजाएं कटती हैं और नये नये आकर लग जाते हैं। मारते मारते सब थक गये। वह जैसे का तैसा है। मरता नहीं जैसे अमर होकर आया है।"

सीता रो पड़ी। "यह उसका दोष नहीं है मेरे काल का दोष है। इसी काल ने मेरी बुद्धि भ्रष्ट की। मैंने राम को मायावी हिरन मारने को भेजा। इसी काल ने मुझे भरमा दिया। मैंने लक्ष्मण का कहना नहीं माना। उसने दुर्वचन कह दिये। उसी काल ने मुझे यहाँ लाकर कारागारमें डाल दिया और राम के वियोग का दुख दे रहा है। न वह मरता है न मैं मरती हूँ। धिक्कार है मेरे इस जीने पर!"

त्रिजटा-"ऐसा न कहो। जब राम ने इतना कर लिया है तो वह रावण को भी मार दिखायेंगे। अभी उसे खिला रहे हैं और देखते हैं कि वह कितने पानी में है।"

सीता-"यह सब सही! मैं तो मर रही हूं। रावण मरता क्यों नहीं? और राक्षसों के समान उसे भी अबतक मर जाना चाहिये।"

त्रिजटा-"मैं इसका कारण जानती हूँ।"

सीता-"वह क्या है मुझे भी बतादे।"

त्रिजटा-"कारण यह है कि तुम जगत जननी और जगत जीवन हो। रावण ने अपने ध्यान योग के बल से अपने हृदय कमल में तुम्हारे रूप की एक प्रतिमा बना रक्खी है तुमको अपने मन में बसा रक्खा है। राम उसके हृदय को तुम्हारे प्रेम में बाण नहीं मारते और वह तुम्हारा ध्यान नहीं छोड़ता। मरे तो कैसे मरे। मर्म स्थान में बाण नहीं लगते। सिर और भुजा काटे जा रहे हैं। जब उसे थोड़ी देर के लिये तुम्हारे रूप की विस्मृति हो जायगी और हृदय में राम बाण लगेगा। उसी समय उसकी मृत्यु आजायगी।"

सीता हसकर बहुत प्रसन्न हो गई। "राम को मेरा स्मरण इतना है क्या मैं इतना समर्थ नहीं रखती कि अपनी! मानसिक आकर्षण शक्ति से रावण के मानसिक और हार्दिक प्रतिमा को खींच लूं। वह मुझे भूल जाय और राम उसे मार गिरादें। कल लड़ाई के समय में इसी का साधन करूंगी।"

सीता के मन में इस विचार के आते ही उसका बाँया अंग फड़कने लगा। और वह समझ गई कि अब रावण के मरने का समय आगया।

त्रिजटा सीता को बोध देकर अपने घर चली गई और वह अकेली रह गई।

——:o:——

अठारहवाँ समुल्लास

सातवें दिन की लड़ाई

जामवन्त के पटकने में इतना बल लगा था कि आधी रात तक रावण मूर्छित रहा। जब मूर्छा गई। उसने अपने आपको छपरखट मे पड़ा पाया। [illegible]शाचरों पर क्रुद्ध हुआ? "क्यों मुझे रण भूमि से [illegible] लाये?" चलो! अभी चल कर राम से लड़ूंगा। [illegible]तका समय निशिचर (रात की चर्या करने वालों) [illegible] लिये परम उपयोगी है।" मन्त्रियो ने समझाया [illegible]ह समय अच्छा नहीं है। तुम सुस्ता लो। नींद [illegible]ने से नया बल आयगा।"

वह लेट रहा। प्रातः काल जाग आगई। उठा और अस्त्र शस्त्र बदल कर फिर रणभूमि में जाने लगा। फिर कुसगुन हुए लेकिन वह अभय था। उसे मरने का किंचित मात्र डर नहीं था।

बिपत आपति मेरे बीरो जो आये उसको आने दो।
लंका को ही जान अपनो उसे इस तन से जाने दो॥
नहीं रण से फिरूँगा, पीठ दिखलाते लज्जा है।
डराये लाख कोई इस घडी उसको डराने दो॥
मरूँगा, मारूँगा, मरने की चिन्ता अब नहीं मुझको
न मानूंगा किसी की बात तुम उनको मानने दो॥
मेरा है नाम रावण बीर रस की प्रतिमा हूँ मैं।
यह अवसर हाथ आया है बीर रसको कुछ चखाने दो॥
कोई हो काल बन कर चाहे मेरे सामने आये।

उसे लड़नेके कौतुक को दिखाने दो दिखाने दो ॥

योद्धा वीर रण-भूमि से आया। राम की सेना ने सुनी। यह तो इसके भूके थे। उठे। पत्थर चट्टान और पहाड़ों की वर्षा होने लगी। पृथ्वी इनसे पट गई। बचे खुचे राक्षस कुचल गये। रावण पत्थरों की मार से बचता रहा और उसके बाणों के प्रहार से रीछ और बन्दर घायल हो हो कर म ने लगे। इनकी लाशों के एक जगह इकट्ठा होने से मुर्दों का टीला बन गया।

मरने वाले मर मिटे मरते गये खिपते हुए।
बोझ से बाणों के वह घायल हुऐ दबते गये ॥

रावण ने सोचा, "यह लड़ाई ठीक नहीं है।" और वह कुछ देर के लिये अन्तर्धान हो गया।

रण-भूमि में उसी घड़ी विचित्र मानसिक रचना होगई। सिंह चीते, भेड़िये, चरख, और कई प्रकार के भयानक जीवजन्तु सामने आगये। और बन्दरों को पटक पटक कर मारने लगे और उनका गला दबा दबा कर लहू चूसने लगे। "मारो कितने पत्थर मारते हो। राम बन्दर और रीछों की सेना लेकर आये। रावण अनेक जीव जन्तुओं को अपने मानसिक बल से उत्पन्न करके उनका सामना कर सकता है।" फाड़खाने वाले पशु दहाड़ने और चिंघाड़ने लगे। झपटे और कितने बन्दरों को झपट कर कुचल कुचल कर उन्हें खाने और चीथने लगे। इनका सामना रीछ और बन्दर क्या कर सकते थे।

पृथ्वी इनके लहू से लाल होगई। रक्त का बहयाल रण-भूमि में पाटने और इन्हें अपनी बारी पर डुबाने लगा। यह लड़ाई थी कि प्रलय का सामना था! कोई क्या कह सकता था। कितने बेताल और पिशाच, डाकिनी, शाकिनी रुधिर पीने की इच्छा में त्रिशूल कृपाण और खड्ग हाथों में लिये हुए इन पर झपटने लगे। इस भयानक दृश्य और अद्भुत युद्ध का सामना न करते हुऐ राम की सेना मूर्छित हो गई। लक्ष्मण इतने बली थे वह भी रणभूमि में गिर कर अचेत हो गये। यही दशा अंगद, सुग्रीव की भी हुई।

राम लंगूरों से घिरे हुऐ रावण की युद्ध लीला को देख रहे थे। यह जानते थे कि राक्षसी माया बहुत प्रबल है। यह मन माया का मानसिक युद्ध है। खिलाने का मन्तव्य यह था। धनुषबाण उठाया, लगे बाणों की वर्षा करने। उनका ध्यान केवल रावण की तरफ था। इसके सिर और हाथ कट कट कर नये नये लग जाते थे।

विभीषण पास आये। "प्रभो! इसके हृदय कमल के अनाहत चक्र में अमृत है और इसके नाभि कुन्ड के कमल में भी उसी अमृत की अधिकता है। बाण इन मर्म स्थानों में लगे तो यह मरेगा। इसके अतिरिक्त और कोई उपाय नहीं है।"

राम मुस्कराये—"पहिले इस अधिकता के साथ शपाशप बाण मारे कि रावण संभल न सका। इसका चित्त इष्ट केन्द्र को छोड़ बैठा। राम ने उसे विस्मृत पाकर एक अग्नि बाण उसके हृदय को मारा जिसने अनाहत चक्र को बेधता हुआ नाभि चक्र के अमृत कुन्ड को सुखा दिया और दूसरे बाणों ने उसके सिर और भुजाओं को काट कर गिरा दिया। वह अचेत होकर पृथ्वी पर तो गिरा लेकिन राम को लड़ाई के लिये ललकारता ही गया। बन्दर और रीछ उसकी लाश पर चढ़ बैठे। जब तड़पता हुआ तन ठंडा होने लगा उसका तेज मुँह से निकला और राम के मुँह में समा गया।

उसके मरते ही नभ मन्डल में देवता स्तुति गाते और फूल बरसाने लगे।

जै परम दीन दयाल राम कृपाल सुख सागर सदा।
जै प्रणत पाल, अमोघ बल, जै अतुल बल, जैजै सदा।

सियापा और राज तिलक

मन्दोदरी रावण का सिर और हाथ देखते ही व्याकुल हो गई। वह जानती थी कि इस युद्ध का क्या परिणाम होगा। राम विमुख का अन्त ऐसा ही होता है जैसा रावण का हुआ। वह बहुत समझदार स्त्री थी। रावण अपने विजय विषय के नशा में रात दिन चूर रहता था। घर पर नहीं रहता था। मन्दोदरी चाहती थी कि वह कभी कभी इसके साथ भी रहे। वह इसकी नहीं सुनता था। मन्दोदरी ने पूछा तुम क्यों इतना दूर दूर रहते हो? रावण ने उत्तर दिया—"लड़ना भिड़ना, विजय पराजय करते रहना मेरी प्रकृति है। मैं बैठे ठाले नहीं रह सकता। मुझ में रजोगुण शक्ति प्रधान है।" मन्दोदरी ने कहा—"तब मुझसे लड़ा करो। देखूं, तुम मुझे जीत सकते हो या मैं तुम्हें हरा देती हूं।" वह बोला—"बहुत अच्छा!" मन्दोदरी ने चतुरंग का खेल बनाया जिसमें चार प्रकार की सेना रहती हैं। हाथी, घोड़े, और ऊँट प्यादे! और राजा दीवान अलग अलग थे। इसी चतुरंग खेल का पारसी नाम शतरंज है। और यह मन्दोदरी के मस्तिष्क से निकला हुआ है। दोनों खेलते थे। कभी इसकी हार होती थी कभी मन्दोदरी की। कभी वह जीतता था कभी यह। और उनका एक खेल (बाजी) महीनों तक चलता था। दोनों दाव पेच और समझ बूझ में बराबर थे। रावण उसके इस खेल से बहुत प्रसन्न रहता था। और वह उसे इस प्रकार अपने माया जाल में फँसा रखती थी जैसे रामायण का युद्ध राम रावण की लड़ाई और रामायण की कथा का छन्द प्रबन्ध अद्वितीय है। जब से यह सृष्टि हुई उस समय से लेकर अब तक किसी चित्रकार लेखक ने ऐसी ग्रन्थ रचना नहीं की। वैसे ही मन्दोदरी का चतुरंग खेल भी अब तक अद्वितीय है। ऐसे खेल की रचना आजतक किसीसे नहीं होगी। दोनों का जोड़ा बराबर का था।

पति के सिर और भुजा...
कर इसे जो दुख हुआ उसका व...
या वाणी से हो सकता है!

दुख हुआ और दुख था यह अध्यात्मिक और मानसिक।
था यह आधिदैविक तो आधिभौतिक भी था अज्ञानतिक॥
तीन तापों से दुखी होकर गई संग्राम में।
लाश को देखा पती के रो पड़ी कुहराम में॥
हाय रावण! क्या हुआ तुझको पड़ा मिट्टी में है॥
तू तो जोधा वीर था, अब काल की भट्टी में है॥
सबको जीता जप किया लेकिन न जीता आपको।
राम से होकर विमुख तूने बढ़ाया पाप को॥
राज सी वृत्ति तेरी, रावण! कहाँ अब सो गई।
मैं कहा करती थी प्यारे! तेरी बुद्धी खो गई॥
मेरे कहने को न माना राम को नर जान कर।
तू न आया रास्ते में जान कर पहिचान कर॥
दे दे सीता को कहा मैंने न मानी मेरी बात।
काल के पंजे में फँस कर करता था तू पाँच सात॥
मर गई सन्तान तेरी मर गई और कट गई।
आज लंका उनके मुर्दा लाशों से है पट गई॥
राम से लड़कर मरा और जीते जी मारा मुझे।
मैं अधोगति में पड़ी हूँ देखले प्यारे मुझे॥
क्या हुई चतुरंग सेना है कहां अब धन तेरा।
धन को क्या रोऊँ बतादे है कहाँ तन मन तेरा॥
मिट्टी का पुतला बना था मिट्टी में आकर मिला।
हाय रावण! क्याकिया और तुझको यह क्या होगया॥

मन्दोदरी का विलाप सुन कर रीछ और वन्दरों के कलेजे उछलने लगे। राम नर नहीं थे नारायण थे। नर लीला कर रहे थे। इनका हृदय भी फटने लगा। विभीषण को बुला कर कहा—"रावण की लाश जल्द उठा कर ले जाओ। शास्त्रों की विधि से उसका क्रिया कर्म कराओ। यह संसार काल की लीला है। जीना मरना प्राकृतिक है। इसे कौन रोक

स्थिती और प्रलय के प्रवाह का
ा चलता रहता है।"

साथ ही हनूमान, सुग्रीव और अंगदादि
ज्ञा दी–"लक्ष्मण के साथ जाओ। वह
भीषण का राज्यतिलक करेंगे। मै चौदह वर्ष तक नगर मे न जाऊँगा। पिता की आज्ञा ऐसी ही है। प्रकृति पुरुष के लिये है। राज खाली नहीं रह सकता।"

विभीषण और रीछ वन्दरों ने मिल मिला कर सब काम राम के आज्ञानुसार कर दिया। विभीषण लंका का राजा हुआ और मन्दोदरी* उसकी रानी हो गई। लंका में कोई राजा हो। रानी मन्दोदरी ही रहेगी। किष्किन्धा के सिंहासन पर कोई वैठे उसकी अर्द्धांगिनी तारा ही बनेगी। यह कहावत हम हिंदुओं में सहस्त्रों वर्षों से चली आती है। मन्दोदरी और तारा पंच कन्याओं में से हैं। इनको कोई बुरा नहीं कहता। यह पवित्र स्त्रियाँ समझी जाती हैं।

विभीषण ने लंका के राज अधिकारियों को वस्त्राभूषण दिये और रीछ वन्दर तिलक का उत्सव मनाकर विभीषण के साथ राम के पास आये और नमस्कार किया।

यह संसार है। संसार प्रवाह, धार, लहर और बाढ़ को कहते हैं। यहाँ क्षण क्षण परिवर्तन होता रहता है। जो आज है वह कल न रहेगा। ज
है परसों न रहेगा। यहाँ किसी बात का ि
नहीं है।

कोई हँस रहा है कोई रो रहा है।
कोई प्राप्ती में कोई खो रहा है॥
किसी का सफाया मचा देखते हो।
कहीं व्याह उत्सव रचा देखते हो॥
किसी का कोई साथ देता नहीं है।
कोई संग कुछ अपने लेता नहीं है॥
कहाँ आज लंका, कहाँ आज रावण।
रावण मरा उस जगह है विभीषण॥
सवा लाख पोते थे एक लाख बेटे।
सभी काल की आके शैया में लेटे॥
न लंका है वह अरु न रावण है राजा।
दिया काल माया ने इन सबको धोका॥
किसे चाहते हो किसे माँगते हो।
रहा कौन भागो जो तुम भागते हो॥
गुरू को भजो उसके चरणों में गिरकर।
नहीं कोई दौलत है इसके बराबर॥

बीसवाँ समुल्लास

संक्षेप रहस्य दर्शन

रावण मरा, कुम्भकरण मरा। विभीषण को राजतिलक मिला।

कौन मरा? कौन जिया? कौन क्या हुआ? यह सब राम की लीला थी। सीता का बन्धन कटा।

---

*नोट:—पंच कन्याओं में कुन्ती, द्रोपदी, मन्दोदरी, तारा और अहिल्या की गिनती है। सीता का नाम तो लोग यों ही पंच कन्याओं में अपनी भूल से मिलाते हैं। वह स्त्री जाति का निर्दोष आदर्श है पंच कन्याओं के विषय में यह श्लोक है।

अहिल्या द्रोपदी तारा कुन्ती मन्दोदरी तथा।
पंचकन्या पठे नीतिस्, महा पातक नाशनम्

तारा दो हैं। एक सुग्रीव की दूसरी बृहस्पति की! कौन जाने इन दोनों में से कौन तारा पंच कन्याओं में है।

महाभारत में स्त्री जाति का प्रशंसनीय भूषण गान्धारी है। रामायण में स्त्री जाति का अलौकिक प्रतिष्ठित आदर्श सीता है। आज तो मैं तुम्हें सुमेरु पर्वत के शिखर पर बैठा कर राम और सीता के गुणानुवाद का गीत गद्य और पद्य के रूप में सुना रहा हूँ। अवसर पाने पर महाभारत का रहस्य भी सुनाऊंगा।

वह कब बन्धन में थी। यह सब रहस्य है।

रावण नाम है रज का। जिसके अहंकार, काम, क्रोध, लोभ, मोह पाँच विकार हैं। लोहा लोहे से कटता है, विष का प्रभाव विष के सेवन करने से जाता है। आग का जला हुआ आग की सेक से शान्ति पाता है। औषधि संशोधन मात्र होती है।

कुम्भकरण नाम है तम का। जो अंधकार, तमाकार और मूढ़ाकार है।

विभीषण नाम है सत का। जो सत्ता मात्र है।

इनके नामों पर विचार करो। नाम ही विचार के ताले की कुंजी है। फिर इनके रूप को देखो।

नाम और रूप ही को जगत कहते हैं।

नाम विचार है और रूप साक्षात्कार है। रूप देखा जाता है। यह देखने की वस्तु है। स्थूल है। नाम स्मृति और विवेक का उत्तेजक है जो सूक्ष्म है।

बिना नाम के रूप नहीं और बिना रूप के नाम नहीं। दोनों साथ साथ चलते हैं। दोनों ही से काम निकलता है।

नाम के सुनने से सबको रूप का आता है ध्यान।
रूप को देखा तो पाया सत्य का ठौर और ठिकान॥
नाम में और रूप में अनुमान है और ज्ञान है।
सत्य के इस नाम में और रूप ही में छान है॥
सुनलिया और सुनके देखा, चितको तब निश्चय हुआ।
बिन सुने देखे किसी का कब कभी संशय गया॥
नाम पाया तूने गुरु से नाम से अब देख रूप।
तब समझ में आयेगा है कौन प्रजा कौन भूप॥
जब नहीं देखा सुना फिर मानता है किसको तू।
जब नहीं देखा सुना फिर जानता है किसको तू॥
देखने ही की है भक्ती देखना है मूल सार।
नाम के सुनने से केवल जागता है सत विचार॥
पोथियों को पढ़ के भूला तत्व को पाता नहीं।
ऐसा प्राणी भ्रम से सत पंथ में आता नहीं॥
क्या सगुण है क्या अगुण है गुणमें गुणको जानले।
भक्ति होती है सगुण की मेरी सुन कर मानले॥
जो नहीं समझा सगुण को शब्द का झगड़ा मचा।
फँस रहा बाणी की बन में पानी का रगड़ा मचा॥

किसने भक्ती की अगुण की कै
देखने सुनने से आई, गुण की
क्या अगुणका नामहै जब गुण
धोके में आया हुआ है इसको
युक्ति पर देता है युक्ती, युक्ती के
अपना कुछ अनुभव नहीं अपना न उसको ज्ञान है॥
तत् पद और त्वम् पद में गुण है तत्व कहते हैं इसे।
तत्वको लेअब समझयह गुणहै और गुणही यह रहे॥
तत्वमें तत् त्वम् है, तत्वम् गुणहै गुणको अब समझ।
मुँहसे क्या निर्गुणहै कहता, गुण सगुणको अबसमझ॥
रगड़े झगड़े में पड़ा बातों में अटका भूल कर।
पढ़ के पोथी होगया अभिमानी मन में फूल कर॥
है यही अभिमान जड़ अज्ञान की और येही भ्रम है।
भरमी और अज्ञानी को परिचय नहीं है मर्म है॥
खोल कर कहता हूँ बातें सुन हो जब अधिकार कुछ।
बातों के पकवान क्या खाता है गहले सार कुछ॥

न राम को जाना, न लक्ष्मणको पहिचाना। न भरत को माना, न शत्रुहन के अर्थ को छाना। और चला रामायण पढ़ने को।

योंही न रावण की समझ आई, न कुम्भकरण के सार की गम पाई। बिभीषण क्या है उसे भी नही जाना।

रामायण चित्र दिखाती है और चित्र कूट को दिखाती हुई वह त्रिकूट मे लाती है, जिस पर लंका बसी हुई थी या बसी हुई है। इस चित्रशाला को देखकर विचार करता तो कुछ तो समझ मे आता! दोनों दीन से गये पाँड़े हलुआ मिला न माँड़े। बर्तमान लंका में त्रिकूट पहाड़ है या नहीं! हम नही जानते। लंका जाते जाते रह गये नहीं जा सके। लेकिन रामायण में त्रिकूट (तीन चोटियों वाला) पर्वत है। योग की परिभाषा में इसका नाम त्रिकुटी भी है। सत, रज, तम तीनों गुणों की यह कुटी कहलाती है। रामायण ने रूपक अलंकार में सत को विभीषण, तम को कुम्भकरण और रज को रावण ठहराया। सत तो सत ही है, जो है, रहे और कल्प तक जिसका अभाव न हो वह सत है। और इसी

तम है जो सत के सहारे रहती है
सत से जो धार क्षण क्षण बहती और
ती रहती है उसका नाम रज है।

सत (संस्कृत-अस) होना।

तम (संस्कृत-तम) झकोले खाना, झकझोला जाना।

रज (संस्कृत-रंज) रंग देते रहना।

सत है, तम है और रज है। सत ऊपर है, तम नीचे है और रज बीच में है।

"मेरे पेट है और हृदय है। सिर से धार हृदय से होती हुई निकलती पेट में जाती है। उसे हिलाती, डुलाती और झकोले देती रहती है। तुम डमरू हो। तुम्हारा शरीर शिव (काल) का डमरू है जिसे वह बजाता रहता है। एक सिरा सिर है दूसरा पेट है और गर्दन से लेकर हृदय तक वह स्थल है जहाँ और जिसे हाथ से पकड़ा जाता है।

धार आती है धार जाती है।
धार बहती हुई समाती है ॥
सास को देखो आई और गई।
आके और जाके वह कहीं ठहरी ॥
जागे तब सांस देह में आई।
सोये तब साँस आके फिर लौटी ॥
ठहरी जहाँ जाके वह सुषुप्ती है।
दो प्रगट तीसरी यह गुप्ती है ॥
जागना, सोना, नींद में जाना।
तीन गुण है यह उनको पहिचाना ॥
जागे जब ब्रह्म पुत्र कहलाये।
सोये तब दिव्य अवस्था में आये ॥
नींद में लय हुए तो भूत है हम।
शिव के अवधूत गुप्त दूत हैं हम ॥

विभीषण (संस्कृति "वि-" पहिले, "भी-" डरना, भय खाना) सीधा साधा राम का भक्त जो सत स्वरूप है।

रावण (संस्कृत "रो" चिल्लाना, रोना, शोर मचाना) उत्पती और दुखदाई यह रज स्वरूप है

कुम्भकरण (संस्कृति "कुम्भ" घड़ा, "करण" कान) बड़ा कान वाला, बड़े सुनने वाला, प्रभाव का लेने वाला, मूढ़-आलसी यह तम स्वरूप है।

इन तीन गुणों और उनके इन लंकावी और मायावी स्वरूपों पर विचार करो। तुम सहज में समझ जाओगे कि रामायण के चतुर चितेरे चित्र-कार बाल्मीकि ने कैसे विचित्र चित्र खींच खींच कर तुमको दिखाये हैं। इस एलबम के चित्र कोश को विचार की दृष्टि से देखो और सुगम रीति से सोच कर उसे देखो।

मेघनाद (बादलों का घनघोर शब्द करने वाला) रजोगुणी रावण के सब से सुयोग्य पुत्र को रजोगुणी लक्ष्मण ने मारा जिनकी रजोगुणी माता सुमित्रा थी।

हनूमान (अहंकार) सुग्रीव (काम) अंगद (क्रोध) नल (लोभ) नील (मोह) ने अहंकार, कामी, क्रोधी लोभी, मोही राक्षसों को मारा जो महा रजोगुण थे। रजोगुणी पुरुष, निज स्वार्थी, निज सुरक्षी (अपनी ही रक्षा करने वाला) राक्षस कहलाता है।

अपनी ही रक्षा में रहे वह राक्षस हुआ।
अपना ही अर्थ साधे वही स्वारथी बना ॥
है कामी क्रोधी लोभी अहंकारी राक्षस।
इसमें नहीं विचार है क्या कीर्ति क्या यश ॥
लोभी है काम लोभ के करता है हर घड़ी।
इसकी प्रकृति अपने ही रक्षा की है बड़ी ॥
निश्चर है चरता और विचरता है रात को।
भूल औरभरम में डालता है पाँच सात को ॥
धोके की टट्टी को बनाता है वह अपनी आड़।
इस बल से करता रहता है रातों को मारधाड़ ॥

जामवन्त (जामुन के समान काला) तमोगुणी रीछ है। इसने उस रजोगुणी राक्षसों को मारा जिनमें तमोगुणी अंश की अधिकता थी।

राम सत हैं। आधार मात्र हैं, तम कुम्भकरण और रज रावण इनकी सेना से मरे। और इन्होंने सत्याकार विभीषण को अभय करके लंका का राज दिया। जैसे परशुराम ने क्षेत्र (शरीर) के सर्व विकारी अङ्ग वाले क्षत्रियों को अनेक बार नाश

करके ब्राह्मणों को उनका राज दिया, जिन्हें राज का अधिकार नहीं था। वह रजोगुणी और राक्षसी प्रकृति वाले नहीं थे। वह केवल ब्रह्म सत्ता के अधिकारी थे। इसलिये राजकाज को नहीं संभाल सके, उस समय इसी लीला की आवश्यकता थी।

राम का ब्रह्म अवतार महा विचित्र और सोचने के योग्य है। मन के तीनो गुण (अङ्ग) सत, रज, तम को साध कर एकाग्र किया। सत विभीषण, रज चंचल निराकार बन्दर, तम रीछ की त्रिगुणात्मक सेना इकट्ठी करके लंका को विजय किया। कौन मरा और कौन जिया इस पर विचार करना तुम्हारा काम है। जो मरे राम में समाये क्योंकि उन्हीं के अंश थे, जो जिये उनके साथ रहे।

यह लीला थी और खेल लीला थी सारी,
अनुपम, अनोखी, निराली नियारी।
पढ़ो पढ़ने वालो सुनो सुनने वालो।
बिचारो, गुनो, सोचो कुछ गुनने वालो॥
यह है सार का सार मैंने बताया।
चरित राम का तुम को अद्भुत सुनाया॥
यह है तत्व, तत राम और त्व है ध्यानी।
यही लक्ष और वाच की है निशानी।
है "तत त्व" में सब तत्व हो तत्व वेत्ता।
न पड़ भ्रम में काल धोखा है देता॥

...बताया।
...न्दर रोने लगी।
...न में एक छन्द की
...कर वाल्मीकि के रूप में
... कुरंज के जोड़े का
...आया और उसी धुन
...द्ध किया। जब राम
... वाल्मीकि से मिले।
...के हो अब मैं उसे कथा

तृतीय भाग

पहिला समुल्लास

सीता मिलाप

...या। वह आये। आज्ञा
... जाओ। सीता को
... के पराजय होने का
...ड़पती और बिलपती

...से मिले। दंड प्रणाम किया
...न लिया। 'कहो, राम लक्ष्मण और सेना की कुशल सुनाओ।" यह बोले, "रावण मरा। राक्षस कुल का नाश हो गया। विभीषण को कृपालु राम ने लंका का राज दिया। दोनों भाई कुशल हैं। और आप की कुशल चाहते हैं।"

सीता:—"कुशल तो रामके चरण-कमलमे रहती है। मैं उनके चरणों से दूर पड़ी हूं। इसी एक बात से मेरी दशा को समझलो! अब ऐसा यत्न करो कि उनका जल्द दर्शन मिले।"

जो अब के साईं मिले सब दुख आंखों रोय।
चरणों ऊपर शीश धर कहूँ जो कहना होय॥
तड़पत बिलपत रात दिन, जैसे बिन जल मीन।
राम के चरणों से छुटी, सीता होगई दीन॥
दरस परस सत्कार कर, अँखियों मध्य बसाय।
राम चरण रत हो रहूं, इच्छा यही रहाय॥
आँखों अन्तर आव तू, आंख झांप तोहि लूँ।
ना मैं देखूँ और को, ना तो ही देखन दूँ॥
आंखों की कर कोठरी, पुतली पलंग बिछाय।
पलकों की चिक डालकर, रामको लूँ मैं रिझाय॥
बिरह आग तन में तपे, अंग सकल अकुलाय।
राम मिलेना मैं सुखी, हाड़ मांस सुलगाय॥
बिरह जलन्ती की दशा, जाय कहो हनुमान।
सीता के प्रभु राम हैं, राम जान और प्रान॥

सीता स्त्री थी महा कोमल हृदय वाली। आँखें आँसू बह निकले।

हनूमान ने ढाढ़स दिया। "धीरज धरो। मैं जाता हूं। राम की आज्ञा लेकर तुमको यहाँ से आज ही ले जाऊँगा।"

हनूमान ने छलाँग मारी। कूदते फाँदते पूंछ उठाये राम के पास पहुंचे। "भगवन! सीता तपस्विनी के रूप में अशोक की छाया मे बैठी हुई आपके चरण-कमल के दर्शनों के लिये तड़प रही है।"

राम—"फिर जाओ। सीता को आदर सत्कार के साथ ले आओ। युवराज अंगद और विभीषण को भी अपने साथ ले जाओ।"

यह सबके सब उसी समय गये। विभीषण ने दासियो को समझाया। "सीता जगत माता है। इन्हें न्हिलाओ धुलाओ। सन्तुष्ट करो। वह आप महल में गये। बहुमूल्य भूषण वस्त्र लाये। सीता को संवारा सिंगारा। सोने की पालकी मंगाई। सीता प्रसन्न होकर बैठी। विभीषण, हनूमान, अंगद अर्दली मे साथ साथ चले। राम के समीप पहुंचे। रीछ और वन्दर उन्हें देखना चाहते थे। राम ने कहा—"सीता को पालकी से बाहर करो। बन्दरों और रीछों से क्या पर्दा है। यह सब मेरे औरसीता के पुत्र हैं।" वह बाहर आई। सबने हाथ बाँध कर दूर से उसे प्रणाम किया।

राम ने सीता से कहा—"सुन्दरी! तू समझती होगी राम स्त्री आसक्त हैं। यह झूठ है। तू अशोक वाटिका मे रह कर आई है। मैं उदासीन वृत्ति का मनुष्य हूँ। मेरे और सबके सामने अग्नि में प्रवेश कर।"

दासियों को सुनकर दुख हुआ। वह रात दिन उसकी सेवा सत्कार मे रहतीं थीं। और सीता के गुण कर्म और शील स्वभाव को जान गई थीं। रो पड़ीं। सीता को भी क्लेश हुआ। लक्ष्मण से बोलीं "भाई! तुम यश के पात्र हो। लकड़ियाँ लाओ चिता बनाओ और उसे आग देदो।"

लक्ष्मण राम के सच्चे सेवक थे। मुँह, कान, आँख बन्द रखते थे। इनका खुलना राम की आज्ञा के आधीन था।

> सेवक सांचा राम का, सेवा में परवीन।
> सेवा की आधीनता, बिन सेवा चितदीन॥
> आंख कान मुँह मूंद कर, सेवा करे जो कोइ।
> सहजे भवसागर तरे, भक्ति बीज मन बोइ॥

राम ने इशारा किया। लक्ष्मण ने चिता संवार कर आग देदी। लकड़ियाँ जलने लगीं। ज्वाला फूटी और सहस्रों जिह्वा से वह सीता को अपनी गोद में आने के लिये निमंत्रित करने लगीं। सीता ने झुक कर राम को नमस्कार किया और फिर हाथ जोड़ कर आग में कूद पड़ी। कूदते समय सबको सुनाकर कहा, "मैं मन, बचन कर्म से राम की दासी थी। मनों बचन, कर्म से राम की दासी हूँ और मन, बचन, कर्म से राम की दासी रहूँगी, अग्ने! तू पुरोहित और पर हित कारी है, साक्षी दे कि मैंने झूठी बात नहीं कही है, और अग्नि माता ने सहस्रों भुजाओं को फैला कर सीता को अपनी गोद में ले लिया, और वह जलती हुई आग उसके लिये शीतल जल की झील बन गई। आग के अंगारे कमल के फूलों के आकार में खिल गये, पहिले चाहे सीता लंका की अशोक वाटिका में न रही हो। आग उसके लिये अब सच्ची अशोक वाटिका बन गई, और सहस्रों मुख से उसके गुणानुवाद का गीत गाने लगी,

> धन्य सीता, धन्य तू है धन्य है महिमा तेरी।
> कौन नारी जग में है जिससे मैं दूं उपमा तेरी॥
> सत है तू सतमत है तू सतचित है सत्यानन्द है।
> नारी भूषण, नारी सच्ची, सच्ची आनंद कंद है॥
> दक्ष के घर जाके उसके यज्ञ में कूदी उमा।
> जल गई, जल बलगई क्यों तू लगी जलने रमा॥
> तू पतित पावनि है तेरा सब नाम ले तर जायंगे।
> नाम तेरा लेके भक्ती भाव का फल पायंगे॥
> तू सती से बढ़के है सच है तू सच्ची सती।
> सतमती, सतदायनी है आप तू है सदगती॥

तू नहीं जल सकती आकर इस दहकती आग में,
शोभा भागी तू सुहागी, शोभा तेरी मांग में ॥
तेरे चरणों से लगी, और आग तक यह तर गई।
तू कमलनी शोभा धामी आग के ऊपर हुई ॥
आग की वायू की जल की पृथ्वी की माता है तू।
तुझसे सब प्रगट हुऐ, आनन्द की दाता है तू ॥

आग जल रही है, अंगारे भड़क रहे हैं, चिनगारियाँ चटक रही हैं, रीछ और बन्दर उनकी गर्मी से दूर दूर फिरते घूमते हैं। लक्ष्मण की आँख तो बन्द है। वह केवल राम रूप के दर्शन के समय खुलती है, और सब लोग राम के सहित इस अलौकिक दृश्य को देख रहे हैं। एक दो तीन घन्टे बीत गये। सीता अभय अशोक और अनिराश हो कर आग की गोद में शान्ति के साथ बैठी हुई है और राम के मुख को देख रही है, न वह आज्ञा देते हैं और न सीता बाहर आती है,

परीक्षा हो चुकी। यह भी एक दृश्य था। जाने से पहिले सीता आग में प्रवेश कर गई थी। रावण केवल उसकी छाया को हर लेगया था। रावण मर गया और मारा गया। अब उसके घर में इस छाया के रहने की आवश्यकता नहीं रही। आग में छुपी हुई सच्ची सीता आग से निकल पड़ी और राम की आज्ञा की भृकुटी देख कर वह उनके बायें अंग में आकर विराजमान हो गई। देवता विमान पर चढ़ चढ़ कर पुरुष प्रकृति के इस जोड़े पर फूल बरसाते हुए आये।

तुम कहोगे ऐसा नहीं हो सकता। आग बिना जलाये हुए नहीं रह सकती। मैं कहता हूं यह सम्भव है। तुमने अभी तक न राम को जाना न सीता को पहिचाना। अपनी समझ के अनुसार तुम सच कह रहे हो। मैं तुम्हें झुठलाना नहीं चाहता, लेकिन अपनी समझ के अनुसार मैं भी झूठा नहीं हूँ।

न तेज आग में है जो जलाए सीता को।
न वायु में है बल जो सुखाए सीता को।
कहां है पानी वह गहरा डुबाये सीता को।
न पृथ्वी है जो मिट्टी में मिलाये सीता को ॥
सती है सीता यह सीता है राम की शक्ति।
बनी है सीता उसी में है जगत की सृष्टि ॥

—:o:—

दूसरा समुल्लास

देवताओं का राम के पास बधाई देने आना

लोग कहते हैं मनुष्य स्वार्थी है। मनुष्यों से अधिक स्वार्थी देवता दिखाई देते हैं और उन सब में सब से महा स्वार्थी इन्द्र है। जब देखो इसे अपने इन्द्रासन के छिन जाने का भय लगा रहता है। जहाँ कोई जप तप करने लगा इन्द्र इसके छलने के लिये अपसराओं को भेजता है कि वह उसके काम में विघ्न डालें और वह बल पदवी वाला न बनने पावे। इसी ने राम के राजतिलक के समय सरस्वती की प्रेरणा की। वह निर्दोषी मन्थरा के सिर पर चढ़ बैठी और उसी का आसरा लेकर इसने कैकेयी की बुद्धि भ्रष्ट कराई। जिसका परिणाम राम का बनवास हुआ।

इन्द्र रावण से इतना डरता था कि जब तक उसने राम के हाथों मेघनाद और कुम्भकरण के युद्ध को नहीं देख लिया था तब तक अपना रथ भी उनके पास नहीं भेजा था।

इन्द्र रावण के मरने पर बड़ा सुखी हुआ और सब देवताओं से पहिले उनके पास आया और उनकी स्तुति की। अपना भाव प्रगट किया और धन्यवाद दिया। इसकी स्तुति इसके स्वार्थी पने का प्रमाण है।

जैराम रूप अनूप अद्भुत, राम अगम अनाम तुम।
जै राम सुन्दर कामवत, जै राम शोभाधाम तुम ॥

महिमा तुम्हारी कौन गावे, किसमें वाणी बुद्धि है।
पतित पावन तुमहो तुममें, बल है सिद्धी शक्ति है॥
सुर सहायक देव नायक सच्चे हितकारी हो तुम।
जै तुम्हारी हो कि सबके पूरे उपकारी हो तुम॥

इन्द्र के पीछे और देवताओं ने भी आ आकर उनके चरण-कमल की वन्दना की:—

राम तुमहो सर्व व्यापक, सर्व रक्षक सर्वदा।
तुम दया सागरहो दीनों पर तुम्हारीहै दया॥
मारकर रावण को हम सबको अभय तुमने किया।
तुमसे रक्षा है हमारी रक्षा करते हो सदा॥
जै तुम्हारी हो, तुम्हारी जै रहे संसार में।
आपकी दृष्टी रहे सुर देव के उपकार में॥

इनके पीछे राम के बाप दशरथ स्वर्ग लोक से आये। अब दशरथ दशरथ नहीं रहे थे और न वह दशरथ थे। स्थूल से सूक्ष्म हो गये थे। और उनका शरीर दिव्य शक्तियों से भरपूर हो गया था। मुक्ती अभी तक नहीं मिली थी क्योंकि राम के दर्शन की प्रबल इच्छा थी। राम लक्ष्मण सीता इनके चरणों में गिरे और इन्होंने आशीर्वाद दिया—"ऐ राम! तुम सगुण ब्रह्म हो। मेरे घर में आकर जन्म लिया और मुझे तार दिया। सुपुत्र केवल तुमको कहा जा सकता है। पुत वह नर्क है जिसमें सन्तान हीन प्राणी ढकेले जाते हैं। जो इन्हें तारे और नर्क में पड़ने से बचावे वह पुत्र 'पुत–तर–पुत से तारने वाला) है। मैं तुम्हारी नर लीला को समझ सकता हूँ! तुम्हारी जै हो!"

राम ने कहा—"जो कुछ हुआ आप के पुन्य प्रताप ही से हुआ है। दसमुख के मरने में देवताओं की भलाई थी और यह आपही के आशीर्वाद से हुआ"

दशरथ को राम के दर्शन से ज्ञान होगया। बोले, "जब तक यह दसमुख, दसशीश और दस ग्रीव रावण नहीं मरता तब तक काम, क्रोध, लोभ अहंकार से मुक्ति नहीं मिलती। मैं मुक्ति का अभिलाषी नहीं हूँ तुम्हारे सगुण रूप ही का उपासक बना रहूं।"

राम मुस्करा कर चरणों में गिरे और दशरथ आशीर्वाद देकर राम धाम को चले गये।

फिर राम ने इन्द्र से कहा—"रीछ और बन्दरों ने मेरी सहायता की है और मेरी सेवा में अपने प्राण त्यागे हैं। तुम अमृत की वर्षा करो। यह फिर जी उठें।" इन्द्र अपनी सनसनाती हुई बिजली की शक्ति का प्रेरक हुआ। मरे हुए रीछ बन्दरों में नई जान आ गई। अमृत तो दोनों दलों पर बरसा लेकिन राक्षस नहीं जिये। बन्दर और रीछों ही के मुर्दा तनों में जान आई।

राक्षस का अर्थ अब तुम जान गये हो जो केवल अपनी रक्षा के लिए जिये वह राक्षस। और जो निशि (रात) में चर (चर्य्या) करे वह निश्चर है राम ने इन्हें मारा। इनका प्रभाव छिन गया। इनमें राम का प्रभाव भर गया। मरते समय वीर भाव नहीं रहता। राम ने इनको अपना धाम दिया और यह मुक्त हो गये।

बन्दर और रीछ का अर्थ अब तुम जान गये हो। बताना आवश्यक नहीं रहा। यह दिव्य शक्तियों वाले देवता थे, देवता न मुक्त होते हैं और न मुक्ति का प्रश्न आता है। बन्धन और मुक्ति का भाव केवल मनुष्य जाति में है। जो बन्धन न चाहे उसी के लिए मुक्ति है और जो बन्धन का भाव ही नहीं रखता उसके लिए मुक्ती नहीं।

यह सब हो चुका। सबके अन्त में शिव भगवान पधारे, नमस्कार और प्रणाम किया, राम से कहने लगे–'यह इच्छा है कि अयोध्या में जब आपका तिलक उत्सव हो, मैं वहाँ आऊँ'। राम मुस्कराये और उनकी मुस्कराहट में शिवजी के प्रश्न का उत्तर था।

राम और शिव का रहस्य भी अब तुमसे छिपा हुआ नहीं है। राम और शिव साथ साथ रहते हैं। दीपक के नीचे ही अँधेरा रहता है। दीपक अँधेरे का प्रकाशक और अँधेरा दीपक के प्रकाश का सहायक है। कहने को यह अलग हैं, वास्तव में अलग हैं मिले जुले भी रहते हैं। राम के प्रकाश

का आधार यह शिव ही है, सेतबन्ध रामेश्वर के मन्दिरके प्रसंगमें लिङ्ग और अर्घ की कुछ व्याख्या करदी गई, शेष पतंग गुरु की कृपा से मिलेगा।

शिव द्रोही मम दास कहावै। सो नर सपने मोहि न भावै॥

राम ने रामेश्वर लिंग (स्मार्क) की स्थापना के समय यह वाणी कही थी।

तीसरा समुल्लास

लंका से कूच

शिवजी के अन्तर्ध्यान होते ही विभीषण राम के पास आये। प्रार्थना की "भगवन्! आपने मच्छर को हाथी बना दिया। आपकी अपार दया धन्य है! अब यह विनती है कि लंका को सुशोभित कीजिये और मुझे कुछ सेवा का अवसर प्रदान कीजिये।"

राम—"यह सब सच है। मेरा लंका जाना असम्भव है। अब मुझे अयोध्या को लौट जाना चाहिये। चौदह बरस में दो तीन दिन शेष रह गये हैं। समय पर न पहुंचूंगा तो भरत को जीता जागता न पाऊंगा। अब यह प्रबन्ध होना चाहिये कि मैं वहाँ चला जाऊं। यहाँ रहना अच्छा नहीं है।"

विभीषण—"फिर इतनी मेरी भी प्रार्थना स्वीकार की जाये कि आपकी सेना को ही मैं कुछ सेवा कर सकूं। रहा अयोध्या जाने का विचार! मैं कल आपको वहां पहुंचा सकता हूं।"

राम—"भाई! तुम्हारा कोष मेरा कोष है। मैं अपने में और तुम मे कोई भेद नहीं समझता। तुम रीछ और बन्दरों का जिस प्रकार चाहो सत्कार करो। मैं रोकता नहीं। हाँ, अब यहाँ से जल्द कूच होना चाहिये।"

राम की सेना लंका में गई। विभीषण ने उनको खिला पिला कर सन्तुष्ट किया। और सारे रीछ और बन्दरों को ढेर ढेर भूषण वस्त्र सहित भेंट किये। वह लाल पीले बनकर प्रसन्नता पूर्वक सेना स्थल में आगे। राम को नमस्कार किया राम इन्हें देखकर मुस्कराये विभीषण ने रावण का सजा सजाया हुआ पुष्पक (फूल के समान हल्का) विमान मंगाया। वह चील के सदृश्य मँडलाता हुआ आया और जो सामिग्री रास्ते के लिये आवश्यक थी उसमें भर ली।

राम ने सारे रीछ और बन्दरों को सामने बुलाकर कहा—"तुम सब के सब मुझे लक्ष्मण के समान प्यारे हो। तुमने इस धर्म युद्ध में मेरी सहायता की। तुम न होते तो लंका का जीतना मेरे लिये कठिन काम होता। तुम्हीं ने अपनी जानें दीं। शत्रुओं को मार गिराया। मैं तुम्हारा उपकार मानता हूँ। अब मेरी यह इच्छा है तुम अपने बाल बच्चों में जाकर रहो। घर छोड़े हुए बहुत दिन हो गये। वह दुखी होंगे। उन्हें जाकर सुखी करो। यह ध्यान रक्खो कि मैं मन से तुम्हारे साथ हूं तुमको और तुम्हारे उपकारों को नहीं भूल सकता।

> यह कड़ा पत्थर उठाया छाती पर मेरे लिये।
> तुम मेरे साथी बने और जान पर खेला किये॥
> तन दिया मन दिया और शीश तक अर्पा मुझे।
> जाओ अब''रहो, जगशत्रु से होकर अभय॥
> मैं तुम्हारे साथ हूं और तुम भी मेरे साथ हो,
> चाहे जैसी हो अवस्था शान्ती से तुम रहो॥

बन्दर और रीछों ने सिर झुका कर उत्तर दिया:—

> राम सोभाधाम तुम हो तुम में सुगी सद्गनी।
> हैं तुम्हारे ही चरण में सच्चा आनन्द मानो॥
> मदकाकारम्, अनंदम्, केवलम् नन्यम् सदा।
> व्यासम् चराचर मध्यम व्यापकम् निष्यम् सदा॥

तुम यहां हो तुम वहाँ हो गुप्त और प्रगटहो तुम।
घटमें हो तलपट में हो औघट में हो जगघट हो तुम॥
तुम हो निर्गुण ब्रह्म, धारा रूप जग उद्धार को।
तारने आये सगुण के भाव में संसार को॥
जैसी हमको आज्ञा हो हमको वह स्वीकार है।
तुम हमारे हम तुम्हारे तुम ही से उपकार है॥
चाहे दक्षिण में बसे चाहे उत्तर में बसें।
तुम हमारे साथ निशदिन कैसे जगके दुख सहें॥
सच्चिदानन्दम्, अनूपम्, अद्भुतम् मुनिनायकम्।
अद्वतीयम्, एकम एकम, जीवजन्तु सहायकम्॥
भक्ति दीजै पावनी चरणों में अपने लीजिये।
दास जब अपना बनाया अपनाही अब कीजिये॥

राम ने कहा—"एवमस्तु! ऐसा ही होगा।"

हनूमान बोले—"मैं चरण-कमल को छोड़ कर अब आपसे अलग नहीं रह सकता।"

राम ने कहा—"तो चलो। लंका देखी। अब चल कर अयोध्या को भी देखो।"

विभीषण, अंगद. सुग्रीव और जाववन्त मन में दुखी हुए। राम ने इनको ढाढ़स दी। यह बोले- आपके राज तिलक के उत्सव देखने की प्रबल इच्छा है।"

राम ने कहा 'तुम्हारी इच्छा अधूरी कैसे रह सकती है। मै इच्छा रहित हूं। जब तुमने मेरी इच्छा पूरी की तो तुम्हारी इच्छा भी पूरी होगी।"

पूरे से पूरा मिला, सब विधि पूरा होय।
पूरण काम हो सर्वदा, नहीं अधूरा कोय॥
बन्धे से बँधा बधा, सब विधि रहा बँधाय।
सेवा कर निरबन्ध की, पल में दे वह छुड़ाय॥

चढ़ बैठो विमान पर! दुखी न हो। मैं तो सदा तुम मे बसता हूँ। तुम इस रूप की और लीला देखना चाहते हो। अच्छा यह भी सही!

ढूंढ़ते हो किसमें मुझ को मैं तुम्हारे पास हूं।
मैं न जलका थलका वासी मैं तुम्हारी सांस हूं॥
राम तन में हैं तुम्हारे राम हैं मन में बसे।
राम हूँ मुझ में रमो मैं ही धरन आकाश हूं॥
भक्ति श्रद्धा भाव से जो ध्यान करते हैं मेरा।
यह समझलें मैंही उनका प्रेम और विश्वास हूँ॥
रम रहा हूं राम रमता बन के रमता राम हूँ।
मैं ही सुख हूं शान्ती मैं शान्त हूँ सुख राश हूँ॥
सर्व सर्वाधार सर्वा व्यापकम, नित्यम् सदा।
मैं सुमेरु का शिखर मैं मान सर कैलाश हूं॥

यह कह कर राम पुष्पक विमान पर बैठे। उनके बायें अंग सीता विराजमान हुई। शरद ऋतु के दिन थे। फिर भी धूप मे बहुत गर्मी थी। मन्द मन्द, सुगन्ध, निर्मल और शीतल वायु बह रही थी। लक्ष्मण पंखा हाथ मे लिये हुए इस मनोहर जोड़े के पीछे बैठे। हनूमान ने नीचे पावों के पास अपना आसन जमाया। सुग्रीव, अगद, जामवन्त और विभीषण दायें बायें शोभायमान हुये।

सार्थी ने कल दबाया। वह क्या था कोई क्या कह सकता है! वह समय और था। उस समय की अवस्थायें और थी। माया (साइंस) की दशा और थी। वह विद्यायें अब नहीं रहीं। काल ने उन्हें भुलवा दिया। वह लोप हो गई। हाँ! इतना तो पता चलता है कि वह भारी भरकम नही था और न उसमें कल के पुर्जों की अधिकता थी। फूल के समान हल्का था। और यही कारण है कि वह पुष्पक कहलाता है।

पुष्पक इन्हें ले उड़ा। वह धर छोड़ कर अधर में आये। पृथ्वी नीचे थी यह ऊपर थे। लंका कपोत के रूप मे दिखाई दी और यह सनसनाता और फरफराता ऊपर ऊपर आकाश मार्ग से उड़ता हुआ चला।

——:o:——

चौथा समुल्लास

राम का सीता को अनेक स्थान दिखाते चलना

चला ! चला !! चला !!! उड़ा ! उड़ा !! उड़ा !!! पुष्पक राम और राम के साथियों सहित उसी प्रकार मँडलाया जैसे गिद्ध और चील्ह आहार से पेट भर कर आकाश में मँडलाते हैं। सीता ने ऊपर से नीचे दृष्टि की। भाँई छुटी। सिर में चक्कर आने लगा। राम ने समझाया नीचे दृष्टि न जाये। दायें बायें दूर से देख। तब तुझे भ्रट न आयेगी। और जब सीता ने ऐसा किया। वह शान्ति हो गई।

राम ने उंगली का इशारा किया। "वह देख, त्रिकूट पर्वत के त्राकार शिखरों की चोटी पर लंका बसी हुई है।"

सीता ने देखा। वह नगर सूरज की धूप में चम चम कर रहा है। आँख उसकी जगमगाहट के तेज को नहीं सहन कर सकती। चका चौंधी आती है।

सीता:—"लंका का नाम न लो। मुझे इस नाम से घृणा आती है। मेरा काल यहाँ ले आया था। मैंने क्या क्या सन्ताप सहे हैं, मेराजी ही जानता है।"

राम:—"यह स्थल रण भूमि है जहाँ बन्दर और राक्षस लड़े थे।"

सीता:—तुम्हारे साथ कई नील सेना थी। इस छोटी सी जगह में वह कैसे समाई होगी! राम हंसे।

> पिन्ड में ब्रह्मान्ड है ब्रह्मान्ड में रहता है पिन्ड।
> जीव जन्तु अनेक उनका भार सहता है पिन्ड॥
> पिन्ड में लाखों करोड़ों नील जीव हैं सब बसे।
> जैसे गूलर में हैं मच्छर और पिस्सू सब धँसे॥
> पिन्ड में भुवनान्तर लोकान्तर हैं सब भरे।
> पिन्ड की सम्भावना का कोई क्या वर्णन करे॥

सीता—"सच है।"

राम—"यह वह जगह जहाँ है लक्ष्मण को शक्ती बाण लगा था। वह मर कर जिये। और इसी जगह में मेघनाद को लक्ष्मण ने मार गिराया।"

सीता—"लक्ष्मण ऐसे भयानक शत्रु के हाथ से बच गये। मैंने उसे जीता जागता देखा। यह मेरा सौभाग्य है।"

राम—"मैंने कुम्भकरण और रावण को इस स्थान में मारा था।"

सीता—"रावण का नाम न लो उस पापी का सुनते ही मेरा कलेजा काँप उठता है।"

पुष्पक उड़ता हुआ समुद्र के मध्य में आया। एक लकीर पानी में दिखाई दी।

राम—"यह सेत है जो रीछ और बन्दरों ने बनाया था।"

सीता—"यह बड़ा कठिन और विचित्र काम था।"

राम—"यह शिव का मन्दिर है जो मैंने स्मारतार्थ यहाँ स्थापना किया था। यह यहाँ जुग जुगान्तर खड़ा हुआ रावण के युद्ध का स्मरण करता रहेगा।"

सीता ने हाथ जोड़कर मंदिर को प्रणाम किया।

पुष्पक उड़ रहा है। जहाँ जहाँ राम बना बना कर ठहरे थे सब सीता को दिखाते गये। फिर विमान दण्डक वन में आया। राम उतर पड़े। अगस्त आदि ऋषियों से मिले। सबको दण्ड प्रणाम करके प्रसन्न किया। रास्ते में कहीं ठहरना नहीं था। ऋषि मुनियों से आज्ञा लेकर फिर विमान पर चढ़े। चित्रकूट पर्वत पर आये। अत्रेय अनुसुइया और कई ऋषियों से समागम करते सीधे प्रयागराज के निकट उड़कर आये। सीता ने पृथ्वी पर काली सी लकीर देखी। पूछा पूछा—"यह क्या है?" राम ने उत्तर दिया—"यह जमुना नदी······है। सीता ने हाथ जोड़ा। इसी से मिली हुई पूरब की तरफ गंगा बह रही थी। जहाँ इन दोनों का संगम है। राम ने उसे सीता को दिखाया। सीता ने गंगा को

दयाल शिवव्रतलाल कृत

महारामायण
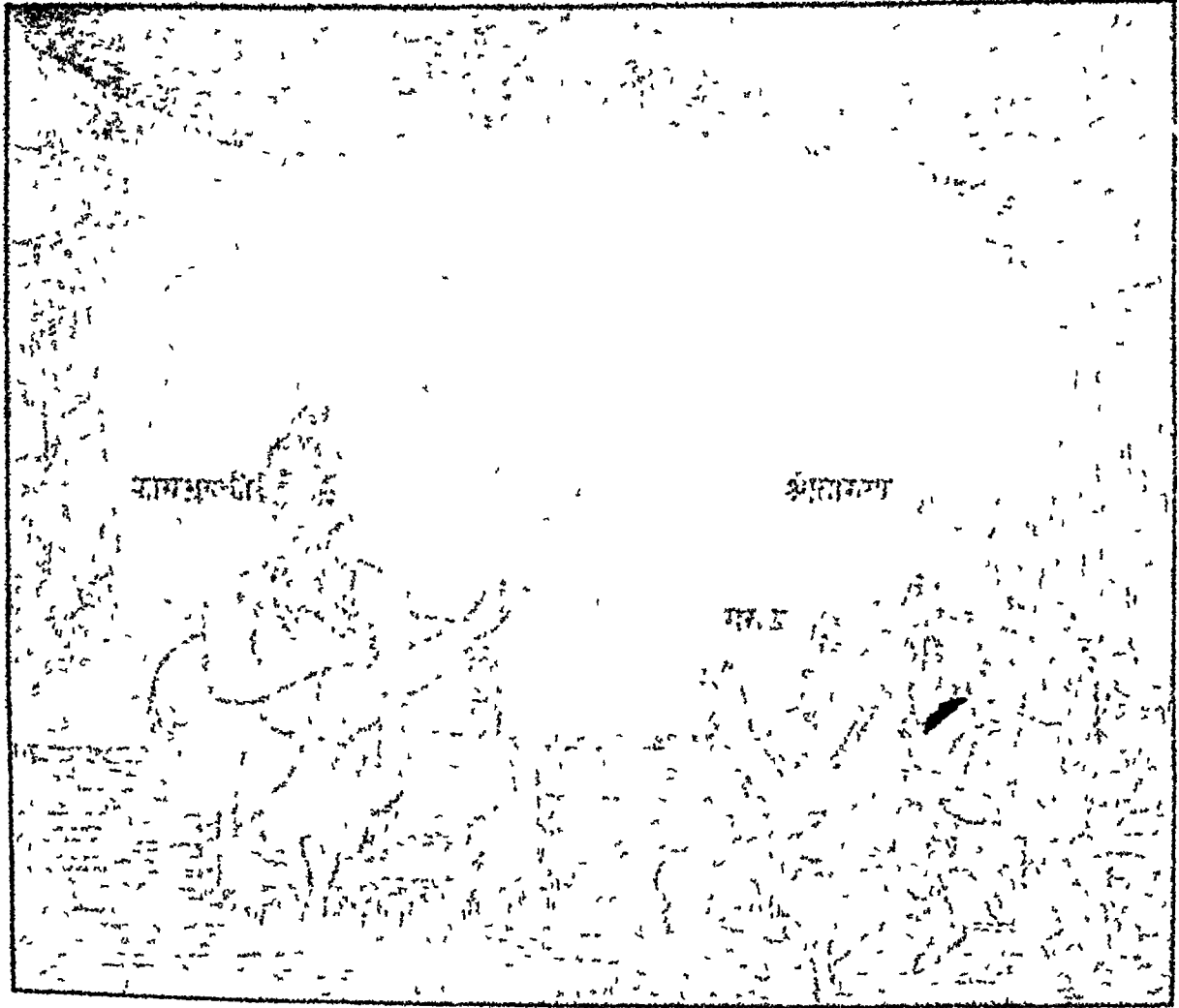
अनुभव खंड (उत्तरार्द्ध)

महारामायण

सातवाँ अनुभव खंड

उत्तरार्द्ध प्रारम्भ

प्रथम भाग

पहिला समुल्लास

भरत हनूमान

नन्दी ग्राम एक गाँव है, जो अयोध्या से उस तरफ़ बसा हुआ है। भरत जी ने यहाँ फूँस का झोंपड़ा डाल रक्खा था। उसके बीच में सिंहासन था। सिंहासन पर राम का खड़ाऊँ रक्खा था। भरत जी उसके नीचे बैठकर राजकाज का प्रबन्ध मंत्रियों द्वारा कराया करते थे। सिर पर जटाजूट धारण कर रक्खा था। गले में साधारण बल्कल वस्त्र पड़े रहते थे। जब से राम बन को गये, भरत और शत्रुहन दोनों भाइयों ने तपस्वियों का रूप बना रक्खा था। फल फूल, कन्द मूल का सूक्ष्म अहार था। काम करते थे। काम में आलसी नहीं थे लेकिन वह काम इस विचार से किया कराया जाता था कि राम की सेवा है।

इस प्रकार तपस्वियों जैसा जीवन व्यतीत करते हुए भरत राम के लौटने के दिन गिना करते थे। भरत राजा थे, साधू थे कि तपस्वी थे, इसका विचार उनके चरित्र के जानने वाले कर सकते हैं।
...र्ष की अवधि का अन्त होगया।
...र रह गया। एकान्त में बैठे हुए
...सोचने लगे-"राम अब तक
...। मै महा अपराधी हूँ
...लेकिन राम इतना तो जान गये हैं कि मै निर्दोष हूँ। फिर वह मुझे भूल क्यों गये? लक्ष्मण बड़े भाग्यवान हैं जो रात दिन राम की सेवा में लगे रहते हैं विधाता ने मुझ से राम की सेवा का सौभाग्य भी छीन लिया। फिर भी मुझे दृढ़ विश्वास है कि राम का कोमल हृदय मेरी त्रुटियों पर दृष्टि नहीं डालता। वह बड़े हैं उनमें बड़ाई है।

जो छोटे छुटाई नहीं छोड़ते।
बड़े भी बड़ाई नहीं छोड़ते॥

ऐसा प्रतीत हो रहा है कि राम आ ही रहे होंगे मेरा मन आप ही साक्षी दे रहा है। दाहिना अङ्ग फड़क रहा है। राम कल तक न आये और मैं फिर भी जीता रहा तो मेरे समान इस संसार में कोई अधम पापी न होगा।"

कुटी में फूँस के आसन पर बैठे हुए वह अपने विचार में मग्न थे। चित्त त्रिसमाधित बन गया था। आँखें बन्द थीं। अकेले थे। कोई उनके पास नही था कर्मचारी केवल समय समय पर आते थे। अकस्मात् आँख खुल गई। देखते क्या हैं कि हनूमान चले आ रहे हैं। पहिचाना नहीं है।

हनूमान बोले-"तुम जिसके नाम का सुमरन रात दिन करते हो और जिसकी मूर्ति निरन्तर

तुम्हारे ध्यान मे बसी रहती है वह रघुकुल तिलक सूर्य वंश का दिव्य मणि रण में रावण को मार कर और राक्षस कुल का नाश करके तुमसे मिलने के लिये आ रहा है और ब्रह्मांड में उसकी विजय कीर्ति की बधाई बज रही है।"

भरतजी ने पूछा–"प्यारे भाई! तुम कौन हो जो शुभ और मंगल का समाचार सुनाने आये हो।"

उत्तर दिया–"मैं मारुत सुत (वायु के समान दौड़ने वाला) हनूमान हूं। मेरा यही नाम है। और मैं राम का सबसे छोटा सेवक हूं।"

भरत उठे। हनूमान झपट कर इनके चरणों में गिरे। इन्होंने झपट कर उठा लिया और अपनी छाती से लगा लिया। प्रेम की धार हृदय में उमड़ी। आँखों मे आई। आँसू भर आये। "तू आज क्या मिला मुझको राम मिल गये? तू राम का दूत नहीं है राम का रूप है। बता राम कैसे हैं! और सीता, लछमण की क्या दशा है?"

हनूमान–"सब कुशल क्षेम से हैं।"

भरत–"क्या राम को कभी मेरा ध्यान आता था? मैं भी तेरे समान राम का दास हूं।"

हनूमान–"तुम राम के प्राण प्यारे ही नहीं हो, तुम उनके प्राण हो। राम रात दिन तुम्हारी चर्चा करते रहते थे। और तुमको अपना निज स्वरूप समझते हैं।"

भरत के आनन्द की कोई सीमा नही रही। बार बार हनूमान को देखा और बार बार उन्हे छाती से लगाया।

हनूमान ने राम के पास जाने की आज्ञा माँगी। यह तो इधर प्रयाग राज की तरफ उड़े इधर भरत ने अयोध्या में आकर सबसे पहले वशिष्ट को राम के आने का समाचार सुनाया। फिर राज भवन में जाकर माताओं को सूचित किया। धीरे धीरे नगर वालों ने सुना। सुख का समुद्र सबके हृदय में उमड़ने लगा। कोई अपने आपे में नहीं रहा। जो जहाँ बैठा था वहीं बैठा और राम के दर्शन के चौड़े राज पथ पर आ निकला। बूढ़े और छोटे बच्चों के साथ लाने और साथ लेने का ध्यान किसी को नहीं रहा। जो आते जाते हुए मिलते हैं उनसे प्रश्न किया जाता है क्या तुमने राम को देखा है? अब वह अयोध्या से कितनी दूर हैं? कब आयेंगे?

किसी को उस समय राम के अतिरिक्त और किसी बात का ध्यान नहीं था। खाने पीने, काम काज, घर बार, व्योहार, व्योपार सबकी सुध जाती रही।

राम आगये! कहाँ हैं! किधर हैं! हम उनको चल कर देखें! चौदह बरस हुए जब वह घर से तपस्वी बन कर निकले थे। एक जुग बीत गया। जीने वाले जिये, मरने वाले मरे। जीने वाले मौत को भूल गये। मरने वाले जीवन को भूले। किसी को नही भूले तो राम नही भूले थे। राम सर्व प्रिय थे। राम का नाम सर्व प्रिय नाम था।

गये है वन को कभी लौट कर वह आयेंगे।
हम उनको देखेंगे और आप को दिखायेंगे॥
है राम सबके सहायक, हैं राम सर्व प्रिय।
वह आये आँखों पर अपने उन्हें बैठायेंगे॥
अजोध्या सूनी थी, सूना बना था कौशल देश।
वह आयें आये उन्हें बीती सब सुनायेंगे॥
तुम्हारे जाने के पीछे दुखी हुए सब लोग।
यह दुख था क्या, दशा देश की जतायेंगे॥
अजोध्या बन हुई जबसे गये हैं राम को बन।
हमारी बिगड़ी को राम आनकर बनायेंगे॥
बसेगी उजड़ी हुई बस्ती, लोग होंगे सुखी।
न उनको छोड़ेंगे हम रूठे को मनायेंगे॥
कहां हैं राम कहां लछमण कहां सीता!।
दिखादो चल के हमें उनको साथ लायेंगे॥

सब में इस प्रकार की गपशप होने लगी!

नगर की स्त्रियाँ दौड़ीं। अक्षत, दूब, हल्दी, केसर, रोरी, तुलसी के पत्ते थालों में सजाये। "राम को टीका लगायेंगे।" बहुतों के सिरो पर पानी से भरे हुए कलश थे। "राम आरहे हैं। भरे घड़े का सगुन दिखायेंगी।" यह उस समय का सत्कार व्योहार था। बहुत स्त्रियां आर्ती सजा कर अपने २ दरवाजों

र जनकर खड़ी होगईं। 'हम राम की आरती उतारेंगी।" इन्होंने राम को क्या समझा हुआ था

अपना अपना भाव! अपना अपना इष्ट! अपनी अपनी दृष्टि! अपने अपने मन की सृष्टि!

किसी की दृष्टि में थे राम मालिक।
कोई जानती थी उन्हें देश पालक॥
अजोध्या का राजा कोई मानती थी।
कोई ब्रह्म का रूप पहिचानती थी॥
किसी बच्चे वाली ने समझा था बच्चा।
कोई कहती है जानकी का वह दुल्हा॥

सारे नगर में धूम मच गई। राम आये। लक्ष्मण आये। सीता आईं। और एक भी प्राणी ऐसा नहीं था जो उस समय राम के प्रेम मे निमग्न न हुआ होगा।

सूखी नहर में पानी आया, सूखे पौधे हरे हुए।
धान के खेत पड़े थे पीले, पानी पीकर भरे हुए॥
निर्धन को धन मिला, रामका नाम जो उसने सुन पाया।
राम नाम क्या विचित्र धन है, धन पाया शुभ गुण पाया॥
राम राम की रटन लगी, राम राम सब कहने लगे।
राम प्रेम के गंगा घाट पर तैर तैर कर बहने लगे॥
आये राम अरु आने से उनके, मंगल चाहूँ दिशा छाया।
मिला या ना मिला किसी को, सबने समझा भर पाया॥
राम थे वन में वन बासी, और राम थे लोग जगत वासी।
राम अयोध्या बासी सगे, मन वासी और तन बासी॥

भरत सबसे अधिक फूले हुए तन में नहीं समाते थे।

दूसरा समुल्लास

"भरत मिलाप"

हनूमान गये और आये। झकोले के समान गये और आँधी के समान आये। राम को भरत की कुशल पहुंचाई।

नाम तुम्हारा होट पर, मन में तुम्हारा ध्यान।
नन्दीग्राम में देह है, निकट तुम्हारे प्रान॥
दरस परस की लालसा, आंख खुली दिन रैन।
ना तुम मिली न मैं सुखी, कैसे पाऊँ चैन॥
अँखियाँ यकटक घूम रहीं, इत उत चारो ओर।
अजहुँ राम आये नहीं, नहीं ठिकाना ठौर॥
विरह अग्नि सुलगत रही, निसिदिन बारह मास।
हड्डी हड्डी रह गई, जल गये पिंजर मांस॥

राम उठे। विमान पर चढ़े। वह सबको ले उड़ा नन्दीग्राम में पहुंचा। भरत वहां नहीं थे। वायु रथ अयोध्या पहुंचा। सबकी दृष्टि आकाश की तरफ थी। रथ दिखाई दिया। धूम मच गई। राम आये! राम आये!! राम आये!!! राम का नाम आगे पीछे दायें बायें ऊपर नीचे गूंज उठा।

राम आये राम आये आगये।
धन्य जिनको राम का दर्शन मिले॥
कर्म, ज्ञान, अन्तःकरण के पार में।
चौदह इन्द्री में नहीं वह बार में॥
आरहे हैं नभ से और लो आगये।
धन्य हैं जो उनका दर्शन पा गये॥

सब राम का रास्ता देखरहे थे। ऊँची दृष्टि नीचे पड़ी। पृथ्वी पर सब लोग राम राम कहते हुए खड़े थे। राम स्वर्ग से आये पृथ्वी पर आकर ठहरे। सूरज वंशी सूरज अंशी थे। सूरज ऊपर रहता है। राम का कुल सबसे ऊँचा है। 'ओम्, भूर, भुवः, स्वः तत्, सवितुर, वरेण्यम् भर्गो देवस्य धी, मही, धियो योन, प्रचोदयात्।'

वायु रथ नीचे उतरा। जहां भरत खड़े थे। राम सतोगुणी माता और भरत तमोगुणी माता के लड़के थे। प्रकाश छाया पर पड़ता है। राम उतरे।

आन आये। पावों पर गिरे। राम ने झपट कर उठा। छाती से लगाया। लाखों की भीड़ थी। और सब राम का मुँह देखने आये थे। अंग से मिलने के इच्छुक चाहे न रहे हों लेकिन उस भीड़ में कोई स्त्री पुरुष ऐसा नहीं था जिसे राम के रूप देखने की लालसा न रही हो। लड़के पूछते थे राम कहां हैं हम भी देखें! बूढ़े बोलते थे। राम का वच-पन में देखा था अब वह पुरुष होगये कैसे हैं! स्त्रियां तो राम और सीता के नाम पर उधार खाकर आई थीं। वह मनोहर जोड़ी कैसी होगी! हम भी तो उसके दर्शन का लाभ उठायें!

राम गुरु और माताओं के पावों पड़े। आशीर्वाद लिया। मन्त्रियों से मिले। औरों से अब कैसे मिलते! राम लंका जाकर सिद्ध हो आये थे। वह पहिले भी सिद्ध रहे होंगे। लंका जाने से उनकी सिद्धी में सन्देह नहीं रहा। रावण मरते मरते उन्हें बहुत सी बातें सिखा गया था। नर रूप में आये थे। नर लीला दिखाते थे। सीखते थे सिखाते थे। रावण एक से अनेक बन गया था रण भूमि लाखों और करोड़ों रावणों से भर गई थी। राम इस दृश्य को कैसे भूल सकते थे!

लाखों स्त्री पुरुष राम के दर्शन निमित्त आये थे। वह निराश कैसे जायें! राम ने वही रावण की लीला की। एक से लाखों होगये सब से मिले। एक को भी नहीं छोड़ा और आश्चर्य यह था कि जिसने देखा एक ही राम को देखा। अनेक राम दृष्टि में नहीं आये। सबने जाना, "राम मुझसे मिले औरों से नहीं मिले।" इसी भीड़ में यह झगड़ा मच गया। सबके मुंह में यही एक बात थी।

> [illegible] मन में था मेरे मुझसे मेरा प्यारा मिला।
> आँखें था आँखोंका आंखों जोति का तारा मिला॥
> [illegible] देखा राम को और राम ने देखा मुझे।
> [illegible] था मैं [illegible] था वह सार था भाग मिला॥
> राम है [illegible] तिलक भूषन का [illegible] है।
> [illegible] भाग भी [illegible] मिला॥

भरत शत्रुघ्न दोनों राम से मिलकर रीछ बन्दर और राक्षसों से मिले।

भरत मिलाप तत्व मिलाप था। "तत त्वम असि" वाच और लक्ष्य का दृश्य था।

> सब से मिला हुआ है हमारे वह मन में है।
> मन में जो आके ठहरा वही ठहरा तन मे है॥
> सब में है सबका है वही रहता है सब जगह।
> बस्ती, पहाड़, जंगल, ऊसर में बन में है॥
> नौ तत्व में शरीर मे नौ रस है राग में।
> हीरा के रूप उसकी चमक नौ रतन में है॥
> ज्ञानी का तत्व ज्ञान तो ध्यानी का ध्यान मान।
> जोगी का जोग बन वह जोग और जतन में है॥
> यम है नियम है प्राण है आसन में है वही।
> सन्तों के है वचन में तो श्रवण मनन में है॥

राम बन्दर, रीछ और राक्षस को साथ लिये हुए अपना नगर दिखाने चले। भोली भाली स्त्रियाँ आर्ती उतारने के निमित्त अपने दरवाजों पर खड़ी थीं। कहारियों ने सिर पर पानी का कलश धारण कर रक्खा था। राम उनके पास भी गये। वह मगन हो गई कहारियों को पारितोषक भी दिया। जिन्होंने देखा और पाया उन्होंने जाना। जिन्हें नहीं मिला वह क्या जानते। स्त्रियाँ कहती थीं "राम मेरी ड्यौढ़ी पर आये आरती उतारी" पुरुष कहते थे-"चल बावली! तू पागल होगई? राम कब घरों घरों मारे मारे फिरने वाले हैं!" अयोध्या में बहुत दिनों तक यही चर्चा होती रही और हाथी के अन्धो के समान सब इसी एक बात पर लड़ते झगड़ते रहे।

> वह आया आया आया बाहर भीतरमें वह आया।
> फुदकता आया आंगनमें यहांतक घरमें वह आया॥
> उसे आना था आया, रोकने वाला कहां कोई!
> हमारे रोममें नस नाड़ीमें भी सिरमें वह आया॥
> चला उत्तर से जब, दक्षिण गया, फिर आया उत्तर में।
> वही अवतार बन कर देख लो तुम नर में वह आया॥
> रमा रमता बना जोगी रमा है राम नाम [illegible]।
> यहां आयो वहां [illegible] पहाड़ ऊसर में वह [illegible]॥
> चराचर में है व्यापक एक है और एक है निर्विघ्न।
> वही [illegible] में [illegible] और [illegible] में वह [illegible]॥

राम ने नगर का चक्कर लगाया। भीड़ साथ है। साथियों के देखने योग्य सब जगहें दिखाई। हस हंस कर मजे मजे की बातें करते रहे। "भाइयो! अयोध्या नगरी मुझे बहुत प्यारी है। इसका गुण इसके नाम में है। नाम की छानबीन मे गुण का पता लगता है। इस नाम मे दो धातु हैं- 'अ" नहीं और युद्ध (लड़ाइ) जिसमें लड़ाई नहो वह अयोध्या है। और यह अयोध्या जिस देश की राजधानी है वह कौशल देश है। कौशल देश उसे कहते हैं जिसमें कुशल और शान्ति रहे और मै राम हूँ जो इसमे रहने के लिये या रमण करने के लिये आया हूँ। इस अयोध्या मे आने का मन्तव्य शान्ति, कुशल और अयुद्ध अवस्था में रहना है। यह ब्रह्मॉड में नर पिन्ड, नर शरीर और नर देही है।

तुमने समझा होगा कि मैं लड़का हूं और दक्षिण में युद्ध करने गया हुआ था। नही ऐसा नहीं है। रावण का रजोगुणी अहकार बढ गया था। कुम्भकरण का तमोगुणी संस्कार अपनी सीमा को छोड़ गया था और विभीषण का सतोगुणी व्यवहार निबल पड़ गया था। मैंने राक्षसों की सतोगुणी, बन्दरों की रजोगुणी और रीछों की तमोगुणी सेना इकट्ठी की। इनको नियम बद्ध किया। इनसे यम कराया। रावण को धर दबाया। कुम्भकरण को मिट्टी में मिलाया। उनका जीवन अंश लेकर अपने अंतः रख लिया। तुम इसे युद्ध समझो। अयोध्या का राजकुमार दशरथ सुत लड़ने भिड़ने नहीं गया था। उत्तर (मस्तिष्क) से उतर कर दक्षिण (संस्कृत दक्ष) वृद्धि, सिद्धि प्राप्त करने और अपने रमण संस्कार को उभारने गया था। उत्तर क्या है? उन (ऊपर) तर (तरना) है। मै उत्तरा खॅड से दक्षिण खंड में इस अभिप्राय से गया हुआ था।

विभीषण, जाववन्त, हनूमान सुग्रीव, अगद और नलनील की ज्ञानदृष्टि खुलगई प्रणाम किया।

राम रमता जोगी ठहरे आये रमता राम हो।
तत्व की शोभा दिखाई सबको सोभा धाम हो॥
रमने आया रमता जोगी रम गया और रम रहा।
वह नहीं आया हुआ था मोह मद और काम हो॥
ब्रह्म का अवतार था अवतार था अवतार था।
उतरा उत्तर खड से दक्षिण गया विश्राम हो॥
राम को कहना नहीं नर, राम नारायण हैं आप।
रूप दिखलाया सभी को भेद दंड और साम हो॥
गुरू की सॅगति हो तो प्राणी समझे राम का पूर रहिस्य।
गुरू की सॅगति रात दिन हो और आठों याम हो॥

अयोध्या नगर की परिक्रमा करके राम गुरू वशिष्ठ के घर गये। विभीषण के हाथ से लंका के रत्न भेट कराये। रीछ और बन्दरो ने फल फूल पत्ते उनके आगे धरे। फिर यह कैकेयी माता के राजभवन मे गये। वह कुछ लजाई और सहमी हुई थी। चारो भाई, सीता और रीछ बन्दर उसके पावों पर गिरे। राम ने अपने साथियों से कहा "यह मेरी सच्ची माता है। इसने माता की ममता से मुझे चौदह बरस (की अवधि) में पॉच कर्म इन्द्रयों, पाँच ज्ञान इन्द्रयों और चार अन्तः करण के वस में लाने का अवसर दिया। यह न होती तो यह काम कदापि न होता। यह स्वार्थी नहीं है परमार्थी है। स्वार्थी होती तो सदा के लिये भरत को राज दिलाती। इसे मेरी भलाई का ध्यान भरत की भलाई से भी अधिक है। यही कारण है कि मै इसे अपनी सच्ची माता कहता हूं।

राम और उनके साथी फिर कैकेयी के चरणों में गिरे। इस बार उससे न रहा गया। राम को उठा कर छाती से लगाया। माथा और सिर चूमा और आँसुओं के मोती उनके सिर पर न्यौछावर कियेगये।

फिर राम सुमित्रा रानी के भवन में आये। दंडप्रणाम किया। साथियो से बाले "यह मेरी दूसरी माता है जिसने अपने कलेजे का एक रत्न लक्ष्मण (लक्ष-आदर्श और मण-मन) मुझे दिया। मन का आदर्श यह मेरा छोटा भाई लक्ष्मण है। और इसी माता ने अपने हृदय के दूसरे रत्न शत्रुहन (शत्रु-बैरी और हन-मारने वाला) मेरे भाई भरत को देकर अभय कर दिया। यह प्रशंसा, मित्रता और उदासीनता की प्रतिमा है। इससे बढ़कर कौन हो सकता है! यह जीवन मुक्त है।"

सबने उसे प्रणाम किया । और उसने राम को अंग लगाकर आशीर्वाद दिया ।

अन्त में राम कौशिल्या के महल में आये। उसने उन्हें पावों पड़ने का समय नहीं दिया। झपट कर गोद में भर लिया। उसकी दृष्टि में राम बच्चा प्रतीत हुए। उसने कहा, "राम। तू शरीर का इतना सुकुमार और कोमल है कैसे रावण जैसे वली शत्रु को मार सका ?" राम हंसे और साथियों से मुस्करा कर कहा-'यह मेरी पहिली माता हैं कौशिल्या कहलाती है। और कौशल देश की कुशल देवी है। और इतनी भोली भाली है कि मुझे अबतक नन्हा बालक समझ रही है। तुम इससे पूछो, कुशल कौशिल्या के चरणों में है या और जगह है ? इसीके अंग की कुशलता का मुझे भाग मिला इसीने मुझे कुशल बनाया और इसी पुन्य प्रताप से मैं जीता जगता और कुशल हूं। और यह भोलेपन से पूछ रही है तुम कैसे कुशल पूर्वक रावण के हाथ से बच कर आये !" राम की इस बात पर सब खिलखिला कर हँसपड़े। कौशिल्या ने उन्हें चूमा चाटा जैसे गाय अपने छोटे बछड़े को चूमती चाटती है।

इधर गई, उधर गई। खाने पीने के पकवान लाई। राम को सबको बिठाया। सबने मिलकर खाया पिया।

रीछ बन्दर और राक्षस कहने लगे-"धन्य है राम की माता ! राम इसी की कोख के दिव्य और मूल्य रत्न हैं ऐसे ही पवित्र खान से बहुमूल्य रत्न पुत्र के रूप मे निकलते हैं।"

तीसरा समुल्लास

राम राजतिलक

दशरथ तरसता रहगया। न राम को युवराज बना सका न तिलक कर सका। अयोध्या बासियों की इच्छा मन ही मन में रह गई। पूरी न होसकी। त्रिया हट की प्रबलता ने इन सब को पीछे ढकेल दिया। हट तीन प्रकार की होती है। राज हट बाल हट, और त्रियाहट। त्रियाहट इन सबमें अधिक बलवान है। राम को चौदह वरस के लिये बनको जाना पड़ा। दशरथ ने इसी दुख में अपना प्राण त्याग दिया और पुरवासी देखते के देखते रह गये।

सबसे बलवान देव माया।
सब पर रहती है उसकी छाया ॥
होता है वही जो देव चाहे।
है सब में बली वही बना है ॥
पत्ते पत्ते का होके प्रेरक।
करता रहता है अपना कौतुक ॥
जो चाहे करे करावे दाता।
करता धरता हैं वह विधाता ॥
वे उसके कहीं भी कुछ हुआ है।
पत्त भी नही कभी हिला है ॥

आज चौदह बरस की अवधि पूरी होगई। राम कौशिल्या के भवन में थे। वशिष्ट, वामदेव, सुमन्त आदि मन्त्री पहुंचे। कहने लगे-"आज शुभ घड़ी शुभ दिन, शुभ मुहूर्त्त है। आज ही राम का राज तिलक होना चाहिये।"

कौशिल्या ने कहा-"ऐसा ही करो।"

वशिष्ठ बोले—"राम स्नान करे। नये वस्त्राभूषण धारण करे।"

रामने कहा- 'पहिले मेरे साथियों को न्हिलाओ, धुलाओ, वस्त्राभूषण पहिनाओ। इन्हीं की सहायता से मैंने शत्रु पर विजय पाई है। यह मुझे लक्ष्मण, भरत शत्रुहन से भी अधिक प्यारे हैं।"

फिर राम ने अपने हाथ से भरत और शत्रुहन की जटायें खोलीं। यह दोनों भी जटाधारी बने हुए

थे। इन्हें न्हिलाया और देह में उबटन, तेल फुलेल लगाया गया। नये वस्त्रा भूषणों से यह सुशोभित किये गये।

सीता को भवन के भीतर स्त्रियों ने न्हिलाया, धुलाया, संवारा, सिंगारा। भूषण वस्त्र पहिनाये। नाइन ने पाँवों में महावर लगाया। सबके पीछे राम न्हाये और राज वस्त्र और राजमुकट धारण किये। सुनहले सिहासन पर आकर विराजमान हुए। राम लक्ष्मण की जटायें बहुत बढ गईं थी। नाई ने उन्हें हाथ नहीं लगाया। धो धुला कर मैल निकालने के पीछे बीच से माँग निकाल दी थी। बाल कटवाने का फैशन नहीं था और खुले हुए बालों के सिर पर माणिजड़ित मुकट रक्खा गया। सीता उनके बायें तरफ सिंहासन पर आ बैठी। स्त्री और पुरुष दोनों ही राज के भागीदार समझे जाते थे और जबतक स्त्री पुरुष के वाम अंग में आसन आरूढ़ न हो जाये तब तक कोई शुभ काम नहीं किया जाता था।

सीता और राम सिहासन पर बैठे। ब्राह्मण वेद और भाट कवित्त पढ़ने लगे। नाचने गाने वाली स्त्रियाँ आइ। नाचा, गाया। स्त्रियों ने मंगल राग गाया।

सबसे पहिले विधि अनुसार वशिष्ट ने राम को तिलक लगाया यह राजगुरु थे। फिर और ब्राह्मणों ने अपनी अपनी बारी पर टीका किया। राम ने राज कोष खोल दिया। सबको इतना दान दक्षिणा दिया कि वह धनी हो गये। और यह भी उस महा उत्सव के आनन्द में इतने उन्मत्त और मगन होगय कि यह भी अपने मिले मांगधन का बटवारा करने लगे।

राम का दान, महा कल्याण।
राम का दान, महा सन्मान ॥
राम दान की महिमा भारी।
राम दान के सभी भिकारी ॥
राम सिंहासन आन विराजे।
सोभा मगन अद्भुत साजे ॥
दया दान धन सम्पति पाई।
अब दरिद्र दुख निकट न आई ॥

राम ने सिहासन पर बैठ कर रीछ, बन्दर और राक्षस का भी भेंट दान से सन्मान किया। सबने लेकर सिरपर चढ़ाया। गाने, बजाने वाली उद्यमी स्त्रियों को इतना धनमिला कि वह अमात्य होगईं।

इसी मंगल उत्सव के अवसर पर ब्रह्मा जी वेदों को हाथ मे लिये हुए आये। वेद भेट में दिये। अब तक वेदों के चार विभाग नहीं हुए थे। हाँ उनमें पुरुष सूक्त, देवी सूक्त आदि प्रसंग प्रथक प्रथक थे। जिनसे शिव शाक्ति आदि अपने मत विचार के प्रमाण निकाला करते और अपने अपने पक्ष की पुष्टि की सामिग्री ढूंढ़ते रहते थे।

ब्रह्मा ने राम की स्तुति गाई—

१ राम शोभा धाम तुम हो, राम तुम पूरन धनी।
राम मंगल रूप तुम हो, ज्ञान ध्यान के सुख भनी ॥
२ ज्ञान हो अनुमान हो, प्रमाण अनुभव खान तुम।
अर्थ कर्म और मोक्ष हो, जीव के कल्याण तुम ॥
३ तुम तो हो आधार जग के, धार है संसार यह।
तत्व सबके तुम हो तत्व, सार का है सार यह ॥
४ तुम अगुण हो तुम सगुण हो, गुण सगुण के तुम परे।
मायाधारी तुम हो और रहते हो माया से परे ॥
५ भेद क्या जाने कोई बानी की तुम में गम नहीं।
मन नहीं तुम तक पहुंचता, तुम में तुम और हम नहीं
६ 'हाँ नहीं' के बीच में कुछ कुछ पता पाते हैं हम।
नेति नेति ऐति ऐति कह के समझाते हैं हम ॥
७ ज्ञान की दृष्टी हो तब समझे कोई इस भेद को।
जब नहीं अनुभव तो समझे कौन ज्ञान के वेद को ॥

राम मुस्कराये। ब्रह्मा को कमल के चार फूल दिये और वह प्रणाम करके ब्रह्मधाम को गये।

देवता आये, देवियाँ आईं। उत्सव मनाया राग गाया। सरस्वती देवी की स्तुति विचार से भरी हुई थी।

१ रमे हुये रम रहे जगत में जग के रमता राम बने।
रमता जोगी नाम तुम्हारा, राम हो तुम अभिराम बने ॥
२ चाहे करो कराओ सोई, खेल खिलाने आये हो।
सोभाधारी, लीला न्यारी, लीला दिखलाने आये हो ॥
३ नाम रूप तो सब हैं तुम्हारे, नाम रूप में प्रकट हो तुम।
घट २ वासी सर्व प्रकाशी, सोभा के सुखधाम हो तुम ॥

४ सब के अन्तर रह के निरन्तर, सब के जान के तुम हो जान
सांस साँस के व्यापक होकर, सबके प्रान के तुम हो प्रान
५ अपनो काम बनाते हो, हम सबको आके लगाते हो।
राम राम तुम राम रमे हो, रमे हो जग को रमाते हो।।

राम सरस्वती का राग सुनकर खिलखिला कर हँसे। एक सुन्दर बीन रक्खा हुआ था। उठाया। उसे दिया। उसने ले लिया और नमस्कार कर चली गई।

अन्त मे शिवजी आये। डमरू बजाते, त्रिशूल नचाते, हाथ में खोपड़ी का प्याला लिये हुए, गले में खोपड़ियों की माला डाले हुए, अगड़बम, अगड़बम करते हुए, उन्होंने भी स्तुति गाई:—

१ रामराम तुम राम राग हो, राम रामहो तुम बाबा।
सोभा रूपी सोभा भूमी, सोभा धामहो तुम बाबा॥
२ तुम प्रकाश अविनाशी पूरे, घट औघट में बसतेहो।
मैंतो छाया रूप तुम्हारा, मेरे विश्रामहो तुम बाबा॥
३ मेरानाम कालक्यों रक्खा, महाकाल विकरालहोतुम।
कालहै रूपहै तुम्हारा बाबा, काल नामहो तुम बाबा॥
४ जगत चराचर मेंहो रमते, रमते बिचरने कभी नहीं।
भेदकोई क्यासमझे तुम्हारा, अगम अनाम होतुम बाबा।।
५ नमोनमो हाँ नमोनमो, हाँ नमोनमो हाँ नमोनमो।
अर्थ धर्म और मोक्ष राम तुम, सबके कामहो तुमबाबा॥

राम ने रुद्राक्ष (रुद्र की आँख) की माला उठाई। सन्मान और आदर के साथ भेंट दिया। "राम! तुमने पहिले सीता के स्वयंबर मे मेरा धनुष तोड़ा। मेरे शिष्य परशराम का बल छीन लिया। क्या अब मेरी मुन्ड माला भी छीनना चाहते हो जो यह आँखों की माला दे रहे हो?" राम मुस्कराये। "नहीं महाराज नहीं! मुन्ड माला गले में रहती है वह गले में पड़ी रहे। यह आँख की माला आँख में रहे। यह रुद्राक्ष (तुम्हारी ही रुद्र की) आँख है। तुम्हारी बस्तु तुमको भेंट दी गई।"

शिवजी हंसे। १—चाहते हो मेरी आंखोंमें बसो।
आंख के तल पट मे छुप कर तुम रहो॥
२ आंख में तुम मुन्ड से रहते हो तुम।
हृदय में तुम और क्या कहते हो तुम।।
३ ऐड़ी चोटी तक में व्यापक राम हो।
राम ही में मेरा सुख विश्राम हो।।

रुद्राक्ष की माला ली। नमस्कार किया और शिवजी चलते बने।

——:o:——

चौथा समुल्लास

राम राज

सूरज निकला। जागृत अवस्था आई। कमल के फूल खिले। सूरज का मुंह देखने लगे। सूरज मुखी फूल सूरज के दर्शन में लगा। जिधर जिधर सूरज का रथ जाता है उधर उधर उसके रूप को तरफ इसकी दृष्टि रहती है। जीवन के धार की वर्षा होने लगी। रात के जाते ही रावमें नई जान आगई।

राम राजा हुए। प्रजा सुखी होगई। देश बसा। उजड़ी नगरी नर नारियों से भर गई। दुख गया। सुख आगया। न कोई किसी को सताता है न कोई किसी के पीछे पड़ता है। सब रात दिन अपने काम धन्धे में लगे रहते हैं। सिंह और बकरी एक ही घाट में पानी पीते हैं। धर्म का राज है, धर्म राज की बधाई बजती है। बेटे, बेटी मां की सेवा सत्कार करते हैं। स्त्रियों ने पुरुषों के आधीन रह कर अपने घरों को स्वर्ग धाम बना रक्खा है। अड़ौसी पड़ौसी शान्ति और आनन्द से रहते हैं।

क्यों? क्योंकि स्वराज और सुराज है। राजा का आचरण धर्म का आदर्श है। रानी का व्यवहार हंसी आनन्द और मंगल का कारबार है। राम और सीता दोनों ही आदर्श स्त्री पुरुष हैं। यथा राजा, तथा प्रजा!

जहाँ ऐसा राज और ऐसा राजा हो वहां सुख सम्पत्ति क्यो न इकट्ठे हों। दान धर्म, मेल मिलाप, प्रेम प्रीति का स्वभाविक प्रचार था। व्याख्यान और उपदेश कौन किसे दे और क्यों दे! राम सूरज वंश के तिलक थे। जब सूरज आप चमक उठा तो प्रकाश के निमित्त दीपक कौन जलाये।

जहाँ धर्म का आचरण होता है वहाँ प्रकृति माता आप सहायक बनकर वृद्धि और उन्नति का मार्ग दिखाने लग जाती है।

यह राम राज की महिमा थी।

समय पर पानी बरसता था। खेती हरी भरी रहती थी। खाने पीने के नाज अधिकता के साथ उत्पन्न होते थे। वृक्ष फूलते फलते और फलों से लदे रहते थे। जगह जगह संतों का सत्संग हुआ करता था।

कोई किसी की निन्दा नहीं करता था। राम का नाम सबके होटों पर और राम का ध्यान सबके हृदयों में रहता था। बन वासी बन से आगया। सबकी बिगड़ी आप ही बन गई। यह सुख राम के अतिरिक्त और किसी के राज्य में प्राप्त हुआ होगा! और यही कारण है कि हम इस समय हर्ष और शोक में अब तक राम राम कहा करते और राम राम किया करते हैं।

थोड़े ही दिनों में देश की दशा बदल गई। राम राजा तो थे ही वह अपनी प्रजा के जान और प्राण भी थे। राम उनको प्यारे थे और वह राम के प्यारे थे। राम और सीता बाप और माता के समान समझे जाते थे और प्रजा के साथ इनका व्यवहार वैसा ही था जैसे मां बाप अपनी संतान के साथ करते हैं।

—:o:—

पाँचवां समुल्लास

रीछ, राक्षस और बन्दरों की विदाई

जो रीछ बन्दर और राक्षस दक्षिण से आये थे उनको अवध का अन्न जल कुछ ऐसा अनुकूल आगया कि वह वहाँ ही रहने की इच्छा करने लगे। लंका सोने की रही हो लेकिन आर्यवर्त आर्यवर्त ही है। यह देश फिर भी सर्व श्रेष्ट है।

राम ने इनकी दशा देखी। मर्यादा के विरुद्ध राम का कोई काम नहीं होता था और वह अपने समय में मर्यादा पुरुषोत्तम कहलाते थे। उन्होंने एक दिन इन्हें अपने पास बुलाकर कहा—"भाइयो! तुम सब मुझे भरत और लक्ष्मण के समान प्यारे हो। मैं तुम्हारे साथ सच्चा और गहरा प्रेम रखता हूं। लेकिन मैं स्वार्थी नहीं होना चाहता और न स्वार्थ वश होकर तुमको अधिक दिनो तक यहाँ रखना चाहता हूं। तुम्हारे प्रेम और सहायता के ग्राहक तुम्हारे कुटम्ब और घर के भी प्राणी हैं। तुम्हें अपनी जन्म भूमि से आये हुए बहुत दिन हो गये। जी तो नहीं चाहता कि तुमको आँखोंसे दूर करूँ लेकिन धर्म कहता है कि तुम अब अपने अपने घरों को जाओ। अपने अपने बाल बचों में रहो।"

यह सब के सब राम का मुंह देखने लगे। किसी का मुँह नहीं खुल सका। हक्का बक्का हो गये। राम ने सुनहरे वस्त्र भूषण मँगाये सबको अपने हाथ से दिये। राम का प्रसाद समझ कर सिरोंपर चढ़ाया।

और तो उस समय तक कोई नहीं बोला सब के सब चुप रहे। अंगद उठे। और डबडबाई हुई आँखों के साथ राम के चरण पकड़ लिये। "प्रभो! तुम अनाथों के नाथ और देवों के सहायक हो! और लोग अपने अपने घरों को जायँ! मेरा घर तो आप के चरण कमल है। मैं इसे छोड़ कर कहाँ जाऊँ! बाप ने मरते समय मुझे आप ही को सौंपा था। आप ही मेरे गुरु स्वामी और माँ बाप हो। मुझे

जाने के लिये न „और जो चाहो कहो मैं जन्म भर आपकी करता रहूँगा।"

यह कह अंगद राम के चरणों में गिरे। राम ने उन्हें उठाकर अपनी छाती से लगा लिया। और समझा कर कहा "बेटे! तू किष्किन्धा का राज कुमार और युवराज है। तुझे मैं रख तो लूं लेकिन यह महा अनुचित होगा। राज धर्म के विरुद्ध काम करना नीति नहीं है। तू जा मेरा ध्यान किया कर मैं तेरे साथ रहूँगा।"

राम ने अंगद का हाथ सुग्रीव के हाथ में देकर कहा-"यह तुम्हारा लड़का है। यह तुम्हारा युवराज है। इसके साथ प्रेम प्रीति का वर्ताव रहे और तुम्हारे पीछे यह किष्किन्धा का राजा हो।"

सुग्रीव ने चरणों पर शीश रक्खा।

तब राम ने भरत, लछमण और शत्रुहन को आज्ञा दी-"जाओ! इनको कुछदूर पहुंचा आओ।"

वह इन्हें लेचले। दूरतक पहुंचा आये। हनूमान ने सुग्रीव से कहा-"मुझे आज्ञा दीजिये कुछ दिनों राम के समीप रह कर फिर आपके चरणों की सेवा करूँ।" सुग्रीव ने स्वीकार किया और रीछ, बन्दर और राक्षसों ने हनुमान से विनय किया-"राम को हमारा स्मरण कराते रहना।"

यह सब उन्हें पहुँचा कर लौट आये।

तब राम ने निषाद को बुलाया। वस्त्राभूषण देकर कहा-"भाई! तुम तो मेरे समीप बासी हो इ समय घर जाओ। धर्म कर्म और ध्यान रख राज काज करो। मुझे न भूलना और कभी कभी जब समय मिले मेरे पास आ, जा कर ते रहना।" निषाद राम की बातों को सुनकर और उनका व्यवहार देख कर अपने तन मन की सु बुध भूल गया।

राम से विदा होकर निषाद अपने देश को आया। और लोगों को उनकी भक्त वत्सल्यता का चर्चा सुनाता रहा।

महारामायण

का

अनुभव खण्ड प्रथम भाग समाप्त
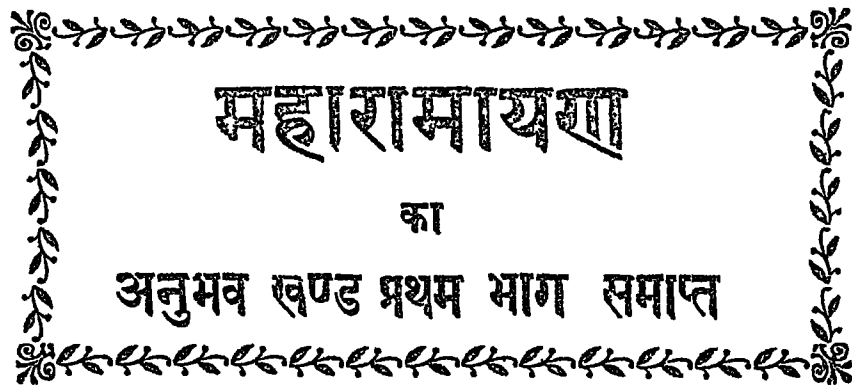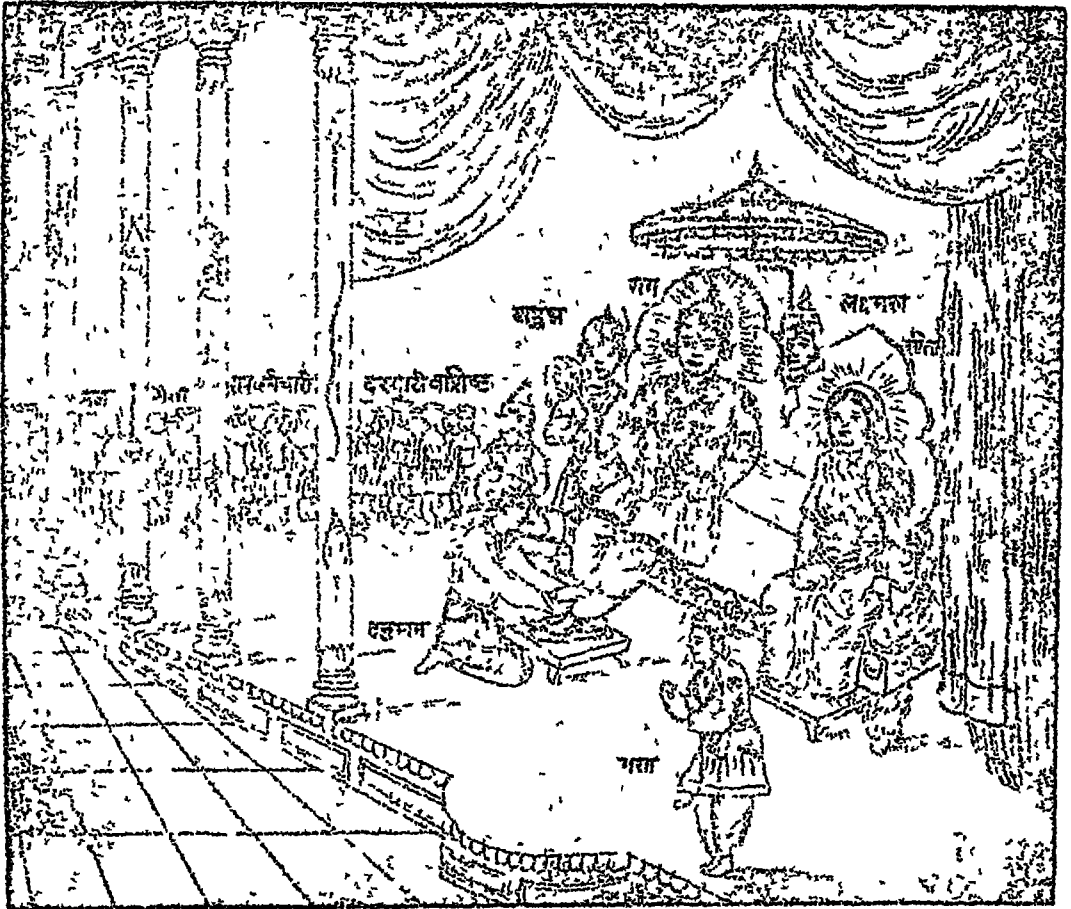
सातवें अनुभव खंड
के
उत्तरार्द्ध का तृतीय भाग

पहिला समुल्लास

निर्गुण, सगुण

गरुड़ ने राम चरित्र को आदि से लेकर राज सिंहासन तक सुनाया। फिर चुप हो गये।

कागभुशंडी ने कहा—"पक्षिराज! सुमेरु पर्वत पर श्रोतागणों के बीच में भी राम कथा सुनाता रहता हूं। अबके पहिली बार आपके श्री मुख से उसे सुना। जो सुनने का रस हमको मिला वह कहा नहीं जा सकता। आप धन्य हो! कैसे कहें कि आप संशय ग्रसित हुए होंगे! यह केवल राम की अपार दया है कि आप इस बहाने से हमको दर्शन देने आगये हो। जब तक राम की कृपा नहीं होती उन के भक्तों का दर्शन भी नहीं मिलता।

जल देखा शुद्धता आई, मिल गया आँख को सुख।
पाया दर्शन साधु का, जात रहा संसार दुख॥
नारी देखे काम बाढ़े, लोभ बाढ़े धन को देख।
भय बढ़े पर्वत, नदी, अरु सागर, उजाड़ बनको देख॥
साधु आये, राम आये, राम के साधू हैं तन।
राम रहते हैं कहां, उनकी जगह साधू का मन॥

गरुड़:—आप उलटी बातें कहते हैं। संशय तो मेरे मन में निस्सन्देह उत्पन्न हुआ था। आपके सत्संग मंडल में आते ही उसके प्रभाव से उसकी निवृती हो गई। मैं अब दुखदाई संशय को भी बुरा नहीं कहता। इसका परिणाम महा सुखदाई हुआ। न संशय होता न सुमेरुपर्वत की पंचवटी में मेरा आगमन हो और न आपका दर्शन मिलता। यह आपकी पंच[illegible] धन्य है जिसमें आम पीपल, बड़ नीम और पाकट के वृक्ष घनी छाया देरहे हैं।

आये जब दीपक के मंडल में अंधेरा उड़ गया।
आँखोंकी ज्योति खुली प्रकाश का अवसर मिला॥

कागभुशंडी:—भगवन्! सच्ची पंचवटी तो नर शरीर है जो आकाश, वायु, अग्नि, जल और पृथ्वी से बना है। यह नर शरीर महा दुर्लभ है। जिसे मिल गया, मिलगया। सबको नहीं मिलता। और जो इसे पाकर इससे परमार्थ का लाभ उठा लेता है उसका क्या कहना है! वह सबमें श्रेष्ट होता है और अवतारों में भी मनुष्य अवतारों ही की महिमा विशेष है।

गरुड़:—"अवतार तो अवतार ही है, अवतार में भेद क्यों माना जाता है?"

कागभुशंडी:—'बोले नहीं और भेद आया नहीं! इससे बचाव नहीं है लेकिन किसी से बिना बोले रहा भी नहीं जाता। जब तक मुंह न खोलो, तब तक कुशल है। बोलो और वहीं झगड़ा मचा।"

तत्व में भेद अभेद नहीं है।
वहां पुराण न, वेद नहीं है॥
तत्व शब्द को जब अलगाया।
तत् त्वम्भेद आपबन आया॥
तत् त्वम तत्व में रहे अभेद।
नहींवहाँ भ्रमनहीं भ्रमखेद॥
तत् त्वम् कहातो होगये दो।
युक्ति प्रमाण सुनाओ कहो॥
क्याबोलूं बोलना न अच्छा।
बोल बोलकर झगड़ा मचा॥

सुपरही मन कहीं भली है।
यहां जाय नहीं कथा चली है॥

गरुड़—"भेद अच्छा या अभेद अच्छा ?"

कागभुशण्डी—"अच्छे के लिये दोनों अच्छे। बुरों के लिये दोनों बुरे। लोग बिना समझे बूझे सगुण और निर्गुण शब्दों पर लड़ते झगड़ते रहते हैं। बात समझ में आजाय तो झगड़ा अभी मिट जाय। समझ में बात नहीं आती और आपस में कटे मरते हैं। पक्ष के बन्धन में बँधे हुए लड़ते झगड़ते रहते हैं।"

गरुड़—"सच है। जो निर्गुण है वह गुण रहित है। और जब उसमें गुण नहीं है तो वह सगुण कैसे हो जाता है।"

कागभुशंडी—"यह केवल उपेक्षक शब्द हैं। यह उपेक्षा के स्थल में रहते हैं। उपेक्षा को छोड़ दो, न कहीं अगुण है न सगुण है।"

गरुड़—"इस कथन से भ्रम उत्पन्न होता है।"

भुशंडी—"होना भी चाहिये। भ्रम अभ्रम संशय निश्चय, अज्ञान ज्ञान, लोक परलोक, व्यापक अव्यापक, छिन्न प्रच्छन्न यह सबके सब उपेक्षक शब्द हैं। जहाँ एक रहता है दूसरा भी रहता है। एक न रहे तो दूसरा भी न रहे।"

गरुड़ "आप निर्गुण हो या सगुण हो ?"

भुशन्डी—"होने को दोनों हैं न होने को एक भी नहीं है।"

गरुड़—"वह क्या ?"

भुशंडी—"वह वही है जो होना चाहिये।"

गरुड़—"दृष्टान्त ?"

भुशंडी—"जब तुम जागते हो तब छिन्न हो जब स्वप्न देखते हो प्रच्छन्न हो। जाग्रत में सब टुकड़े टुकड़े, अलग अलग, छिन्न छिन्न, भिन्न भिन्न, अल्पज्ञ अल्पज्ञ दिखाई देने लगता है। न्यून शक्ति होती है। और जब स्वप्न अवस्था में जाते हो शक्ति बढ़ जाती है अपने को व्यापक सर्वज्ञ और सर्वाधार प्रतीत करने लगते हो।"

जाग्रत लोक है, स्वप्न परलोक है।
जाग्रत अज्ञान है, स्वप्न ज्ञान है।

जाग्रत में इन्द्रियों का बल न्यून होता है स्वप्न में यह बढ़ जाता है।

इन्द्री स्थल लोक, मन स्थल परलोक है।
इन्द्री स्थल सगुण, मन स्थल निर्गुण है।
जाग्रत में सगुण रहता है, स्वप्न में निर्गुण रहता है।

जाग्रत में किसी को मारो दंड पाओगे। स्वप्न में मारो, दंड न मिलेगा। दंड गुण और निर्दंड अगुण है। दंड पाना सगुण कहलाता है। दंड के भाव का अभाव होना निर्गुण है।

गरुड़—"यह तो मैंने समझ लिया। इसके परे भी कोई अवस्था है जिसमें सगुण और निर्गुण कोई नहीं रहता क्योंकि आपके कथनानुसार यह दोनो स्थल उपेक्षक द्वन्द हैं। इनके परे भी कुछ है ?"

भुशंडी—"हाँ है। और वह कारण कहलाता है। कारण में सगुण निर्गुण, दंड अदंड, रूप अरूप, नाम अनाम, किसी का भी भान नहीं होता। इसकी अवस्था का नाम सुषुप्ति है जो गहरी नींद और लय मात्र है। जाग्रत में छिन्न छिन्न, भिन्न भिन्न प्रतीत होता है। स्वप्न में प्रच्छन्न और सर्वज्ञता आ जाती है। सुषुप्ति में न यह है न वह है। यह लोक परलोक, ज्ञान अज्ञान, छिन्न प्रच्छन्न, व्यापक अव्यापक, सत असत इत्यादि दोनों में से किसी की उपेक्षा नहीं रहती। यह तुम देखते हो। इसका तुमको अनुभव है। नित्यप्रति तीनों अवस्थाओं में तुम जाते रहते हो। आप इस समय अपने मन में विचार करके देख लो। सच प्रतीत हो तो निश्चय करो। झूठ हो तो उसका परित्याग करदो।"

जागते हैं हम तो आ जाते हैं इन्द्री लोक में।
सोते हैं जब हम पहुँच जाते हैं मन के थोक में॥
लोक और परलोक दोनों हम में रहते हैं सदा।
मृत्यु जीवन के हम स्थल इनको कहते हैं सदा॥
जब गये कारण में फिर उनका पता चलता नहीं।
क्या सगुण है क्या अगुण, दोनों नहीं पाते कहीं॥

अपने घट में सब हैं और यह पिन्ड ही ब्रह्मांड है।
और परे दोनों के जो इहतः है वह सच खंड है॥

गरुड़—"आप सगुण उपासक हैं कि निर्गुण उपासक हैं?"

भुशंडी—"हम तो सगुण उपासना के प्रेमी हैं। हमको भक्ति प्यारी है और वह राम हीकी भक्ति है। हम राम के मंगल मय चरित्र को गाते और सुनाने वालों को गा गा कर सुनाते हैं।"

गरुड़—"निर्गुण या कारण उपासना की तरफ क्यों चित नहीं जाता?"

भुशंडी—"बसती बसी है बस्ती में हम हैं बसे हुए।
बस्ती को छोड़ जायें कहां और किस लिये॥
जाग्रत ही में राम का दर्शन हमेंमिला।
मुँह देखने का घट ही में दर्पण हमें मिला॥
अपने हैं राम, राम को अपना बना लिया।
राम आपेजगत मिथ्या को सपना बनालिया॥

गरुड़—"भगवान्! एक बात मेरी समझ में नहीं आई।"

भुशंडी—"वह क्या है?"

गरुड़—"वह यह है कि आपने छिन्न अवस्था को पसन्द कर लिया और प्रछिन्न को घृणित मान बैठे।"

भुशंडी—"पक्षिराज! हमारा यह भाव नहीं है। हम तो व्यापक और अव्यापक दोनों में अपने राम को देखते हैं। हमको घृणा किसी से नहीं है और राम के अतिरिक्त किसी का पक्ष भी नहीं है।"

रान जल में थल में अग्नि, वायू में रहते हैं नित।
राम में सब बसरहे हैं, राम से है हमको हित॥
है चराचर जगत अपनी, दृष्टि में जब राम मय।
राम यह है, राम वह है, चर अचर सब राम है॥
बन्दना हम सबकी करते, हैं फिर कह कर राम रूप।
राम प्रजा में हैं व्यापक, राम ही हैं सब के भूप॥
राम गुरू के रूप में आये, तो हम सेवक बने।
पाके दर्शन उनका मन, वाणी से हम मोहित हुए॥

गरुड़—"क्या निर्गुण और कारण का आनंद भी आपको सगुण ही में मिलता है?"

भुशंडी—"राम सूरज बंशी है। सूरज निकला सब दृष्टि में आगया। हमने राम की भक्ति करके स्वप्न और सुषुप्ति का दृश्य भी जाग्रत ही में स्वतन्त्रता पूर्वक प्रगट करके देख लिया। ठोस रस, ठोस ज्ञान, ठोस स्वाद जाग्रत ही के स्थल मे मिलता है। अन्य अवस्था में वह नहीं है जिसने सगुण भक्ति करके जाग्रत में राम का साक्षात्कार कर लिया उसने तो कर लिया। और जो निर्गुण और कारण के फेर में रह गया वह न इधर का हुआ न उधर का।'

जाको दर्शन इत्त है, ताको दर्शन उत्त।
जाको दर्शन इत नहीं, ताको इत्त न उत्त॥

दूसरा समुल्लास

अवतार विषय (दूसरी बार)

गरुड़—"प्रभू! कोई कोई मनुष्य ऐसा कहते हैं कि ईश्वर अवतार नही लेता। ईश्वर का अवतार लेना असंम्भव हैं। क्यो कि ईश्वर व्यापक शक्ति है। और वह अव्याप्य में नहीं आसकती।"

भुशंडी—"मनुष्य क्या कहता है और क्या नहीं कहता! इस पर मैं ध्यान नही देता। मेरा ध्यान केवल तुम्हारी तरफ़ है। तुम क्या कहते हो! तुमने पहले भी यही शंका की थी। मैं उसका उत्तर दे चुका हूँ। अब तुम कहते हो मनुष्य ऐसा कहते हैं। मनुष्य ऐसा भी तो कहते हैं कि ईश्वर नही है। इसका होना असम्भव है। ईश्वर विषय आवश्यक भी नहीं है। मनुष्य ने यह प्रश्न किया होता तो मैं उसे यह उत्तर देता:—

ईश्वर है।

ईश्वर व्यापक है। जो व्यापक है वही अव्यापक में आता है जैसे गंगा का पोटने स्थल में व्यापक जल घड़े, कुन्डे, मटके, लोटे, गिलास, थाली सबमें आता है, आयेगा, आया था और आसकता है। जो अव्यापक है उसका व्यापक होना चाहे समझ में न आवे लेकिन व्यापक शक्ति का अव्यापक में आना इतना कठिन नहीं है जो समझ से बाहर हो। क्यों कि

यह गुण कर्म और स्वाभाव में है।

यह प्राकृतिक है।

यह सृष्टि नियम के अनुकूल है। इससे विपरीति या प्रतिकूल नहीं है।

ईश्वर नाम है ऐश्वर्य वाले का। एक राजा ईश्वर्य वाला है उसका ईश्वर्य उससे उतर कर प्रधान, दीवान, मंत्री, कोतवाल, कर्मचारी और प्यादा तक में आता है। यह वह मनुष्य अपनी फूटी आँख से चाहे तो नित्य राज काज के व्यवहार में देख सकता है। ईश्वर्य का ईश्वर्य के मंडल में उतरना, उतरते रहना, उतर आता सृष्टि कर्म का धर्म और कर्म है। और जब राजा अपने ईश्वर्य का उतार अपने कर्मचारी और प्रतिनिधि में करता कराता रहता है तो ईश्वर ने क्या दोष किया है जो अवतार धारण न कर सके।

ईश्वर परतन्त्र है तब तो कुछ कहता सुनता ही नहीं है। ईश्वर स्वतंत्र है तब उसे अल्प शक्तिवान क्यों बनाया जा रहा है। वह सर्व शक्तिवान क्यों न माना जाये।

मानो ईश्वर नहीं है और जब है तो फिर उसका है पना सबमें उतरता रहेगा या न उतरेगा! उतरेगा। और जब विशेष रूप में उतरेगा तो उसी को अवतार कहा जायेगा। सामान्य रूप में तो वह सब जगह में रहता है। विशेष रूप में कहीं कहीं कभी कभी और किसी किसी में उतरता है। और इसी विशेष रूप को अवतार कहते हैं। मेरी समझ में इसकी सम्भावना हर समय में है। ईश्वर का नाम स्वयंभू (आप होने वाला) है। और वह आप जो चाहे होसकता है। और होता है। इसमे किसी को शंका न होनी चाहिये। जो मनुष्य ऐसी शंका करे उसे ऐ गरुड़! कहदो कि सुमेरु पर्वत पर आजाय और मैं उसे समझा दूं। ऐसे मनुष्य तुम जैसे देवताओं के समझाने से नहीं समझेंगे। मैं कौआ हूं। और मेरा काग बुद्धि उनकी तुच्छ युक्ति की गुत्थी को सुलझा सकेगी? तुम अपनी शक्ति को विशेष रीति से अपनी चोंच में उतार लेते हो कि नहीं उतार लेते? मनुष्य अपने शरीर का सारा बल किसी एक अंग में उतार लेता है कि नहीं? जब मनुष्य ऐसा कर सकता है तो जीव जन्तुओं के सारे शरीर उसी के तो हैं। उनमे वह कैसे प्रवेश नहीं कर सकता। वह जो चाहे वह कर सकता है।"

गरुड़—"मुझे तो आपकी दया से संशय नहीं रहा। उसका समाधान आपके दर्शन मात्र से पहिले ही दिन होगया था। यह मैं औरों की बात कह रहा था।"

सुशही—"औरों को क्या देखना, औरों से क्या काम।
सकल देवता त्याग कर, भजिये राम का नाम॥

——:o:——

तीसरा समुल्लास

सच्चिदानन्द की समझ अवतार विषय से

गरुड़—"यह अवतार क्यों होता है।"

कागभुशुंडी—"सत् चित् और आनन्द के विकाश के लिये। ब्रह्म सच्चिदानन्द है। जो सत है उसका सत्ता विकाश पाये हुए बिना नहीं रह सकती। सत अग्नि है वह अग्नि उस समय तक कैसे रही जायगी जब तक उसकी सत्ता प्रगट न होगी।

....ाका विकाश आव-
अवतार ... नन्द है उसके आनन्द का मान
... ाकृतिक है।

ब्रह्म का सत चित और आनन्द रूप में उतरना और उतर कर प्रगट होना अवतार कहलाता है।"

गरुड़—"यह तीन गुण हैं सत, रज और तम। क्या इन्हीं के रूप और नाम में यह अवतार हुआ करता है?"

भुशंडी—"वात तो कुछ ऐसी ही है जैसा तुम समझ रहे हो। यह भी है और कुछ और भी है।"

गरुड़—"सत चित और आनन्द तीन हैं। लेकिन अवतार केवल तीन ही जुगों में नहीं होते उनके लिये चार जुगों का प्रबन्ध है। और वह सतयुग त्रेता, द्वापर और कलजुग कहलाते हैं।"

भुशंडी- 'जुग भी तीन ही हैं-सतयुग, त्रेता, द्वापर और कलयुग इनकी पूर्ति और फिर अपने समता के रूप में लौटने का समय है।

वर्ण तीन हैं-ब्राह्मण, क्षत्री और वैश्य, चौथा शूद्र वर्ण इनकी पूर्ति है।

वेद तीन हैं ऋग, साम और युजर और चौथा अथर्व वेद इनकी पूर्ति और लौटने की अवस्था है।

अवस्था तीन हैं-जाग्रत, स्वप्न और शुषुप्ति इन तीनों के अतिरिक्त चौथा पद उनकी पूर्ति है।

ब्रह्म का नाम ओ३म् है। अ, ओ, म् इन तीन नामों में उसके तीन पाँद हैं सृष्टि. स्थिति और प्रलय और ओ३म् नाम की चोटी पर जो बिन्दी और अनुस्वार है वह उसका चौथा पद है।

गुण भी तीन ही हैं-सत. रज, तम और इनकी सम्मिलित अवस्था इनकी समता की पूर्ति है।

और इसी प्रकार जितना तुम विचार करते चलोगे तीन ही तीन को त्रिकाश के रूप मे देखोगे और जब यह विकाश पाकर फिर समता में चले जाते हैं तब वही इनका चौथा पद ठहरता है।"

गरुड़—"भगवान्! आपने इस समय ऐसी विचित्र बात कही है जिस पर मैंने कभी विचार नहीं किया। सुनने को तो मैंने इन शब्दों को सुन रक्खा है। लेकिन इनका रहस्य क्या है, वह न मैंने जाना और न कभी इधर ध्यान ही दिया।"

भुशंडी—"समय समय की बात है कभी बीज अँखुआता है, कभी पेड़ बनाता है, कभी फूलता है और चौथी अवस्था मे वह फल लाता है। यह कोई नई बात नहीं है। यह स्वभाविक, प्राकृतिक और सृष्टिक्रम के अनुसार है। विचार शील पुरुष कोई कोई होते हैं।"

गरुड़—"मैं आपके इस नवीन सिद्धान्त को आश्चर्य की दृष्टि से देखता हुआ इस पर विचार करना चाहता हूँ। आज्ञा हो तो में पृथक पृथक प्रश्न करता चलूं और आप उनका उत्तर देते चलें।"

भुशंडी—"प्रभू! सतसंग का लाभ भी ऐसे ही होता है। राम ने बड़ी दया की कि आप सुमेरुपर्वत पर मेरे पास आगये। आपके समागम से मुझे बड़ा आनन्द प्राप्त हुआ।"

सन्त का दर्शन मिला, आनन्द दायक समय है।
आप से मिलकर मुझे अब, प्राप्त सुख और चैन है॥
राम की जब तक अपार, ऐसी दया होती नहीं।
बुद्धि तब तक अपने मैल, और दोष को धोती नहीं॥
आप आये अच्छे आये, प्रश्न मुझसे पूछिये।
जो समझता हूँ कहूँगा, मुझसे उत्तर लीजिये॥
आगे उत्तर में उत्तर खड ही है ज्ञान गम।
है समाधान इसमें और इसही में दम और शम॥
धन्य जीवन है मेरा, अब आप का दर्शन मिला।
रूप के लखने परखने, का मुझे दर्पन मिला॥
ऐ गरुड़! मै जानता हूँ, आप पूरण काम हों।
इस समय मुझ पर दयालू, मेरे सीता राम हों॥
आप का दर्शन मिला, आनन्द मंगल मिल गया।
सोचने को बूझने का, बुद्धि दंगल मिल गया॥

चौथा समुल्लास

तीन (या चार) युगों के अवतार

गरुड़—"भगवान्! ब्रह्म को अवतार धारण करने की आवश्यकता क्यों हुई!"

भुशंडी—"महात्मन्! यह प्रश्न तो वैसे ही है जैसे कोई किसी अस्ति (हस्ति) से पूछे कि तू क्यों प्रगट हुई। महाराज! जब तक कोई अस्ति विकाश रूप में आकर अपने प्रकाश को प्रगट न करे तो आप उस अस्ति को अस्ति कैसे कहोगे। यह तो उसका गुण है। यह स्वभाविक है। समुद्र से पूछो वह क्यों लहराता है! सूरज से पूछो तुझे चमक दमक दिखाने की क्या आवश्यकता है! और वह तुम्हें क्या उत्तर देगा।"

जो सत है सतकी वह सत्ता दिखायेगा अपनी।
जो चित बना है वह चित्ता दिखायेगा अपनी॥
स्वभाव जिसका है आनन्द सुख का रूप है वह।
उसी में चैन है सुख शान्ति का रूप है वह॥

गरुड़—"बस! मुझे सच्चा उत्तर मिल गया। मैं दक्षिणी प्रश्न के उत्तर खंड में पहुंच गया। इस ब्रह्म का रूप सत है और उसके सतपने का विकाश होना आवश्यक है। प्रभू! इस ब्रह्म का ब्रह्म नाम क्यों पड़ा?"

भुशंडी—"ब्रह्म शब्द के दो भाग हैं। ब्र: और मनन। ब्र: कहते हैं बढ़ने को और मनन कहते हैं सोचने को। जो बढ़ता और सोचता है वह ब्रह्म है। इस लिये उसका यह नाम है।"

गरुड़—"वह क्यों बढ़ता और सोचता है?"

भुशंडी—"क्योंकि वह ब्रह्म है। यथा नाम: तथा गुण। जैसा जिसका नाम होता है वैसा ही उसका गुण भी होता है। जो बात मैंने सत और असत के विषय में कही है वही इस ब्रह्म पद के अर्थ में भी समझलो।"

गरुड़—"सच है। इसके सच होने में कोई सन्देह नहीं है। यह उसका रूप है तब ऐसा नाम रक्खा गया है।"

भुशंडी—"इस ब्रह्म के दो रूप हैं। एक आधार मात्र और दूसरा धार। आधार तो अधिष्ठान है और धार वह है जो उससे निकलती, बहती और जारी रहती है। आधार रूप से वह कुछ करता धरता नहीं। धार रूप जगत की रचना इसमें होती रहती है। वह एक सागर के समान है जो अपने रूप मे स्थित रह कर लहराता रहता है। और यह रचना उसी की लहरों के अन्तर्गत होती रहती है। तुम विचार करोगे तो इस ब्रह्म और बृह्म के नाम में विचार मात्र से तुमको निर्गुण और सगुण बृह्म का दर्शन मिलेगा। इन शब्दों की जड़ यहां है और यह वैसा ही है जैसे तुम या और कोई प्राणधारी प्राणी अपने निज स्वरूप मे स्थिति रह कर साँस लिया करता है। व्यवहार इसकी साँस में है। अब किसी वस्तु को देखो उसमें यह दोनों गुण किसी न किसी अंग में तुमको दिखाई दे जॉयगे।

साँस आती है सांस जाती है।
सांस यह सांस में समाती है॥
पहिली रेचक है दूसरी पूरक।
तीसरी को समझलो तुम कुम्भक॥
जीव में जन्तुओं में परखो इसे।
बृक्ष और तत्वओं में भी निरखो इसे॥
है बिना साँस के कहाँ प्राणी।
समझे यह बात कोई विज्ञानी।
ब्रह्म मय यह जगत है ब्रह्म है सब।
ब्रह्म तब था तो ब्रह्म ब्रह्म है अब॥

गरुड़—"मेरी अन्तर्दृष्टि खुल गई। मैंने विचार दृष्टिसे इस दृश्य को देख लिया। यह अवतार कितने होते हैं?"

भुशंडी—"नाना भाँति राम अवतारा। रामायण शतकोटि अपारा॥

इसकी गिनती गिनाना मेरी बुद्धि के सामर्थ्य से

बाहर है। हाँ, जहाँ तक मैंने विचारा है मुख्य अवतार नौ कहलाते और नौ होते हैं।"

गरुड़—"कौन कौन ?"

भुशंडी—"सत जुग में चार। जो मच्छ, कच्छ, वराह और नृसिंह कहलाते हैं। त्रेता में तीन जिनके नाम हैं बावन, परशराम और राम। राम ने इस समय अवतार धारण कर रक्खा है। जिनकी कथा तुमने मुझे आकर सुनाई। और तुमको संशय हुआ था कि वह ब्रह्म के अवतार नहीं हैं। द्वापर में कृष्ण और बुद्ध के दो अवतार होंगे। यह सब मिलकर नौ होते हैं और गिनती भी केवल नौ की मानी गई है।"

गरुड़—"ठीक है। फिर क्या और अवतार न होंगे ?"

भुशंडी—"कलजुग मे केवल एक अवतार कल्कि भगवान का होगा जो इस चतुर्युगी में राम का दसवाँ अवतार कहा जायगा। इसके विषय मे कल प्रश्न करना कलजुग चतुर्युगी का चौथा पद है। यह मैंने तुमको पहिले से कह रक्खा है। इस गिनती के अनुसार राम के दस अवतार तुम मान सकते हो।"

पाँचवां समुल्लास

अवतारों के विषय में क्यों ? का प्रश्न

गरुड़ ने पूछा—"यह भेद है। चार, तीन, दो, एक की उलटी गिनती अवतारों के विषय में क्यों गिनाई गई। सतयुग में चार, त्रेता में तीन, द्वापर में दो और कलयुग में एक अवतार क्यों होते हैं या क्यों होंगे ?"

काग भुशंडी ने उत्तर दिया—"अवतारों में ऐसा ही होता है और होना भी ऐसा ही चाहिये।

सत शब्द संस्कृत धातु अस होना) से निकला है और युग कहते हैं मिलाप या समय को। सत के मिलाप और सत के समय को सतयुग कहते हैं और अस (होना) जीवन है। जहाँ जीवन ही जीवन और जीने ही जीने का भाव विकाश और प्रकाश हो वहाँ सम्पूर्ण जीवन ही जीवन रहता है और उसके चारों अंग या चारों पद बराबर होते हैं। उनमें बढ़ाव घटाव नहीं होता। जीवन ही जीवन पूरा रहता है इसलिये इसके चार अवतार हैं। मच्छ, कच्छ, वराह, नृसिंह।

मच्छ या मत्स्य संस्कृति धातु मद (सुख) से बना है। यह जीवन ही जीवन है और जीवन ही जीवन का सुख है। जीवन के अतिरिक्त और कोई भाव, विकाश या प्रकाश नहीं रहता जैसे पानी में मछली तो बन जाती है लेकिन वह मछली पानी ही मे रहती है पानी के बाहर नहीं आती। पानी ही इसका जीवन होता है। जीवन जीवन ही में रहता है। वह केवल जीवन ही जीवन है। और जीवन के सम्पूर्ण विकाश या चार पावों वाले प्रकाश का भान मछली मे देखा जाता है। जिसमें केवल सर ही सर है। यह सतयुग का पहिला अवतार है।

कूर्म शब्द संस्कृति धातु कू (उलटी) और ऊरमी (तेज़ी) से निकला है। उलटी तेज़ी वाले का नाम कूर्म है। इसमे भी जीवन ही का विकाश भाव और प्रकाश है। जहाँ कोई बात ऐसी हुई जो जीवन की बाधा है कूर्म बिना समझे बूझे स्वभाविक रीति से अपने अन्तर मे लौट आता है। इसी उपेक्षा के कारण इसका नाम कूर्म रक्खा गया है। कूर्म कछुए को कहते है। यह सतयुग का दूसरा अवतार है।

बराह संस्कृत धातु वर (सबसे अच्छा और श्रेष्ठ) और हन (मारन) से बना है। जो सबसे अच्छी मार मारे वह बराह है। और यह सचमुच अच्छी मार का मारने वाला और मारने मे श्रेष्ठ है। इसलिये इसका नाम बराह रक्खा गया। इसे

सूअर भी कहते हैं। सूअर के लिये संस्कृत शब्द शूकर (शू=शब्द) कर (करना) बोला जाता है। सूवर गुर्राता है। यह सतजुग का तीसरा अवतार है जो गुर्राहट के साथ है।

नृसिंह—संस्कृत धातु नर (मनुष्य) और सिंह (चौपाया चार पॉव से चलने वाले पशुओं को कहते हैं) से बना है जिसका सिर मनुष्य का हो और धड़ पशु का हो और चार खुरों से चले वह नृसिंह है। यह नहीं कि सिर तो व्याघ्र और शेर का हो और धड़ मनुष्य का हो यह चित्र नृसिंह का नहीं है। वह चार पावों से चलकर और चारों पावों को निकाल कर दिखा देता है कि सतयुग का चार पद वाला युग अब समाप्त हो गया। यह चौथा अवतार है।

ऐ गरुड़! पुराणों की यह शिक्षा सृष्टि क्रम के अनुसार है और यही दृश्य हमारी तुम्हारी आँखों के सामने पल छिन रहता है। कोई अन्धा काना तिरछा हो उसे न दिखाई दे तो यह उसकी आँखों का दोष है। मैं आगे चलकर तुमको स्पष्ट रीति से समझाऊँगा कि पुराणों का कथन निर्दोष, पूर्ण और विचार उत्तेजक है।

सतयुग में केवल जीवन जीवन का विकाश प्रकाश और भाव रहता है। जीवन के अतिरिक्त और कुछ नहीं रहता।

सतयुगी जीवन है पूरा चार पग वाला गरुड़।
जो न समझे भेद को है कुमग वाला गरुड़॥
मत्स्य है और कूर्म है वाराह है नृसिंह है।
चार जीवन की अवस्था चारों ही है ब्रह्म है॥
सिर बना तब मत्स्य है और धड़ बना कछुआ हुआ।
क्षीर सागर मथ के चौदह रत्न के धन को लिया॥
क्षीर सागर के निकल कर खंग से पृथ्वी उठा।
आया उससे बाहर अपने गुणको प्रगट करदिया॥
फिर बना नृसिंह नर और पशु के देह का मेल है।
ब्रह्म जीवन का यह कौतक देखो कैसा खेल है॥
यह है सतयुग, सतयुगी जीवन के है अवतार चार।
ऐ गरुड़। बातों का मेरे सुनके करलीजे विचार॥
मैं नहीं तुमसे छुपाता भेद कहता हूँ सही।
तुम समझलो बूझलो दुर्मति न मन में फिर रही॥
संशय का जीवन नहीं अच्छा यह दुख का रूप है।
संशय दुख केवल नहीं यह दुख का गहरा कूप है॥
राम आये इस जगह में ब्रह्म के अवतार बन।
छोड़ कर नगरी अयोध्या को चले वह सूने बन॥
मन में देखा चित्र जीवन का जो आये चित्रकोट।
मारा खरदूषण को सर से फेंका डाला दोष पोट॥
चढ़ गये लंका वहां रावण को मारा बाण से।
साथ सीता को लिया लौटे अवध को शान से॥
चारों भाई मिलगये सतयुग की महिमा को दिखा।
दोष त्रेता का मिटा सतयुग को सत प्रगट किया॥
त्रेता को तब युग बनाया किसने ? सीताराम ने।
वृद्धि और उन्नति दिखाया किसने ? सीताराम ने॥
राम ही हैं ब्रह्म पूरन, ब्रह्म के अवतार हैं।
ऐ गरुड़! शंका न कीजो राम सत करतार हैं"

छटवाँ समुल्लास

क्यों ? लगातार त्रेता के अवतार

गरुड़—"त्रेता में तीन ही अवतार क्यों हुए ?"

भुशुंडी—"चित शक्ति कुछ विशेषता के साथ आगई। जीवन ने उसे अपने में स्थान दिया। उसका एक अंग या एक पद दब गया और तीन टॉग रह गई। तीन टॉग जीवन या सत की और एक चित की। चित का उभार हुआ।

त्रेता संस्कृत धातुत्रय (रक्षा) से निकला है। इस युग में 'रक्षा' और सुरक्षा का विचार घने पनके साथ उत्पन्न हो जाता है। चित शक्ति अपने साथ रक्षा के चिन्तन और चिन्ता को लाती है। राक्षस (निज रक्षा करने वाले स्वार्थी) अधिकता से प्रगट हो जाते हैं। अपने रक्षा के लिये खाना, अपनी रक्षा

के लिये पीना अपनी ही रक्षा के लिये उद्यम उद्योग और तीन कर्म करना यह राक्षसों का धर्म होता है। यह तिटंगा धर्म है। ब्रह्म के अवतार इसकी पूर्ति के लिये होते हैं।

और यह तीन हैं और यह तीनों अपनी अपनी बारी पर उस टूटी हुई टाँग की पूर्ति करते हैं।

पहिला अवतार बामन है, जो संस्कृत धातु वम (मुँह से निकालना) से बना है। नर और पशु की सम्मिलित अवस्था की नृसिंह के अवतार से समाप्ति होगई। पशुपन का अभाव हुआ नरपन की अधिकता और विशेषता आने लगी और जीवन ने वामन (छोटे मनुष्य-बावना) का रूप धारण किया जो मुँह से अपनी आवश्यकता को प्रगट करता है। बोलता है और बोलने ही से उसका काम होता है। करना धरना अब भी नहीं। बोलने मात्र से रक्षा होती है। यह त्रेता का पहिला अवतार है। जो पाँचवें मंडल या लोक से आया जिसे जन लोक कहते हैं। सत युग के चारों अवतार भूः, भुवः, स्वः, महः से आये थे।

परशुराम त्रेता का दूसरा अवतार है। यह शब्द संस्कृत धातु परशु (फरसा या फावड़ा) और राम (रमने वाला, प्रसन्न होने वाला) से बना है। जो फावड़े और कुल्हाड़े से काम लेकर प्रसन्न हो वह परशुराम है। इसने क्या किया ? स्वार्थी और स्व रक्षक क्षत्रियों का नाश करके सतयुगी जीवन की एक टूटी हुई टाँग की पूर्ति की। क्षत्री महा अहंकारी हो गये थे। अपनी ही भलाई चाहते थे। औरों की रक्षा और भला का उनको ध्यान नही था। इसलिये परशुराम ने उन्हे अपने फरसे के घाट उतार कर त्रुटि की पूर्ति की।

क्षत्रियो का नाश हुआ। परशुराम का करतब बस उतना ही था। इधर क्षत्री मरे, उधर दक्षिण के ब्राह्मण कुल में निज रक्षा और निज अर्थ के साधन में रहने वाले राक्षस (अपनी ही रक्षा करने वाले) अधिकता के साथ उत्पन्न हो गये। क्योंकि परशुराम ने क्षत्रियों का राज काज छीनकर ब्राह्मणों ही को दिया था यह ब्राह्मण राज को पाकर ऐसे घमंडी होगये कि अपने अतिरिक्त औरों को तुच्छ समझने लगे। बहुत ऊधम मचा। अत्याचार फैल गया। वह पृथ्वी पर बोझ होगये। देवताओं का नाक में दम आगया। इस दशा में राम का ब्रह्म अवतार क्षत्री कुल मे हुआ। इन्होंने राक्षसों को बान के घाट पर लगाया। राक्षस महाबली, जोधा, विद्या बुद्धि निपुण, कला कौशल में प्रवीण थे। राम ने प्रगट होकर इनका नाश कर दिया। मर्यादा की शिक्षा दी। जगत को मर्यादा बद्ध कर दिया। और इसी की सहायता से टूटी टाँग की पूर्ति हुई थी। ऐ गरुड़ ! परशुराम का अवतार तो छटे लोक तप लोक से हुआ था और राम का अवतार सातवें लोक सत लोक से हुआ था। इसलिये इन्हें पूर्ण ब्रह्म का अवतार समझा जाता है। उनकी बराबरी किससे हो सकती है। उनके ब्रह्म के अवतार होने में किसी को शंका न करनी चाहिये।"

गरुड़ ने पूछा—"भगवान्! सतयुग की चार टाँगों का तो आपने पूरा पूरा पता बता दिया। लेकिन त्रेता के तिटंगे पने का भेद मुझे नहीं दिया। क्यों कि हम मनुष्य में तीन टाँग नहीं देखते।"

भुशंडी हँसे—"तुमने राम रावण का युद्ध देखा। उसमे भाग भी लिया और फिर भी शंका। अच्छा क्या हुआ! इसका भी मैं समाधान किये देता हूं। राम ने बानरों की सेना इकट्ठी की थी। बानर (संस्कृत बा=सदृश्य और नर-मनुष्य) मनुष्य के समान जो नर है वह बानर है। इसके पूंछ होती है यह इसकी तीसरी टाँग है। पहिले मनुष्य के भी पूंछ का होना सम्भव था। घृणा हुई सभ्यता बढ़ गई। प्रकृति ने इसकी इच्छा की प्रबलता को देखकर पूंछ काटली और वह बावन अवतार के समय से दोटंगा होगया। लेकिन वह पूंछ मनुष्य के अब तक है। उसके कटने का निशान मिलता है वह पींठ की हड्डी (मेरुदंड) के नीचे और सुसम्ना नाड़ी से मिली जुली है। जहाँ यह है वहाँ ही मूला धार चक्र है। और जब मनुष्य की दोनों टाँगें बेकाम होजाती हैं

तब वह इसी तीसरी टाँग से चलने का काम लेता है। और चूतड़ के बल फिसल कर और घिसलकर चलता है। लो, इस तीसरी टाँग का भी तुमको पता दे दिया।"

सातवाँ समुल्लास

क्यों ? लगातार-द्वापर के अवतार

गरुड़—"अभी त्रेता है। राम राज है। राम ने राक्षसों को मार कर रक्षा का प्रवन्ध किया। और इस प्रवन्ध का नाम मर्य्यादा रक्खा। मर्य्यादा त्रेता से चलती है। सतयुग में मर्य्यादा नहीं रहती। त्रेता के पीछे द्वापर आयेगा। इसकी क्या दशा होगी ? इसमें कितने अवतार होते हैं ?"

भुशंडी—"देखो, केवल यह चित शक्ति का प्रभाव है जो तुमको भविष्य विचार की तरफ़ लिये जा रहा है।

द्वापर संस्कृत धातु द्वा (दो) और पर (पीछे) से बना है। त्रेता के पीछे जो द्वन्द पना, दोपना, और दुचित पना आता है उसकी उपेक्षा से उसका यह नाम रक्खा गया है। सतयुग में सत चार भाग सम्पूर्ण था। चित का उभार इतना नहीं था। त्रेता में स्वरक्षा के विचार के आने से सत के तीन भाग रह गये। और एक भाग चित ने लेलिया। अवतार या अवतारों ने मार्य्यादा बाँध कर उसकी पूर्ति की। अब जब कि द्वापर आगया सत के दो भाग होगये। और दो ही भाग चित के होगये। दोनों बराबर बराबर होगये। द्वन्द पना विशेष आगया। खींच तान का आरम्भ हुआ। राक्षस पना तो है। आप रक्षा का भाव राम की मर्यादा से दब गया था। शान्ति आगई थी। सत जीवन की तरफ सबकी दृष्टि रहने लगी थी। अब वहाँ स्वार्थ की अधिकता होगई। साथ ही मनुष्यों ने अपनी संसारी बासनाओं और आवश्कताओं को बहुत बढ़ा दिया। जिनसे उन्हें महादुख होने लगा और नाना प्रकार की छेड़ छाड़, मार धाड़, ऊधम अत्याचार, फलते यह दशा अच्छी नहीं होगी। पृथ्वी दो लड़ाकों का-दंगल बन जायगी। मल्ल युद्ध बढ़ जायेगा। लोग मर्यादा भ्रष्ट और मर्यादा के भंग करने वाले बन जाँयगे। इसकी रोक थाम के लिये दो अवतार होंगे। एक देवकी पुत्र कृष्ण का और दूसरा माया पुत्र गौतमबुद्ध सिद्धार्थ का।

कृष्ण प्रगट होकर समझायेंगे कि द्वन्द रोग की औषधि प्रेम है। परस्पर प्रेम को बढ़ा दो। प्रेम का जीवन जीने लगो और सत की त्रुटि की आप ही आप पूर्त्ति होगी। कृष्ण प्रेम की मूर्त्ति होंगे।

और जब यह सत की हानि की पूर्त्ति करके गुप्त हो जाँयगे और द्वन्दपना हाथ पाँव बढ़ा कर विशेष हाथा पाँई करने लगेगा, और संसार दुखी होगा उस समय सिद्धार्थ गौतम बुद्ध प्रगट होकर सबको ज्ञान बतायेंगे। सत की दो टाँगों की पूर्त्ति ज्ञान से करायेंगे। इस ज्ञान का नाम बुद्धि रक्खा जायगा। क्योंकि इस शिक्षा का सम्बन्ध बुद्ध ही से होगा और यह इस उपाय से संसार में शान्ति लायेंगे।

ऐ गरुड़ ! द्वापर युग का प्रभाव और परिणाम ऐसा होगा।

यह समय त्रेता का है। हम तुम दोनों त्रेता के पक्ष व पक्षी हैं। इसी से हमको सम्बन्ध है। द्वापर में और क्या क्या होगा इसका और विचार इस समय सुमेरु पर्वत पर निरर्थक है। तुमने पूछा, मैंने जो समझी तुम्हें समझा दिया। भविष्य काल की लीला भविष्य काल में होगी। जो प्राणी उस युग में उत्पन्न होंगे वह उसे भोगेंगे और उपाय से काम लेंगे। हमारा धर्म इस राम राज में केवल मर्यादा पद्धति

पर चलना और सत का जीवन मर्यादा की सहायता से प्राप्त करलेना है।

त्रेता युग के राम मर्यादा पुरुषोत्तम हैं।

द्वापर युग के कृष्ण प्रेम पुरुषोत्तम होंगे।

द्वापर युग के बुद्ध ज्ञान पुरुषोत्तम होंगे।

और कलिजुग के कल्की भगवान नाम पुरुषोत्तम होंगे।"

आठवाँ समुल्लास

क्यों ? लगातार कलियुग का अवतार

गरुड़—"आपने वर्तमान चतुर्युगी के तीन युगों के अवतार बता दिये। सत युग हमारे लिये भूत (गया हुआ) युग है। त्रेता वर्तमान है। द्वापर भविष्य होगा। और द्वापर के पीछे कलियुग आयेंगे। जिसमें आप कहते हैं कि केवल एक ही अवतार होगा। चार तीन दो को तो मैंने अपनी समझ के अनुसार समझ लिया और सन्देह बिगत होगया। अब कलियुग के गुण भी लगे हाथ सुना दीजिये।"

भुशंडी—"कलि संस्कृत शब्द कल (गिनती) से बना है। इस युग में गिन्ती गिनाई जाती है। मनुष्य का कोई काम गिन्ती के बिना नहीं होता। चित शक्ति बढ़ते बढ़ते ३/४ हो जाती है। और जीवन शक्ति केवल १/४ रह जाती है। और गिन्ती गिनते गिनते मनुष्य के हर काम में त्रुटि और निबलता आजाती है।"

गरुड़—"गिन्ती गिनने या गिनाने से आपका मन्तव्य क्या है?"

भुशंडी—"बुद्धि इतनी प्रचण्ड होजाती है कि वह सब को छिन्न भिन्न करती हुई संसार में फूट फैला देती है। लड़ाई झगड़े, दंगे बखेड़े, मार धाड़, द्वेष ईर्षा, आदि मन के दोष इतने बढ़ जाते हैं कि किसी को किसी का विश्वास नहीं होता। परस्पर विश्वास की जड़ कट जाती है। कर्म धर्म का नाश होने लग जाता है। सतयुग का ध्यान, त्रेता की यज्ञ मर्य्यादा, द्वापर के प्रेम और ज्ञान की शिक्षा दीक्षा सब जाती रहती है और बुद्ध का ज्ञान बुद्धि में बदल कर इतना उत्पात फैला देता है कि जीवन का सत संभालना महा कठिन व्यौहार हो जाता है। नाज कम उत्पन्न होता है। लोग भूके रहते हैं भूके मरते हैं एक दूसरे का बैरी बन जाता है। शान्ति कोसों दूर भाग जाती है।

गिन्ती गिनाने का मन्तव्य यह है। लोग मिलेंगे तो मिलते ही पूछेंगे, कुशल है? क्या पीते खाते हो? कितनी आमदनी है? घर में कितने प्राणी हैं? पृथ्वी पर कितने मनुष्य रहते हैं? एक देशों की बस्ती कितनी है। कहां क्या क्या पदार्थ और कितने कितने हैं? कहाँ कैसे और किन किन उपायों से जाना होता है? और कैसे कैसे और कितने कितने ढंग काम में लाये जाये कि दूसरे देश वालों का धन हमारे हाथों में आजाय।

खाना, पीना, व्यौहार, व्यवहार, उठना, बैठना, आना, जाना सबकी गिन्ती होने लगेगी। गिन्ती के बिना एक काम भी न होगा।

चित शक्ति की बुद्धि पृथ्वी आकाश के मण्डलों की माप तोल करेगी। और उनके छिन्न भिन्न करने और उन पर अपना सिक्का जमाने का प्रबन्ध करेगी और जैसे जैसे यह बुद्धि बढ़ती जायगी वैसे वैसे मन की चंचलता बढ़ कर दुख और अशान्ति फैलायगी। सचाई किसी में न रहेगी। दिखाने के काम बहुत होंगे। पाप बहुत और धर्म कर्म! और वह भी दिखावे का।

मतमतान्तर की गिन्ती दिन प्रतिदिन बढ़ेगी। और जो ज्ञान द्वापर में शान्ति दायक हुआ था उसकी अनेक शाखायें फूट फूट कर वादविवाद, पक्षपात, लड़ाई दंगा फैलायेंगी। लोग अपने को अच्छा और दूसरों को बुरा समझेंगे। यह सब परिणाम बुद्धि का होगा।"

"गरुड़—फिर क्या होगा?"

भुशंडी—जैसे पहिले अवतारों ने प्रगट होकर सुधार का काम किया था वैसे ही कलियुग के मध्य में घोर पाप मे डूबे हुए संसार को कल्कि भगवान आकर संभालेंगे। और पापियों का नाश करके नई सृष्टि का प्रबन्ध करेंगे।

मनुष्य फिर धीरे धीरे संभल कर आपस में मिलेंगे और इसी कलजुग के बचे खुचे पेट से फिर सतयुग निकलेगा और दूसरी चतुर्युगी आयेगी।

ऐ गरुड़! यह काल चक्र यों ही चला करता है। यह बन्द नहीं होता। इस के प्रवाह को कोई नहीं रोक सकता। न इसका आदि है न अन्त है। कई चतुर्युगियों का एक कल्प होता है और कल्प तक सृष्टि बनती बिगड़ती हुई चलती रहती है। लय और प्रलय की अवस्था आती हैं और इसके पश्चात् फिर वो ही ताँते बाने का उधेड़ बुन होने लगता है।

इन बातों में क्यों पड़ना! समय मिला है। जीवन का अवसर हाथ आया है। अपना काम बनाओ और चलते बनो।"

गरुड़—"भगवन! आपने कहा कि राम ने मर्य्यादा के प्रबन्ध से जगत का कल्याण किया है और आपने यह भी कहा कि द्वापर मे कृष्ण प्रेम से और बुद्ध ज्ञान से जगत का सुधार करेंगे लेकिन आपने यह नहीं बताया कि कल्कि भगवान किस उपाय या यत्न से काम लेंगे?"

काग भुशंडी—"वह उपाय केवल नाम होगा और कुछ न होगा।"

नवां समुल्लास

युगों का धर्म और नाम की महिमा

गरुड़—"तब तो कलयुग सबसे अच्छा है। दूसरे युगों के उपाय कठिन हैं। कलजुग में नाम लिया और बेड़ा पार है। हल्दी लगे न फिटकरी और रंग चोखा होय।'

काग भुशंडी—"कठिनाई किसी में भी नहीं है जो प्राकृतिक होगा उसमे बहुत परिश्रम नहीं करना पड़ता। यह मनुष्य का मन है जो कठिनाइयों की मानसिक गढ़त करता रहता है और जो बात सुगम और सरल हैं उसे भी कठिन कर लेता है। तुमको साधनों का ज्ञान नहीं है इसलिये ऐसा कहते हो नहीं तो साधन अत्यन्त सरल और सुगम हैं और इन्ही साधनों को धर्म कहते हैं। जो मन से मन में धारण करके उससे काम लिया जाय वही धर्म कहलाता है। धर्म संस्कृत धातु धरि (धारण करना) और म (मन) से निकला है। मनमें किसी अच्छे भाव का धारण कर लेना क्या कठिन काम है? ऐ गरुड़! यह स्वाभाविक है और सब में यह शक्ति स्वयं रहती है।"

गरुड़—"अनेक युगो के अनेक धर्म क्या क्या होते हैं?"

भुशंडी—"सुनो! स्मरण रक्खो, भूलो नही, सोचो और बिचारो भी कि यह सच है या झूठ है, तब मानो वैसे मेरे कहने से न मानो। मैं तुमको केवल विचार देता हूं और इस विचार की जड़ और उसका यथावत वास्तविक ज्ञान तुम्हारे घट में है:—

न युग का धर्म ध्यान मात्र है जिसके लिये
सी की भी आवश्यकता नहीं है।
त्रेता का धर्म यज्ञ मात्र है, इसे सचमुच समझाना
ना पड़ता है, लेकिन कठिन यह भी नहीं है।
द्वापर का धर्म मूर्ति पूजा, स्मारक चिन्ह और
कार बनाकर उससे काम लेना है। इसे भी
मझाना बुझाना पड़ता है। यज्ञ से यह कुछ विशेष
यत्न चाहता है। और
कलियुग का धर्म केवल नाम है जो निरूपण और प्रयत्न के आधीन है। होने को तो यह भी स्वभाविक और सुगम होता है लेकिन गुरू की सहायता और भक्ति के बिना इसकी प्राप्ति नहीं होती। यह गुरू के आधीन है।

इस कलजुग में मनुष्य कोई साधन न करे। केवल नाम के प्रयन्त में लगा रहे और उसका कल्याण होगा। नाम सहायक बनकर जब साक्षात्कार करा देगा फिर मुक्ति ही मुक्ति है।"

गरुड़—"आप का समझाना विचित्र है। आप समझे बूझे हो। आपका कपाट खुल गया है। मस्तिष्क प्रकाशवान है और हृदय महा शुद्ध और निर्मल है गुत्थी सुलझी हुई है और आप दूसरों की गुत्थी सुलझाने का सामर्थ्य रखते हैं—

> गुत्थी मन की विकट है, सुलझावे कोई साध।
> सुलझे निज गुत्थी जभी, सूझे अगम अगाध॥

अब आप दया करके हर एक युगो के धर्म पर कुछ और विशेष प्रकाश डाल दीजिये। जिससे यह अच्छे प्रकार समझ बूझ में आजाय।"

भुशंडी—'तुम देख चुके हो कि सतयुग में चार अवतार होते है। मच्छ कच्छ, वाराह और नृसिंह। इन चारों अवतारों में कोई भी कर्म या कर्तव नहीं किया जाता। ध्यान आया और उसी समय आप

फिर आता था साधन ...
भी कोई करतब नहीं है ध्यान आया और काम बना।

यह सतयुग का धर्म-स्वधर्म और सुधर्म है।

मैंने तुमसे कहा कि त्रेता का धर्म यज्ञ है। यज्ञ कहते हैं पूजा को। पूजा की रीति का नाम यज्ञ है। इसका प्रबन्ध मन, कर्म और वाणी से होता है। और इसका आरम्भ बावन महाराज की वाणी से परशुराम के कर्म से और राम के मन से होता है। बावन ने तीन पग पृथ्वी मांगी। परशुराम ने अपने कर्म और पराक्रम के बल से सारी पृथ्वी क्षत्रियों से छीन ली, और राम ने अपने मन से काम लेकर, मन की तीनों वृत्तियाँ अज्ञानी (राक्षस) मूर्ख (रीछ) चंचल (बन्दरों) को एकाग्र किया और उनकी सहायता और साधना से रजोगुण रावण को विजय करके धर्म मर्यादा की नीव डाली। जिसने रजो गुण को जीत लिया उसने सारे जगत को जीत लिया।

> मन के हारे हार है मन के जीते जीत।
> परमब्रह्म को पाइये मन ही की परतीत॥

यह यज्ञ है। मन को एकाग्र करके अन्तर की तीन प्रकार की दबी हुई ग्राहपत्य आदि अग्नि को प्रज्वलित करना और उसके प्रकाश मे मन के रूप का साक्षात्कार करते हुए ध्यान शक्ति को प्रबल कर लेना यह यज्ञ है। यह यज्ञ नाभि, हृदय, भ्रू मध्य आदि के वेदी से आरम्भ करके मस्तिष्क या सिर में धारण करने से होता है। यह यज्ञ वृत शिरो वृत धारण करना कहलाता है। इसमे मन की वृत्तियों की आहुति अन्तरी चक्रों की वेदी के अग्नि कुंड मे उसी प्रकार दी जाती है जैसे रावण के युद्ध कुंड के अग्नि मे राम ने ब्रह्म सर, शक्ति सर और सूर्य सर के बाणों की वर्षा की थी तब जाकर उनका काम

पूरा हुआ और वह खेल खेल मे हुआ।"

गरुड़—"आप मानसिक दृष्टि से ऐसा कह रहे हैं और मैंने तो स्थूल रूप में राम को लड़ते हुए पाया। मेघनाद ने जब उन्हें नाग फांस में फॉस लिया था तब मे उनके छुड़ाने के लिये रण भूमि में गया था। मैंने लड़ाई को अपनी आँखों से देखा था। क्या यह झूठ है ?'

भुशंडी—"नहीं, यह सच है। जो तुमने देखा वह सच्चा दृश्य है। पहिले मन की मानसिक रचना होती है। तब वह स्थूल रूप धारण करती है।

मनमें पहले ऊपजे, तब प्रगटे स्थूल।
इस स्थूल व्यवहार में नाना फल और फूल ॥

राम दशरथ के घर मे पैदा हुए यह स्थूल है। राम ब्रह्म है। यह सूक्ष्म है। रामके अन्दर सत, रज, तम और मन की वृत्तियाँहैं। उनको वस मे रक्खा यह सूक्ष्म है। राम ने रजोगुणी रावण को मारा यह स्थूल है।

रामायण सूक्ष्म और स्थूल दोनों ही है।"

गरुड—"अब द्वापर का धर्म मूर्ति पूजा ताइये।"

भुशण्डी—"सतयुग गया। त्रेता गया। ध्यान गया, यज्ञ गया। द्वापर युग आगया और उसके मूर्ति पूजा आगई। उसने ध्यान और यज्ञ की जगह लेली। बुद्धि तो बढ़ी और बुद्धि ने प्रकृति का चित्र खींचना और चित्र खींच खीच कर ध्यान दिलाना आरम्भ किया। शब्द और वाणी धुनि को अक्षर का रूप बनाया जायगा। "पत्र लिखा जायगा। मन्तव्य का चित्र इस पत्र में खींचा जायगा। वह पढ़ने वाले को लिखने वाले के अभिप्राय का ध्यान दिलायगा। इस प्रकार ध्यान की त्रुटि की पूर्त्ति कराई जायगी। बुद्धिमान मनुष्य अक्षरों की मूर्त्ति में ईश्वर का नाम रूप बना कर 'ओ३म्' 'ओ३म्' लिख पढ़कर ध्यान जमायेंगे। कॉसे और पीतल, पत्थर और मिट्टी की मूर्त्ति बना बना कर पूजेंगे और ईश्वर उसी से प्रसन्न होगा। प्रेम ज्ञान के मन में आते ही उन्हें ध्यान के पूरा करने का अवसर मिलेगा।

द्वापर में सबके चित्र बनेंगे। कल, कला, मशीन, बुद्धि द्वारा बनेंगे और शरीर मन बुद्धि तक के काम उनसे लिये जाँयगे। और विश्वास और करतव के अनुसार उनके फलमिलेंगे। विश्वासम् फल दायकम्।

कृष्ण, प्रेम की झलकती मूर्त्ति और बुद्ध, ज्ञान की चमकती दमकती मूर्त्ति बनकर आयेंगे। यह भी राम ही के रूप होंगे। मूर्त्ति मान पूजा होने लगेगी और संसार मूर्त्तियों से भर जायगा। ज्ञान की मूर्त्ति पुस्तक, ध्यान की मूर्त्ति युक्ति के ग्रन्थ होंगे। और इन्हीं से काम निकलेगा। बुद्धि युक्ति की मूर्त्त पाताल में जांयगी। आकाश में चढ़ेगी। अन्तरिक्ष में दौड़ेगी। पृथ्वी, वायु, जल, अग्नि आकाश की माप तोल मूर्त्तियों से होगी और यह उसी की सहायता से सब कुछ ध्यान की पूर्त्ति की सामिग्री इकट्ठा कर लेंगी।

यह द्वापर युग का धर्म होगा, जिसमे राम ही कृष्ण और बुद्धि [illegible] रूप मे प्रगट होकर मूर्त्ति द्वारा अधिकारी जा[illegible] [illegible] [illegible]न दिला कर उनके मनोरथ को सिद्ध करागे।

द्वापर के पीछे कलियुग आवेगा। यह महा विकराल समय होगा। मनुष्य मनुष्य को धर धर के खायेगा। चाह मनुष्य मनुष्य का मॉस न खाये। संभव तो यह भी ह लेकिन स्वार्थ बहुत बढ जायगा। द्रव्य की सामिग्री इकट्ठा करके थोड़े से मनुष्य बहुतो को अपना वशीभूत और आधीन बना कर उनका गला घोंटेंगे। कमाई तो यह करेंगे और वह थोड़े से मनुष्य उनकी कमाई को हड़प कर जॉयगे। यह मनुष्य गिन्ती के होंगे। और उनकी शक्ति युक्ति बल पराक्रम सब का सब उनके धन की गिन्ती से होगा। कोई लखपती और करोड़ पती होगा। कोई अरब पती और खरब पती होगा। यह औरों को लूटेंगे, दुखी करेंगे और अपनी बारी पर आप भी बहुत दुखी होंगे। शान्ति और आनन्द दुर्लभ होगा।

राम की चलाई हुई त्रेता की वर्ण मर्यादा का कोई सत्कार न करेगा। कृष्ण की चलाई हुई द्वापर की जाति मर्य्यादा भी नष्ट भ्रष्ट होगी। 'कलि' संस्कृत

में गिन्ती को ८६०१ ६। जिनके यहां धन की सामिग्री की गिन्ती विशेष होगी उन्हीं का आदर सन्मान होगा। धन के लालच में राजे, महाराजे, ब्राह्मण, वैश्य, धनाढ्य, व्याधों और माँस चमड़े वालों की सन्तान के साथ अपनी सन्तति का व्याह सम्बन्ध करेंगे। वर्ण और जाति की मर्य्यादा का अभाव हो जायगा। कोई यह न पूछेगा कि गुण, कर्म स्वभाव में संस्कार रहते हैं। वर्ण और जाति धन की गिन्ती के अनुमान से बनेंगे। और उनमें नियत रहेगी — सारा जग वर्ण संकार हो जायगा।

इन बातों का परिणाम दुख होगा। पृथ्वी दुख से भर जायगी। उस समय का धर्म नाम होगा और नाम ही ध्यान की पूर्ति करता कराता हुआ प्राणियों को सत का जीवन प्रदान करेगा। लेकिन स्वार्थ बस होकर सब लोग इस नाम को भी प्राप्त न कर सकेंगे। यह केवल किसी किसी को मिलेगा। फिर भी कलजुग का धर्म नाम ही रहेगा और नाम ही कहलायेगा।"

नवाँ समुल्लास

शंका समाधान

गरुड़—"भगवन्! आपने नाम की महिमा तो बताई कि यह कलयुग का धर्म है। लेकिन नाम है क्या? और उसकी प्राप्ति का यत्न और साधन क्या है। उसके विषय में कुछ नहीं कहा।"

भुशंडी—"यह सच है। ऐ गरुड़! तुम त्रेतावी जीव हो। कलयुगी जीव नहीं हो। तुम्हारा धर्म तो यज्ञ है। नाम कलजुगी जीवों के उद्धार के निमित्त है। तुम यज्ञ पूजा करो और ध्यान की पूर्ति इस बुद्धि से करके अपना काम बनाओ।"

गरुड़—"मैं क्षमा चाहता हूँ। आप कहते हैं मूर्ति पूजा द्वापर में होती है लेकिन सेतु बनाने के पश्चात राम ने रामेश्वर का मन्दिर बनाया क्या यह मूर्ति पूजा नहीं है?"

भुशंडी—"तुमने आप राम की कथा के प्रसंग में कहा था कि वह मन्दिर स्मार्त्त चिन्ह के प्रकार का था। जैसे राजे महाराजे स्मारत स्थम्भ या विजय स्थूल स्मार्त्त अर्थ बना जाते हैं कि वह उनकी कीर्ति स्मरण और स्मृति कराता रहे और इसी जगह राम ने यज्ञ किया था।"

गरुड़—"यह तो मैंने कहा था। लेकिन जब आपने कहा कि मूर्ति पूजा द्वापर का धर्म है तब मुझे भ्रम हुआ। चाहे स्मार्त्त-चिह्न हो स्मरणार्थ कोई स्थान बनाया जाये, जहाँ मनुष्य श्रद्धा भाव से हार्दिक सन्मान और सत्कार करते हैं वह मूर्ति ही है। मूर्ति शब्द संस्कृत धातु मूर्च्छ (अशुध होने) से बना है। जिसमे सुध न हो, जो ठोस हो, स्थूल हो, शरीर हो, चित्र हो उसे मूर्ति कहते है। और जहाँ तक मेरा विचार काम करता है वह चाहे सतयुग में न रही हो लेकिन त्रेता युग में भी उसका प्रचार था। यज्ञ की वेदी और अग्निकुण्ड को भी मैं मूर्त्ति ही मानता हूं और उसके होने का पता राम अवतार से पहिले भी लगता है। राम शिवजी के उपासक भक्त थे, और शिव के लिंग और अघ की पूजा किया करते थे। माना लिंग और अर्घ चिह्न मात्र सही- लेकिन यह चिह्न भी तो एक प्रकार की मूर्ति ही है जो इष्ट के स्मरणार्थ स्थापन की जाती है।"

भुशंडी—"गरुड़ जी आप तो बाल की खाल निकालने और बिंदी की चंदी करने लगगये। और अच्छा है कि यह आप ऐसी बातें कहते हैं। यहाँ ऐसा समझ लीजिये कि त्रेता मे चिन्ह और स्मार्त्त कारण बनाया। वह था भी तो बहुत सूक्ष्म, और सूक्ष्म भाव के साथ था। उसका स्थूल रूप द्वापर में कृष्ण और बुद्ध के समय प्रगट होगा। जब मनुष्य उसका चित्र बनाने, उसमें देह धारियों के आकार कान नाक आँख पाँव गाढ़ने और जोड़ने का प्रबन्ध करने लगेंगे। इसके मान लेने से कोई हानि नही होती, क्यो कि यज्ञ जो त्रेता का धर्म है उसके कारण बीज के पड़ने का संस्कार संभावित नृसिंह

अवतार से आरम्भ हुआ होगा।"

गरुड़—"मेरी शंका का समाधान होगया। अब इस विषय में मैं आप का अधिक समय नहीं लेना चाहता। अब आप नाम के विषय में जो कुछ समझाना चाहते हों मुझे समझाइये ?"

दसवाँ समुल्लास

नाम ?

भुशंडी—"ऐ गरुड़! तुम नाम का साधारण अर्थ जानते हो। सब इसे जानते हैं। यह जगत नाम और रूप ही है। जहाँ रूप है वहाँ नाम भी है। जहाँ नाम है वहाँ रूप है। बिना रूप के नाम नहीं होता और बिना नाम के रूप नहीं होता।

नाम रूप ससार है, जगत नाम और रूप।
रूप नाम दो साथ हैं, महिमा अगम अनूप॥

नाम शब्द संस्कृत धातु यरम (बुलाने और पुकारने) से निकला है। इसका अर्थ है संभव, निश्चय, स्मरण, वाक्यवत, आश्चर्य आदि जिससे किसी को बुलाया जाय, पुकारा जाय, सम्बोधन किया जाय वह नाम है।

नाम का अभिमानी जीव होता है। नाम लेने या नाम के पुकारे जाने से नाम वाला प्राणी सचेत होता है। नाम के सुनते ही उसके कान खड़े होजाते हैं। सुरत जागती है और मनुष्य चौकन्ना हो जाता है।

यह इतनी साधारण बात है जिसे साधारण बुद्धि का मनुष्य भी समझ लेता और समझ सकता है। नाम की महिमा कभी कभी रूप से भी अधिक समझी जाती है। नाम नहीं सुना और न नाम को जाना। बिना नाम के जाने सुने हुए रूप को देख भी लिया। सम्भव है आश्चर्य होजाय लेकिन उससे लाभ क्या हुआ ? कुछ भी नहीं। रूप नहीं देखा केवल नाम को जाना सुना तो उससे प्रीति और प्रीति का लाभ हो जाता है।"

गरुड़—"नाम मिथ्या है, कल्पित है, मानसिक और मन मानी बात है। रूप से वह अधिक महिमा वाला कभी नहीं हो सकता।"

भुशंडी—"कल्पित और मिथ्या, मानसिक और मन माना हुआ तो रूप भी है। यह संसार ही कल्पित है और इसलिये नाम रूप भी संसारी होने के कारण कल्पित ही होंगे। बात जो कही जा रही है वह व्यवहारिक दृष्टि से है। तीन तरह की कल्पना होती है, व्यवहार प्रतिभास और परमार्थ। व्यवहार संसारी बर्ताव हैं, प्रतिभास विचार और ज्ञान है और परमार्थ आदर्श और इष्ट है। जहां जिस स्थल पर रहो उसी पर बात चेत हो तबतो उसका कुछ परिणाम होगा और गपलचौथ करोगे तो वितंडा वाद हो जायगा और वह निरर्थक सिद्ध होगा।"

गरुड़—"मै समझ गया। मैं राम के दर्शन को मुख्य समझता था। इसलिये नाम की तरफ मेरा ध्यान नहीं गया हुआ था। अब आपके कथनानुसार मैंने जाना कि नाम की महिमा बड़ी है।"

भुशंडी—"मुख्यता तो राम के दर्शन ही की है। और दर्शन रूप ही का होता है। साक्षात्कार भी इसी के आश्रित है। लेकिन जो नाम का आसरा नहीं लेते या उसका सहारा लेकर नहीं जाते तो रूप का दर्शन फल दायक नहीं होता। नाम रूप ही के आधार पर रहता है।"

गरुड़—"जब नाम रूप के आधार पर है तो फिर रूप क्यों फल दायक न होगा ?"

भुशंडी—"इसलिये कि उसने यदि सम्भावित रूप को देख भी लिया नाम नहीं जाना तो उसका ज्ञान न होगा। किसी के हाथ हीरा लगगया। उसने हीरा का नाम नहीं सुना था और न उसका गुण जानता था। उसने उसे चमकते हुए काँच का टुकड़ा प्रतीत किया। और उसकी बहुमुल्यता को नहीं समझा। लेकिन यदि किसी ने बता दिया होता कि यह हीरा है तो हीरे का नाम उसकी विचार शक्ति का उत्तेजक होता और वह उसे पाकर धनी हो जाता। हीरा पाने से उसकी निर्धनता नहीं रहई।"

गरुड़—"आप   की बहुत बड़ी महिमा बताई। इसका लाभ भी बताइये।"

भुशंडी—भाव कुभाव अनख आलस हूँ।
नाम कहत मंगल दिशि दश हूँ॥

चाहे यह नाम भाव से लिया जाय चाहे कुभाव से। चाहे क्रोध और आलस्य से लिया जाय इसके लेने से दसों दिशाओं मे मंगल की वर्षा होने लगती है और उसका प्रभाव मंडलाकार होजाता है।

आप आज्ञा करते हैं कि मैं नाम की महिमा का वर्णन करूँ। मेरी क्या सामर्थ्य है राम भी नाम की महिमा कहना चाहें तो वह भी नहीं कह सकते।

राम से अधिक नाम प्रभुताई।
राम न सकहिं नाम गुण गाई॥

अर्थात नाम की प्रभुताई राम से भी अधिक हैं। राम में भी यह शक्ति नहीं है कि नाम के गुण प्रभाव को कह सकें।

राम एक तापस त्रिय तारी।
नाम कोटि खल कुटिल सुधारी॥

राम ने तारा भी तो किसे! एक तपस्वी स्त्री शबरी को और नाम करोड़ों बुरे और पापी मनुष्यों को तार देता है, तारता रहता है। और तारता रहेगा।

अगुण सगुण बिच नाम सुसाखी।
उभय प्रबोधक चित्र दुभाखी॥

निर्गुण और सगुण के बीच में नाम अच्छे साखी (साक्षी) का काम देता है। और यह चालाक दुभाषी (दो भाषाओं) का बोलने वाला। दोनों को प्रगट करके समझा देता और दिखा देता है।

व्यापक एक ब्रह्म अविनाशी।
सत चेतन आनन्द घन राशी॥
अस प्रभु हृदय अछत अविकारी।
सकल जीव जग दीन दुखारी॥
नाम निरूपण नाम यत्न ते।
अमि प्रगटत जिमि मोल रत्नते॥

अविनाशी ब्रह्म एक है (और चराचर जगत मे) व्यापक है। (कहा जाता है कि वह) सत चित है और आनन्द घन भंडार है। वह अविकारी (दोष रहित) ब्रह्म सबके हृदय में बिराजमान है। लेकिन उसके होते हुए और उसके सबके हृदय में रहते हुए भी सब जग के जीव दुखी रहते हैं। यह नाम का प्रताप है कि नाम के निरूपण और नाम के यत्न कर लेने से वह प्रभु आप प्रगट हो जाते हैं और सबको सुख प्राप्त हो जाता है।"

गरुड़—"आपने बहुत कहा। विशेष कहने की आवश्यकता नहीं। यह नाम दुभाषी साक्षी सगुण और निर्गुण ब्रह्म में कैसे है?"

भुशंडी—'निर्गुण गुण रहित और आधार मात्र है। सगुण गुण संयुक्त और धार संयुक्त है। निर्गुण की धार इस सगुण में उतरती है और वह इसी उतरने के कारण अवतार कहलाती है। निर्गुण सगुण का भंडार है। धार आधार में से कैसे उतरती है? इसके समझने के लिये तुम इस चित्र को देखो। इस धार के अन्तरगत नाम रहता है। वह दोनों के बीच में रहकर दोनों को दिखाता और दोनों ही का साक्षात्कार कराता रहता है।
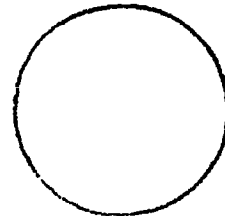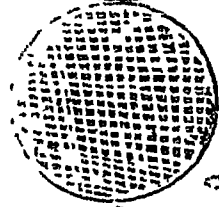
यह दो मन्डल हैं। एक निर्गुण और दूसरा सगुण। निर्गुण आधार, अधिष्ठान और कूटस्थवत है। सगुण धार संयुक्त जगत का उद्धारक और सुधारक है। और इन दोनों के बीच में जो धार आती है वह दोनों को मिलाकर दोनों का ज्ञान देती है। यह नाम है और इसे दुभाष्या साक्षी इस लिये कहा गया कि यह साधक को दोनों का रूप दिखा कर उनका साक्षात्कार कराता है। इसका सहारा न लिया जाय तो फिर न सगुण का ज्ञान होता है और न निर्गुण का। और ज्ञान के विना अनुभव नहीं होता। इस अनुभव का उत्तेजक नाम है।

पिन्ड म .   है ब्रह्मांड में।
पूर्ण है ...   को देखो खंड में॥

इस बात को ... समझलो तो फिर मैं आगे बढ़ूं।"

गरुड़—"मैंने समझ लिया।"

भुशुंडी—"तो फिर अब मुझ से गायत्री मंत्र लो, जो सगुण उपासना की प्रथम सीढ़ी और सबसे नीची भूमिका है। ऋषी केवल बालकों को इसके द्वारा सगुण उपासना की शिक्षा देते हैं। उच्च श्रेणी की शिक्षा अभी बहुत ऊंची है और वह सगुण स्वरूप राम की भक्ति है। गायत्री मन्त्र सुनोः—

ओम्, भूर भुवः स्वः तत् सवितुर वरेण्यम् भर्गो देवस्य धी मही धियो यानः प्रचोदयात्ः

सरल और साधारण भाषा में इसकी उलथा सुनो। गुरु कहता है—"ऐ शिष्य! ओ३म कह कर भू मंडल, भुवर मंडल और स्वः मंडल तीनों मंडलों का विचार छोड़ कर उस मनोरंजन सावित्री (सूरज) को देखो। उस देवता के संस्कार को ग्रहण और धारण करो। और ऐसा होजाय कि धीरे धीरे सावित्री (सूर्य) तुम्हारी बुद्धियों का प्रेरक बन जाय। (इसके पश्चात् तुम को उच्च श्रेणी की भक्ति की शिक्षा दी जायगी।)

ऐ गरुड़! सूरज का रूप सगुण सरूप है। प्रकाश निर्गुण नहीं है। सगुण है। लोग नहीं समझते। इस गायत्री मन्त्र का उलटा अर्थ बताकर अपना उल्लू सिद्ध करते हैं।

यह सावित्री सूरज कहाँ है? तुम्हारे घट में है और जैसे तुम्हारे पिन्ड मे सारी दिव्य शक्तियों के स्थान आँख, नाक, कान इत्यादि में हैं वैसे ही इस सावित्री देवता का मंडल भी तुम्हारे घट मे है। उसे देखना उसका दर्शन करना उसका साक्षात्कार करना मन्तव्य है। कहा गया हैः—

भानु रूप मालिक सुन भाई। नर देही में रहा छिपाई॥
घट में उसकी लीला देखा। घट में उसका किया परेखा॥
घट घट में वह रहा समाई। यह उस प्रभु की है प्रभुताई॥

ऐ गरुड़! क्या तुमने गायत्री के इष्ट देव सावित्री (सूर्य) की उपासना का मन्तव्य समझ लिया? तब मैं और आगे बढ़ कर तुमको और ऊंची शिक्षा दूँ।"

गरुड़ः—"हाँ भगवान्! मैंने उसे समझ लिया. देख लिया, निरख लिया, परख लिया। अब आप और ऊंची शिक्षा प्रदान कीजिये।"

भुशुंडीः—"अब आगे समझना सुगम होगा। जिसने सावित्री का रहस्य समझ लिया वह आगे की शिक्षा बड़ी सुगमता और सरलता के साथ समझेगा. जैसे इस शरीर या मनुष्य के घट में सावित्री का स्थान है वैसे ही ओंकार व ब्रह्म का भी स्थान है। उसी स्थान का नाम त्रिकूट, त्रिकुटी या त्रिकोटी है और यह रचना
त्रिकूट, त्रिकुटी या त्रिकोटी
कि इस ओ३म् में तीन अक्ष
इनके अन्तर्गत ब्रह्म के तीन
अ सत उ रज, म तम है। ...
अ भू उ भुवर, म स्व. है।
अ पृथ्वी उ अन्तरिक्ष म
इत्यादि
यह तीन अक्षर
और तीन चोटियाँ
ओंकार ब्रह्म का म
स्थान है। जो कोई
स्थान का पता गुरु
करना चाहिये। राम
सगुण है। ओंकार
रज तम की त्रिपुटी
तीन पाद का विचार।
है वह सबका सब
और उसी की भर
नाम को सुना
लो और नाम की
चढ़ जाओ। नाम
सीढ़ी हैः—
नाम न जाने
ठौर ठिकाना ना
नामी को जाना